टिप्पणी

1

कानून की अवधारणा

क्या आपने कभी अपने दिन-प्रतिदिन के जीवन में कानून की आवश्यकता महसूस की है? क्या आपने कभी ट्रैफिक पुलिस द्वारा यातायात के नियमों का उल्लंघन करने वाले किसी व्यक्ति पर जुर्माना लगाते देखा है? कानून हमारे जीवन के सभी पहलुओं को प्रभावित करता है। यह हमें मां की कोख से लेकर हमारी शिक्षा, रोजगार, विवाह तथा जीवन के अन्य महत्वपूर्ण क्षेत्रों में सुरक्षा उपलब्ध कराता है। कानून हमारे दैनिक जीवन में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है, चाहे समाचारपत्र या दूध या कोई अन्य छोटी किन्तु आवश्यक वस्तु खरीदना हो। कानून इतना महत्वपूर्ण है कि कानून के विभिन्न तथ्यों के विषय में जानकारी प्राप्त करना अत्यंत आवश्यक है जैसे कानून का अर्थ क्या है, हमें कानून कहाँ से प्राप्त होता है, इसके प्रकार कौन-कौन से हैं और सदियों की अवधि से लेकर कानून के वर्तमान स्वरूप का विकास कैसे हुआ, आदि।

उद्देश्य

इस पाठ के अध्ययन के पश्चात आप

- "कानून" शब्द के अर्थ और परिभाषा को जान पाएंगे,
- कानून का वर्गीकरण कर पाएंगे।
- कानून के स्त्रोतों को जान पाएंगे। एवं
- कानून के प्रवर्तन और न्यायकरण (administration of justice) में भारतीय कानून प्रणाली, न्यायपालिका, कानूनी पेशेवरों और सिविल सोसाइटी की भूमिका को जान पाएंगे।

1.1 कानून का अर्थ तथा परिभाषा

कानून का अर्थ उस नियम से है जो सभी क्रियाओं पर अभेदकर रूप से लागू होता है। यह आचरण का कल्पित प्रारूप है जिसके अनुरूप क्रियाएं की जाती हैं या की जानी चाहिए। कानून नियमों और विनियमों का एक बड़ा निकाय है, जो मुख्य रूप से न्याय, निष्पक्ष व्यवहार तथा

सुविधा के सामान्य सिद्धांतों पर आधारित है और जिसे मानव गतिविधियों को विनियमित करने के लिए सरकारी निकायों द्वारा तैयार किया जाता है। व्यापक दृष्टिकोण में, कानून एक सम्पूर्ण प्रक्रिया को दर्शाता है जिसके द्वारा संगठित समाज सरकारी निकायों और कर्मिकों (विधायिका, न्यायालय, अधिकरण, कानून प्रवर्तन एजेंसिया और अधिकारी, संहिता और निवारक संस्थान आदि) के माध्यम से समाज में लोगों के बीच शांतिपूर्ण और व्यवस्थित संबंध स्थापित व अनुरक्षित करने के लिए नियमों और विनियमों को लागू करने का प्रयास किया जाता है।

मानव आचरण के मार्गदर्शक के रुप में कानून की अवधारणा सभ्य समाज के अस्तित्व जितनी पुरानी है। मानव व्यवहार के लिए कानून की प्रासंगिकता आज इतनी अंतरंग हो गई है कि प्रत्येक व्यक्ति के लिए कानून की प्रकृति की संबंध में अपनी स्वंय की अवधारणा है जो नि:संदेह उसके स्वयं के दृष्टिकोण से प्रभावित होती है। यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है कि कानून की एक सहमत परिभाषा को खोजना अंतहीन यात्रा के समान है।

कानून की प्रकृति, अवधारणा, आधार और कार्यो के संबंध में विधिवेताओं के विचारों में मतभेद और भिन्नता है। कानून को पूराने रीति-रिवाजों के दैवीय रुप से आदेशित नियम या परम्परा के रुप में या समझदार लोगों के लिखित न्याय के सिद्धांतों के दार्शनिक रूप से सृजित प्रणाली के रूप में, वस्तुओं की प्रकृति या शाश्वत या या अचल नैतिक संहिता के निर्धारण और घोषणा के रूप में या राजनैतिक रूप से संगठित समाज में लोगों के करारों के निकाय के रूप में या दैवीय कारण के बिम्ब के रूप में या स्वायतत आदेशों के निकाय के रूप में, या मानव अनुभव द्वारा आविष्कृत नियमों के निकाय के रूप में, या विधिशास्त्रीय लिखित नियमों और न्यायिक निर्णयों के माध्यम से विकसित नियमों के निकाय के रूप में या समाज के प्रबुद्ध वर्ग द्वारा समाज के पुरूषों/महिलाओं पर लगाए गए नियमों के निकाय के रूप में या व्यक्तियों के आर्थिक और समाजिक लक्ष्यों की दृष्टि से नियमों के निकाय के रूप में देखा जा सकता है।

इसलिए, कानून को पहले उसकी प्रकृति, तर्क, धर्म या नीतियों द्वारा परिभाषित किया जा सकता है, दूसरे-इसके स्रोतों जैसे रीति-रिवाजों, पुर्वनिर्णयों या विधान द्वारा, तीसरा-समाज के जीवन पर इसके प्रभाव, चौथा-इसकी औपचारिक अभिव्यक्ति या आधिकारित अनुप्रयोग, पांचवां उन लक्ष्यों द्वारा जिन्हें ये प्राप्त करना चाहते हैं।

हालांकि, कानून की ऐसी कोई सामान्य परिभाषा नहीं है जिसमें कानून के सभी पहलू शामिल हों किन्तु सामान्य जिज्ञासा के लिए, कुछ महत्वपूर्ण परिभाषाएं निम्नानुसार हैं-

एरिस्टोटिल (अरस्तू)- यह (परिपूर्ण कानून) मानव की प्रकृति में निहित हैं और मानव प्रकृति से प्राप्त किया जा सकता है।

ऑस्टिन- ऑस्टिन कहते हैं कि "कानून, प्रभूसत्ता-सम्पन्न का आदेश है"।

राजनीतिक वरिष्ठों द्वारा राजनीतिक कनिष्ठों के लिए नियमों को निर्धारित करना। अन्य शब्दों में, स्वतंत्र समाज के स्वायत्त सदस्य या सदस्यों नेतृत्व का निकाय जिसमें कानून का रचयिता श्रेष्ठ है।

पेटन- पेटन के अनुसार "कानून उन नियमों का निकाय है जो समुदायों में बाध्यकारी नियमों को रुप में प्रचालित होते हैं और जिसके द्वारा नियमों के बाध्यकारी प्रावधान का सक्षम बनाने के लिए नियमों को पर्याप्त अनुपालन सुनिश्चित किया जाता है।"

ए.वी.डायसी- ए.वी.डायसी के शब्दों में "कानून जनमत का प्रतिबिम्ब हैं"।

इहरिंग-इहरिंग ने कानून को राज्य की नियन्त्रण की शक्ति द्वारा समाज में जीवन की स्थितियों की एक प्रकार की गारंटी है"।

सेल्मंड- सेल्मंड के अनुसार "कानून, न्याय के प्रयोग में राज्य द्वारा मान्यता प्राप्त तथा प्रयुक्त सिद्धान्तों का निकाय है" अर्थात न्याय के संचालन में राज्य द्वारा स्वीकृत तथा प्रयुक्त सिद्धांत।

सेविने- कानून समुदाय के भीतर अचेतन विकास का विषय है और इसे केवल इसके ऐतिहासिक परिपेक्ष्य में समझा जा सकता है। सेविने की वॉल्क्एस्ट थ्योरी के अनुसार कानून से तात्पर्य लोगों की इच्छा है।

रॉस्कोई पाउंड- "कानून राजनैतिक रूप से संगठिन समाज में बल के सुव्यवस्थित प्रयोग के माध्यम से सामाजिक नियंत्रण है।" न्यूनतम मन-मुटाव और क्षय के साथ समाज में अधिकतम इच्छाओं को पूरा करने का उपकरण है।

पाठगत प्रश्न 1.1

1. "कानून" शब्द को परिभाषित करें?
2. ऐसे पांच आधारों का उल्लेख करें जिनके आधार पर सामान्यत: कानून का वर्णन किया जा सकता है।
3. इस पाठ में दी गई कानून की किन्हीं दो परिभाषाओं को लिखें जो आपके अनुसार सर्वाधिक उपयुक्त हैं।

1.2 कानून का वर्गीकरण

कानून का उचित तथा तर्कसंगत ज्ञात प्राप्त करने के लिए, इसका वर्गीकरण अत्यंत आवश्यक है। इससे कानूनी व्यवस्था के सिद्धांतों और तार्किक संरचना को समझने में सहायता मिलती है। यह नियमों के अंतर-संबंधों और इनका एक-दूसरे पर होने वाले प्रभावों को स्पष्ट करता है और इससे नियमों का संक्षिप्त और व्यवस्थित रूप से निर्धारित करने में मदद मिलती है।

टिप्पणी

कानून का वृहत वर्गीकरण निम्नानुसार हैं

कानून का व्यापक वर्गीकरण

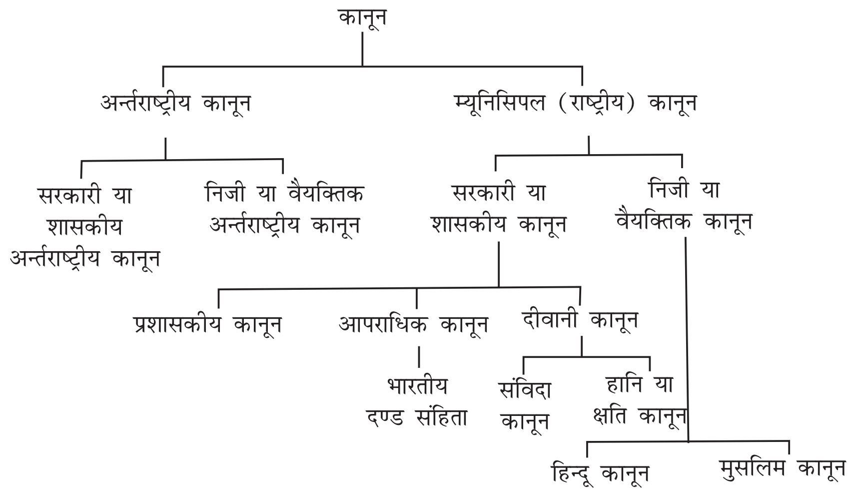

कानून को व्यापक स्तर पर दो श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता है–

1. अंतराष्ट्रीय कानून

अंतरराष्ट्रीय कानून, विधि की वह शाखा है जिसमें राज्यों या राष्ट्रों के बीच आपसी संबंधों को विनियमित करने वाले नियम शामिल हैं। अन्य शब्दों में अंतरराष्ट्रीय नियम प्रथागत और परम्परागत नियमों का एक निकाय है जो सभ्य राष्ट्रों के लिए एक दूसरे के साथ संव्यवहार करते समय कानूनी रुप से बाध्यकारी होते हैं। अंतरराष्ट्रीय कानून मुख्य रूप से सभ्य राष्ट्रों के बीच संधियों पर आधारित हैं।

अंतरराष्ट्रीय कानून को निम्नानुसार विभाजित किया जा सकता है–

(क) लोक अंतरराष्ट्रीय कानून

यह नियमों का वह निकाय हो जो एक राष्ट्र के अन्य राष्ट्रों के साथ आचरण व संबंधों को शासित करता है।

(ख) निजी अंतरराष्ट्रीय कानून

इसका तात्पर्य उन नियमों और सिद्धान्तों से है जिनके अनुसार विदेशी तत्वों वाले मामलों को निपटाया जाता है। उदाहरण के लिए यदि एक संविदा भारत में एक भारतीय और पाकिस्तानी नागरिक के बीच में किया जाता है और इसे सीलोन में निष्पादित करना है, उसके नियम और विनियमों पर पक्षों के अधिकारों और दायित्वों का निर्धारण किया जाता है, उन्हें 'निजी अंतरराष्ट्रीय कानून' कहते हैं।

2. नगरपालिका या (राष्ट्रीय) कानून

नगरपालिका या राष्ट्रीय कानून, विधि की वह शाखा है जो राज्य के भीतर ही लागू होती है। इसे दो श्रेणियों में वगीकृत किया जा सकता है।

(क)

i. संवैधानिक कानून

संवैधानिक कानून राज्य का आधारभूत या मौलिक कानून है। यह कानून राज्य की प्रकृति तथा सरकार की संरचना का निर्धारण करता है। यह उस राष्ट्र के सामान्य कानून से उत्कृष्ट होता है क्योंकि सामान्य कानून संवैधानिक कानून से ही प्राधिकार और शक्तियां प्राप्त करता है।

ii. प्रशासनिक कानून

यह कानून प्रशासन के अंगों की सरंचना, शक्तियों और कार्यो, उनकी शक्तियों की सीमाओ, अपनी शक्तियों को प्रयोग करने के लिए अनुसरण की जाने वाली विधियों और प्रक्रियाओं, विधियां जिनके द्वारा उनकी शक्तियों को नियंत्रित किया जाता है तथा एक व्यक्ति को उनकी विरूद्ध उपलब्ध उपचारों, जब उस व्यक्ति के अधिकार उनके प्रचालन के कारण बाधित होते हैं, से संबंधित है।

iii. अपराधिक कानून

यह अपराधों को परिभाषित करता है और उनके लिए दंड निर्धारित करता है। इसका उद्देश्य अपराधों का निवारण करना और इनके लिए दंड देना है क्योंकि सभ्य समाजों में, 'अपराध' को व्यक्ति के विरूद्ध गलत कृत्य नहीं माना जाता बल्कि समाज के विरुद्ध गलत कार्य माना जाता है।

(ख) निजी कानून

कानून की यह शाखा नागरिकों के एक-दूसरे के साथ आपसी संबंधों को विनियमित तथा शासित करता है। इसमें निजी या व्यक्तिक कानून शामिल है जैसे हिन्दू कानून और मुस्लिम कानून।

इन प्रकार के कानूनों के अतिरिक्त, कुछ अन्य प्रकार के कानून भी विद्यमान है, जो निम्नानुसार हैं।

प्राकृतिक या नैतिक कानून

प्राकृतिक कानून सही और गल के सिद्धांत पर आधारित है। यह प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों को सम्मिलित करता है।

परंपरागत कानून

परंपरागत कानून से तात्पर्य किसी नियम या नियमों की प्रणाली से है जो व्यक्तियों द्वारा एक दूसरे के प्रति अपने आचरण को विनियमित करने के लिए आपसी सहमति से तैयार किए जाते हैं। उदाहरण के लिए भारतीय संविदा अधिनियम, 1872 संविदाओं या करारों संबंधी नियमों से सम्बन्धित है।

प्रथागत या रूढ़िगत कानून

ऐसा नियम जिसका पालन किसी प्रथा के स्थापित होने पर मनुष्यों द्वारा किया जाता है, लोगों द्वारा स्वीकृत या मान्य होने के कारण राज्य द्वारा कानून के रूप में लागू कर दिया जाता है।

सिविल कानून

राज्य द्वारा प्रवर्तित कानून को सिविल कानून कहा जाता है। इस कानून का आधार राज्य का बल है। सिविल कानून अनिवार्य रुप से प्रादेशिक प्रकृति का है और यह संबधित राज्य के क्षेत्र के भीतर ही लागू होता है।

अधिष्ठायी कानून

अधिष्ठायी कानून राज्य के विरूद्ध व्यक्तियों के अधिकारों और दायित्वों से संबंधित है और अपराधों को निर्धारित करता है और इन अधिकारों के उल्लंघन के लिए दंड का निर्धारण करता है। उदाहरण के लिए, भारतीय दंड संहिताए 1860 (Indian Penal Code) में 511 विभिन्न अपराधों और इन अपराधों से संबधित दण्डों का उल्लेख है।

प्रक्रियात्मक कानून

यह उस विधि तथा प्रक्रिया से संबंधित है जिसका उद्देश्य न्याय के प्रंबंधन को सुलभ बनाना है। यह न्यायालय द्वारा मुकदमाकर्ता पक्षों के कानूनी अधिकारों और दायित्वों के प्रवर्तन के लिए एक अनिवार्य प्रक्रिया है। उदाहरण के लिए, दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (Criminal Procedure Code, 1973) में अपराधी को दंड प्रदान करने के लिए अपनाई जाने वाली प्रक्रिया स्थापित की गई है।

पाठगत प्रश्न 1.2

1. लोक कानून तथा निजी कानून में अंतर स्पष्ट करें।
2. अधिष्ठायी और प्रक्रियात्मक कानून में अन्तर बताए।
3. दंड कानून के मुख्य उद्देश्य का उल्लेख करें।

1.3 कानून के स्त्रोत

कानून की अवधारणा का पूर्ण ज्ञान प्राप्त करने के लिए कानून के स्त्रोतों का ज्ञात प्राप्त करना अत्यंत आवश्यक है। स्त्रोत का शाब्दिक अर्थ उस बिन्दु से है जहां से किसी अवधारणा का उदय, उत्पत्ति या निर्माण होता है। इस प्रकार, "कानून का स्त्रोत" अभिव्यक्ति से तात्पर्य उस स्त्रोत से है जहां से मानव आचरण के नियमों की उत्पत्ति होती है और बाध्यकारी स्वरूप की कानूनी शक्ति प्राप्त की जाती है। व्यापक रूप से, कानून के स्त्रोत को निम्नानुसार विभाजित किया जा सकता है।

1. रीति-रिवाज

रीति-रिवाज कानून के सबसे पुराने और सर्वाधिक महत्वपूर्ण स्त्रोत हैं। रीति-रिवाज उन सिद्धांतों को अभिव्यक्ति करते हैं। जो न्याय और जन उपयोगिता के सिद्धांतों के रूप में स्वाभाविक अंत:करण से स्वयं निर्मित हुए हैं। रीति रिवाज या प्रथा समान कृत्य के बार-बार दोहराने से जन्म लेते हैं और इसलिए, ये एक समुदाय के भीतर प्रथागत आचरण को दर्शाते हैं। इस प्रकार समान परिस्थितियों में आचरण की एकरूपता रीति-रिवाज का प्रमाणन है।

टिप्पणी

रीति-रिवाज के अनिवार्य तत्व

कानून की दृष्टि में वैध होने के लिए परम्परागत पद्धितियों को कुछ अपेक्षाओं को पूरा करना होता है और इनमें से कुछ महत्वपूर्ण अपेक्षाएं हैं–

क. प्राचीनता (Antiquity)– एक रीति को कानून के रुप में मान्यता प्राप्त करने के लिए यह सिद्ध करना आवश्यक है कि वह चिरकाल या लंबे समय से अस्तित्व में है।

ख. निरंतरता (Contiunance)– एक रीति की दूसरी अनिवार्य आवश्यकता यह है कि वह निरंतर रूप से प्रयोग में होनी चाहिए।

ग. विश्वसनीयता– एक रीति को अविश्वसनीय या गैर–युक्तिसंगत नहीं होना चाहिए अर्थात यह व्यक्तिगत मामलों की परिस्थितियों में अनुप्रयोग में युक्ति संगत होना चाहिए।

घ. बाध्यकारी विशेषता–रीति में बाध्यकारी शक्ति होना चाहिए। इसे जन–साधारण का समर्थन प्राप्त होना चाहिए और यह अधिकार का विषय होना चाहिए।

ड. निश्चितता– एक रीति को निश्चित होना चाहिए। एक ऐसी प्रथा या परम्परा जो अस्पष्ट या अनिश्चित हो उसे मान्यता प्रदान नहीं की जा सकती है।

च. अनुरूपता–परंपरागत नियमों में प्रयोग के आचार में अनुरूपता होनी चाहिए।

छ. सांविधिक कानून और लोक नीति के साथ अनुकूलता–परम्पराओं को सांविधिक कानून और लोक नीति के अनुकूल होना चाहिए।

2. न्यायिक पूर्वनिर्णय

'पूर्व–निर्णय' ऐसे निश्चित प्रतिमानों या आदर्शों को दर्शाते हैं जिन पर भावी आचरण आधारित होते हैं। ये समान परिस्थितियों में पूर्ववर्ती घटना, निर्णय या अनुसरण की गई कार्रवाही हो सकती है। न्यायिक पूर्व–निर्णय कानून का एक स्वतंत्र स्रोत है। निर्णीतानुसार (Stare Decisis) एक लैटिन शब्द है जिसका अर्थ है "पूर्व निर्णय या दृष्टान्त का अनुपालन करना और सिद्ध बिंदुओं को न छेड़ना।" पूर्व निर्णय या निर्णीतानुसार क्रमानुसार निचली अदालतों में भावी मामलों में निर्णय देने के लिए पूर्ण न्यायिक–निर्णयों के अनुप्रयोग को दर्शाता है।

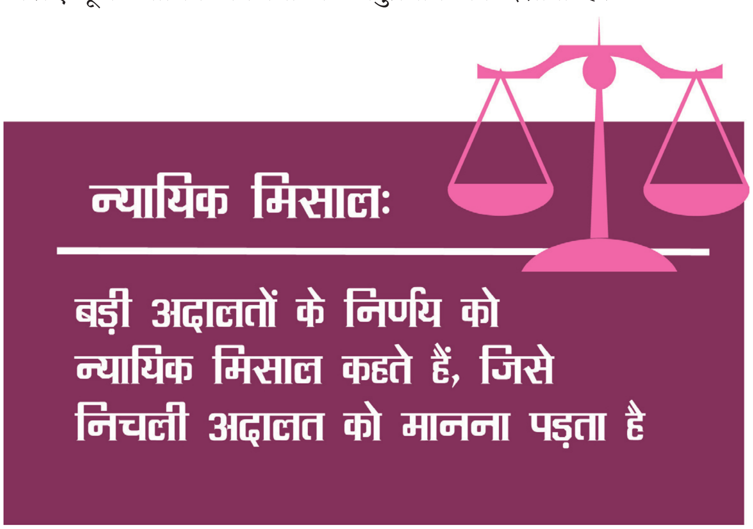

न्यायिक पूर्व-निर्णय या 'स्टेरे डिसीसी' का आगामी मामलों में बाध्यकारी शक्ति होती है। यह कोई सम्पूर्ण निर्णय नहीं है जो कि बाध्यकारी होता है। अन्य शब्दों में पूर्ववर्ती निर्णय में न्यायाधीश द्वारा दिया गया प्रत्येक विवरण भावी मामले के लिए बाध्यकारी नहीं होता है। पूर्ववर्ती मामले के केवल वही निर्णय, उस मामले के निर्णय के लिए कारण का निर्धारण करता है या विनिश्चिय आधार' (ratio decidendi), सामान्य सिद्धांत के रूप में बाध्यकारी होता है। विनिश्चिय आधार एक सामान्य सिद्धांत है जिसका प्रयोग निर्णय मामले में किया जाता है। कानून के नियम के आधार पर निर्णय दिया जाता है और यह प्रामाणिक प्रकृति का होता है।

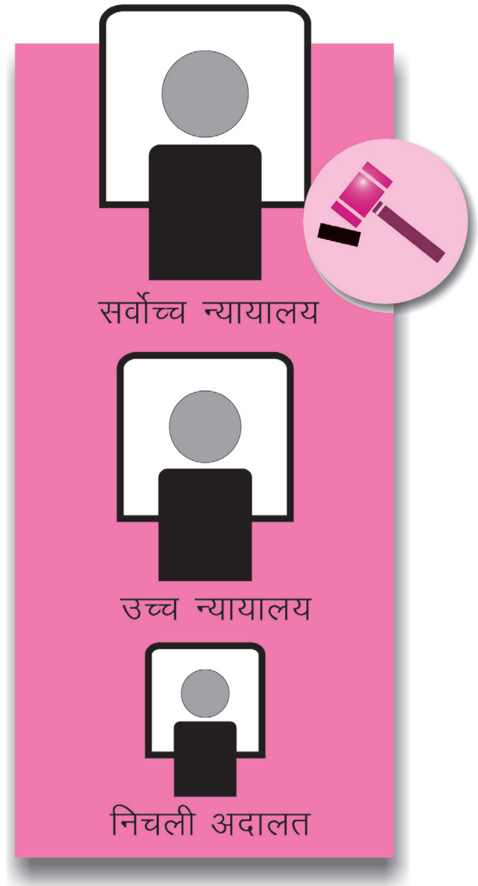

भारत में न्यायपालिका की एकीकृत प्रणाली

'विनिश्चय आधार' के अतिरिक्त, एक निर्णय में वे टिप्पणियां भी शामिल हो सकती हैं जो न्यायलय के समक्ष उपस्थित मामले के लिए विशुद्ध रूप से संगत नहीं होती हैं। ये टिप्पणियां कानून के व्यापक पहलुओं पर आधारित हो सकती है। या सुनवाई के दौरान न्यायधीशों या काउंसलों द्वारा उठाए गए कल्पित प्रश्नों के उत्तरों पर आधारित हो सकती हैं। इस प्रकार की टिप्पणियां 'इतिरोक्ति' (obiter dicta) और ये बिना किसी बाध्यकारी प्राधिकार के होती हैं क्योंकि अब तक ये निर्णय निर्धारण के लिए अनिवार्य नहीं है।

3. विधान या विधि-निर्माण (Legislation)

'विधान' कानून के क्रमविकास की सुविचारित प्रक्रिया है जिसमें संविधान के द्वारा अभिकल्पित एजेंसियों द्वारा निर्धारित प्रक्रिया के माध्यम से एक नियत प्रारूप में मानव आचरण के नियमों का सजृन शामिल है। 'विधान' का अर्थ है मानव व्यवहार के नियमों का निर्माण।

'विधान' शब्द की उत्पत्ति लेगिस (legis) और लेटम (latum) शब्दों से हुई हें जिनका अर्थ बनाना या स्थापित करना है। इस प्रकार, शब्द "विधान" का अर्थ कानून का निर्माण करना है। यह कानून का वह स्रोत है जिसमें सक्षम प्राधिकरण द्वारा कानूनी नियमों की घोषणा शामिल है। विधान में विधायिका के संकल्प की प्रत्येक अभिव्यक्ति शामिल होती है, चाहे कानून निर्माण हो या नहीं।

पाठगत प्रश्न 1.3

1. 'कानून' के विभिन्न स्रोतों की पहचान करें?
2. 'रीति-रिवाजों' को परिभाषित करें और रीति-रिवाजों के अनिवार्य तत्वों की भी पहचान करें।
3. "विधान" शब्द को परिभाषित करें।

1.4 कानून के प्रवर्तन तथा न्यायकरण में कानूनी प्रणाली, न्यायपालिका, कानूनी पेशेवरों और सिविल सोसाइटी की भूमिका

जब समाज अस्तित्व में आया उस समय समाज में रहने वाले लोगों के व्यवहार को विनियमित करने के लिए शायद ही कोई नियम रहा हो। उस समय, हर ओर अराजकता, जंगलीपना और अव्यवस्था की स्थिति थी। सभ्यता और समाज के विकास की प्रक्रिया में, एक ऐसी व्यवस्था की आवश्यकता महसूस की गई जो न्याय और निष्पक्षता के निर्धारित सिद्धांतों के आधार पर मानव व्यवहार को विनियमित कर सके और लोगों के बीच मतभेदों को न्यूनतम कर सके। समाज के विकास और वेहतरी के लिए अनेक व्यवस्थाएं विकसित की गईं। इन व्यवस्थाओं की भूमिका का उल्लेख नीचे किया गया है-

कानून प्रणाली की भूमिका

एक कानून प्रणाली एक समाज में लोगों के सुरक्षित और संवर्धन के लिए कानूनी सिद्धातों और मानदंडों का समुच्य है। इस प्रकार, यह लोगों के अधिकारों को मान्यता प्रदान करके और कर्तव्यों को निर्धारित करके महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती है तथा यह इन अधिकारों और कर्तव्यों को लागू करने का तरीका भी उपलब्ध करती है।

इन अधिकारों और कर्तव्यों को लागू करने के लिए, कानूनी प्रणाली समाज की सामाजिक-आर्थिक और राजनीतिक परिस्थितियों पर विचार करती है और स्वयं के लक्ष्य निर्धारित करती है और तत्पश्चात नियमों या सिद्धातों और कानूनों के एक समुच्चय का निर्माण करती है जो समाज को अपने चिहिनत लक्ष्यों को प्राप्त करने में सहायक होती है।

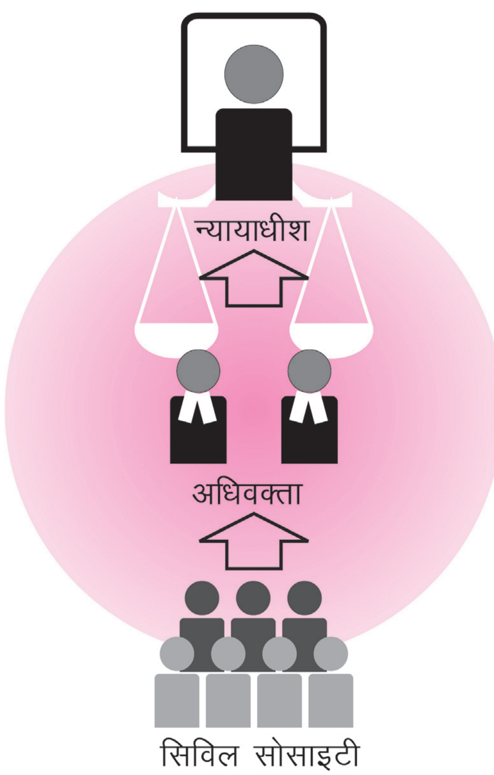

न्यायाधीश

न्यायाधीश जो न्याय के रक्षक होते हैं, वे लोकतांत्रिक व्यवस्था में कार्यपालिका और विधायिका दोनों से स्वतंत्र होते हैं। इसलिए,

न्यायाधीश वे व्यक्ति हैं जो निर्भय होकर या पक्षपात के बिना न्याय प्रदान करते हैं। वे अपने समक्ष प्रस्तुत मामले पर न्यायोचित, निष्पक्ष और युकितसंगत सिद्धांतों के अनुसार उचित जांच करने के पश्चात निर्णय देते हैं।

अधिवक्ता

अधिवक्ता न्याय प्रदान करने की प्रक्रिया में न्यायधीशों को सहयोग प्रदान करने वाले प्रमुख पदाधिकारी हैं। अधिवक्ता न्यायालय के अधिकारी हैं और अधिवक्ता अधिनियम, 1961 के अंतर्गत एक स्वतंत्र व्यवसाय का भाग हैं। विवाद के दोनों पक्षों के वकीलों की विशेषज्ञ सहायता के बिना, न्यायाधीश के लिए मामले के विवादित तथ्यों के संबंध में सत्य का पता लगाना और न्याय की व्याख्या कर पाना कठिन हो जाता है।

सिविल सोसाईटी

लोक तंत्र में "हम लोग" अर्थात नागरिक और उनके विशिष्ट समूह सुशासन में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते हैं। वे विधायिका और सरकार का ध्यान आकर्षित करने के लिए दबाव समूहों का सृजन करते हैं। उदाहरण के लिए स्वतंत्रता संग्राम में दौरान महात्मा गांधी जी द्वारा अनेक आंदोलन चलाए गए, भ्रष्टाचार के विरूद्ध अन्ना हजारे जी द्वारा चलाया गया जन-आंदोलन। लोगों की प्रभावपूर्ण भागीदारी सरकार में पारदर्शिता, जवाबदेही और प्रतिक्रियात्मकता लाती है।

पाठगत प्रश्न 1.4

1. संविधान का क्या महत्व है?
2. सुशासन स्थापित करने में सिविल सोसाईटी किस प्रकार सहायक है?
3. न्यायकरण में एडवोकेटों की भूमिका का विश्लेषण करें।
4. न्यायकरण में न्यायाधीशों की भूमिका का संक्षिप्त वर्णन करें।

आपने क्या सीखा

- कानून मानव आचरण और व्यवहार को विनियमित करने के लिए न्याय और समान अवसर के सामान्य सिद्धांतों पर आधारित नियमों और विनियमों का एक व्यापक निकाय है।
- व्यापक रूप से , कानून को अंतरराष्ट्रीय कानून तथा नगरपालिका (राष्ट्रीय) कानून में वर्गीकृत किया जा सकता है, जिसे आगे लोक और निजी कानूनों में विभाजित किया जा सकता है और तत्पश्चात अधिष्ठायी और प्रक्रियात्मक कानून में विभाजित किया जा सकता है।

- कानून का पूर्ण ज्ञान प्राप्त करने के लिए, उन स्रोतों का ज्ञान प्राप्त करना अंत्यत आवश्यक है जहां से कानून आता है। व्यापक रूप से कहा जाए तो परम्पराएं, न्यायिक पूर्व-निर्णय और विधान वे स्रोत हैं जहां से कानून की उत्पत्ति होती है।
- समय के साथ साथ समाज ने मानव आचरण और व्यवहार को विनियमित करने के लिए अनेक माध्यम विकसित कर लिए हैं जो समाज में मतभेंदों और अराजकता को न्यूनतम कर सकते हैं। कानूनी प्रणाली, संविधान, न्यायालय, कानून के कार्मिक विशेष रूप से न्यायाधीश, एडवोकेट, सिविल सोसाइटी नागरिकों के अधिकारों और दायित्वों को लागू करने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते हैं। इससे समाज में व्यापत अराजकता, मतभेद तथा भ्रष्टाचार का निवारण भी सम्भव होगा।

पाठांत प्रश्न

1. 'कानून' शब्द को परिभाषित करें।
2. कानून के विभिन्न स्रोतों की पहचान करें।
3. विभिन्न प्रकार के कानूनों की पहचान करें।
4. 'न्यायिक पूर्व-निर्णय' का वर्णन करें।
5. 'विनिश्चिय आधार' और 'इतिरोक्ति' में अंतर बताएं।
6. "निर्णीतानुसार' के सिद्धांत का वर्णन करें।
7. न्यायकरण में न्यायाधीशों की भूमिका का विश्लेषण करें।
8. न्यायकरण में एडवोकेटों की भूमिका का उल्लेख करें।
9. सुशासन में सिविल सोसाइटी की भूमिका का वर्णन करें।

9. सही विकल्प का चयन करें-

क	ख
(क) देश का मौलिक कानून	(क) लोक अंतरराष्ट्रीय कानून
(ख) अपराधों और दंडों से संबंधित	(ख) संविधान
(ग) पूर्ववर्ती निर्णयों का मानना	(ग) निर्णीतानुसार
(घ) नियमों का निकाय जो राज्य और अन्य केबीच के संबंध को शासित करेगा।	(घ) अधिष्ठायी कानून

परियोजना

एक दिन न्यायालय का दौरा करें जो आपके घर में समीप हो और वहां विद्यमान कानूनी प्रणाली के घटकों और उनसे संबंधित निम्नलिखित तत्वों को जानने का प्रयास करें-

क्र. सं	कानूनी प्रणाली के घटक	अवलोकन
1.	संविधान की भूमिका	
2.	न्यायाधीशों की भूमिका	
3.	एडवोकेटों की भूमिका	

पाठगत प्रश्नों के उत्तर

1.1

1. कानून नियमों और विनियमों का एक बड़ा निकाय है, जो मुख्य रूप से न्याय, निष्पक्ष व्यवहार तथा सुविधा के सामान्य सिद्धांतों पर आधारित है और जिसे मानव गतिविधियों को विनियमित करने के लिए सरकारी निकायों द्वारा तैयार किया जाता है।

2. 'कानून' को निम्न पांच आधारों पर परिभाषित किया जा सकता है–

   1. उसकी प्रकृति, कारण, धर्म या नीतियों के आधार पर

   2. इसके स्रोतों जैसे रीति-रिवाजों, पूर्ण निर्णयों या विधान द्वारा,

   3. समाज के जीवन पर इसके प्रभाव,

   4. इसकी औपचारिक अभिव्यक्ति या आधिकारित प्रयोग,

   5. उन लक्ष्यों द्वारा जिन्हें ये प्राप्त करना चाहते हैं।

3. कानून की दो सर्वाधिक मान्य परिभाषाएं निम्न हैं–

   (1) सेल्मंड– "कानून न्याय के संचालन में राज्य द्वारा स्वीकृत तथा प्रयुक्त सिद्धांत है।"

   (2) "कानून राजनैतिक रूप में संगठित समान में बल के सुव्यवस्थित प्रयोग के माध्यम से सामाजिक नियंत्रण है। न्यूनतम मन-मुटाव और क्षय के साथ समाज में अधिकतम इच्छाओं को पूर्ण करने का उपकरण है।"

1.2

1. लोक कानून राज्य के संगठन और कार्य प्रणाली को विनियमित करता है जबकि निजी कानून नागरिकों के एक-दूसरे के साथ आपसी संबंधों को विनियमित तथा शासित करता है।

2. अधिष्ठायी कानून व्यक्तियों के अधिकारों और दायित्वों से संबंधित है जबकि प्रक्रियात्मक कानून उस विधि तथा प्रक्रिया से संबंधित है जिसका उद्देश्य न्याय के प्रबंधन को सुलभ बनाना है।

3. अपराधिक कानून का उद्देश्य अपराध का निवारण करना और इसके लिए दंड निर्धारित करना है।

1.3

1. मुख्य रूप से कानून के तीन भिन्न स्रोत हैं-

   1. परम्पराएं;

   2. पूर्व निर्णय;

   3. विधान।

2. 'रीति-रिवाज' कानून के सबसे पुराने और सर्वाधिक महत्वपूर्ण स्रोत हैं। रीति-रिवाज उन सिद्धांतों को अभिव्यक्त करते हैं जो न्याय और जन उपयोगिता के सिद्धांतों के रूप में स्वाभाविक अंत:करण से स्वयं निर्मित हुए हैं।

   रीति-रिवाज के अनिवार्य तत्व हैं-

   (i) प्राचीनता

   (ii) निरंतरता

   (iii) विश्वसनीयता

   (iv) बाध्यकारी विशेषता

   (v) निश्चितता

   (vi) अनुरूपता

   (vii) सांविधिक कानून और लोक नीति के साथ अनुकूलता

3. 'विधान' या विधि-निर्माण से तात्पर्य कानून बनाने से हैं। इसमें विधायिका के निर्णय की प्रत्येक अभिव्यक्ति शामिल है।

1.4

1. 'संविधान' एक मौलिक अभिलेख है जो एक प्रस्तुत समाज में लोगों की नीतिगत आकांशाओं को शामिल करता है। इसमें समानता न्याय और निष्पक्षता के आधार पर राष्ट्र के लोगों के अधिकार और दायित्व शामिल होते हैं। इस दस्तावेज में सरकार की शक्तियों और दायित्वों का भी उल्लेख होता है।

2. सिविल सोसाइटी विधायिका और सरकार की कार्यपालिका शाखा का ध्यान आकर्षित करने के लिए दबाव बनाती है। उनका यह कदम सरकार में पारदर्शिता, जवाबदेही और प्रतिक्रियात्मकता लाती है और इस प्रकार वे सुशासन में सहयोग प्रदान करती है।

3. अधिवक्ता, न्याय प्रदान करने की प्रक्रिया में न्यायाधीशों को सहयोग प्रदान करने वाले प्रमुख पदाधिकारी है। अधिवक्ता न्यायालय के अधिकारी हैं और अधिवक्ता अधिनियम,

टिप्पणी

1961 के अंतर्गत एक स्वतंत्र व्यवसाय का भाग हैं। विवाद के दोनों पक्षों के वकीलों की विशेषज्ञ सहायता के बिना, न्यायाधीश के लिए मामले के विवादित तथ्यों के संबंध में सत्य का पता लगाना और न्याय की व्याख्या कर पाना कठिन हो जाता है।

4. न्यायाधीश जो न्याय के रक्षक होते हैं, वे लोकतांत्रिक व्यवस्था में कार्यपालिका और विधायिका दोनों से स्वतंत्र होते हैं। इसलिए, न्यायाधीश वे व्यक्ति हैं जो निर्भय होकर या पक्षपात के बिना न्यायप्रदान करते हैं। वे अपने समक्ष प्रस्तुत मामले पर न्यायोचित, निष्पक्ष और युक्तिसंगत सिद्धांतों के अनुसार उचित जांच करने के पश्चात निर्णय देते हैं।

2

कानूनी प्रणाली का वर्गीकरण

पिछले पाठ में आपने कानून के अर्थ और अवधारणा को समझ लिया होगा। आप विधिक प्रणाली और उसके विभिन्न घटकों के अर्थ से परिचित हैं। क्या यह रोचक है? अब आपने विश्वभर में प्रयोग होने वाली विधिक प्रणालीयों के विषय में सोचना आरंभ कर दिया होगा। आरंभिक तौर पर आप सोचते होंगे कि विश्व में कितनी विधिक प्रणालियां विद्यमान हैं, किन्तु आपको यह जानकर आश्चर्य होगा कि हालांकि प्रत्येक देश की अपनी स्वयं की विधिक प्रणाली है किन्तु समान गुणों और विशेषताओं के आधार पर ये एक दूसरे से जुड़ी हुई हैं। ये विशेषताएं समान इसलिए हैं क्योंकि इन सभी के स्रोत सीमित हैं जिन्हें उंगलियों में गिना जा सकता है और यही स्रोत कानूनी प्रणालियों के वर्गीकरण का आधार प्रस्तुत करती हैं। इस पाठ में आप समान गुणों और विशेषताओं के आधार पर व्यापक वर्गीकरण के आधार पर विश्व की विभिन्न कानूनी व्यवस्थाओं को समझेंगे। ऐसे वर्गीकरण के आधार पर विश्व की कानूनी व्यवस्थाओं को मोटे तौर पर चार श्रेणियों में वर्गीकृत किया जा सकता है: (क)सामान्य कानून (ख) कॉन्टिनेंटल या महाद्वीपीय कानूनी प्रणाली (ग) समाजवादी कानूनी प्रणाली (घ) अंतरराष्ट्रीय संस्थानों तथा संबंधित देशों के बीच कानूनी प्रणाली। इस पाठ में हम एक-एक करके इन विभिनन कानूनी प्रणालियों का अध्ययन करेंगे।

उद्देश्य

इस पाठ का अध्ययन करने के पश्चात आप:

- सामान्य या सामूहिक कानून के अर्थ तथा विभिन्न कानूनी प्रणालियों द्वारा महसूस किए जाने वाले इसके महत्व का वर्णन कर पाएंगे;
- अनेक अन्य कानूनी प्रणालियों के विकास का प्रभावित करने में महाद्वीपीय या कॉन्टिनेंटल कानूनी प्रणाली के महत्व को समझ पाएंगे;
- समाजवादी कानूनी प्रणाली की विशेषताओं का मूल्यांकन कर पाएंगे और अन्य कानूनी प्रणालियों के विकास में इसके प्रभाव को समझ पाएंगे;
- अंतरराष्ट्रीय संस्थानों की कार्यप्रणाली तथा उनके द्वारा अनुसरण की जाने वाली कानूनी प्रणाली का मूल्यांकन कर पाएंगे; तथा
- समान गुणों और विशेषताओं के आधार पर विभिन्न कानूनी प्रणालियों की पहचान कर पाएंगे।

2.1 सामान्य कानून प्रणाली

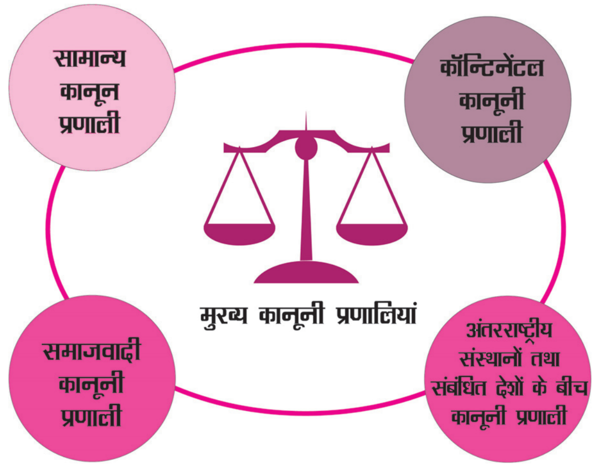

क्या आप 'सामान्य कानून' के अर्थ को जानते हैं? यह प्रश्न इस दृष्टिकोण से महत्वपूर्ण है कि जब यह प्रश्न एक साधारण व्यक्ति से पूठा जाएगा तो उसका उत्तर यही होगा कि सामान्य कानून वह है जा सामान्य रूप से लागू होता है। किन्तु सामान्य कानून का यह अर्थ नहीं है। ''सामान्य कानून'' विश्व की विभिन्न कानून प्रणालियों के एक परिवार का नाम है जो छोटे अंतरों के साथ समान गुणों और विशेषताओं वाली कानून-प्रणाली का अनुसरण करते हैं। सामान्य कानून के परिवार के राष्ट्र-सदस्यों द्वारा प्रयोग किए जाने वाली समान विशेषताएं हैं:

(क) उच्चतर न्यायालयों या अधिकरणों द्वारा दिए गए निर्णयों का प्राधिकार

(ख) न्यायिक संस्थानों की संरचना

(ग) न्यायालय प्रक्रियाओं की विरोधात्मक प्रणाली, और न्यायाधीश की भूमिका, तथा

(घ) सक्षम प्राधिकारणों द्वारा परित किए गए अधिनियम, संविधि, तथा अन्य विधान।

सामान्य कानून प्रणाली ने विश्व की अनेक कानूनी प्रणालियों के विकास को प्रभावित किया है, जैसे भारत, इंग्लैंड, यू.एस.ए., कनाडा तथा आस्ट्रेलिया। वास्तव में, सामान्य कानून की उत्पत्ति इंग्लैंड में मानी जाती है, इसलिए जहां कही ब्रिटिश साम्राज्य ने अपनी प्रभुसत्ता स्थापित की वहां सामान्य कानून लागू किया गया था। हम आगामी पैराग्राफों में इस कानूनी प्रणाली की चार समान विशेषताओं पर चर्चा करेंगे व उनको समझने का प्रयास करेंगे।

(क) उच्चतर न्यायालयों और अधिकरणों द्वारा दिए गए निर्णयों का प्राधिकार : ''सामान्य कानूनी प्रणाली'' में आप देखेंगे कि उच्च न्यायालयों और उच्चतम न्यायालय (या उच्चतर न्यायालयों) द्वारा दिए गए निर्णयों का प्राधिकार प्राप्त होता है और ये निर्णय शक्तिशाली स्थिति में होते हैं। समान प्रकार के मामलों में निचली अदालतों और अधि करणों द्वारा इन निर्णयों का अनुपालन करना होता है क्योंकि कानून में उच्चतर न्यायालयों के निर्णयों को प्राधिकारात्मक शक्ति प्राप्त होती है। यदि निचले न्यायालय उच्चतर न्यायालयों के निर्णयों का अनुपालन नहीं करता है तो निचले न्यायालय के निर्णयों को चुनौती दी जा सकती है और इसे निरस्त भी किया जा सकता है। यह मत सोचिये कि यह विशेषता अन्य कानूनी प्रणालियों में भी विद्यमान है। अन्य कानूनी प्रणालियां उच्चतर न्यायालयों के निर्णय के प्राधिकार पर ऐसी विश्वसनियता नहीं दर्शाती है। इस प्रकार, उन कानूनी प्रणालियों में उच्चतर न्यायालयों या न्यायाधिकार के उच्चतर/अपील न्यायालय के निर्णय निचले न्यायालयों पर प्राधिकारिक या बाध्यकारी नहीं हैं, जो सामान्य कानून परिवार के सदस्य नहीं हैं।उच्चतर न्यायालयों के निर्णयों के प्राधिकार को 'न्यायिक पूर्व निर्णय' (Judicial Precedent) का तकनीकी नाम दिया गया है। इस प्रकार, हम कह

सकते हैं कि उच्चतर न्यायालयों के निर्णय न्यायिक पूर्व निर्णय हैं और समान मामलों में निचले न्यायालयों को इनका अनुसरण करना चाहिए। उदाहरण के लिए भारत में, मुम्बई उच्च न्यायालय के निर्णय इस उच्च न्यायालय के न्यायाधिकार में आने वाले सभी निचले न्यायालयों के लिए 'न्यायिक पूर्व निर्णय' माना जाएगा और वे इन निर्णयों से बाध्य होंगे। इस प्रकार भारत कानूनी प्रणाली के सामान्य कानून परिवार का एक सदस्य है।

(ख) न्यायिक संस्थानों की संरचना : सामान्य कानून परिवार की दूसरी समान विशेषता यह है कि न्यायालयों के न्यायाधीश अत्यधिक कुशल व्यक्ति होते हैं जिन्होंने विशेष रूप से कानून के विशेष्ट क्षेत्र का अध्ययन किया होता है और कानूनी प्रशासन में एड्वोकेट या न्यायाधीश के रूप प्रायोगिक अनुभव प्राप्त होता है। अन्य शब्दों में एक सामान्य व्यक्ति या एक वैज्ञानिक न्यायाधीश नहीं बन सकता है। बल्कि उसे कानूनी पृष्ठभूमि वाला व्यक्ति होना चाहिए अर्थात या तो वह एड्वोकेट हो या न्यायाधीश हो या कम से कम उसके पास विधि की डिग्री हो। निर्णय कानून की यह विशेषता न्यायिक संस्थानों को व्यावसायिक व्यक्तियों के पृथक समूह के रूप में स्थापित करती है। यही एक कारण है कि उनके द्वारा दिए जाने वाले निर्णय तकनीकी हैं तथा कानून के प्रावधानों के अनुसार सटीक ब्यौरों पर आधारित हैं जिसके परिणामस्वरूप निर्णय की गुणवत्ता बेहतर होती है और इस कारण से ये निर्णय प्राधिकार स्थापित करते हैं जब ये अनुभवी न्यायाधीशों या एडवोकेटों द्वारा दिए जाते हैं। उदाहरण के रूप में, आप कह सकते हैं कि भारत में ट्रायल अदालतों या जिला न्यायालयों में न्यायाधीशों की नियुक्ति प्रवेश परीक्षा के आधार पर की जाती है जहां न्यूनतम पात्रता विधि में डिग्री है और उच्च न्यायालयों के न्यायाधीशों का चयन एडवोकेट या न्यायाधीश के रूप में कम से कम 10 साल का अनुभव रखने वाले न्यायाधीशों में से किया जाता है। न्याय की पृष्ठभूमि से बाहर वाला व्यक्ति राज्य तथा केन्द्र सरकार का न्यायाधीश नहीं बन सकता है। इसलिए सामान्य कानून विधि में न्यायाधीशों की सामान्य पृष्ठभूमि विविध नहीं होती है बल्कि अत्यंत सीमित होती है।

(ग) न्यायालय प्रक्रियाओं की विरोधात्मक प्रणाली तथा न्यायाधीश की भूमिका : सामान्य कानून प्रणाली की एक अन्य विशेषता यह है कि न्यायालय की प्रक्रियाएं प्रतिवादी प्रकृति पर आधारित होती है जहां विवादित पक्ष एडवोकेटों की सहायता लेते हैं जो न्यायालय में प्रतिवादियों के रूप में कार्य करते हैं और प्रत्येक एडवोकेट मामले में जीत प्राप्त करने के उद्देश्य से दूसरे के विरुद्ध एड़ी-चोटी की लड़ाई लड़ता है। न्यायालयों में न्यायाधीश एक तटस्थ अवलोकक के रूप में कार्य करते हैं और प्रत्येक पक्ष के एडवोकेटों को ध्यानपूर्वक सुनते हैं। आपने फिल्मों में देखा होगा कि जब न्यायालय में शोर-शराबा होता है या एडवोकेट एक दूसरे पर अवांछित टिप्पणियां करने लगते हैं तो न्यायाधीश 'ऑर्डर-आर्डर' बोलते हैं। सामान्य कानून व्यवस्था में यही न्यायाधीश की शक्ति नहीं है किन्तु न्यायाधीश प्रतिवादी एडवोकेटों द्वारा प्रस्तुत किए गए साक्ष्यों से परे जाकर सक्रिय भूमिका अदा नहीं कर सकता है। वे एडवोकेटों के कौशल पर निर्भर करते हैं जो तटस्थ न्यायाधीश के समक्ष यथासंभव सर्वोत्तम स्तर पर अपने मामले को प्रस्तुत करते हैं। न्यायाधीश के लिए इस तथ्य का कोई अर्थ नहीं होता है कि एडवोकेटों द्वारा मामले की सत्यता प्रस्तुत की गई है या नहीं। उसे केवल एडवोकेटों द्वारा प्रस्तुत किए गए साक्ष्यों से संतोष करना पड़ता है। वह विवादित पक्षों के दावों को निपटाने में सत्य को प्रस्तुत करने में किसी प्रकार की रूचि नहीं लेता ।

टिप्पणी

(घ) सक्षम प्राधिकरणों द्वारा पारित अधिनियम, संविधि : सामान्य कानून प्रणाली की अंतिम अत्यंत महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि सक्षम प्राधिकरणों जैसे संसद तथा विधायिका आदि द्वारा पारित विधानों को प्राधिकारात्मक स्थान दिया जाता है जो कि न्यायाधीशों के लिए बाध्यकारी है, किन्तु जब कभी न्यायाधीश संसद द्वारा पारित अधिनियमों या संविधियों में किसी प्रकार का अंतर पाते हैं तो वे इन अधिनियमों में उपयुक्त रूप से संवर्धन या व्याख्या कर सकते हैं। अन्य शब्दों में, सामान्य कानून प्रणाली के न्यायाधीश या एडवोकेट यह सोचते हैं कि कानून या अधिनियम अत्यंत सारांश रूप में है और इन अधिनियमों में समाविष्ट नियम अत्यंत सामान्य प्रकृति के हैं। ये सामान्य तथा सारांश नियम सभी तथ्यों और परिस्थितियों में स्वयं प्रयोग किए जाने के लिए अक्षम हैं। प्रत्येक मामले के तथ्य विशिष्ट होते हैं और इनमें सामान्य तथा सारांश रूप के नियमों को लागू करना अत्यंत कठिन है तथा इनमें उपयुक्त संवर्धन और व्याख्या की आवश्यकता होती है। यह संवर्धन तथा व्याख्या सामान्य तथा सार नियम के प्रावधानों के रूप में अत्यंत महत्वपूर्ण है। उदाहरण के लिए, हत्या के मामले के लिए भारतीय संसद द्वारा पारित अधिनियम द्वारा निर्धारित दंड आजीवन कारावास से मृत्यु दंड तक है। तथापि, यह निर्धारित नहीं किया गया है कि किन परिस्थितियों में आजीवन कारावास का दंड दिया जाएगा या अन्य तिथियों में मृत्यु दंड दिया जाएगा। न्यायाधीशों ने इस अंतर को भरा है और कानून में अपने स्वयं का संवर्धन करके यह निर्धारित किया है कि ''असाधारण से असाधारण मामलों में'' मृत्यु दंड देना उपयुक्त होगा जबकि अन्य मामलों में केवल आजीवन कारावास का दंड दिया जाएगा।

क्या आप जानते है

निर्णयज कानून की उत्पत्ति शाही शक्तियों से संबंधित है। इसे उन मामलों में एक प्रणाली के रूप में विकसित किया गया था जहां अंग्रेजी साम्राज्य की शांति को खतरा था या जहां अन्य महत्वपूर्ण मामलों में शाही शक्ति के हस्तक्षेप की आवश्यकता या औचित्य था।

क्रियाकलाप 2.1

अवलोकन करें कि अपने शहर में न्यायालय किस प्रकार कार्य करते हैं तथा एडवोकेट अपने मामले में किस प्रकार जिरह करते हैं। न्यायाधीशों के व्यवहार तथा उनके ड्रेस का ध्यानपूर्वक अवलोकन करें। उन बातों की सूची बनाएं जो आपके अनुसार सामान्य कानून के विशेषात्मक गुण हैं। क्या आपको लगता है कि भारत अपनी विधिक प्रणाली में सामान्य कानून व्यवस्था का अनुसरण कर रहा है।

पाठगत प्रश्न 2.1

1. ''सामान्य कानून'' से आप क्या समझते हैं?
2. सामान्य कानून प्रणाली की किन्हीं तीन विशेषताओं का उल्लेख करें।

2.2 यूरोपीय/महाद्वीपीय या कान्टिनेंटल कानून प्रणाली

पश्चिम यूरोप के महाद्वीप के देशों द्वारा अनुसरण की जाने वाली कानूनी प्रणाली (जिसे सामान्य रूप से इंग्लैंड के द्वीप के रूप में ''महाद्वीप'' कहा गया है) को यूरोपीय (महाद्वीपीय) कानून प्रणाली कहा जाता है। सामान्य कानून की उत्पत्ति को पांचवी शताब्दी ए.डी. के प्राचीन रोमन साम्राज्य से जोड़ा जा सकता है। आपने रोम के राजा जस्टिनन (ए.डी.483-565) के संबंध में सुना होगा जिसके समय में अनेक नियमों और विनियमों को समेकित किया गया था और उन्हें सहिता कहा गया था। उस समय से आगे, कुछ समय के लिए इंग्लैंड सहित संपूर्ण यूरोप में यह कानून प्रणाली फैल गई थी। शेष विश्व में, यह कानून प्रणाली 7वीं तथा 8वीं शताब्दियों के दौरान उपनिवेशवाद के युग में लागू की गई थी। अब आप इस कानून प्रणाली को दक्षिण अमेरिका तथा अफ्रीका के भागों के कुछ देशों में देख सकते हैं। जैसा कि आपको पता है, भारत में फ्रांस तथा पुर्तगाल कुछ समय के लिए अपना आधिपत्य स्थापित करने आए थे और उस अवधि के दौरान वे उन स्थानों पर अपने कानून व्यवस्था को लागू करने में सफल रहे जैसे पांडिचेरी, गोवा, दमन और दियू।

आप निम्नलिखित विशेषताओं के आधार पर यूरोपीय (महाद्वीपीय या कॉन्टिंटल) कानून प्रणाली की पहचान कर सकते हैं :

(क) संसद या सक्षम प्राधिकरणों द्वारा पारित अधिनियमों, संविधियों का महत्व;

(ख) न्यायपालिका की संरचना;

(ग) कानून के निर्माण में न्यायाधीशों की शक्ति; और

(घ) न्यायालय की प्रक्रियाओं में आधिकारिक दृष्टिकोण

चित्र 2.1: **न्यायालय**

(क) **सक्षम विधायिका द्वारा पारित अधिनियम, सांविधि का महत्व :** संसद या सक्षम प्राधिकरणों द्वारा पारित अधिनियमों को इस कानूनी प्रणाली में उच्चतम महत्व प्राप्त है।

संसद या सक्षम विधायिका का प्राधिकार फैले हुए नियमों को सम्मिलित करना और तत्पश्चात आधुनिक परिस्थितियों के अनुसार उनको तैयार करना और संसद में उन्हें पारित कराना है। उदाहरण के लिए अपराधों के क्षेत्र में सम्मिलित तथा निर्मित नियमों को ''दंड संहिता'' (penal code) कहते हैं। संसद द्वारा पारित इन नियमों को तत्पश्चात विवादों के निपटान में न्यायाधीशों द्वारा प्रयोग किया जाता है। न्यायाधीश संसद द्वारा बनाए गए नियमों को सर्वोच्च मानते हुए उनका आदर करते हैं और सामान्य कानून परिवार में होने के कारण अपने स्वयं के प्राधिकार का प्रयोग करके इनमें परिवर्तन करने का प्रयास नहीं करते हैं। वे अधिनियम में प्रयोग की गई अस्पष्ट भाषा को स्वयं का अर्थ प्रथान कर सकते हैं किन्तु वे स्पष्ट करते हैं कि विवादित पक्षों के अतिरिक्त ये बाध्यकारी नहीं होगा। संसद द्वारा परित नियमों का व्याख्यानन न्यायाधीशों द्वारा ही नहीं किया जाता है बल्कि विधि के विद्वानों और शिक्षाविदों द्वारा भी किया जाता है। संसद द्वारा पारित सार नियमों को न्यायाधीशों तथा एड्वोकेटों द्वारा भी अत्यधिक महत्व प्रदान किया जाता है।

(ख) **न्यायपालिका की संरचना :** यूरोपीय (महाद्वीपीय) या कॉन्टिनेंटल कानून प्रणाली में न्यायपालिका विविध क्षेत्रों के व्यक्तियों द्वारा बनती है क्योंकि इस कानूनी प्रणाली में न्यायाधीश किसी भी पृष्ठभूमि से हो सकता है। किसी विशिष्ट क्षेत्र का विशेष ज्ञान रखने वाला व्यक्ति न्यायाधीश के रूप में नियुक्त हो सकता है। इस प्रकार, एक इंजीनियर, या डॉक्टर या वैज्ञानिक न्यायाधीश बन सकता है। अपेक्षित वर्षों के लिए एक पृथक विषय के रूप में विधि का अध्ययन करने की आवश्यकता नहीं है और तत्पश्चात न्यायालय में कार्य कर सकते हैं। इसप्रकार उच्चतर न्यायालयों या ट्रायल अदालतों के न्यायाधीशों की नियुक्त विविध पृष्ठभूमि वाले व्यक्तियों के रूप में की जाती है और इसके लिए विधि शिक्षा में डिग्री प्राप्त करने की आवश्यकता नहीं है। यूरोपीय (महाद्वीपीय) या कॉन्टिलेंटल कानून प्रणाली का अनुसरणकरने वाले देशों में कानून की शिक्षा भी प्रदान की जाती है किन्तु न्यायाधीश बनने के लिए यह एकमात्र आवश्यक अपेक्षा नहीं है। भारत में भी आपने देखा होगा कि न्यायालय द्वारा तकनीकी क्षेत्र के व्यक्तियों को भी सदस्य के रूप में नियुक्त किया जाता है ताकि उन मामलों में निष्कर्ष तक पहुंचा जा सके जहां कोई तकनीकी समस्या उत्पन्न हो जाती है।

(ग) **कानून बनाने में न्यायाधीशों की शक्ति :** यूरोपीय (महाद्वीपीय) या कॉन्टिनेंटल कानून प्रणाली में न्यायाधीश कानून नहीं बनाते हैं और उनके निर्णय न्यायालय के समक्ष उपस्थित उस विवाद के अतिरिक्त प्राधिकार प्राप्त नहीं होता है। वे विधायिका द्वारा निर्मित कानून का ही प्रयोग करते हैं और वे स्वयं कानून का निर्माण नहीं करते हैं। दूसरे शब्दों में उच्चतर न्यायालयों द्वारा दिए गए निर्णय विधिक पूर्व निर्णय नहीं माने जाते हैं जैसा कि सामान्य कानून प्रणाली में होता है। उनके निर्णयों को अन्य मामलों में न्यायाधीशों द्वारा सम्मान प्रदान किया जाता है किन्तु वे उसका अनुपालन करने के लिए बाध्य नहीं होते हैं। उदाहरण के लिए, फ्रांस में उच्चतम न्यायालय यथा ''कोर्ट दे कसेसेशन (Court de cassation)'' द्वारा दिया गया निर्णय फ्रांस के अन्य सभी न्यायालयों के लिए बाध्यकारी नहीं है। तथापि, न्यायिक निकायों में उस न्यायालय के निर्णय को उच्च आदर प्रदान किया जाता है। उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश विधायिका द्वारा पारित कानूनों का खंडन नहीं कर सकते हैं, वे केवल विधायिका द्वारा पारित नियमों को लागू कर सकते हैं। इस प्रणाली का एक लाभ यह है कि वकीलों द्वारा न्यायालयों के बहुत सारे निर्णयों का अध्ययन नहीं किया जाता है, जैसे कि सामान्य कानून प्रणाली में किया जाता है और एड्वोकेट को न

केवल संसद तथा विधायिका द्वारा पारित कानूनों का ज्ञान होना चाहिए बल्कि उच्चतर न्यायपालिका द्वारा दिए गए निर्णयों का भी ज्ञान होना चाहिए।

(घ) **न्यायालय प्रक्रिया की अन्वेषणशील विचारधारा :** सत्य का पता लगाने में न्यायालयों की निष्क्रीय भूमिका और मामले के तथ्यों का पता लगाने में एड्वोकेटों के क्षमता पर आश्रित रहने के विपरीत, महाद्वीपीय कानून प्रणाली में न्यायाधीश सत्य का पता लगाने में सक्रीय भूमिका अदा करते हैं। न्यायालय की प्रक्रिया में प्रयोग होने वाली विचारधारा विरोधात्मक नहीं होती है बल्कि अन्वेषणाशील (अन्वेषण शब्द का अर्थ है जांच करना) होती है। यहां न्यायाधीश वादी ओर प्रतिवादी के बीच मात्र रेफरी की भूमिका अदा नहीं करते हैं बल्कि वे सभी विवादित पक्षों के साथ समन्वय करके सक्रीय रूप से मामले की जांच करते हैं और साक्ष्यों को एकत्र करके सत्य का पता लगाने का प्रयास करते हैं। इस प्रकार साक्ष्यों को एकत्र करने का उत्तरदायित्य केवल एड्वोकेट पर ही नहीं होता बल्कि न्यायाधीश पर भी होता है। न्यायाधीश स्वयं अपराध स्थल पर जाकर साक्ष्य की खोज कर सकता है यदि उसे लगे की विवादित पक्षों के एड्वोकेटों ने सत्य का पता लगाने में कुछ साक्ष्यों को छोड़ दिया है। यहा न्यायाधीश निष्क्रीय अवलोकन नहीं होते हैं बल्कि सत्य का पता लगाने में अपनी सक्रीय भूमिका अदा करते हैं। भारत में आप इस परिदृश्य का प्रयोग सरकार द्वारा स्थापित तथ्यों का पता लगाने वाले आयोगों की कार्यप्रणाली में देख सकते हैं। आपने वर्ष 2002 मे गोधरा दंगों के संबंध में वास्तविक तथ्यों का पता लगाने के लिए गुजरात सरकार द्वारा गठित श्श्नानावटी जांच आयोग'' का नाम सुना होगा।

क्या आप जानते है

महाद्वीपीय कानून प्रणाली की उत्पत्ति यूरोप में हुई और इसका निर्माण बारहवीं शताब्दी के यूरोपीय विश्वविद्यालयों (विशेष रूप से जर्मनी में) के विद्वानों के प्रयासों और रोम साम्राज्य के राजा जस्टीनियम के समेकनों के आधार पर किया गया था। इस लिए इस कानूनी प्रणाली को श्शरोमेनो-जर्मैनिक कानूनी प्रणाली'' भी कहते हैं।इस कानूनी प्रणाली में, कानून की उत्पत्ति प्रमुख रूप से ऐतिहासिक कारणों से व्यक्तिगत स्तर पर नागरिकों के बीच के निजी संबंधों को विनियमित करने के माधयम के रूप में अनिवाय ॅनिजी कानून के रूप में की गई थी।

क्रियाकलाप 2.2

अपने परिवार के सदस्यों से पता करें कि क्या उन्होंने कभी 1984 के सिख दंगों और इससे संबंधित तथ्यों का पता लगाने के लिए सरकार द्वारा गठित जांच समितियों के बारे में सुना है। इस प्रकार की जांच समितियों के विषय में यथा संभव अधिक सूचना एकत्र करने का प्रयास करें।

पाठगत प्रश्न 2.1 &2.2

1. सामान्य कानून प्रणाली की प्रमुख विशेषताएं क्या हैं?
2. यूरोपीय (महाद्वीपीय) कानून प्रणाली की मुख्य विशेषताओं की चर्चा करें।

3. क्या आपको लगता है कि भारतीय कानून प्रणाली 'सामान्य कानून प्रणाली' और 'महाद्वीपीय कानून प्रणाली' का संयोजन या मिश्रण है या यह महाद्वीपीय कानून प्रणाली के कुछ गुणों के साथ मुख्य रूप में 'सामान्य कानून प्रणाली' से प्रभावित है ?
4. सामान्य कानून की उत्पत्त शाही शक्ति से संबंधित है। (हां/नहीं)
5. सामान्य कानून प्रणाली में उच्च न्यायालयों और उच्चतम न्यायालय द्वारा दिए गए आदेश को प्राधिकार तथा सुदृढ़ स्थिति प्राप्त है। (हां/नहीं)
6. भारत कानूनी प्रणाली के सामान्य कानून परिवार का सदस्य है। (हां/नहीं)
7. सामान्य कानून की उत्पत्ति को 5वीं सदी ए.डी. के प्राचीन रोमन साम्राज्य के साथ जोड़ा जा सकता है। (हां/नहीं)

2.3 सामाजवादी कानून प्रणाली

विश्व की अनेक अन्य कानूनी प्रणालियों के विकास को प्रभावित करने वाली एक महत्वपूर्ण कानून प्रणाली का नाम "सामाजवादी कानून प्रणाली" है। इस कानून प्रणाली को उन देशों द्वारा स्वीकार किया गया था जिन्होंने सामाजवादी तथा मार्क्सवादी दर्शन (विचारधारा) का अनुसरण आरंभ किया था विशेष रूप से 1914–19 के प्रथम विश्व युद्ध के पश्चात। आपको इस तथ्य का ज्ञात होगा कि व्यावहारिक रूप से सामाजवादी दर्शन को पूर्ववर्ती यूएसएसआर तथा चीन द्वारा अपनाया गया था। जब 80 के दशक के अंतिम वर्षों में यूएसएसआर का विखंडन हुआ, उससे अलग हुए सभी देशों ने कुछ संशोधनों के साथ इस कानूनी प्रणाली को अपनाया, जैसे यूक्रेन, कजाकिस्तान तथा उजबेकिस्तान। चीन के अतिरिक्त मंगोलिया, उत्तर कोरिया तथा क्यूबा जैसे अन्य देश इस कानूनी प्रणाली का अनुसरण कर रहे हैं। आप यह नहीं कह सकते हैं कि यह कानूनी प्रणाली सामान्य तथा यूरोपीय (महाद्वीपीय) कानूनी प्रणाली से काफी भिन्न हैं। यद्यपि आपको यह ज्ञात होना चाहिए कि सामाजवादी कानूनी प्रणाली महाद्वीपीय तथा तथा सामान्य कानून प्रणालियों से प्रभावित है। तथापि, इस कानूनी प्रणाली की कतिपय विशेषताएं हैं जो इसे अन्य कानूनी प्रणालियों से भिन्न हैं। ये विशेषताएं हैं :

(क) कानूनी नियमों को स्थायी नहीं माना जाता है;

(ख) लोक कानून का महत्व;

(ग) प्रशासन तथा विधायिका द्वारा पारित कानून का कोई न्यायिक समीक्षा नहीं है; और

(घ) महाद्वीपीय कानूनी प्रणाली का व्यापक प्रभाव।

हम इन विशेषताओं की चर्चा निम्नलिखित पैराग्राफों में करेंगें।

(क) **कानूनी नियमों को स्थायी नहीं माना जाता :** इस नियम के पक्षधरों के अनुसार, यहां कानून एक अस्थायी विशेषता है और एक ऐसा समय आएगा जब शासन करने के लिए कानून की आवश्यकता नहीं होगी। उस समय जब सभी लोग आर्थिक रूप से समान हो जाएंगे तब वहां कानून की आवश्यकता नहीं होगी। आर्थिक समानता के संवर्धन के लिए न्यायालयों और कानून की आवश्यकता होती है। सामाजवादी कानून प्रणाली में विधि क्रांतिकारी प्रकृति की होती है। महाद्वीपीय कानून प्रणाली जहां कानून स्थायी प्रकृति का

है, के विपरीत सामाजवादी कानून प्रणाली ऐसे नियम को फैंक देता है जो निजी परिसंपत्ति तथा संपत्ति को संवर्धित करता है। उदाहरण के लिए जब पूर्ववर्ती यूएसएसआर ने सामाजवादी कानून प्रणाली को अपनाया, तो निजी तथा वाणिज्यिक अधिकारों के संवर्धन करने वाले नियमों को समाप्त कर दिया गया था। उन नियमों को 'बौरजियॉयसिस' नियम कहा गया था। सामाजवादी नियम क्रांतिकारी इस अर्थ में है कि वे पुराने नियमों को मान्यता प्रदान नहीं करते हैं जो निजी अधिकारों तथा मुक्त बाजारों के आधार पर पूंजीवाद को बढ़ावा देते हैं। इसका उद्देश्य उन शक्ति संबंधों को समाप्त करना है जो पूंजीवादी प्रणाली का निर्माण करते हैं।

(ख) **लोक कानून का महत्व :** सामाजवादी कानूनी प्रणाली में निजी कानून के लिए कोई स्थान नहीं है और सभी कानूनों को लोक कानून की प्रकृति में होना होता है जिसका अर्थ है कि सभी कानून राज्य संबंधी मुद्दों या लोक मुद्दों से संबंधित होंगे जैसे संवैधानिक कानून, प्रशासनिक कानून तथा आपराधिक कानून। संवैधानिक कानून से हमारा तात्पर्य उस नियम से है जो राज्य की प्रकृति और सरकार की संरचना का निर्धारण करता है। प्रशासनिक कानून प्रशासन के अंगों की संरचना, शक्तियों और क्रियाओं तथा उनकी शक्तियों की सीमाओं आदि से संबंधित है। निजी कानून, जो नागरिकों के एक दूसरे के साथ संबंधों को विनियमित और शासित करता है, वह या तो निरस्त कर दिया गया है या उसे लोक कानून से कम महत्व दिया जाता है। निजी कानून के उदाहरण हैं- क्षतियों का कानून, संविदा, संपत्ति, तथा ज्ञानात्मक सम्पत्ति अधिकारों संबंधी कानून से है। समाजवादी कानून प्रणाली में, निजी कानून की अनेक शाखाओं को शिफ्रट करके लोक कानून का भाग बना दिया गया है। इस प्रकार, संविदा का कानू, जिसे व्यक्तियों की संविदागत स्वतंत्रता का विनियामक कानून माना जाता था,उसे अब व्यापक स्तर पर नियंत्रित कर दिया गया है और इस कानूनी प्रणाली में संविदा की स्वतंत्रता को गंभीर रूप से प्रतिबंधित कर दिया गया है।

(ग) **प्रशासनिक कार्रवाई और विधायिका द्वारा पारित कानून की न्यायनिक समीक्षा नहीं होती :** समाजवादी कानून सिद्धांत इस बात पर बल देते हैं कि विधायिका को लोगों की इच्छा की सर्वोच्च अभिव्यक्ति के रूप में कल्पित किया गया है और यह न्यायिक नियंत्रण की पहुंच से परे है। यहां विधायिका को न कि न्यायिक निर्णयों को कानून के एकमात्र स्रोत के रूप में पहचाना गया है। वे "शक्तियों के पृथकिकरण" के सिद्धांत पर विश्वास नहीं करते हैं, जिसके अनुसार विधायिका, कार्यपालक और न्यायपालिका स्वतंत्र हैं और एक-दूसरे से पृथक हैं। यह माना गया है कि विधायिका निकाय राज्य की क्रियाओं की संवैधानिकता के अनुरक्षण के लिए उत्तरदायी है और संवैधानिक समीक्षाओं का संसद-इतर निकायों जैसे न्यायपालिका द्वारा नहीं किया जा सकता है। समाजवादी देशों द्वारा अपने संविधान को को परम कानूनी शक्ति माना गया है। 'न्यायिक समीक्षा' की शक्ति को मध्यवर्ग के हथियार के रूप में माना गया है।

(घ) **यूरोपीय (महाद्वीपीय) कानूनी प्रणाली का प्रभाव :** समाजवादी कानूनी प्रणाली व्यापक स्तर पर महाद्वीपीय प्रणाली से प्रभावित हुई है। कानूनी प्रणाली के समाजवादी परिवार के सदस्य वे देश है जो पूर्व में महाद्वीपीय कानूनी प्रणाली के सदस्य थे और

प्राइवेट कानून के महत्व को छोड़ कर महाद्वपीय कानूनी प्रणाली की विशेषताएं अभी भी इसमें संरक्षित हैं। न्यायाधीशों को प्राधिकारात्मक रूप से कानून की व्याख्या करने तथा इसे संशोधित करने की की शक्ति प्राप्त नहीं है। न्यायाधीशों द्वारा न्यायिक पूर्व-निर्णय नहीं बनाए जा सकते हैं और उन्हें केवल प्रस्तुत कानून को लागू करने और सामाजिक और आर्थिक न्याया को संवर्धित करने का अधिकार प्राप्त होता है। इसके अतिरिक्त, न्यायालय की प्रक्रिया विरोधात्मक नहीं होती है बल्कि यह अन्वेषणात्मक दृष्टिकोण का अनुसरण करती है तथा सरकारी वकील को न्याय प्रदाता के रूप में देखा जाता है न कि अपराधियों को सजा देने वाला। यहां कानूनी क्षेत्र भी सुनिश्चित रूप से आपराधिक, दीवानी, तथा बौद्धिक संपत्ति वर्गों में विभाजित नहीं होते हैं। एक कानूनी प्रणाली एक एकीकृत प्रणाली है जहां वकील बिना किस अतिरिक्त प्रवेश अपेक्षाओं के कानून के एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र में जा सकते हैं (जैसे आपराधिक कानून से दीवान कानून में या रक्षा अधिवक्ता से प्रोसिक्यूटर)।

पाठगत प्रश्न 2.3

1. समाजवादी कानूनी प्रणाली से आप क्या समझते हैं? इसकी मुख्य विशेषताओं का वर्णन करें।
2. आपके विचार से क्या भारत को 'सामाजवादी कानूनी प्रणाली' को अपनाना चाहिए। भारत के लिए इस प्रणाली के गुणों और दोषों का अवलोकन करें।
3. लोक कानून तथा प्राइवेट कानून पर पांच-पांच पंक्तियां लिखें।
4. समाजवादी कानूनी प्रणाली में निजी कानून के लिए कोई स्थान नहीं है और सभी कानूनों को लोक कानून की प्रकृति में होना चाहिए। (सही/गलत)
5. समाजवादी कानूनी प्रणाली में विधान को न कि न्यायिक निर्णय को कानून का एकमात्र स्रोत माना जाता है। (सही/गलत)
6. समाजवादी कानूनी प्रणाली व्यापक स्तर पर महाद्वीपीय प्रणाली से प्रभावित है। (सही/गलत)

2.4 अंतरराष्ट्रीय संस्थानों तथा देशों के परस्पर व्यवहार सम्बन्धी अंतराष्ट्रीय कानूनी प्रणाली

समाचारपत्र खोलिये, रेडियो सुनिए, टीवी देखिये या इंटरनेट पर सम्पर्क कीजिए और आप हर जगह अंतरराष्ट्रीय घटनाओं से रुबरु होंगे। मानव अधिकारों के हनन का आरोप, सशस्त्र मुठभेड़ में नागरिकों की हत्या, पर्यावरण में परिवर्तन का प्रभाव, और राष्ट्रों के बीच विवाद आदि ऐसी घटनाओं के कुछ उदाहरण हैं। इन घटनाओं और वैश्वीकरण के इसे युग में देशों की आपसी अंत: आश्रितता ने आपको विभिन्न प्रकार की कानूनी प्रणाली के विषय में सोचने को मजबूर कर दिया है। इस प्रकार के मुद्दों और चुनौतियों से निपटने वाली कानूनी प्रणाली को अंतरराष्ट्रीय कानूनी प्रणाली कहते हैं। इस कानूनी प्रणाली में कानूनी सिद्धांतों का सृजन राष्ट्रों, तथा अंतरराष्ट्रीय संस्थानों और संगठनों के बीच वार्ताओं को संवर्धित करने के दृष्टिगत किया जाता है। आप कह

सकते हैं कि अंतरराष्ट्रीय कानूनी प्रणाली के बिना, अंतरराष्ट्रीय शांति और सुरक्षा संभव नहीं है और यदि अंतरराष्ट्रीय शांति और सुरक्षा नहीं रहेगी तो विश्वभर में किसी प्रकार का विकास नहीं होगा। इसी कारण से, विशेष रूप से बीसवी शताब्दी में प्रथम विश्व युद्ध के पश्चात अंतरराष्ट्रीय कानूनी प्रणाली का जन्म हुए जो कि एक नई अवधारणा है। आपकी सुविधा के लिए इस कानूनी प्रणाली को चार विशिष्ट उदाहरणों के रूप में समझा जा सकता है। (क) संधियों की भूमिका (ख) संयुक्त राष्ट्र संघ (ग) यूरोपीय संघ (घ) सार्क

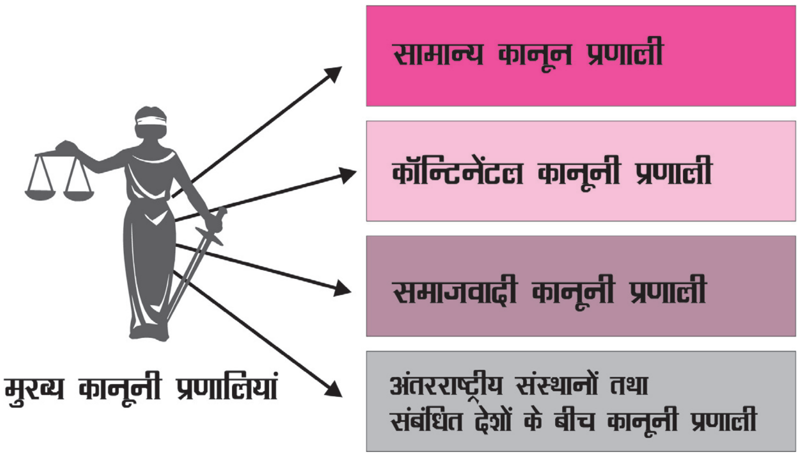

(क) **संधियों की भूमिका :** संधियां देशों और अंतरराष्ट्रय संगठनों के बीच एक प्रकार का करार हैं जो अंतरराष्ट्रीय कानून द्वारा विनियमित होते हैं। विश्व में लगभग दो सौ देश हैं और सैकड़ों अंतरराष्ट्रीय संगठन हैं जैसे संयुक्त राष्ट्र संघ, विश्व व्यापार संगठन, विश्व बौद्धित संपत्ति संगठन आदि। आप सोचते होंगे कि ये देश तथा अंतरराष्ट्रीय संगठन एक दूसरे के साथ संव्यवहार किस प्रकार करते हैं। क्या आपको नहीं लगता है कि आपसी सहमति या करार इस उद्देश्य की प्राप्ति का एकमात्र तरीका है? इस प्रकार के समझौतों को विभिन्न नामों से जाना जाता है जैसे संधि, अभिसमय, संविदा, नयाचार, चार्टर और साधारण रूप से इसे करार कहते हैं। आपको ऐसी अनेक संधियों के नाम पता होंगे। इसके कुछ महत्वपूर्ण उदाहरण हैं : वर्सेलीज संधि, क्योटा प्रोटोकॉल, पैक्ट ऑफ पैरिस, संयुक्त राष्ट्र संध का चार्टर, तथा नागरिव एवं राजनैतिक अधिकारों पर अंतरराष्ट्रीय कन्वेनैंट। ये संधियां राष्ट्रों को अपने प्रावधानों के अनुसार उनके उत्तरदायित्वों का निर्वाहन करने के लिए बाध्य करती हैं। यदि वे इन उत्तरदायित्वों का निर्वाहन नहीं करते हैं तो इसे संधि का उल्लंघन माना जाता है और उल्लंघनकर्ता राष्ट्र को किसी प्रकार की क्षतिपूर्ति का भुगतान करना होता है। इस कानूनी प्रणाली में एक मौलिक सिद्धांत है जो कहता है कि: "संधियों का अनुपालन सदभाव के साथ किया जाना चाहिए।" यह सिद्धांत अंतरराष्ट्रीय कानूनी प्रणाली में संधियों के निरंतर अनुपालन में मार्गदर्शी कारक रहा है।

(ख) **संयुक्त राष्ट्र संघ :** संयुक्त राष्ट्र संघ सम्पूर्ण अंतरराष्ट्रीय कानूनी प्रणाली का केन्द्र बिन्दु है क्योंकि इसके अनेक प्रधान अंग, विशिष्ट एजेंसियां, समितियां तथा आयोग हैं। इसकी स्थापना संयुक्त राष्ट्र संघ के संविधान के आधार पर 1945 को हुई थी। आपने जनरल एसेंबली, सुरक्षा परिषद, आर्थिक व सामाजिक परिषद, विश्व स्वास्थ्य संगठन, संयुक्त राष्ट्र शैक्षिक, वैज्ञानिक तथा सामाजिक परिषद् के विषय में सुना होगा। संयुक्त राष्ट्र संघ के एक आयोग अंतरराष्ट्रीय कानून आयोग, ने अनेक संधियों को तैयार करने में महत्वपूर्ण

भूमिका अदा की है जिन्हें बाद में देशों और अंतरराष्ट्रीय संगठनों ने स्वयं अपनाया है। यहां सुरक्षा परिषद् की भूमिका के महत्व का उल्लेख करना भी आवश्यक है। सुरक्षा परिषद् संयुक्त राष्ट्र संघ का एक प्रधान अंग है और निसंदेह यह सर्वाधिक सक्तिशाली अंग है। यह संयुक्त राष्ट्र का कार्यकारी अंग है और इसे अंतरराष्ट्रीय शांति तथा सुरक्षा को बनाए रखने के लिए सभी शक्तियां प्राप्त हैं।

ग) **यूरोपीय संघ (ई.यू) :** यूरोपीय संघ एक विशिष्ट क्षेत्रीय अंतरराष्ट्रीय संगठन है, जिसने आर्थिक और राजनैतिक दृष्टि से अधिकतर यूरोपीय देशों को एकजुट कर दिया है। यह क्षेत्रीय संघ (यूनियन) 1993 की मैस्ट्रिचसंधि तथा 2009 की लिस्बन संधि के आधार पर स्थापित हुआ है। यूरोपीय संघ ने इस संघ के सदस्य देशों क लिए एक साझा बाजार विकसित किया है, जो अत्यंत महत्वपूर्ण है। उन्होंने उक विशिष्ट क्षेत्र स्थापित किया है जिसे ''सिंगन क्षेत्र'' कहते हैं और इस सम्पूर्ण क्षेत्र में कहीं भी प्रवेश करने के लिए पासपोर्ट की आवश्यकता नहीं होती है जिसमें 22 यूरोपीय संघ के देश तथा 4 गैर यूरोपीय संघ के देश शामिल हैं। यह संघ अन्य संगठनों से इस लिए भी विशिष्ट है कि लिस्बन संधि यूरोपीय संघ को संधियां करने के लिए प्राधिकृत करता है जिसकी प्रधानता राष्ट्रीय विधानों से ऊपर होगी। यूरोपीय संघ के कानून में प्रधान सिद्धांतों में शामिल हैं मौलिक अधिकारों के चार्टर में गारंटिड मौलिक अधिकार और यूरोपीय संघ के देशों के समान संवैधानिक परम्पराओं के परिणामस्वरूप है। ये संधियां यूरोपीय संघ के प्रधान विधान हैं जिन्हें गौण विधानों (विनियम, निर्देश तथा निर्णय) से सहायता प्राप्त होती है।

(घ) **दक्षिण एशियाई क्षेत्रीय सहयोग संगठन (सार्क) :** दक्षिण एशियाई क्षेत्रीय सहयोग संगठन (सार्क) की स्थापना 8 दिसंबर 1985 को दक्षिण एशिया के देशों अर्थात भारत, बांग्लादेश, भूटान, पाकिस्तान, नेपाल, श्रीलंका, तथा मालदीव द्वारा की गई थी। 2007 में अफगानिस्तान भी इस संगठन का सदस्य बना। 'सार्क' के तत्वाधान में अनेक करार तथा

समझौतों को सम्पन्न किया गया है जैसे दक्षिण एशिया मुक्त व्यापार क्षेत्र पर करार (एसएएफटीए), दोहरे कर-परिहार पर करार, वेश्यावृत्ति के लिए महिलाओं और बच्चों की ट्रैफिकिंग के विरोध एवं निवारण पर समझौता, आतंकवाद के दमन पर क्षेत्रीय समझौता। इसने वीजा रियायत योजना भी आरंभ की है जिसके अंतर्गत कुछ निश्चित श्रेणी के पात्र व्यक्तियों को सार्क के किसी भी देश में प्रवेश करने के लिए वीजा की आवश्यकता नहीं होती है। ये इस क्षेत्रीय संगठन की कुछ महत्वपूर्ण उपलब्धियां हैं जो अंतरराष्ट्रीय कानून प्रणाली द्वारा मान्यताप्राप्त संधियों के आधार पर कार्य करती है।

क्रियाकलाप 2.4

अपने शहर या राज्य राजधानी में अंतरराष्ट्रीय संगठनों के कार्यालयों का पता करें। उस संधियों के नामों की सूची तैयार करें, जिनके आधार पर से संगठन कार्य करते हैं। उन संगठनों के चित्र एकत्र करें और उन्हें अपनी फाइल या कॉपी में चिपकाएं।

पाठगत प्रश्न 2.4

1. अंतरराष्ट्रीय कानूनी प्रणाली की मुख्य विशेषताओं पर चर्चा करें।
2. सधियों से आप क्या समझते हैं? क्या आपके विचार से अंतरराष्ट्रीय कानूनी प्रणाली के विकास में संधियां महत्वपूर्ण कारक हैं?
3. यूरोपीय संघ और दक्षिण एशियाई क्षेत्रीय सहयोग संगठन (सार्क) की संरचना और कार्यप्रणाली की तुलना करें। इन दोनों क्षेत्रीय संगठनों के गुणों और दोषों का मूल्यांकन करें।
4. **रिक्त स्थान भरें :**

   (i) संयुक्त राष्ट्र संघ की स्थापना .... में हुई थी। (1945, 1948)

   (ii) दक्षिण एशियाई क्षेत्रीय सहयोग संगठन (सार्क) की स्थापना .... में हुई थी। (8 दिसंबर 1985/ 8 दिसंबर 1945/8 दिसंबर 2007)

   (iii) यूरोपीय संघ में .... यूरोपीय देश शामिल हैं। (22/26/28)

आपने क्या सीखा

पूरे विश्व में, कानूनी प्रणाली की चार श्रेणियां हैं। ये हैं :

(क) सामान्य कानूनय

(ख) यूरोपीय (महाद्वीपीय) कानून प्रणालीय

(ग) समाजवादी कानून प्रणालीय और

(घ) अंतरराष्ट्रीय संगठनों और देशों के बीच परस्पर कानूनी प्रणाली

सामान्य कानून प्रणाली के देशों वे हैं जिनमें चार प्रमुख घटक विद्यमान होते हैं। ये हैं :

(क) उच्चतर न्यायालयों और अधिकरणों द्वारा दिए गए निर्णय का प्राधिकार बाध्यकारी है।

(ख) न्यायिक संस्थानों की संरचना सीमित क्षेत्र से होती है।

(ग) न्यायिक प्रक्रिया की विरोधात्मक प्रणाली और न्यायाधीशों की निष्पक्ष भूमिका।

(घ) इस शर्त के साथ सक्षम प्राधिकारियों द्वारा पारित अधिनियमों और नियमों का महत्व कि जब कभी न्यायाधीश अधिनियमों या नियमों में किसी प्रकार का अंतर पाएंगे, तो वे उसमें उपयुक्त संवर्धन या परिवर्तन कर सकते हैं।

यूरोपीय (महाद्वीपीय) कानूनी प्रणाली के अनुयायी चार प्रमुख विशेषताओं का अनुसरण करते हैं :

(क) सक्षम विधायिका द्वारा पारित अधिनियमों, नियमों का बाध्यकारी प्राधिकार तथा न्यायाधीश इन अधिनियमों को सर्वोच्च मानते हैं और अपने स्वयं के प्राधिकार को अधिरोपित करके इन्हें परिवर्तित करने का प्रयास नहीं करते हैं।

(ख) विविध क्षेत्रों से न्यायिक संस्थानों की संरचना।

(ग) उच्चतर न्यायालयों और अधिकरणों से भी दिए गए निर्णयों का कोई बाध्यकारी प्राधिकार नहीं है।

(घ) न्यायालय प्रक्रियाओं का अन्वेषणीय दृष्टिकोण।

समाजवादी कानून प्रणाली वह प्रणाली है जिसमें निजी कानून को कम महत्व दिया जाता है जबकि लोक कानून को सर्वोच्च माना जाता है। न्यायपालिका सामान्यत् प्रशासनिक क्रियाओं तथा विधायिका द्वारा पारित कानूनों की समीक्षा नहीं करती है।

अंतराष्ट्रीय कानून प्रणाली के बिना अंतराष्ट्रीय शांति और सुरक्षा संभव नहीं है। इस प्रणाली का जन्म बीसवीं शताब्दी में प्रथम विश्व-युद्ध के पश्चात हुआ। इस कानून को संधियों की भूमिका, संयुक्त राष्ट्र संघ, यूरोपीय संघ एवं सार्क के विशिष्ट उदाहरणों के रूप में समझा जा सकता है।

पाठांत प्रश्न

1. निर्णयज कानून परिवार या कानून प्रणाली से आपका क्या अर्थ है? वर्णन कीजिए।
2. "यूरोपीय (महाद्वीपीय) कानून प्रणाली" के मुख्य घटकों का वर्णन कीजिए।
3. क्या न्यायपालिका स्वयं द्वारा निर्मित प्रशासनिक अधिनियमों और नियमों की समीक्षा कर सकते हैं? कारण बताएं।
4. संयुक्त राष्ट्र संघ में किसी प्रकार की कानूनी प्रक्रिया विद्यमान है? संक्षेप में उल्लेख करें।
5. नीचे कॉलम क में दी गई कानूनी प्रणालियों को कॉलम ख में दिए गए देशों में इनके संबंधित अनुप्रयोगों का मिलान करें :

क	ख
(क) समाजवादी कानून प्रणाली	यूरोपीय संघ
(ख) निर्णयज कानून प्रणाली	स्पेन
(ग) यूरोपीय (महाद्वीपीय) कानून प्रणाली	पाकिस्तान
(घ) अंतरराष्ट्रीय संगठनों के बीच कानून प्रणाली	रूस

पाठगत प्रश्नों के उत्तर

2.1

1. 'सामान्य कानून' विश्व की विभिन्न कानून प्रणालियों के एक परिवार का नाम है जो छोटे अन्तरों के साथ समान गुणों और विशेषताओं वाली कानून प्रणाली का अनुसरण करते हैं।
2. 'सामान्य कूनन' की तीन मुख्य विशेषताएं निम्न है:
   (i) उच्चतर न्यायालयों या अधिकरणों द्वारा दिए गए निर्णयों का प्राधिकार;
   (ii) न्यायिक संस्थानों की संरचना; एवं
   (iii) सक्षम प्राधिकरण द्वारा पारित किए गए अधिनियम सविवि तथा अन्य विधानों का महत्व।

2.2

1. सामान्य कानून प्रणाली की मुख्य विशेषताएं निम्न हैं-
   (क) उच्चतर अदालतों द्वारा दिये गये फैसले निर्णायक तथा बाध्यकारी होते हैं, जो कि तकनीकी रूप में 'न्यायिक उदाहरण' जान जाता है।
   (ख) अदालतों के न्यायाधीश काफी प्रवीण होते हैं जिन्हें कानून में का विशेष ज्ञान होता है तथा न्याय के प्रशासन में विशेष अनुभव हासिल होता है;
   (ग) अदालत की कार्यवाही विरोधात्मक स्वरूप पर आधारित होती है तथा न्यायधीश निष्क्रिय भूमिका निभाते हैं; तथा
   (घ) संसद द्वारा पारित कानून को भी 'न्यायिक उदाहरण' का दर्जा प्राप्त है।
2. महाद्वीपय कानून प्रणाली की मुख्य विशेषताएं निम्न हैं-
   (क) उच्चतर अदालतों द्वारा दिये गये फैसले निर्णाक तथा बाध्यकारी नहीं होते तथा 'न्यायिक उदाहरण' का दर्जा प्राप्त नहीं होता;
   (ख) यह आवश्यक नहीं है कि अदालतों के न्यायधीश कानूनी पृष्ठभूमि से है। बल्कि अन्य क्षेत्रों जैसे विवाचक, इंजीनियर, डॉक्टर, लेखाकार भी हो सकते हैं;
   (ग) अदालत की कार्यावाही विरोधाभाषी नहीं बल्कि 'जिज्ञासू' प्रकृति के होते हैं तथा न्यायधीश काफी 'सक्रिय भूमिका' निभाते हैं; तथा
   (घ) संसद द्वारा पारित कानून को उच्चतम दर्जा प्राप्त है।

3. मुझे लगता है कि भारत की न्यायिक प्रणाली मुख्यत: सामान्य कानून प्रणाली पर आधारिक है, तथा महाद्वीपीय कानून प्रणाली की कुछ विशेषताओं के साथ हैं जो निम्नलिखित हैं–

   (क) उच्चतर न्यायालयों तथा पूरी न्यायिक प्रणाली में इसके फैसलों का उच्च दर्जा प्राप्त है।

   (ख) अदालत की कार्यवाही विरोधवाची प्रकृति की होती है; तथा

   (ग) न्यायधीश काफी कुशल होते हैं।

   यद्यपि इसमें महाद्वीपीय कानून प्रणाली कीकुछ विशेषताएं भी शामिल हैं जैसे

   (क) न्यायधिकरणों का होना जिसमें विभिन्न क्षेत्रों तथा औपचारिक अदालतों के न्यायधीश भी शामिल होते हैं तथा

   (ख) अदालत की कार्यवाही विरोधावाची नहीं होती है।

4. सही
5. सही
6. सही
7. सही

2.3

1. समाजवादी कानून प्रणाली से तात्पर्य उस कानूनी प्रणाली से हे जिसमें कुछ मौलिक विशेषताएं शामिल हैं जैसे (क) कानून को क्रांतिकारी गुणों के रूप में देखा जाता है, स्थिर प्रकृति में नहीं। (ख) लोक कानून को कानून की किसी भी अन्य शाखा से अधिक महत्व दिया जाता है। (ग) प्रशासन की क्रियाओं और विधायिका द्वारा पारित कानूनों की सामान्यत : समीक्षा नहीं की जाती है। इस प्रकार की कानूनी प्रणाली के उदाहरण हैं : रूस, चीन, मंगोलिया, उत्तर कोरिया।

2. मेरे विचार से भारत को समाजवादी कानून प्रणाली को नहीं अपनाना चाहिए क्योंकि भारत पिछले दो सौ वर्षों से निर्णयज कानून प्रणाली का अनुसरण कर रहा है और अब किसी अन्य कानूनी प्रणाली को अपनाना महंगा तथा अव्यवस्थित करना होगा। अन्य कानून प्रणाली को अपनाने की आवशयकता नहीं है बल्कि वर्तमान व्यवस्था में सुधार करने की आवश्यकता है। तथापि, भारत में समाजवादी कानून प्रणाली के लाभ इस प्रकार होंगे : (क) न्यायपालिका संसदधराज्य विधायिकाओं द्वारा पारित नियमों की समीक्षा करने में समय व्यर्थ नहीं करेगी। (ख) निजी विवादों को निपटाने में निचली अदालतों में लगने वाला अधिकतर समय बचेगा। समाजवादी कानून प्रणाली के कुछ दोष भी हैं : (क) निजी संपत्ति जो प्रत्येक व्यक्ति की सम्पन्नता का प्रतीक है, को कानूनी संरक्षण प्राप्त नहीं होगा, (ख) कार्यपालक की स्वैच्छित क्रियाओं में वृद्धि होगी।

3. लोक कानून से तात्पर्य कानून की उस शाखा से है जो राज्य के मुद्दों या लोक मुद्दों को निपटाता है जैसे संवैधानिक कानून, प्रशासनिक कानून, तथा आपराधिक कानून। लोक कानून की प्रकृति प्राइवेट कानूनी से भिन्न है। प्राइवेट कानून नागरिकों के एक

दूसरे के साथ संबंधों को विनियमित तथा शासित करता है। उदाहरण के लिए प्राईवेट कानून के अंतर्गत हैं : क्षतियों का कानून, संविदा, संपत्ति आदि। समाजवादी कानून प्रणाली लोक कानून से संबंधित है प्राईवेट कानून से नहीं।

4. सही

5. सही

6. सही

2.4

1. अंतराराष्ट्रीय कानून प्रणाली की प्रमुख विशेषताएं हैं :

   (क) अधिनियमों/ नियमों के स्थान पर संधियां महत्वपूर्ण भूमिकाएं अदा करती हैं। संधियां उन देशों पर बाध्यकारी होती है जो इसके पक्ष होते हैं।

   (ख) संधियों को बनाने और इंटरनेशनल कोर्ट ऑफ जस्टिस के निर्णयों को लागू कराने में संयुक्त राष्ट्र संघ की भूमिका

   (ग) यूरोपीय क्षेत्र में संधियों को बनाने और यूरोपीय कोर्ट ऑफ जस्टिस के निर्णयों को लागू करने में यूरोपीय संघ की भूमिका; और

   (घ) सामान्य कानून और यूरोपीय (महाद्वीपीय) कानून प्रणाली का मिश्रण।

2. संधियां देशों और अंतरराष्ट्रीय संगठनों के बीच या मध्य ''करार'' हैं जो अंतरराष्ट्रीय नियमों से नियंत्रित होते हैं ना कि देश के घरेलू नियमों से जहां उस संधि पर हस्ताक्षर किए गए हैं। हां, मुझे लगता है कि अंतरराष्ट्रीय कानूनी प्रणाली के विकास में ये संधियां महत्वपूर्ण कारक हैं क्योंकि ये संधियां सदस्य देशों के लिए बाध्यकारी होती हैं और देशों का व्यवहार इनके द्वारा नियंत्रित होता है। संधियों के उदाहरण हैं : (क) वर्सिलीज संधि (ख) संयुक्त राष्ट्र संघ का चार्टर (ग) क्योटो प्रोटोकॉल।

3. यूरोपीय संघ और दक्षिण एशियाई क्षेत्रीय सहयोग संगठन (सार्क) की संरचना और कार्यप्रणाली की तुलना निम्नानुसार की जा सकती है :

क	ख
(क) ये पश्चिमी यूरोप में तथा पूर्वी यूरोप के कुछ भागों में लागू है।	(क) यह दक्षिण एशिया में लागू है।
(ख) यूरोपीय संघ द्वारा निष्पादित संधियां राष्ट्रीय कानून से ऊपर होती हैं।	(ख) क्षेत्रीय सहयोग, 1983 पर घोषणा के आधार पर कार्य करता है।
(ग) प्रधान विधानों को संधि कहते हैं और गौण विधानों को विनियम, निर्देश तथा घोषणाएं कहा जाता है।	(ग) ऐसा कोई वर्गीकरण नहीं है।

इन क्षेत्रीय संगठनों के गुण :

(क) कानून के अनुप्रयोग का अधिक व्यापक क्षेत्र।

(ख) क्षेत्र को अन्य कानूनी प्रणालियों के प्रभाव से संरक्षित रखता है।

इन क्षेत्रीय संगठनों के दोष :

(क) क्षेत्रीय संगठनों की बहुलता।

(ख) अंतरराष्ट्रीय कानून प्रणाली की कोई एकरूपता नहीं।

रिक्त स्थान भरें :

1. 1945
2. 8 दिसंबर, 1985
3. 22.

टिप्पणी

3

व्यक्तिगत या पर्सनल विधिः हिन्दू और मुस्लिम कानून

आपने अपने दिन-प्रतिदिन के जीवन में व्यक्तिगत कानून (Perosnal Law) के विषय में सुना होगा, किन्तु आपको यह पता नहीं होगा कि परिभाषित कैसे करें। स्वीय कानून को कानून की एक शाखा के रूप में परिभाषित किया जा सकता है, जो व्यक्ति और उसके परिवास से संबंधित मुद्दों को निपटाता है। अन्य शब्दों में, स्वीय कानून वह कानून है जिसके द्वारा एक व्यक्ति विभिन्न मुद्दों जैसे विवाह, विवाह-विच्छेद, अनुरक्षण, वसीयत, उत्तराधिकार, दत्तकग्रहण, संरक्षकताएं आदि (विवाह की अनिवार्य वैधता, पति और पत्नी के मालिकाना अधिकार पर विाह के प्रभाव, प्राथमिक विवाह-विच्छेद याविवाह का निरसन, अवैधता, वैधता, तथा दत्तकग्रहण और वसीयीती (जहां वसीयत बनाई गई है) और निर्वसनीय (जहां वसीयत नहीं बनाई गई है) के संबंध में शासित होता है।

भारत विविध धर्मों का देश है, इसलिए यहां स्वीय कानून की प्रयोजनीयता संपूर्ण रूप से पृथक धर्म, मान्यताओं पर आधारित है। हिन्दू, मुस्लिम, ईसाई, पारसी, यहूदी अपने व्यक्तिगत कानूनों द्वारा शासित या नियंत्रित होते हैं, जैसे क्रमशः हिन्दू कानून, मुस्लिम कानून, ईसाई कानून, पारसी कानून तथा यहूदी कानून। धार्मिक दृष्टिकोण से, स्वीय कानून को इस प्रकार परिभाषित किया जा सकता है, ''कानून का वह निकाय, जो व्यक्ति पर या उसकी सम्पत्ति के संबंध में मूल रूप से एक विशिष्ट धर्म से संबंधित होने।'' इस अध्याय में आप केवल हिन्दू और मुस्लिम कानून के विषय में अध्ययन करेंगे और अगले अध्याय में ईसाई, पारसी और यहूदी कानून का अध्ययन करेंगे।

शब्दों के अर्थ

हिन्दू और मुस्लिम कानून के विभिन्न पहलुओं पर चर्चा करने से पूर्व, 'हिन्दू' और 'मुस्लिम' शब्दों के अर्थ को जानना अत्यंत महत्वपूर्ण है। हिन्दू वह व्यक्ति है जो (क) धर्म से हिन्दू, जैन, सिख या बौद्ध है (अर्थात् उसे धर्म से 'हिन्दू' होना चाहिए), (ख) कोई व्यक्ति जो हिन्दू माता-पिता के पास पैदा हुआ हो, चाहे दोनों माता व पिता हिन्दू हों या इन दोनों में से कोई एक हिन्दू हो (अर्थात, उन्हें जन्म से हिन्दू कहा जाता है), (ग) कोई व्यक्ति जो मुस्लिम, ईसाई, पारसी या यहूदी नहीं है और वह किसी अन्य कानून द्वारा शासित नहीं होता है। 'मुस्लिम' वह व्यक्ति है जो इस्लाम धर्म का अनुयायी है। न्यायिक मतानुसार, एक व्यक्ति जन्म से या धर्मपरिवर्तन द्वारा मुस्लिम हो सकता है। एक मुसलमान व्यक्ति जन्म से मुस्लिम तब होता है जब

उसके जन्म के समय उसके माता-पिता मुसलमान हों। एक व्यक्ति धर्म परिवर्तन द्वारा मुस्लिम तब बनता है, जब वह किसी दूसरे धर्म का हो और वयस्कता की आयु प्राप्त करने पर तथा पूर्ण चेतना के साथ, अपने धर्म को अस्वीकार करता है और मुस्लिम धर्म में परिवर्तित हो जाता है।

इस अवधारणात्मक स्पष्टाओं से, आप हिन्दू और मुस्लिम धर्म के विभिन्न तथ्यों के विषय में अधिक स्पष्ट ज्ञान प्राप्त कर पाएंगे।

उद्देश्य

इस पाठ के अध्ययन के पश्चात आप :

- हिन्दू और मुस्लिम कानूनों के स्रोतों सहित व्यक्तिगत कानून के अर्थ को भी समझ पाएंगे;
- हिन्दू और मुस्लिम धर्म में विवाह और विवाह-विच्छेद की अवधारणा का वर्णन कर पाएंगे;
- हिन्दुओं में सम्पत्ति के उत्तराधिकार और हस्तांतरण संबंधी नियमों का उल्लेख कर पाएंगे;
- मुस्लिम धर्म में विरासत तथा सम्पत्ति के हस्तांतरण से संबंधी नियमों को जान पाएंगे।

3.1 हिन्दू और मुस्लिम कानून के स्रोत

3.1.1 हिन्दू कानून के स्रोत

हिन्दू कानून के स्रोतों का अध्ययन इसके विकास के विभिन्न चरणों का अध्ययन है, जिसने इसे नए आयात तथा शक्ति प्रदान की है, जिसके कारण यह समाज की बदलती हुई आवश्यकताओं के समरूप बन सका। मूल रूप से, यह पुरोहितों की आवश्यकता को पूरा करने के लिए बनाया गया और अब यह आधुनिक समाज की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए है। इसलिए, निम्नलिखित शीषर्कों के अंतर्गत इसके विभिन्न स्रोतों के वर्गीकरण को स्पष्ट करना बेहतर होगा:

1. प्राचीन स्रोत :

इस शीर्षक के अंतर्गत, निम्नलिखित चार स्रोत महत्वपूर्ण हैं, क्योंकि हिन्दू धर्म को श्रेष्ठ (ईश्वरीय) कानून माना जाता है, जिसका प्रकटन स्वयं भगवान ने किया है। ये प्रकटीकरण हिन्दू धर्म के प्रमुख ग्रंथों में समाविष्ट हैं (क) **वेद,** और **स्मृतियां**। स्मृतियां वेदों में निहित नियमों का अनुपूरक व्याख्यान उपलब्ध कराती हैं। स्मृतियां कभी भी स्पष्ट नहीं थीं और इसमें सभी परिस्थितियों को शामिल नहीं किया गया था। इसलिए, कानून के भावी विश्लेषण, सुव्यवस्थन और समावेशन की आवश्यकता महसूस की गई। इस आवश्यकताओं (3) **टीका-टिप्पणियों** और **नीति ग्रंथों** ने पूरा किया। अंततः (4) **रीति-रिवाजों,** कानून के प्राचीन स्रोतों को भूला नहीं जा सकता है, जिस पर हमने माड्यूल के पाठ 1 में विस्तारपूर्वक चर्चा की है।

2. आधुनिक स्रोत :

हिन्दू धर्म के प्राचीन स्रोत हैं : (1) **न्याय, निष्पक्षता** और **शुद्ध अन्तःकरण** - इसकी उत्पत्ति ब्रिटिश साम्राज्य के उदय के साथ हुई। किसी विशिष्ट कानून के अभाव में या विवादों की स्थिति में, समानता, निष्पक्षता और शुद्ध अन्तःकरण के सिद्धांत को लागू किया जाता था। अन्य शब्दों में, न्यायाधीशों के विचार से जो भी सर्वाधिक न्यायोचित तथा समान होता उसे एक विशिष्ट मामले में लागू किया जाता। इस प्रकार, ब्रिटिश कानून की स्थापना लोक नीति पर की गई थी कि एक हत्यारे को पीड़ित व्यक्ति की सम्पत्ति का उत्तराधिकार प्राप्त नहीं होगा, जैसा कि हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम, 1956 में देखा जा सकता है। (2) **न्यायिक निर्णय :** इन्हे हिन्दू कानून के सर्वाधिक फलदायी और व्यवहारिक स्रोत माना जाता है। बहरहाल, अनुप्रयोग के लिए न्यायाधीशों को इन नियमों की उत्पत्ति मान्यता प्राप्त और प्राधिकृत स्रोतों जैसे स्मृतियों और टीका-टिप्पणियों से इन नियमों का लागू करना था जैसा कि न्यायालयों के निर्णयों में देखा जा सकता है। (3) **विधान** - हिन्दू नियम में चार प्रमुख नियम अधिनियम किए गए अर्थात हिन्दू विवाह अधिनियम, 1955, हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम, 1956, हिन्दू अप्राप्तवयता तथा संरक्षकता अधिनियम, 1956, हिन्दू दत्त और भरण-पोषण अधिनियम, 1956। ये विधायी अधिनियम जो हिन्दू कानून के प्राचीन नियमों को घोषित, निरस्त और आशोधित करते हैं, हिन्दू कानून के अतिरिक्त स्रोत हैं।

3.1.2 मुस्लिम कानून के स्रोत

मुस्लिम कानून के महत्वपूर्ण स्रोत निम्नलिखित हैं :

1. **कुरान** - मुस्लिम कुरान को अपने कानून (धर्म) का अधारा मानते हैं। वे मानते हैं कि कुरान ही वह स्रोत है जो उन्हें सत्य को असत्य के भिन्न दर्शाता है, सही और गलत का भेद बताता है। यह इस्लाम (मुस्लिम धर्म) का सर्वाधिक मौलिक और पवित्र स्रोत है। यह मुसलमानों का पवित्र ग्रंथ है। इसमें पैगम्बर (प्रोफेट) के प्रकटीकरण समाविष्ट हैं जो उन्हें देवदूत गैब्रियल से प्राप्त हुए थे।

2. **सुन्ना और हदिस** -पैगम्बर ने कुछ अंतर्निहित प्रकटन किए जिसमें कुछ पवित्र और धर्मनिष्ठ विचार हैं। माना जाता है कि इस प्रकार के अंतर्निहित और आंतरिक प्रकटन अल्लाह से प्रेरित होकर किए गए थे। अन्य शब्दों में, सुन्ना से तात्पर्य पैगम्बर की परम्पराओं से है, जो कुछ भी पैगम्बर ने कहा या किया, वह उसकी परम्पराएं हैं। ये परम्पराएं इस्लाम के दूसरे स्रोत हैं।

सुन्ना पैगम्बर का हुक्म है अर्थात काननूका नियम और हादिस (Hadith) पैगम्बर की परम्परा है अर्थात उनके कथन या आवृत्तियां।

3. **इज्मा** - जब किसी नई समस्या के लिए कुरान या सुन्ना काननू का कोई नियम उपलब्ध नहीं करा पाता है तो इस्लाम (मुस्लिम कानून) का ज्ञान रखने वाले व्यक्ति सहमति के साथ उस विषय पर अपना समान मत प्रस्तुत करते हैं। इसलिए, जैसा

कि मुस्लिम समुदाय के अधिकतर विद्वान सदस्यों ने कहा है कानून के निर्माताओं या समुदाय की सहमति भी इस्लाम धर्म का एक महत्वपूर्ण स्रोत है।

4. **क्वियास** - यह नियमों और सिद्धांतों का संकलन है जिसे प्रथम तीन स्रोतों की समानता और व्याख्यान की विधि द्वारा तैयार किया गया है।

5. **रीति-रिवाज** - ऊपर उल्लिखित चारों स्रातों के किसी भी पाठ के कानून के नियम के अभाव में परम्परागत रीतियों को कानून माना जाता है। रीतिरिवाज इस्लाम का एक स्वतंत्र स्रोत नहीं है। बहरहाल, इस्लाम में परम्परागत कानून पैगम्पर की स्वीकृति से या इज्मा द्वारा इन्हें शामिल किए जाने के कारण विद्यमान हैं।

6. **विधान** - हालांकि भारत में इस्लाम धर्म संहिताबद्ध नहीं है, किन्तु इसके कुछ पहलुओं को विधानों द्वारा विनियमित किया गया है जैसे शरियत अधिनियम, 1937, मुस्लिम विवाह का अंत अधिनियम, 1939 तथा मुस्लिम महिला (विवाह-विच्छेद पर संरक्षण का अधिकार) अधिनियम, 1986 आदि।

7. **न्यायिक निर्णय** - मुस्लिम कानून के स्रोत के रूप में न्यायिक निर्णयों का अधिक महत्वपूर्ण स्थान नहीं है किन्तु इस्लाम में किसी स्पष्टता के अभावमें न्यायालय कानून के नियम की व्याख्या अपने स्वयं की न्यायिक अवधारणा के अनुसार कर सकता है। बहरहाल, न्यायिक निर्णय भारतीय मुसलमानों की सामाजिक-आर्थिक स्थिति के संबंध में इस्लाम को निर्धारित करने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते हैं।

8. **न्याय,समानता और शुद्ध अन्त:करण** - हिन्दु धर्म के ही समान, यहां भी किसी विशिष्ट कानून के अभाव में या विवाद की स्थिति में न्याय, निष्पक्षता और शुद्ध अन्त:करण का प्रयोग किया जाता है।

पाठगत प्रश्न 3.1

1. आप ''हिन्दु'' शब्द से क्या समझते हैं?
2. आप ''मुस्लिम'' शब्द से क्या समझते हैं?
3. मुस्लिम कानून के स्रोतों के नाम लिखें।

3.2 विवाह और विवाह-विच्छेद से संबंधित कानून

यह कहा जाता है कि शादियां स्वर्ग में बनती हैं किन्तु विवाह और विवाह-विच्छेद के नियामें को प्राथमिक रूप से समाज द्वारा बनाया गया और बाद में समय के साथ-साथ विधायिका द्वारा इसे सहिंताबद्ध किया गया। विवाह और विवाह-विच्छेद के कानून का सहिंताकरण कुछ और

नहीं बल्कि मौलिक रीति-रिवाजों और परम्परागत नियमों को न्याय के मिश्रण के साथ सुदृढ़ किया गया है। धर्म के दो भिन्न पंथ होने के कारण, स्वाभाविक रूप से हिन्दू और मुस्लिमों के बीच विवाह और विवाह-विच्छेद की परम्परागत और विधिक प्रक्रियाओं में भिन्नता है।

3.2.1 हिन्दू कानून के अंतर्गत विवाह और विवाह-विच्छेद

विवाह

हिन्दू अपने विवाह को सदैव ही परम संस्कार मानते रहे हैं, जिसके परिणाम स्वरूप यह स्थायी, अविखंडनीय और शाश्वत है, वो भी न केवल इस जीवन के लिए बल्कि आने वाले अनेक जीवनों के लिए और इसे एक पवित्र बंधन माना जाता है। हिन्द विवाह का उद्देश्य न केवल बच्चों को जन्म देना व उनको अपना कानूनी नाम प्रदान करना है बल्कि धार्मिक दायित्वों को पूरा करना भी है। वैध हिन्दु विवाह के अनिवार्य तत्व निम्नानुसार हैं :

1. विवाह के समय किसी भी पक्ष का जीवित पति/ पत्नी नहीं होनी चाहिए।
2. विवाह के समय कोई भी पक्ष - (क) दिमागी रूप से अस्वस्थ होने के कारण वैध सहमति देने में अक्षम नहीं होगा, या (ख) हालांकि वैध सहमति देने में सक्षम होगा किन्तु ऐसे मानसिक विकास से पीड़ित नहीं होगा जो विवाह तथा शिशु को जन्म देने के लिए उपयुक्त न हो, (ग) उसे बारम्बार पागलपन या मिर्गी के दौरे न हाते हों;
3. जहां तक विवाह की आयु का सबंध है, दुल्हा को 21 वर्ष पूरे होने चाहिए और दुल्हन को 18 वर्ष पूरे होने चाहिए, अन्य शब्दों में दोनों में से कोई भी पक्ष

Sapinda (समान शरीर के कण) : दो व्यक्तियों को एक दूसरे का sapinda कहा जाता है जब एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति के Sapinda संबंध की सीमाओं के भीतर स्वशाखीय उदीयमान हो या दोनों समान पूर्वजों के sapinda हों। हिन्दू विवाह अधिनियम, 1955 में पिता के माध्यम से आरोहण क्रम में पांच डिग्री और माता के माध्यम से आरोहक क्रम में तीन डिग्री के स्तर का प्रावधान है।

संबंध की प्रतिबंधित डिग्री : एक व्यक्ति को तब संबंधों के प्रतिबंधित डिग्री में कहा जा सकता है जब :

1. जब एक दूसरे के स्वशाखीय उदीयमान हो।
2. यदि एक दूसरे के स्वशाखीय उदीयमान या अवरोही क्रम में पत्नी या पति हो।
3. यदि एक भाई की पत्ति हो या पिता के भाई की पत्ति हो, या
4. यदि दोनों भाई और बहन हों, अंकल और भतीजी/ भांजी हो, आंटी तथा भतीजा या भाई और बहन के बच्चे या दो भाई या दो बहनें।

विवाह योग्य आयु के कम का नहीं होना चाहिए, अन्यथा उसे विवाह को ''बाल विवाह'' माना जाएगा और इस प्रकार यह विवाह अवैध माना जाएगा।

बाल-विवाह : यह एक प्रकार का विवाह है जिसमें दुल्हा और दुल्हन क्रमशः 21 और 18 वर्ष की आयु से कम के होते हैं।

4. दोनों पक्ष प्रतिबंधित संबंधों के स्तरों के भीतर नहीं है बशर्ते रीतिरिवाज और/ या चलन ऐसे विवाह को अनुमति प्रदान करे।

5. दोनों पक्ष एक दूसरे से संबंधित नहीं होनी चाहिए, बशर्ते रीतिरिवाज और/ या चलन ऐसे विवाह को अनुमति प्रदान करे।

विवाह-विच्छेद

समाज में उन्नति और प्रगति के साथ साथ यह देखा गया कि यदि पति और पत्नी का एक साथ रहना संभव नहीं है तो हिन्दुओं में भी शांतिपूर्वक जीवन व्यतीत करने के लिए विवाह-विच्छेद एक विकल्प है। प्राचीन हिन्दू कानून के अंतर्गत विवाह-विच्छेद को मान्यता नहीं थी और यह केवल रीति-रिवाजों के अनुसार ही किया जाता था। हिन्दू विवाह अधिनियम के अंतर्गत विवाह-विच्छेद को ना ही प्रोत्साहित किया जाता है और ना ही उसका पक्ष लिया जाता है, इसकी अनुमति केवल कुछ निश्चित आधारों पर ही दी जाती है जो निम्नानुसार हैं :

1. **परस्त्रीगमन** - विवाह के संपादन के पश्चात विवहित और उसकी पत्नी/पति के इतर किसी अन्य के साथ यौन संबंध।

2. **क्रूरता** - ऐसा आचरण करना जिससे जीवन, किसी शारीरिक अंग या स्वास्थ्य को खतरा उत्पन्न होता है, शारीरिक या मानसिक पीड़ा होते है जिसके कारण युक्तिसंगत स्तर पर ऐसा खतरा उत्पन्न हो सकता है।

3. **परित्याग** - बिना किसी युक्तिसंगत कारण के बिना और दूसरे पक्ष की सहमति के बिना या दूसरे पक्ष की इच्छा के विपरीत एक पक्ष द्वारा दूसरे का स्थायी रूप से परित्याग। परित्याग विवाह के सभी दायित्वों से पूर्ण मुक्ति है।

4. **धर्म-परिवर्तन** - यदि पति/पत्ति में से कोई एक हिन्दू धर्म को छोड़ कर दूसरे धर्म में धर्म-परिवर्तन करता है तो विवाह-विच्छेद प्राप्त किया जा सकता है।

5. **पागलपन** - यदि पति/पत्नी में से कोई एक असाध्य पागलपन से पीड़ित है या इस प्रकार के मानसिक विकास से पीड़ित है और उस स्तर तक पीड़ित है जहां दूसरे व्यक्ति के लिए युक्तिसंगत स्तर पर उसके साथ रह पाना संभव नहीं है तो वहां विवाह-विच्छेद प्राप्त किया जा सकता है।

6. **कुष्ठरोग** - जहां पति/पत्नी में से कोई एक संक्रामक तथा असाध्य प्रकार के कुष्ठ रोग से पीड़ित है वहां विवाह-विच्छेद प्राप्त किया जा सकता है।

7. **मैथुनिक रोग** - जहां पति/पत्नी में से कोई एक संक्रामक रूप से मैथुनिक रोग से पीड़ित हो वहां विवाह-विच्छेद प्राप्त किया जा सकता है।

8. **अस्वीकारिता** - जहां पति/पत्नी में से कोई एक किसी धार्मिक संप्रदाय में प्रवेश द्वारा संसार को अस्वीकार कर दिया गया हो, तो विवाह-विच्छेद प्राप्त किया जा सकता है।

9. **मृत्यु की संभावना** - जहां एक व्यक्ति को सात वर्षों या अधिक की अवधि के लिए उसके संबंधियों और रिश्तेदारों द्वारा सुना न गया हो तो इसे कानूनी रूप से मृत माना जाता है। ऐसी स्थिति में अन्य पक्ष (पति/पत्नी) विवाह विच्छेद के लिए आदेश प्राप्त कर सकता है।

10. **आपसी सहमति द्वारा विवाह-विच्छेद** - हिन्दू विवाह अधिनियम में आपसी सहमति से विवाह विच्छेद की अनुमति है। इसके निम्नलिखित अनिवार्य तत्व हैं : (क) पति व पत्नी दोनों के द्वारा न्यायालय में संयुक्त याचिका दायर की जाएगी, (ख) यचिका में कहा जाएगा कि दोनों एक वर्ष की अवधि से एक दूसरे से अलग रह रहे हैं और वे अब एक साथ नहीं रह सकते हैं तथा वे अलग रहने के लिए आपसी रूप से सहमत हैं।

11. **विवाह का असुधार्य विच्छेद** - यदि विवाह के दोनों में से कोई भी पक्ष निम्नलिखित आधार पर विवाह विच्छेद की याचिका दायर करता है : (क) न्यायिक पृथ्कीकरणके लिए न्यायालय द्वारा निर्णय दिए जाने के एक वर्ष या अधिक की अवधि तक एक साथ रहना संभव नहो पाया हो, (ख) प्रत्यर्पण (resumption) के लिए न्यायालय द्वारा निर्णय दिए जाने के के एक वर्ष या अधिक की अवधि के लिए दाम्पत्य अधिकारों का प्रत्यावर्तन नहीं हुआ है।

3.2.2 मुस्लिम कानून के अंतर्गत विवाह और विवाह विच्छेद

विवाह

हिन्दू विवाह जहां विवाह को पवित्र माना जाता है, के विपरीत मुस्लिम कानून में निकाह एक नागरिक संविदा है। मुस्लिम निकाह का उद्देश्य बच्चों को जन्म देना तथा उन्हें वैधता प्रदान करना है। एक वैध विवाह के निम्नलिखित अनिवार्य तत्व हैं :

1. प्रत्येक मुसलमान, जो मानसिक रूप से स्वस्थ है और उसने परिवक्वता की आयु अर्थात 15 वर्ष की आयु को प्राप्त कर लिया है, वह निकाह के संविदा में प्रवेशकर सकता है।

2. दोनों में से एक पक्ष द्वारा या उसकी ओर से एक नकाह प्रस्ताव कियाजाता है और दूसरे पक्ष द्वारा या उनकी ओर से उसे स्वीकार किया जाता है।

3. निकाह का प्रस्ताव और उसकी स्वीकृति दो साक्षियों के समक्ष और उनकी द्वारा सुनी जानी चाहिए जो मुस्लिम होने चाहिए और मानसिक रूप से स्वस्थ तथा वयस्क होने चाहिए।

4. प्रस्ताव तथा स्वीकार में प्रयोग किए जाने वाले शब्द सुस्पष्ट और असंदिग्ध होने चाहिए जिसमें नकाह की मंशा प्रस्तुत होती हो।

5. यहां किसी लिखित या धार्मिक विधि की आवश्यकता नहीं होती है।
6. प्रस्ताव तथा स्वीकृति (इकरार) परस्पर होना चाहिए अर्थात स्वीकृति विशुद्ध रूप से प्रस्ताव के लिए ही होनी चाहिए किसी और के लिए नहीं।
7. यहां महर की शर्तें भी शामिल होती हैं।

विवाह-विच्छेद (तलाक)

एक सुखद पारिवारिक जीवन के लिए पति और पत्नी का सुदृढ बंधन एक अनिर्वाय आवश्यकता है। इसलिए इस्लाम में विवाह के अस्तित्व पर बल दिया जाता है। किन्तु दुर्भाग्यपूर्ण परिस्थितियों में विवाहका विघटन हो जाता है और वैवाधिक समझौता टूट जाता है। विवाह-विच्छेद पति या पत्नी के कृत्य द्वारा दिया जा सकता है। पति अपनी पत्नी को बिना कोई कारण बताए विवाह का खंडन करके तलाक दे सकता है। एक पति तलाक देने के लिए निर्धारित शब्दों के उच्चारण मात्र से अपनी पत्नी को तलाक दे सकता है। आरंभिक तौर पर एक पत्नी स्वयं अपने पति को तलाक नहीं दे सकती है। वह अपने पति को तभी तलाक दे सकती है जब समझोते के अंतर्गत पति ने उसे इसका अधिकार दिया हो। किन्तु मुस्लिम विवाह विघटन अधिनियम, 1939 के पारित होने के पश्चात मुस्लिम पत्नियों को भी यह अधिकार प्रापत हो गया है कि वे न्यायालय के आदेश के द्वारा अपने विवाह को खंडित कर सकती हैं।

पाठगत प्रश्न 3.2

1. एक वैध हिन्दू विवाह के अनिवार्य तत्व क्या हैं?
2. क्या एक मुस्लिम औरत को अपनी पति को तलाक देने का अधिकार है?
3. 'बाल विवाह' से आपका क्या तात्पर्य है ?

3.3 उत्तराधिकार पर हिन्दू और मुस्लिम कानून

3.3.1 उत्तराधिकार पर हिन्दू कानून

उत्तराधिकार एक व्यक्ति की मृत्यु के पश्चात उसकी सम्पत्ति का दूसरे व्यक्ति को हस्तांतरण की विधि है। स्वतंत्रता के पश्चात, सभी हिन्दुओं के लिए उत्तराधिकार के समान धर्मनिर्पेक्ष कानून हैं। उत्तराधिकार पर पुराने हिन्दू कानून तथा परम्परागत कानून अब निरस्त हो गए हैं। हिन्दू उत्तराधिकार कानून, 1956 के सहिंताकरण के साथ पुरूषों को महिलाओं से ऊपर का स्थान दिए जाने वाले प्रावधानों को समाप्त कर दिया गया है। उत्तराधिकार के कानून को दो शीषर्कों के अंतर्गत वर्गीकृत किया जा सकता है :

1. **वसीयती उत्तराधिकार** - एक व्यक्ति जिसका संपत्ति पर स्वामित्व है या उसमें हित है, के वसीयतनामे के अनुसार हस्तांतरित सम्पत्ति (पृथक, विभाजित, अविभाजित)। यह संबंधियों और अन्यों को सम्पत्ति हस्तांतरण से संबंधित नियमों पर कार्य करता है।

टिप्पणी

2. **निर्वसीयत उत्तराधिकार** – यह उन नियमों पर आधारित है जो मृतक और उत्तराधिकारी के बीच के संबंध के आधार पर मृतक की संपत्ति के हस्तातरण के माध्यम को निर्धारित करते हैं, जब व्यक्ति अपनी वसीयत किए बिना मर जाता है।

3.3.2 मुस्लिम कानून में उत्तराधिकार

यहां मृत व्यक्ति की सम्पत्ति वसीयती उत्तराधिकार या निर्वसीयत उत्तराधिकार द्वारा हस्तांतरित होती है। वसीयती उत्तराधिकार के मामले में मृतक की वसीयत या वसीयतनामे के आधार पर होता है।

निर्वसीयत उत्तराधिकार वंशानुक्रम कहलाता है जिसके अंतर्गत मृतक के वारिस को सम्पत्ति का उत्तराधिकार प्राप्त होता है। वारिस के संबंध में इस्लाम का कानून (निर्वसीयत उत्तराधिकार), जैसा कि अन्य इस्लामी स्वीय कानूनों भी इस्लामी–पूर्व परम्पराओं और पैगम्बर द्वारा बनाए नियमों का संयोजन है।

वारिस पर इस्लामी कानून का बड़ा भाग कुरान से प्राप्त किया जाता है। अत्येष्ठी के व्ययों, न्यायालय से मृत लेख प्रमाण/प्रशासन पत्र प्राप्त करने पर हुए व्यक्त, मृतक की मृत्यु के तीन महीनों के भीतर मृतक की व्यक्तिगत सेवा के लिए पारिश्रमिकों, ऋण और बपौतियों को निकालने के पश्चात शेष सम्पत्ति (चल और अचल) को वारिस के रूप में प्राप्त किया जा सकता है।

3.3.3 विरासत पर मुस्लिम और हिन्दू कानूनों का तुल्नात्मक विश्लेषण

1. मुस्लिम कानून में, सभी सम्पत्तियां एक हैं और पैतृक सम्पत्ति या स्व:अधिगृहित या पृथक सम्पत्ति में कोई अंतर नहीं है, जबकि हिन्दू कानून में पृथक और स्व:अधिगृहित सम्पत्ति होती है।

2. मुस्लिम परिवार में संयुक्त पारिवारिक सम्पत्ति जैसी कोई अवधारणा नहीं होती है जबकि, हिन्दूओं में संयुक्त पारिवारिक सम्पत्ति की अवधारणा विद्यमान है।

3. वारिस का अधिकार, पहली बार, पिता की मृत्य पर प्राप्त होता है। मुस्लिम कानून में जन्म द्वारा अधिकार की अवधारणा नहीं है जबकि हिन्दू कानूनन में जन्म द्वारा सम्पत्ति के अधिकार की अवधारण विद्यमान है।

4. मुस्लिम कानून प्रतिनिधित्व के सिद्धांत को नहीं मानता है। मृत व्यक्ति की सम्पत्ति उसकी मृत्यु के समय वारिस को हस्तांतरित हो जाती है। सम्पत्ति का हस्तांतरण प्रत्येक वारिस को तत्काल उस अनुपात में हो जाता है जैसा कि मुस्लिम कानून में प्रावधान किया गया है। चूंकि प्रत्येक वारि का हित पृथक और भिन्न होता है, एक वारिस को अन्यों के प्रतिनिधि के रूप में नहीं देखा जाता है। इसलिए यदि, एक व्यक्ति का बेटा उस व्यक्ति के जीवित रहते हुए ही मर जाता है तो उस मृत व्यक्ति का बेटा अर्थात जीवित व्यक्ति को पोता अपने पिता की हिस्सेदारी

के लिए प्रतिनिधित्व नहीं कर सकता है जबकि हिन्दु कानून में प्रतिनिधित्व के सिद्धांत को मान्यता प्रदान की गई है।

5. मुस्लिम कानून अन्य व्यक्ति की मृत्यु पर किसी संभावित हित "संभाव्य उत्तराधिकार" (spessuccessionis) को मान्यता प्रदान नहीं करता है हिन्दु कानून में हित "संभाव्य उत्तराधिकार" (spessuccessionis) को मान्यता प्रदान की गई है।

पाठगत प्रश्न 3.3

1. हिन्दू कानून में उत्तराधिकार के प्रकारों का उल्लेख करें।
2. उत्तराधिकार तथा वसीयत में क्या अंतर है?
3. प्रतिनिधित्व के सिद्धांत से आप क्या समझते हैं? क्या यह सिद्धांत मुस्लिम कानून में लागू होता है?

आपने क्या सीखा

- इस पाठ का अध्ययन करने के पश्चात आपने हिन्दू और मुस्लिम व्यक्तिगत कानून और इनके अर्थों का आधारभूत ज्ञान प्रापत किया है।
- वर्तमान पाठ में आपने हिन्दू और मुस्लिम कानून के विभिन्न स्रोतों और आधुनिक समय तक इनके विकास क्रम का भी ज्ञान प्राप्त किया। इस पाठ ने आपको जीवन के दिन-प्रति-दिन की गतिविधियों में स्वीय कानून के महत्व को भी समझाया है।
- विभिन्न धर्मों को माननेवाले प्रत्येक व्यक्ति के जीवन में विवाह और तलाक जीवन के दो महत्वपूर्ण विषय हैं। निसंदेह विवाह अत्यंत महत्वपूर्ण है क्योंकि यह शिशु के जन्म को विधिमान्य बनाता है जबकि विवाह विच्छेद विवाह के खंडन के तंत्र और दाम्पत्य अधिकारों के संबंध में बताता है, जब वैवाहिक जीवन सुगम नहीं होता है। इस पाठ से आप क्रमशः हिन्दू और मुस्लिम कानूनों में इन अवधारणाओं को विकसित कर पाएंगे।
- उत्तराधिकार सिद्धांतों का वह समूह है जिसके द्वारा मृतक की सम्पत्ति वसीयत या उत्तराधिकार के माध्यम से या स्वीय नियमों, मृत्यु के समय वह जिससे शासित है, के माध्यम से वारिस को प्राप्त होती है।

पाठांत प्रश्न

1. हमारे दिन-प्रति-दिन के जीवन में व्यक्तिगत कानून के महत्व का उल्लेख करें।
2. हिन्दू नियम के विभिन्न स्रोतों पर एक बृहत नोट तैयार करें।
3. मुस्लिम कानून के महत्वपूर्ण स्रोत क्या हैं?

4. सेपिंडा संबंध से आप क्या समझते हैं? संबंध के प्रतिबंधित स्तर का भी उल्लेख करें।
5. मुस्लिम कानून के अंतर्गत वैध विवाह के अनिवार्य तत्वों का वर्णन करें।
6. हिन्दू कानून के अंतर्गत विवाह-विच्छेद के क्या आधार हैं?
7. उत्तराधिकार के हिन्दू काननू पर एक लघु नोट तैयार करें।
8. हिन्दू और मुस्लिम कानून के अंतर्गत विरासत के सिद्धांतों के बीच अंतर स्पष्ट करें।
9. हिन्दू और मुस्लिम कानून के बीच विरासत के नियमों में क्या अंतर हैं?
10. सही विकल्प द्वारा निम्नलिखित का मिलान करें;

क	ख
(क) सपिंडा	(i) हिन्दू कानून
(ख) प्रतिनिधित्व का सिद्धांत	(ii) कानून के निर्माताओं की सहमति
(ग) वसीयती उत्तराधिकार	(iii) विवाह-विच्छेद का आधार
(घ) इजमा	(iv) समान शरीर के कण

परियोजना कार्य

अपने आस-पड़ोस के दस परिवारों का सर्वेक्षण करें और उनके दैनिक जीवन में स्वीय कानून की अनुप्रयोज्यता के विषय में सूचना एकत्र करें।

क्र.सं	स्वीय कानून के विभिन्न पहलू	टिप्पणियां
1.	विवाह	
2.	विवाह-विच्छेद	
3.	उत्तराधिकार	
4.	वंशानुक्रम	
5.	रीति-रिवाज	

पाठगत प्रश्नों के उत्तर

3.1

1. हिन्दु धर्म के अनुसार -

(क) कोई व्यक्ति जो धर्म से हिन्दु, जैन, सिख या बौध है अर्थात धर्म से हिन्दु है

(ख) कोई व्यक्ति जो हिन्दु माता-पिता से पैदा हुआ हो, (चाहे दोनों माता व पिता या इन दोनों में से कोई एक धर्म से हिन्दु, जैन, सिख या बौध हो) अर्थात, जन्म से हिन्दु है,

(ग) कोई व्यक्ति जो मुस्लिम, ईसाई, पारसी या यहूदी नहीं है और वह किसी अन्य कानून द्वारा शासित नहीं होता है

2. मुस्लिम वह व्यक्ति है जो इस्लाम धर्म का अनुयायी है। न्यायिक मतानुसार, एक व्यक्ति जन्म से या धर्मपरिवर्तन द्वारा मुस्लिम हो सकता है।

   (क) एक मुसलमान व्यक्ति जन्म से मुस्लिम तब होता है जब उसके जन्म के समय उसके माता-पिता मुसलमान हों।

   (ख) एक व्यक्ति धर्म परिवर्तन द्वारा मुस्लिम तब बनता है जब वह किसी दूसरे धर्म का हो और वयस्कता की आयु प्राप्त करने पर तथा पूर्ण चेतना के साथ, अपने धार्म को अस्वीकार करता है और मुस्लिम धर्म में परिवर्तित हो जाता है।

3. मुस्लिक कानून के स्रोत निम्नानुसार हैं : कुरान, सुन्ना, इजमा, कियास, रीति रिवाज, विधान, न्यायिक निर्णय, तथा न्याय, निष्पक्ष तथा शुद्ध अन्तःकरण

3.2

1. वैध हिन्दु-विवाह के अनिवार्य तत्व निम्नानुसार हैं :

   1. विवाह के समय किसी भी पक्ष का जीवित पतिध्पत्नी नहीं होनी चाहिए।
   2. विवाह के समय कोई भी पक्ष - (क) दिमागी रूप से अस्वस्थ होने के कारण वैध सहमति देने में अक्षम नहीं होगा, या (ख) हालांकि वैध सहमति देने में सक्षम होगा किन्तु ऐसे मानसिक विकास से पीड़ित नहीं होगा जो विवाह तथा शिशु को जन्म देने के लिए उपयुक्त न हो, (ग) उसे बारम्बार पागलपन या मिर्गी के दौरे न हाते हों
   3. दुल्हा के 21 वर्ष पूरे होने चाहिए और दुल्हन के 18 वर्ष पूरे होने चाहिए ।
   4. दोनों पक्ष प्रतिबंधित संबंधों के स्तरों के भीतर नहीं है बशर्ते रीति-रिवाज और/ या चलन ऐसे विवाह को अनुमति प्रदान करे।
   5. दोनों पक्ष एक दूसरे से संबंधित नहीं होनी चाहिए, बशर्ते रीति-रिवाज और/ या चलन ऐसे विवाह को अनुमति प्रदान करे।

2. आरंभिक तौर पर एक पत्नी स्वयं अपने पति को तलाक नहीं दे सकती है। वह अपने पति को तभी तलाक दे सकती है जब समझौते के अंतर्गत पति ने उसे इसका अधिकार दिया हो। किन्तु मुस्लिम विवाह विच्छेद अधिनियम, 1939 के पारित

होने के पश्चात मुस्लिम पत्नियों को भी यह अधिकार प्रापत हो गया है कि वे न्यायालय के आदेश के द्वारा अपने विवाह को खंडित कर सकती हैं।

3. बाल-विवाह : यह एक प्रकार का विवाह है जिसमें दुल्हा और दुल्हन क्रमशः 21 और 18 वर्ष की आयु से कम के होते हैं।

3.3

1. उत्तराधिकार के कानून को दो शीषर्कों के अंतर्गत वर्गीकृत किया जा सकता है :

   a. वसीयती उत्तराधिकार - एक व्यक्ति जिसका संपत्ति पर स्वामित्व है या उसमें हित है, के वसीयतनामे के अनुसार हस्तांतरित सम्पत्ति (पृथक, विभाजित, अविभाजित)। यह संबंधियों और अन्यों को सम्पत्ति हस्तांतरण से संबंधित नियमों पर कार्य करता है।

   b. निर्वसीयत उत्तराधिकार - यह उन नियमों पर आधारित है जो मृतक और उत्तराधिकारी के बीच के संबंध के आधार पर मृतक की संपत्ति के हस्तातरण के माध्यम को निर्धारित करते हैं, जब व्यक्ति अपनी वसीयत किए बिना मर जाता है।

2. वसीयती उत्तराधिकार के मामले में मृतक की वसीयत या वसीयतनामे के आधार पर होता है जबकि निर्वसीयत उत्तराधिकार को वंशानुक्रम कहा जाता है जिसके अंतर्गत मृत व्यक्ति की सम्पत्ति वसीयती उत्तराधिकार या निर्वसीयत उत्तराधिकार द्वारा हस्तांतरित होती है।

3. मुस्लिम कानून प्रतिनिधित्व के सिद्धांत को नहीं मानता है। मृत व्यक्ति की सम्पत्ति उसकी मृत्यु के समय वारिस को हस्तांतरित हो जाती है। सम्पत्ति का हस्तांतरण प्रत्येक वारिस को तत्काल उस अनुपात में हो जाता है जैसा कि मुस्लिम कानून में प्रावधान किया गया है। चूंकि प्रत्येक वारि का हित पृथक और भिन्न होता है, एक वारिस को अन्यों के प्रतिनिधि के रूप में नहीं देखा जाता है। इसलिए यदि, एक व्यक्ति का बेटा उस व्यक्ति के जीवित रहते हुए ही मर जाता है तो उस मृत व्यक्ति का बेटा अर्थात जीवित व्यक्ति को पोता अपने पिता की हिस्सेदारी के लिए प्रतिनिधित्व नहीं कर सकता है जबकि हिन्दु कानून में प्रतिनिधित्व के सिद्धांत को मान्यता प्रदान की गई है।

4

निजी या वैयक्तिक कानून - ईसाई, पारसी तथा यहूदी कानून

पिछले पाठ में आपने देखा है कि हिंदू तथा मुसिलम निजी या वैयक्तिक कानूनों ने हमारी कानूनी प्रणाली में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की हैं। इस पाठ में, ईसाई, पारसी तथा यहूदी के निजी कानून की चर्चा करेंगे, जैसा कि ये हमारी कानून प्रणाली में शामिल हैं। जैसा कि आप जानते हैं कि ईसाई पूरे भारतवर्ष में फैले हुए हैं और यद्यपि ये हिंदुओं और मुसलमानों के पश्चात् तीसरा सबसे बड़ा धार्मिक समुदाय है। यदि आप गोवा, केरल, तमिलनाडु, मणिपुर, मिजोरम, मेघालय तथा नागालैंड में जाएं तो आप वहां बिना किसी कठिनाई के इन लोगों के साथ व्यवहार कर सकते हैं, क्योंकि इन राज्यों में ये बड़ी संख्या में विद्यमान हैं। पारसी एक दूसरा धार्मिक समुदाय है, जो विशेष रूप से मुंबई और महाराष्ट्र के आसपास के क्षेत्रों में रहते हैं। इनकी संख्या बहुत कम है, पूरे भारत वर्ष में इनकी जनसंख्या लगभग 70,000 है। भूतपूर्व प्रधानमंत्री स्वर्गीय इंदिरा गांधी के पति श्री फिरोज गांधी, रतन टाटा (विख्यात उद्योगपति) तथा मार्शल सेम मानिकशाह (सशस्त्र बलों के एक भूतपूर्व विख्यात मार्शल) कुछ ऐसे महान नाम हैं, जो पारसी समुदाय से हैं। यहूदी भी भारत का एक अन्य समुदाय है, जो अपनी संस्कृति और परंपराओं का अनुसरण कर रहा है। ये मुख्य रूप से मुंबई तथा महाराष्ट्र व गुजरात के आसपास के क्षेत्रों में हैं। भारत में यहूदी समुदाय के कुछ महान नामों में डेविड सेसन (मुंबई में चर्च गेट के सामने सेसन पुस्तकालय है) तथा रूथ प्रवेर झबवाला (प्रसिद्ध लेखक) शामिल हैं।

उद्देश्य

इस पाठक के अध्ययन के पश्चात आप :

- ईसाई, पारसी और यहूदी समुदाय के निजी या वैयक्तिक कानून और हमारी कानून प्रणाली में इसके समावेश का वर्णन कर पाएंगे;
- ईसाई, पारसी और यहूदी के प्रथागत कानून के महत्व को समझ पाएंगे और जान पाएंगे कि उन्हें हमारी कानूनी प्रणाली में किस प्रकार स्वीकार किया गया है;
- ईसाई, पारसी और यहूदी समुदाय के लिए निर्मित विधान की मुख्य विशेषताओं का आकलन कर पाएंगे;

- ईसाई, पारसी और यहूदी समुदाय के निजी कानून के निर्माण में न्यायिक पूर्व-निर्णयों की भूमिका को जान पाएंगे; एवं
- मिश्रित कानून प्रणाली और उसके महत्व को पहचान पाएंगे।

4.1 ईसाई, पारसी और यहूदी कानून में रीति-रिवाजों की भूमिका

पाठ के इस भाग में, हम इन धार्मिक समूहों के जीवन तथा कानूनी प्रणाली में परंपरागत नियमों के महत्व को समझने का प्रयास करेंगे।

4.1.1. ईसाई कानून में रीति-रिवाजों (Custom) की भूमिका

रीति-रिवाज भारत में ईसाई समुदाय के जीवन और कानूनी प्रणाली में महत्वूपर्ण भूमिका अदा करते हैं। मालाबार में एक ईसाई समुदाय है, जो मालांकर जेकोबिट सीरियन ईसाइयों के नाम से प्रसिद्ध हैं। इस समुदाय की उत्पत्ति के संकेत वर्ष 52 ईसा पश्चात में पाए जाते हैं, जब जीजस क्राइस्ट के एक अनुयायी सेंट थॉमस मालाबार में आए थे और उन्होंने वहां एक चर्च की स्थापना की थी। वे हूदयान केनन से शासित हैं और उनकी सभी परंपरागत रीतियां इसमें विधिबद्ध हैं। केरल तथा भारत के अन्य भागों में अन्य किस्म के सीरियन ईसाई विद्यमान हैं। जब पुर्तगालियों ने 16वीं शताब्दी में भारत के पश्चिमी भाग (गोवा, दमन, दयू) में अपना शासन स्थापित किया था तो वे रोमन कैथोलिक चर्चों को स्थापित करने में सफल रहे थे। उन्होंने पाया कि सीरियन ईसाइयों के रीति और रिवाज रोमन कैथोलिक चर्च के अनुरूप नहीं हैं, इसलिए इन चर्चों द्वारा विवाह, तलाक, उत्तराधिकार और विरासत संबंधी परंपरागत रीतियों को संहिताबद्ध (गिरजा कानून की संहिता) तथा क्रियान्वित किया गया था। तथापि सीरियन ईसाइयों ने अपने स्वयं के धार्मिक रीतियों का अनुसरण बंद नहीं किया और उनकी परंपराएं पूर्वी (ओरिएंटल) चर्चों के गिरजा संहिता से विनियमित है। ब्रिटिश साम्राज्य के दौरान पूरे भारतवर्ष में ईसाइयों द्वारा इन गिरजा पारंपरिक कानूनों का अनुसरण किया जा रहा था और इन्हें दो विशिष्ट विधानों के द्वारा आधुनिक बनाया गया था अर्थात् भारतीय तलाक अधिनियम, 1869 और भारतीय ईसाई विवाह अधिनियम, 1872, ईसाई अपनी परंपरागत रीतियों में तलाक को मान्यता नहीं देते हैं और उनके विवाहों को सांस्कारिक माना जाता है।

इन गिरजा नियमों और रीतियों को भारत के न्यायालयों में भी प्रयोग किया जाता था। ईसाई भारत में गिरजा कानून द्वारा निर्धारित विवाह के स्वरूप का अनुपालन करने के लिए बाध्य हैं। भारत में परंपरागत रीतियों के अनुसार ईसाईयों में विवाह के समारोह को वही व्यक्ति निष्पादित कर सकता है, जिसे धर्माध्यक्षीय दीक्षा प्राप्त हो। रोमन कैथोलिक चर्च के केनन 88 के अंतर्गत, 20 वर्ष की आयु प्राप्त करने वाला व्यक्ति वयस्क है। केनन 1607 में प्रावधान है कि एक लड़का जिसने 16 वर्ष की आयु पूरी नहीं की है तथा एक लड़की जिसने 14 वर्ष की आयु पूरी नहीं की है, वह वैद्य विवाह का संविदा नहीं कर सकते हैं। केनन 1934 में कहा गया है कि पादरी को अवयस्क बेटों और बेटियों को उनके माता-पिता की युक्तिसंगत इच्छाओं के विपरीत विवाह करने से रोकना चाहिए। भारत के कानून में इन सैद्धांतिक रीतियों को मान्यता प्रदान की है। इसके अतिरिक्त, न्यायालयों ने यह भी कहा है कि विवाह के उद्देश्य से प्रतिबंधित डिग्रियां वे हैं, जो

उस चर्च के पारंपरिक कानून के अंतर्गत प्रतिबंधित है, जिस चर्च को वे पक्ष मानते हैं। इसलिए यदि एक व्यक्ति और इसकी ममेरी बहन (मामा की बेटी) के बीच विवाह होता है तो हालांकि यह प्रतिबंधित हैं, किंतु चर्च इस प्रतिबंध को हटा सकता है (केनन 1052)। लक्ष्मी सान्याल बनाम सचित कुमार धर के मामले (1972) में, उच्चतम न्यायालय ने गिरजा कानून की इस स्थिति को स्वीकार किया है।

उत्तराधिकार और उत्तराधिकारी के मामले में, ईसाईयों ने लंबे समय से अपने स्थानीय परंपरागत रीतियों का अनुसरण किया है। सामान्यत: शाखीय ज्येष्ठाधिकार का नियम लागू होता है, जिसके अंतर्गत व्यक्ति की मृत्यु के पश्चात उसके ज्येष्ठ पुत्र को उसकी संपत्ति मिलती है। पति की मृत्यु पर ईसाइयों की पत्नियों को संपत्ति में कोई हिस्सा नहीं मिलता है। दत्तक ग्रहण के मामले में पंजाब के ईसाई लंबे समय से दत्तक ग्रहण की परंपरा का अनुसरण कर रहे हैं। केरल के सीरियन ईसाइयों में अपने दामाद को दत्तक ग्रहण करने की परंपरा विद्यमान है। जहां दंपत्ति का कोई पुत्र नहीं होता है, वहां ज्येष्ठ पुत्री के पति को दत्तक ग्रहण कर लिया जाता है।

बहरहाल, भारत में अनेक ईसाइयों ने हिंदू रीति-रिवाजों और परंपराओं को अपना लिया है। उदाहरण के लिए, कूर्ग और पांडिचेरी के ईसाई केवल हिंदू रीति-रिवाजों का ही अनुसरण कर रहे हैं। झारखंड, उड़ीसा तथा पूर्वोत्तर में अनेक परिवर्तित ईसाई हिंदू परंपरागत नियमों का ही अनुसरण कर रहे हैं।

क्रियाकलाप 4.1.1

ईसाई भारत के हर भाग में निवास कर रहे हैं। जिस क्षेत्र में आप रह रहे हैं, वहां भी आपने कुछ चर्चों, मिशनरी स्कूलों को देखा होगा। इन स्थानों में जाएं और वहां ईसाई धर्म का अनुसरण करने वाले ईसाईयों से मिलें और उनके रीति-रिवाजों और परंपराओं के बारे में जानें। उनके धार्मिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक रीति-रिवाजों की सूची तैयार करें और देखें कि कैसे उन्होंने अपने इन रीति-रिवाजों को संरक्षित रखा है और क्यों हमारे समाज ने इन्हें स्वीकार किया है।

4.1.2. पारसी कानून में रीति-रिवाजों की भूमिका

विवाह से संबंधित रिवाज-

पारसी अप्रवासी पारसियों के अरब पर आक्रमण करने वाले राजाओं द्वारा धार्मिक उत्पीड़न से बचने के लिए भागकर भारत आए थे। अप्रवासी पारसियों ने उस स्थान के रीति-रिवाजों को अपनाया, जहां उन्हें पहले आसरा मिला। पारसी विविध धार्मिक संस्कारों का अनुसरण करते हैं, जो जन्म के समय आरंभ होते हैं, जब शिशु को जोरेस्टियन धर्म में प्रवेश कराने के लिए 'नवजोति' की रीति की जाती है। उनके विवाह समारोह सूर्यास्थ के पश्चात होते हैं, किंतु वे अपने धार्मिक ग्रंथ 'वेस्टा' के अनुसार विवाह अपनी परंपरागत रीतियों का अनुसरण करते हैं। विवाह के दौरान पादरी (दस्तूक जी) धार्मिक रीतियों को संपन्न करता है और दूल्हे-दुल्हन की 'हथेवोरा (बायां हाथ-फास्टिंग) रीति पूरी हो जाती है। अपने धार्मिक ग्रंथों से प्रार्थनाओं का पाठ

करते हुए विवाह संपन्न होता है। जब पादरी (दस्तूर जी) विवाह को प्रमाणित करते हैं, तभी विवाह संपन्न माना जाता है। पारसी दस्तूर जी धार्मिक रीति-रिवाजों को संपन्न नहीं कर सकता है, यदि पारसी लड़का गैर-पारसी लड़की से या पारसी लड़की गैर-पारसी लड़के से विवाह करता है। पारसी इस परंपरा पर विश्वास करते हैं कि एक व्यक्ति केवल जन्म से ही पारसी हो सकता है। इसलिए, यदि कोई हिंदू व्यक्ति स्वयं को पारसी धर्म में परिवर्तित करना चाहता है तो उसे कोई पारसी सामाजिक या धार्मिक लाभ प्राप्त नहीं होगा। यदि एक पारसी लड़की किसी गैर-पारसी लड़के से शादी करती है तो वह पारसी संपत्ति तथा समाज के सभी अधिकारों को खो देगी। उदाहरण के लिए जे.आर.डी. टाटा ने एक फ्रेंच ईसाई महिला से विवाह किया और उस महिला ने अपना धर्म परिवर्तित करके पारसी धर्म को अपनाया, किंतु उसे पारसी समाज का कोई लाभ प्रदान नहीं किया गया। तथापि, उनके विवाह से उत्पन्न शिशु को पारसी समाज में प्रवेश की अनुमति प्रदान की गई। परिवर्तित पारसियों को उनके धार्मिक स्थलों में प्रवेश तथा किसी धार्मिक समारोहों में भाग लेने की अनुमति नहीं दी जाती है।

दत्तक ग्रहण (adoption) से संबंधित रीति-रिवाज

पारसियों में दत्तक-ग्रहण के लिए पुत्र या 'पलक' को नामित करने की सुविख्यात 'परंपरा' विद्यमान है। मौजूदा पवित्र एवेस्टा स्क्रिप्चर्स में इस धार्मिक आज्ञा का कोई प्रत्यक्ष संदर्भ नहीं है। 'पलक' दत्तक ग्रहण इस अर्थ में नहीं है कि बच्चे को दत्तक ग्रहण करने वाले पिता के परिवार में सभी अधिकारों, सामाजिक, धार्मिक या नागरिक के साथ ग्रहण किया जाए। यह दत्तक ग्रहण पुत्र को कोई अधिकार प्रदान करने के रूप में नहीं है, किंतु उस पर दायित्व डालने के रूप में है अर्थात् दत्तक ग्रहण पिता की मृत्यु के पश्चात के अनुष्ठानों को पूरा करने का दायित्व ताकि अगले संसार में मृत पिता की रूह की यात्रा सफल रहे। इस प्रकार, हम देख सकते हैं कि पारसी समुदाय में दत्तक ग्रहण की रीति अन्यों की तुलना में पूर्णत: भिन्न है, जहां दत्तक ग्रहण की प्रक्रिया में दत्तक पुत्र या पुत्री को सभी नागरिक अधिकार प्राप्त होते हैं।

उत्तराधिकार (Succession) की रीति

उत्तराधिकार के मामलों में, वर्ष 1865 में ब्रिटिश साम्राज्य के दौरान कानून के संहिताकरण तक भिन्न 'रीतियों' का अनुसरण किया जा रहा था। विवाह संबंधी विवाद, उत्तराधिकारी, घरेलू झगड़ों तथा भूमि संबंधी आदि मुद्दों का निर्णय देने का न्यायाधिकार पारसी पंचायतों (या पारसी अंजुमन) को दी गई थी। यदि मृत व्यक्ति का कोई उत्तराधिकारी नहीं है तो उसकी संपत्ति पंचायत के पास चली जाती थी, जिससे पारसियों को आवश्यकता से समय धन संबंधी मदद प्रदान की जाती थी, जैसे अत्यधिक गरीबी जिसके कारण व्यक्ति भीख मांगने या वेश्यावृति के लिए मजबूर हो जाए। ये पंचायतें पारसी समुदाय के प्रबुद्ध और प्रभावशाली व्यक्तियों से बनती थी। ये निकाय 'टॉवर ऑफ साइलेंस' की देख-रेख के लिए उत्तरदायी थे, जो कि पारसियों का अंतिम विश्राम स्थल हैं। ब्रिटिश साम्राज्य के दौरान मुफस्मिल क्षेत्रों में रहने वाले लोग अपने 'परंपरागत कानूनों' द्वारा शासित थे, जबकि प्रेसिडेंसी क्षेत्र में रहने वाले अंग्रेजी कानून द्वारा शासित थे। उदाहरण के लिए, मुफस्मिल क्षेत्र में पारसी महिलाओं को पति की मृत्यु के बाद केवल निर्वाह भत्ते का अधिकार होता थ। उपनिवेशिक नगर में, बहरहाल, विधवा को पति की संपत्ति में एक-तिहाई स्तर तक पूर्ण अधिकार था। उपनिवेशिक क्षेत्र में मृत व्यक्ति की पुत्री को पुत्र के समान दर्जा दिया जाता था।

क्या आप जानते है

भारत में पहली पारसी बस्ती सन् 716 एडी के लगभग गुजरात में 'संजन' नामक गांव में स्थापित हुई थी। तत्पश्चात इस क्षेत्र में जदि राना नामक हिंदू सरकार ने राज्य किया, जिसने चार शर्तों पर पारसियों को यहां अपनी बस्ती बनाने की अनुमति प्रदान की : (क) पारसी इस देश की भाषा को अपनाएंगे; (ख) वे अपने पास हथियार नहीं रखेंगे; (ग) उनकी महिलाएं हिंदुओं की वेशभूषा पहनेंगी और; (घ) वे अपनी शादियां हिंदू रीति-रिवाजों के अनुसार सूर्योदय के पश्चात् करेंगे। पारसी लोग इन शर्तों पर सहमत हो गए और वहां अपनी बस्ती बना ली, तथापि उन्होंने अपने पारसी धर्म (जोरोस्टियन) तथा परंपराओं को नहीं त्यागा, जैसे 'यादगार उत्सव'।

4.1.3. यहूदी कानून में 'रीति-रिवाज' का महत्व

भारत में यहूदी समुदाय छोटा समुदाय है, जो यहूदी धर्म (Judaism) का अनुसरण करते हां। यहूदी कानून के मुख्य स्रोत 'मोजैक संहिता' है, पैंट्यिच में बनाया गया था, जो यहूदी धर्म के प्राचीन काल में विद्यमान था और जिसे कुछ परिवर्तन के साथ 'विधि-विवरणों' में दोहराया गया है। 'मोजैक संहिता' का व्यापक ऐतिहासिक महत्व है और जीवन में आने वाली परिवर्तित स्थितियों को अपनाने के उपरांत संपूर्ण विश्वभर में यहूदी लोगों के घरेलू जीवन में भी प्रभाव पड़ा है। बाद में यहूदी कानून को 'टैल्मड' (संत चरित्र का संग्रह) में निर्धारित किया गया था। वह कृति, जो यहूदियों के परंपरागत कानूनों में समाविष्ट है। टैल्मड में निर्धारित विवाह संबंधी कानून 'मोजैक संहिता' का व्याख्यान तथा संवर्धन स्वरूप है। यह 'मिशना' तथा 'गेमारा' में विभाजित है और 'मिशना' में यहूदियों की लगभग सभी क्रियाओं को नियंत्रित करने वाले नियम हैं और 'गैमारा' में इन नियमों, टिप्पणियों या व्याख्यान या चर्चाएं विद्यमान हैं। मध्य काल में यहूदी धर्म के वक्तव्यों को रेब्बीस के संस्थानों में निर्मित किया गया था, किंतु पुराने रेबेनिकल संहिता के सिद्धांतों में व्यापक स्तर पर परिवर्तन किए गए थे, ताकि इन्हें विश्व के विभिन्न कानूनों के अनुरूप बनाया जा सके। रेब्बी स्वयं एक सिविल जज नहीं है, बल्कि एक धार्मिक मार्गदर्शक है और अपने धार्मिक समाज का शिक्षक है। मध्य काल में व्यावहारिक प्रयोग के लिए टैल्मिड से संहिताओं को समेकित किया गया था और कानून को सोलहवीं शताब्दी में 'शुलेचन अरच' के रूप में संहिताबद्ध किया गया था, जिसके तीसरे भाग, 'एबेन-हा-एजर' में यहूदियों के विवाह संबंधी कानून समाविष्ट हैं और जिसमें विवाह और तलाक के सभी प्रश्नों के सामान्य प्राधिकार उपलब्ध हैं।

विवाह संबंधी रीति-रिवाज

यहूदियों में विवाह की परंपरागत विधि ईसाइयों और अंग्रेज लोगों से भिन्न होती है। रोमन कैथेलिक चर्च विवाह को परम संस्कार और इस प्रकार अवियोज्य मानते हैं। अंग्रेजों के कानून के अनुसार, विवाह को एक करार माना जाता है। यहूदी कानून विवाह को न केवल एक सिविल करार मानता है, बल्कि दो लोगो के बीच एक संबंध के रूप में भी देखता है, जिसमें बहुत पवित्र दायित्व शामिल होते हैं। मूसा-संहिता कानून में विवाह का संपन्न करने को कोई निर्धारित रूप नहीं बनाए गए हैं, किंतु उसमें मंगेतर तथा विवाहित महिला में अंतर बताया गया है। मंगेतर

विवाह को 'अरूशा' और विवाहित महिला को 'निस्सुआ' कहते हैं। आगे चलकर यह प्रथा कतिपय कानूनी औपचारिकताओं में सृजित की गई और विवाह के कार्य में दो भिन्न भाग शामिल हो गए, यथा–सगाई (betrothment) तथा विवाह संस्कार (nuptials) यहूदी धर्म में एक लड़की तब तक मंगेतर नहीं बनती है, जब तक कि उसकी सहमति से सगाई की रीति नहीं की जाती है। यहूदी कानून के अंतर्गत एक लड़की, जो नाबालिग है अर्थात् जो तेरह वर्ष और एक दिन की आयु से भी कम है, उसकी सगाई नहीं हो सकती है। यहां पुरुष की सहमति भी आवश्यक है। बहरहाल, सगाई करने के लिए केवल दोनों पक्षों की सहमति ही आवश्यक नहीं है, क्योंकि कुछ निश्चित क्रियाएं तथा औपचारिकताएं आवश्यक हैं, जिसके द्वारा आपसी सहमति को कानूनी रूप से स्वीकार किया जाता है। इस प्रयोजन के लिए, दो विशेष औपचारिकताएं हैं। इनमें से एक को 'कासेफ' (पैसा) कहते हैं और दूसरे को 'शतार' (लिखित पत्र) कहते हैं। 'कासेफ' के माध्यम से सगाई को 'कासेफ किद्दुशिम' कहते हैं और मूसीज या इजरायली कानून के अनुसार जिसमें पुरुष दो साक्षियों की उपस्थिति में लड़की को धन की राशिया या समान मूल्य की कोई वस्तु देता है और साथ ही हिब्रू में इस कथन को कहता है, 'बी दो कंसर्टिट टू मी' या 'मेरी पत्नी बनो' या 'मेरी बन जाओ'। साक्षी भी यहूदी होने चाहिए।

सगाई को मृत्यु या तलाक के औपचारिक की प्रक्रिया द्वारा समाप्त नहीं किया जा सकता है। यहूदी परंपरागत कानून तलाक को मान्यता देता है। पुराने रेबिनिकल कानून द्वारा तलाक के चार प्रकारों को मान्यता प्रदान की गई है : (क) आपसी सहमति द्वारा तलाक, (ख) पति के अनुरोध पर पत्नी को तलाक देना, (ग) पत्नी के अनुरोध पर पति को तलाक देना, (घ) किसी भी पक्ष द्वारा अनुरोध किए बिना यहूदी कानून द्वारा तलाक लागू करना। एक लड़की शादी या सगाई के बाद तलाक के बिल के लिए अनुरोध कर सकती है। तलाक का बिल उस व्यक्ति द्वारा निष्पादित किया जाएगा, जिसने उस व्यक्ति को तलाक दिया है, जिसने उसकी मांग की है।

उत्तराधिकार और विरासत संबंधी रीति-रिवाज-

इसी प्रकार उत्तराधिकार और विरासत के मुद्दों पर यहूदी परंपरागत विधियां 'पेंट्युच' (पहले उल्लिखित धार्मिक ग्रंथ) द्वारा तथा यहूदियों द्वारा अपनी बस्तियों में स्थापित अनुरंजन समितियों द्वारा विनियमित हैं। जब ब्रिटिश साम्राज्य के दौरान उत्तराधिकार का कानून संहिताबद्ध हुआ और उसे भारतीय उत्तराधिकार अधिनियम, 1925 कहा गया था, उस समय यहूदी लोगों ने स्वयं पर इसके अनुप्रयोग के विषय में कुछ नहीं कहा था। जब कुछ यहूदियों को लगा कि यह कानून 'पेंट्युच' पर आधारित उनकी परंपरागत रीतियों के अनुरूप नहीं हैं तो उन्होंने राज्य सरकार के समक्ष याचिका दायर की, जिसके पास किसी भी जाति, पंत तथ राजनीति को इस अधिनियम के अनुपालन से छूट प्रदान करने की शक्ति थी। ब्रिटिश सरकार ने इस मान को मान लिया और यहूदी पुन: 'पेंट्युच' का अनुसरण करने लगे थे।

? क्या आप जानते है

भारतीय यहूदियों की उत्पत्ति निश्चित है, किंतु कुछ तथ्यों के अनुसार वे सोलोमान राजा के साम्राज्य से दूत बनकर आए थे। जब सन् 70 एडी में रोम के राजा वेस्पेसिन द्वारा जुडेया साम्राज्य को नष्ट कर दिया गया था, तब यहूदियों ने विश्व के लगभग

सभी भागों में प्रवास करना आरंभ कर दिया था। भारत में यहूदियों को व्यापक रूप से तीन श्रेणियों में वर्गीकृत किया जा सकता है : (क) कोची के यहूदी, जो भारत में लगभग 2500 वर्ष पूर्व आए थे और व्यापारियों के रूप में केरल में रहने लगे। (ख) बेने इजराइल यहूदी, जो भारत में लगभग 2100 वर्ष पूर्व आए थे और उन्होंने महाराष्ट्र और गुजरात राज्यो में अपनी बस्तियां बसाई। (ग) बगदादी यहूदी जो ईरान, ईराक तथा अफगानिस्तान से 18वीं शताब्दी में यहां आए थे और वे मुंबई और कोलकाता में स्थापित हुए। उन्होंने अपने स्वयं के छोटे समुदाय स्थापित किए और अपने मिलने व प्रार्थनाओं के स्थानों जिन्हें 'सिनेकवगस' कहते हैं, का निर्माण किया, वे बाईबल का पाठ करते और 'सैबत' और 'सुन्नत' करते। यह रोचक तथ्य है कि भारत में यहूदियों का सबसे बड़ा समुदाय बेने इजराइली समुदाय यह मानता है कि दूसरी सदी बीसी में उत्पीड़न से भागते समय उनके पूर्वज का जलपोत भारत के तट पर टूट गया था।

पाठगत प्रश्न 4.1

1. भारत में ईसाइयों के मुख्य रीति-रिवाज क्या हैं?
2. पारसियों ने भारत के स्थानीय रीति-रिवाजों को क्यों अपनाया?
3. भारत में यहूदियों की विवाह संबंधी रीति-रिवाज क्या हैं?
4. रिक्त स्थान भरें-

1. .... ने ईसाइयों के जीवन तथा कानूनी प्रणाली में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की। (रीति-रिवाज, कानून, समझौते)
2. भारत में अनेक ईसाइयों ने .... रीति-रिवाजों और विधियों को अपनाया। (हिंदू/ पारसी/ यहूदी)
3. पारसियों में .... के लिए पुत्र या 'पलक' के अनुरक्षण की एक मान्यता प्राप्त रीति विद्यमान है। (दत्तक ग्रहण, विवाह, तलाक)

4.2 ईसाई, पारसी और यहूदी धर्म में विधान और न्यायिक पूर्व-निर्णय की भूमिका

पाठ के इस भाग में हम ईसाई, पारसी और यहूदी धर्म में विधान और न्यायिक पूर्व-निर्णय की भूमिका पर चर्चा करेंगे। जैसा कि आप इस तथ्य से अवगत हो गए होंगे कि विधान ने एक स्थान में किसी क्षेत्र से संबंधित परंपरागत विधियों और नए नियमों के संहिताकरण में प्रमुख भूमिका अदा की है। इसी प्रकार, किसी मामले में न्यायिक पूर्ण-निर्णयों के निर्धारण के लिए न्यायाधिकार के उच्चतर न्यायालयों को प्राधिकार प्रदान किया गया है, जहां विधान समस्या का समाधान उपलब्ध कराने में सक्षम नहीं है और परंपरागत विधियों को विधान द्वारा मान्यता प्रदान नहीं की गई है। सर्वप्रथम, हम ईसाई कानून में विधान तथा न्यायिक पूर्व-निर्णयों की भूमिका का विश्लेषण करेंगे।

4.2.1 ईसाई धर्म में विधान तथा न्यायिक पूर्व-निर्णय की भूमिका

विवाह का विधान-

भारत में ब्रिटिश साम्राज्य के दौरान व्यक्तिगत विषयों से संबंधित विशिष्ट विधान को संहिताबद्ध किया गया था। शब्द 'भारतीय ईसाई' को ईसाई धर्म को अपनाने वाले तथा इसमें भारतीय मूल के व्यक्ति, जो ईसाई धर्म में धर्मान्तरित हुए हैं, भी शामिल हैं और साथ ही साथ सामान्य धर्मान्तरितों के रूप में ईसाई विवाह अधिनियम में परिभाषित किया गया है। धर्मान्तरित को न केवल बपतिस्मा किया हुआ होना चाहिए, बल्कि ईसाई परंपराओं के अनुसार ईसाई धर्म का अनुसरण भी करना चाहिए। ईसाई धर्म से संबंधित अनेक विशेष कानून विद्यमान हैं। भारतीय ईसाई विवाह अधिनियम को वर्ष 1872 में संहिताबद्ध किया गया था। इस अधिनियम में भारत में ईसाई धर्म का अनुसरण करने वाले व्यक्तियों के विवाहों के विधिवत् संपादन से संबंधित नियमों को समेकित तथा संशोधित किया गया है। इस अधिनियम को अब कन्याकुमारी जिले तक लागू कर दिया गया है और वर्ष 1995 में तमिलनाडु के निरूनोलवेल्ली-कट्टबोम्मन जिले के सेचेन्नटक ताल्लूक तक लागू कर दिया गया है। ईसाई तलाक पर नियम को 'तलाक अधिनियम, 1869' के नाम से संहिताबद्ध कर दिया गया है। इस अधिनियम को 2001 में संशोधित किया गया है, जिसके तहत आपसी सहमति से तलाक की अनुमति है।

दत्तक ग्रहण का विधान-

भारत में ईसाईयों द्वारा 'दत्तक ग्रहण' का संभवकारी या विनियामक कोई विशिष्ट अधिनियम नहीं है। जो लोग एक नाबालिग बच्चे का दत्तक ग्रहण करना चाहते हैं, वे सामान्यत् इसके लिए कोर्टस ऑफ वार्डस अधिनियम, 1980 के प्रावधानों के अंतर्गत न्यायालय से अनुरोध करते हैं ताकि उन्हें उसे नाबालिग बच्चे की संरक्षकता प्राप्त कर सकें। बहरहाल, इस अधिनियम के अंतर्गत यह आदेश उस समय लागू नहीं होते हैं, जब वह बच्चा वयस्क हो जाता है और इस प्रकार दत्तक पुत्र या पुत्री बनाने के बच्चे के लाभ समाप्त हो जाते हैं। 'किशोर न्याय' (बाल देख-रेख तथा संस्मरण) अधिनियम, 2006 बनने के पश्चात इस स्थिति में परिवर्तन हुआ है, जिसे विभिन्न राज्य सरकारों द्वारा जारी दिशा-निर्देशों और नियमों के साथ पढ़ा जाता है, जिसके अंतर्गत ईसाई लोग अब दत्तक ग्रहण कर सकते हैं।

उत्तराधिकार का विधान-

जहां तक उत्तराधिकार से संबंधित मुद्दों का संबंध है, ये भारतीय उत्तराधिकार अधिनियम, 1925 द्वारा शासित हैं। यह कानून ईसाईयों और पारसियों की अचल संपत्ति के निर्वसीयता और वसीयती उत्तराधिकार को शासित करता है। गोवा, दमन और दयु (प्रशासन) अधिनियम, 1962 के प्रावधानों के अनुसार, गोवा में पुर्तगी सिविल संहिता लागू है। सेशन की संधि, 1956 के अनुसार पुडुचेरी में फ्रैंच सिविल संहिता अभी भी विद्यमान है। इसके अतिरिक्त, मेघालय के गारो भी इस उत्तराधिकार अधिनियम के अंतर्गत नहीं आते हैं। वे उत्तराधिकार के अपने अपनी परंपरागत मातृवंशीय प्रणाली का अनुसरण करते हैं।

न्यायिक पूर्ण-निर्णय

ईसाइयों से संबंधित न्यायित पूर्व-निर्णयों को समझना अत्यंत आवश्यक है। विवाह संबंधी एक मामले के निर्णय में, मद्रास उच्च न्यायालय ने निर्णय दिया था कि एक अवयस्क पुत्री के विवाह

के लिए उसके पिता की सहमति आवश्यक है। इस मामले में जब पिता की सहमति प्राप्त नहीं हुई तो लड़के ने जाल- साजी द्वारा लड़की के जन्म के वर्ष को बदल दिया ताकि लड़की के पिता से सहमति प्राप्त न करनी पड़े और इसे विधि संगत नहीं माना गया (मोसेलीन मैरी बनाम रवि गणेसेल्वम)। एक अन्य मामले के निर्णय में, उसी न्यायालय ने निर्णय दिया कि यदि किसी विवाह समारोह को पादरी द्वारा आधिकारिक रूप से संचालित नहीं किया जाता है और वह विवाह चर्च में नहीं होता है तो वह विवाह चर्च की नजरों में विवाह नहीं माना जाता है, चाहे विवाह होने से कुछ सप्ताह पूर्व दस्तावेज तैयार कर लिए गए थे ताकि दहेज का प्रावधान हो सके (एस. सेल्वराज बनाम मार्थ पीटर)।

तलाक के एक अन्य मामले में, उच्च न्यायालय ने पाया कि तलाक अधिनियम, 1869 विवाह संबंधी मामलों में जिला न्यायालयों और उच्च न्यायालयों पर न्यायाधिकार निर्धारित करता है। जब तक कि अधिनियम न्यायाधिकार स्थापित न करे, गिरजा अधिकरण (कई बार इसे चर्च कोर्ट भी कहा जाता है) का प्राधिकार और शक्ति के तहत ऐसे गिरजा अधिकरण द्वारा पारित कोई आदेश या निर्णय न्यायालयों पर बाध्यकारी नहीं होंगे, जिसे वैवाहिक मुद्दों के संबंध में तलाक देने या निर्णय देने के संबंध में शक्ति का प्रयोग करने के लिए अधिनियम के अंतर्गत मान्यता प्रदान की गई है (मोली जोसेफ बनाम जॉर्ज सेबेस्टियन)। इस प्रश्न के संबंध में कि एक पति द्वारा अपने पति को थप्पड़ मारना बर्बरता है, न्यायालय ने निर्णय दिया कि विवाह के पश्चात अपनी पत्नी को केवल थप्पड मारना बर्बरता नहीं है और यह तलाक का कारण नहीं हो सकता है (एग्नल वेलेंटाइन डी'सूजा बनाम ब्लैंचे एग्नेला पेयडेड)।

4.2.2. पारसी कानून पर विधान और उनकी न्यायिक समीक्षा

विवाह तथा तलाक पर विधान-

भारतीय संसद ने पारसियों के लिए एक विशेष कानून 'पादरी विवाह एवं तलाक अधिनियम, 1936' बनाकर पारसी विवाह और तलाक को विनियमित किया है, जिसे 1988 में कुछ स्तर पर संशोधित किया गया है। इस अधिनियम में उस व्यक्ति को पारसी व्यक्ति के रूप में परिभाषित किया गया है, जो पारसी जोरेस्ट्रियन है। बहरहाल, आप ऐसी परिस्थिति के विषय में सोचते होंगे, जहां एक पारसी लड़का गैर-पारसी लड़की से विवाह करता है तो उनके बच्चों का धर्म क्या होगा? इसी प्रकार यदि एक पारसी लड़की गैर-पारसी लड़के से विवाह करती है तो उनके बच्चों का धर्म क्या होगा? इन प्रश्नों के उत्तर इस अधिनियम में नहीं है। इनका उत्तर जानने के लिए हमें न्यायिक पूर्व-निर्णयों को देखना होगा। बॉम्बे उच्च न्यायालय द्वारा एक मामले में दिए गए निर्णय में न्यायालय के अनुसार एक पारसी पिता और गैर-पारसी माता का बच्चा पारसी माना गया है, बशर्ते उसे पारसी धर्म में डाला जाए और वह जोरेस्टियन धर्म का अनुसरण करे। बहरहाल, पारसी माता और गैर-पारसी पिता का बच्चा पारसी नहीं होगा (सर दिनशाह मानिकजी बनाम सर जमशेदजी)।

इस अधिनियम के अनुसार, पारसी विवाह अवैध माना जाएगा, यदि निम्नलिखित तीन कृत्यों में से कोई भी किया जाए : (क) सगोत्रता या बंधुत्व के किसी भी स्तर में दोनों संविदाकारी पक्ष एक-दूसरे से संबंधित हैं (उदाहरण के लिए एक व्यक्ति अपनी बहन के बेटे की पत्नी से विवाह नहीं कर सकता है और एक महिला अपनी बहन की बेटी के पति से विवाह नहीं कर सकती है), (ख) यदि विवाह पादरी की उपस्थिति में पारसी रीति-रिवाजों 'आशीर्वाद' के अनुसार

संपन्न नहीं होता है और वहां पादरी के अतिरिक्त दो अन्य पारसी साक्षी नहीं होते हैं, (ग) यदि संविदागत पक्ष वयस्क नहीं हैं अर्थात् लड़का 21 वर्ष की आयु से कम है तथा लड़की 18 वर्ष की आयु से कम है। आपने किसी स्थिति के बारे में भी सोचा होगा, जहां एक अवयस्क पारसी लड़के एक पारसी लड़के से विवाह करता है और उनका बच्चा हो जाता है तो क्या उनका बच्चा नाजायज माना जाएगा? इसका उत्तर अधिनियम में दिया गया है और इसमें कहा गया है कि बच्चा जायज माना जाएगा।

विवाह के विधिवत संपादन के लिए अनुसरण की जाने वाली प्रक्रिया

इस अधिनियम के अंतर्गत संपन्न किया गया विवाह तत्काल विधिवत् संपादन किए जाने पर कार्यकारी पादरी द्वारा इसे प्रमाणित किया जाता है। प्रमाण- पत्र पर उक्त पादरी, सविदाकारी पक्षों और वहां उपस्थित दो साक्षियों के हस्ताक्षर होने चाहिए। तत्पश्चात पादरी ऐसे प्रमाण-पत्र को निर्धारित शुल्क के साथ, जिसका भुगतान पति द्वारा किया जाता है, उस स्थान के रजिस्ट्रार के पास भेजता है, जहां ऐसे विवाह को विधिवत् रूप से संपादित किया जाता है। यदि कोई पादरी जानबूझकर तथा स्वैच्छा से इन शर्तों के विपरीत किसी विवाह करार को संपादित कराता है तो उसे साधार जेल से छह महीने की कैद हो सकती है या उसे जुर्माना देना पड़ सकता है या दोनों दंड दिए जा सकते हैं।

इस अधिनियम में तलाक के लिए दस स्थितियां निर्धारित की गई हैं : ये स्थितियां हैं-

(क) विवाह की गैर-संपूर्णता (non-consummation);

(ख) अस्वस्थ दिमाग;

(ग) यदि दुल्हन विवाह के समय गर्भवती है;

(घ) परस्त्रीगमन, बलात्कार या अप्राकृतिक अपराध किया गया हो;

(ङ) क्रूरता या निर्दयता;

(च) यौन रोग से संक्रमित या एक-दूसरे को गंभीर रूप से आहत करना;

(छ) सात साल की कैद;

(ज) दो वर्ष के लिए लापता होना;

(झ) एक-दूसरे से अलग रहना और कोई वैवाहिक अंतरसंबंध न होना; एवं

(ञ) किसी अन्य धर्म में परिवर्तित होना। 1988 में इस नियम में एक और स्थिति को शामिल किया गया है अर्थात् आपसी सहमति से तलाक। यदि संविदागत पक्ष एक या अधिक वर्षों से एक-दूसरे से अलग रच रहे हैं और उनके लिए एक-दूसरे के साथ रहना संभव नहीं है तो और वे आपसी रूप से सहमत है कि इस विवाह को समाप्त कर देना चाहिए तो न्यायालय ऐसी स्थिति में तलाक दे देता है।

न्यायालयों का न्यायाधिकार-

पारसियों के विवाह संबंधी विवादों को निपटाने के लिए पृथक न्यायालयों का भी गठन किया गया है। मुंबई, चेन्नई तथा कोलकाता के प्रत्येक उपनिवेशक नगरों के उच्च न्यायालयों में पारसी मुख्य वैवाधिक न्यायालयों की स्थापना की गई है। इन मुख्य वैवाहिक न्यायालयों को पांच पारसी

शिष्टमंडलों द्वारा सहयोग प्रदान किया जाता है, जो शहर के स्थानीय निवासी है और वे पारसी वैवाहिक विवादों पर अपने विचारों को अभिव्यक्त करना चाहते हैं। इन शिष्टमंडलों की नियुक्ति राज्य सरकार द्वारा की जाती है। इसी प्रकार, पारसी वैवाहिक न्यायालयों का गठन उपनिवेशक शहर से भिन्न स्थानों पर भी किया जाता है और इन न्यायालयों को पारसी जिला वैवाहिक न्यायालय कहते हैं।

दत्तक ग्रहण पर कानून

विधान द्वारा पारसी दत्तक ग्रहण के संबंध में कोई विशेष कानून पारित नहीं किया गया है, केवल पारसी निर्वसीयत जायदाय अधिनियम, 1865 में इस संबंध में प्रावधान है, जिसमें एक दत्तक ग्रहण को पारसी उत्तराधिकारी के रूप में मान्यता प्रदान की गई है। इसलिए, पारसी दंपत्ति, जो किसी बच्चे को गोद लेना चाहते हैं, वे धार्मिक प्रयोजनों के अतिरिक्त किसी अन्य प्रयोजन के लिए ऐसा नहीं कर सकते हैं। न्यायालय ने धार्मिक प्रयोजनों (जहांगीर दाराभोय बनाम कैखुशूरी कवाशा) के लिए दत्तक ग्रहण अर्थात पालक के परंपरागत रीति को स्वीकार किया है। बहरहाल, बच्चे को दत्तक ग्रहण करने के इच्छुक पारसी दंपत्ति एक नए विधान यथा 'किशोर न्याय (शिशु देख-रेख एवं संरक्षण) अधिनियम, 2000 के अंतर्गत ऐसा कर सकते हैं।

उत्तराधिकार पर कानून-

पारसी उत्तराधिकार से संबंधित मुद्दों के लिए भारतीय उत्तराधिकार अधिनियम, 1925 में प्रावधान उपलब्ध है। इस अधिनियम के पारित होने से पूर्व, पारसी निर्वसीयत अधिनियम, 1865 इन मुद्दों का निपटारा करता था। अब, भारतीय उत्तराधिकार अधिनियम, 1925 में एक पृथक् अभ्यास III है, जो पारसी निर्वसीयत उत्तराधिकार से संबंधित है। निर्वसीयत उत्तराधिकार से तात्पर्य उस उत्तराधिकार से है, जहां मृत व्यक्ति अपनी मृत्यु से पूर्व अपनी वसीयत करके नहीं गया है।

4.2.3. यहूदी कानून में विधान तथा न्यायिक पूर्व-निर्णय की भूमिका

विवाह पर कानून तथा इसकी विधायी समीक्षा

भारत में यहूदियों में विवाहों के लिए कोई विशिष्ट विधान नहीं है, इसलिए इस संबंध में विधान की भूमिका सापेक्ष रूप से महत्वपूर्ण नहीं है। ईसाइयों, पारसियों और हिंदुओं के मामलों के विपरीत, किसी प्रकार के वैवाहिक राहत, जैसे तलाक तथा संभरण के लिए कोई विधिक प्रावधान नहीं है। बहरहाल, भारत में लंबे समय से यहूदियों के कानून के निर्माण में न्यायिक पूर्व-निर्णयों ने महत्वपूर्ण भूमिका अदा की है। इस भाग में हम भारत में यहूदी कानून को आकार प्रदान करने में न्यायिक पूर्व-निर्णय की भूमिका पर पूर्णत: ध्यान केंद्रित करेंगे।

भारत में यहूदी कानून के विमास में बॉम्बे उच्च न्यायालय ने प्रमुख भूमिका अदा की है। उदाहरण के लिए इस न्यायालय ने यह नियम निर्धारित किया है कि एक यहूदी विवाह की प्रकृति तथा गिराव और वैवाहिक राहत जिसके लिए यहूदी पति या पत्नी पात्र हैं, को निर्धारण व्यक्तिगत कानूनों द्वारा किया जाएगा (मोजेले रॉबिन सोलोमन बनाम लेफ्टिनेंट कर्नल आर.जे. सोलोमन)। वैवाहिक विवाद जैसे तलाक लेना आदि न्यायालय द्वारा भी निपटाए जा सकते हैं। ऐसे मामलों में अनुप्रयुक्त किए जाने वाला कानून यहूदी कानून है, अपेक्षित न्याय के अनुसार

मामले की परिस्थितियों में अनुकूलनों सहित। किसी प्रकार के विवाद की सीिति में, किसी भी नियम के अंतर्गत निर्णय देने से पूर्व यहूदी समुदाय के रीति-रिवाजों पर विचार किया जाता है (रेचल बेंजमिन बनाम बेंजमिन सोलेमन बेंजमिन)।

यहूदी रीति-रिवाजों में से एक को मान्यता प्रदान करते हुए बॉम्बे उच्च न्यायालय ने निर्णय दिया कि जहां एक यहूदी लड़की (बगदादी यहूदी) सगाई की विधि को पूरा करती है, जिसे कसेप किद्दुशिम कहते हैं (यह विवाह के दो चरणों में से एक है और दूसरा चरण चुप्पाह है) तो, वह लड़की इस सगाई को तोड़ने के लिए पात्र है, यदि लड़का या दूल्हा सगाई की शर्तों को पूरा नहीं करता है। यहूदियों में सगाई की विधि विवाहित स्थिति के कुछ अधिकारों तथा दायित्वों की पुष्टि करती है। जब शर्तों को पूरा न किए जाने के कारण सगाई टूट जाती है तो कसेप किद्दुशिम को तोड़ने के लिए तलाक का बिल निष्पादित करने की आवश्यकता नहीं होती है (डेविड सेमसन एजिकील बनाम नाजिया नूरी रूबेन)। लड़की पहले लड़के, जिसके साथ उसने सगाई की थी, से तलाक का बिल प्राप्त किए बिना किसी दूसरी यहूदी लड़के से विवाह कर सकती है।

तलाक के एक रोचक मामले में, ये यहूदी पति ने दो कारणों से अपनी पत्नी से तलाक लेने के लिए बॉम्बे उच्च न्यायालय में याचिका दायर की : (क) पूरे एक वर्ष के लिए दांपत्य संबंधों से निरंतर इनकार करना और (ख) पति की उपस्थिति में उसके माता-पिता का निरादर करना और पति का भी निरादर करना। चूंकि पति द्वारा मांगे गए तलाक के संबंध में लागू सटीक कानून के विषय में कुछ अनिश्चितता थी, इसलिए न्यायालय ने प्राचीन और आधुनिक काल में विवाह और इंग्लैंड और अमरीका में प्रयोग हो रहे परंपरागत विधि का संदर्भ लिया। आधुनिक समय में तलाक की इन स्थितियों को (क) परित्याग (Desertion) और (ख) निर्दयता (Cruelty) कहते हैं। इस मामले में, न्यायालय ने पाया कि पति ने सहवास न करने के लिए जानबूझकर न करने से इनकार नहीं किया है, क्योंकि सहवास करने से पूर्व और पश्चात का समय कथित नहीं है, यह पाया गया कि दोनों के बीच में सहवास हुआ था। दूसरे आधार में भी, न्यायालय ने पाया कि लड़की ने अपने ससुर का निरादर नहीं किया है, बल्कि वह केवल अपने विचार प्रस्तुत करना चाहती थी। जब पति ने अपने ससुर और पति के सामने अपने विचार प्रस्तुत किए तो यह निर्दयता नहीं हो सकती है (बेंशन जोसेफ हेइमा बनाम शेरोन बेंशन हेइमा)।

वसीयतनामे पर कानून

न्यायालय ने 'वसीयतनामे' के संबंध में भी यहूदी कानून की जांच की है, जिसका तहत एक व्यक्ति अपनी संपत्ति अपनी इच्छा अनुसार किसी अन्य को हस्तांतरित कर सकता है। इस संबंध में यह निर्णय दिया गया था कि मौजूदा तथा अपने-अपने अधिकार क्षेत्र में उपहार या वसीयत के विषय-वस्तु को परिभाषित किया जाना चाहिए। किसी अनिश्चित या भावी संपत्ति को उपहार या वसीयत को वैध रूप में स्वीकार नहीं किया जा सकता है। उदाहरण के लिए, साझेदारी संपत्ति का भाग अनिश्चित है। किसी व्यवहार को पूरा करने के लिए वसीयत वाले अभिलेख की सुपुर्दगी ग्रहीता को किया जाना अनिवार्य है। वसीयत को ग्रहीता या रिक्थग्राही या उसके कुछ एजेंसों के समझा, पढ़ा या उसकी विषय-वस्तु का वर्णन किया जाना चाहिए। यदि इनमें से किसी भी अनिवार्य अपेक्षा का अनुपालन या अवलोकन नहीं किया जाता है तो न्यायालय द्वारा वसीयतनों में को लागू नहीं किया जा सकता है (मेनेम मेशा बनाम मेनेम मिस्सा)।

क्रियाकलाप 4.2

1. ईसाई, पारसी और यहूदी धर्म से संबंधित नियमों और अधिनियमों का एक छोटा संचयन तैयार करें।
2. भारत के विभिन्न उच्च न्यायालयों की बेवसाइटों को देखें और उनमें ईसाई, पारसी तथा यहूदी धर्म के वैवाहिक विषयों पर न्यायालय के निर्णयों का पता लगाएं।

पाठगत प्रश्न 4.2

1. ईसाई तथा यहूदी व्यक्तिगत कानून को विनियमित करने के लिए भारतीय संसद द्वारा निर्मित मुख्य विधान क्या हैं?
2. पारसी कानून से संबंधित विधान के निर्माण के महत्व की चर्चा करें।
3. भारत में पारसियों और यहूदियों के व्यक्तिगत कानून के निर्माण में न्यायिक 'पूर्व-निर्णय' किस प्रकार सहायक हैं।
4. क्या आप सोचते हैं कि कानून प्रणाली में विधान तथा न्यायिक 'पूर्व-निर्णय' की महत्वपूर्ण भूमिका है और यदि हां तो क्यों?

रिक्त स्थान भरें-

1. भारतीय ईसाई विवाह अधिनियम को वर्ष .... में संहिताबद्ध किया गया था। (1872/ 1876/ 1878)
2. ईसाई तलाक पर कानून को 'तलाक अधिनियम ....' के नाम से संहिताबद्ध किया गया था।

सही/ गलत बताइए-

3. भारतीय उत्तराधिकारी अधिनियम, 1925 ईसाइयों और पारसियों की अचल संपत्ति के निर्वसीयता तथा वसीयती उत्तराधिकार को शासित करता है। (सही/गलत)
4. 'न्यायिक पूर्व-निर्णय' ने भारत में पारसियों और यहूदियों के व्यक्तिगत कानून के निर्माण में सहयोग प्रदान किया है। (सही/गलत)

4.3. मिश्रित कानून प्रणाली

'मिश्रित कानून प्रणाली' की परंपरागत अवधारणा एक से अधिक कानूनी प्रणालियों का मिश्रण है। अन्य शब्दों में, यदि एक कानूनी प्रणाली को 'मिश्रित कानून प्रणाली' कहा जाता है तो उसमें समान कानून प्रणाली होगी और साथ-ही-साथ सिविल कानून प्रणाली या समाजवादी कानून प्रणाली, परंपरागत कानून प्रणाली या धार्मिक कानून प्रणाली शामिल होगी। विश्वभर में विद्यमान कानून प्रणालियों में धार्मिक कानून, स्वदेशी रीति-रिवाजों, व्यापार कानून, धर्मवैधानिक कानून,

रोमन कानून तथा न्यायाधीशों द्वारा निर्मित कानून (पूर्व-निर्णय) शामिल हैं। उदाहरण के लिए सिचिलीज, दक्षिण अफ्रीका, लाइसियाना (यू.एस. में), फिलिपींस, ग्रीस, कनाडा में क्यूबेक पेर्टो रिको, स्कॉटलैंड तथा भारत आदि देशों में 'मिश्रित कानून प्रणाली' का अनुसरण किया जाता है, क्योंकि इन देशों की समग्र कानून प्रणाली में एक से अधिक मुख्य कानून प्रणालियां विद्यमान हैं। अंतर्राष्टीय कानून प्रणाली को भी 'मिश्रित कानून प्रणाली' कहा जा सकता है, क्योंकि आप इसमें समान कानून के साथ-साथ सिविल कानून सिद्धांतों को भी पाएंगे। हम इस बात की सराहना कर सकते हैं कि एशिया और अफ्रीका तथा अन्य इस्लामिक देशों में परंपरागत कानून के शक्तिशाली तत्व अभी विद्यमान हैं और इन्हें विविध स्तरों में देखा जा सकता है। कई बार, आप 'मिक्सड कानून प्रणाली' का नाम भी सुनते हैं और यह मिश्रित कानून प्रणाली को ही प्रदर्शित करता है।

आप यह सोचते होंगे कि एक प्रणाली को मिश्रित बनाने के लिए किसी मात्रा में अनुपात की आवश्यकता होती है, क्योंकि मिश्रण (Hybrid) से तात्पर्य दो या अधिक भिन्न किस्मों या आनुवांशिक पदार्थों का मिश्रण है। कानून में भी, आप इसे प्रयोग कर सकते हैं। किंतु यहां सटीक ब्यौरे के साथ वास्तविक मात्रा का निर्धारण नहीं किया जा सकता है। उदाहरण के लिए यूनाइटेड स्टेट्स में टेक्सास, कैलिफोर्निया तथा लुइसियाना राज्य हैं। टेक्सास और कैलिफोर्निया में उनकी विधिक प्रणालियों में 'कुछ' सिविल कानून हैं, जबकि लुइसियाना में सिविल कानून की मात्रा अधिक है। भारत में, यदि आप गहन अवलोकन करें तो पाएंगे कि यहां सामान्य कानून का अनुसरण किया जाता है, क्योंकि हमारे यहां न्यायिक पूर्व-निर्णय और जन-याचिकाओं की प्रणाली विद्यमान है। क्या यह तथ्यात्मक सत्य नहीं है कि हमारे यहां अनेक जांच आयोग, प्रशासनिक अधिकरण (सिविल कानून की विशेषताएं), हिंदू, मुस्लिम, यहूदी तथा पारसी धर्म के परंपरागत, व्यक्तिगत कानून तथा हमारे संविधान में राज्य-नीति के निर्देशक सिद्धांतों में 'समाजवादी कानून' विद्यमान हैं।

'मिश्रित कानून प्रणाली' की उत्पत्ति अपनी स्वयं की भाषा, धर्म, ऐतिहासिक अनुभवों और कम-से-कम अपने कानूनों तथा रीति-रिवाजों को बचाने के लिए की गई। इस दृष्टिकोण को अपनाने से अपनी मौलिक कानून प्रणाली को बचाया जा सकता है, जिसमें राजनीतिक नेतृत्व की महत्वपूर्ण भूमिका है। वह इस विचारधारा की लागतों और लाभों पर विचार कर सकता है। एक समूह जो अपने मौलिक कानून प्रणाली को सरंक्षित रखना चाहता है और दूसरा समूह, जो यथावत स्थिति को बनाए रखने का प्रयास कर रहा है, के बीच शक्ति के राजनीतिक प्रदर्शन में जीत चाहे किसी की भी हो, इसमें 'मिश्रित कानून प्रणाली' के निर्माण के प्रभाव पड़ेगा। उदाहरण के लिए, ब्वेबेक के फ्रैंच कनैडियन कनाडा राज्य के ऊपर निर्णयज कानून की अनुमति नहीं देते हैं और इसीलिए कनाडा के भीतर भी, आप 'सिविल कानून प्रणाली' पाएंगे। भारत, पाकिस्तान और बांग्लादेश अपने उपनिवेशीय साम्राज्य से सामान्य कानून की विरासत प्राप्त हुई है। बहरहाल, भारत में विकास जैसे ग्राम न्यायालयों (स्थानीय कानून प्रणाली, जिसे अब कानून व्यवस्था द्वारा अब मान्यता प्रदान की गई है), 'लोक अदालत' (लंबे समय से गुजरात में अनुसरण की जा रही स्थानीय विधि और जिसे अब कानून द्वारा मान्यता प्रदान की गई है), प्रशासनिक अधिकरण, विभिन्न धर्मों के वैवाहिक न्यायालयों ने स्थानीय तथा सिविल कानून प्रणालियों की प्रभावपूर्णता और स्वीकार्यता को स्थापित किया है।

पाठगत प्रश्न 4.3

1. मिश्रित कानून प्रणाली की मुख्य विशेषताएं क्या हैं?
2. कुछ देशों के नाम बताएं जो 'मिश्रित कानून प्रणाली' का अनुसरण कर रहे हैं।
3. क्या आपको लगता है कि अंतर्राष्ट्रीय कानून प्रणाली और यूरोपीय संघ की कानून प्रणाली 'मिश्रित कानून प्रणाली' का अनुसरण करते हैं? दो कारण प्रस्तुत करें।

सही/ गलत बताइए

4. भारत, पाकिस्तान और बांग्लादेश अपने उपनिवेशीय साम्राज्य से सामान्य कानून की विरासत प्राप्त हुई है। (सही/ गलत)
5. 'मिश्रित कानून प्रणाली' वह है, जिसमें एक से अधिक कानून प्रणालियां विद्यमान होती हैं। (सही/ गलत)
6. 'मिक्सड कानून प्रणाली' शब्दों का प्रयोग, 'मिश्रित कानून प्रणाली' के लिए किया जाता है। (सही/ गलत)

आपने क्या सीखा

- भारत में ईसाइयों, पारसियों और यहूदियों द्वारा बड़े लंबे समय से परंपरागत नियमों का अनुसरण किया जा रहा है। इनमें से अनेक नियमों को केंद्र/ राज्य विधानमंडल द्वारा पारित विधानों में शामिल किया गया है या न्यायालयों द्वारा मान्यता प्रदान की गई है।
- भारत में यहूदी अपने स्वयं के परंपरागत नियमों द्वारा शासित हैं, क्योंकि परिवार तथा वैवाहिक संबंधी के मुद्दों पर उनके लिए कोई विधान नहीं है। तथापि, न्यायपालिका ने उनके धार्मिक और नैतिक पाठों में समाविष्ट उनके अनेक परंपरागत नियमों को मान्यता प्रदान की है।
- ईसाई और पारसी धर्म में व्यक्तिगत कानूनों से संबंधित विधानों के कुछ उदाहरण हैं :

  (क) भारतीय ईसाई विवाह अधिनियम, 1872;

  (ख) भारतीय उत्तराधिकारी अधिनियम, 1925;

  (ग) पारसी विवाह और तलाक अधिनियम, 1936;

  (घ) भारतीय तलाक अधिनियम, 1869
- 'मिश्रित कानून प्रणाली' में एक से अधिक कानून प्रणलियों का मिश्रण है। वर्तमान समय में, विश्व में कोई भी कानून प्रणाली ऐसी नहीं है, जो एक प्रकार की कानून प्रणाली से बनी हो और इस संबंध में भारत कोई अपवाद नहीं है।

पाठांत प्रश्न

1. ईसाइयों, पारसियों और यहूदियों के व्यक्तिगत कानून में 'रीति-रिवाजों' की भूमिका पर चर्चा करें। क्या आपको लगता है कि रीति-रिवाज उनके जीवन में किसी प्रकार भी भूमिका अदा नहीं करते हैं।
2. ईसाइयों और पारसियों के व्यक्तिगत कानून पर विधान की कुछ मुख्य विशेषताओं का वर्णन करें।
3. 'मिश्रित कानून प्रणाली' विश्व की अन्य कानून प्रणालियों से किस प्रकार भिन्न हैं?
4. ईसाइयों, पारसियों और यहूदियों के परंपरागत नियमों को मान्यता प्रदान करने में न्यायालयों की भूमिका का आकलन करें।
5. कॉलम 'क' में दिए गए विधानों और रीति-रिवाजों को कॉलम 'ख' के अनुप्रयोगों के साथ मिलाएं :

(क)	(ख)
(क) भारतीय उत्तराधिकार अधिनियम, 1925	पारसी
(ख) आशीर्वाद समारोह	यहूदी
(ग) कसेफ किद्दुसिम	ईसाई
(घ) भारतीय तलाक अधिनियम, 1869	ईसाई तथा पारसी

परियोजना

अपने जिला का सर्वेक्षण करें और ईसाई, पारसी तथा यहूदी समुदाय के 3-5 लोगों की पहचान कीजिए। यदि आपको अपने जिला नगर में कोई पारसी या यहूदी नहीं मिलता है तो चिंता न करें। किंतु आपको अवश्य ही कुछ ईसाई लोग मिल जाएंगे। उनसे उनके परंपरागत नियमों के विषय में जानने का प्रयास करें, जिनका अनुसरण वे लंबे समय से कर रहे हैं और विधानों और न्यायालयों द्वारा उन्हें मान्यता प्रदान की गई है।

क्र.स.	व्यक्ति का नाम	उनके द्वारा अनुसरण किए जाने वाले रीति-रिवाज	विधान/न्यायपालिका द्वारा मान्यता प्रदान किए गए नियम
1			
2			
3			
4			
5			

पाठगत प्रश्नों के उत्तर

4.1

1. भारत में ईसाईयों के रीति-रिवाज हैं :

   (क) अवयस्क विवाह नहीं कर सकते हैं;

   (ख) विवाह के दोनों पक्षों को संबंधों के स्तर को प्रतिबंधित करते हुए विवाह के परिणामों का ज्ञान होना चाहिए;

   (ग) रेखीय ज्येष्ठाधिकार का नियम; और

   (घ) केरल के सीरियन ईसाइयों द्वारा दामाद को दत्तक लेना।

2. पारसियों ने भारत की स्थानीय परंपराओं को अपना लिया है, क्योंकि :

   (क) उनके पहले बार भारत आने पर उन्हें इस शर्त के साथ यहां रुकने की अनुमति प्रदान की गई थी कि वे भारत के उस स्थान की परंपराओं का अनुसरण करेंगे, जहां वे रहने लगे हैं।

   (ख) वे अस्थायी अप्रवासी नहीं थे, किंतु वे अपने देश में धार्मिक उत्पीड़न का शिकार होने के कारण यहां आए थे। इसलिए लंबे समय के लिए यहां रहने और यहां के स्थानीय रीति-रिवाजों को आदर प्रदान करने के लिए उन्होंने इन रीति-रिवाजों को अपनाया।

3. भारत में यहूदियों के वैवाहिक रीति-रिवाज हैं :

   (क) विवाह को एक सिविल करार माना गया है और साथ ही साथ कुछ दायित्वों के निर्वाहन के लिए सामाजिक प्रतिबद्धता भी।

   (ख) सगाई और विवाहित महिला दो भिन्न चरण है और एक-दूसरे का अर्थ भी भिन्न है।

   (ग) तलाक चार प्रकार के होते हैं; और

   (घ) विवाह के लिए मात्र दोनों पक्षों की सहमति पर्याप्त नहीं है, कुछ कानूनी औपचारिकताएं भी पूरी करनी होती हैं, जैसे कसेप किद्दुशिम।

4. **रिक्त स्थान भरें**

1. रीति-रिवाज
2. हिंदू
3. दत्तक ग्रहण

4.2

1. ईसाइयों और यहूदियों के व्यक्तिगत कानून को विनियमित करने के लिए भारतीय संसद द्वारा तैयार मुख्य विधान हैं :

   (क) भारतीय ईसाई विवाह अधिनियम, 1872;

(ख) तलाक अधिनियम, 1869;

(ग) किशोर न्याय (बाल देख-रेख तथा संरक्षण) अधिनियम, 2006;

(घ) भारतीय उत्तराधिकार अधिनियम, 1925;

(ड़) पारसी विवाह और तलाक अधिनियम, 1936; और

(च) पारसी निर्वसीयत उत्तराधिकार अधिनियम, 1865

2. पारसियों के लिए उनके व्यक्तिगत कानून के आधार पर तैयार विधानों की जांच करने के पश्चात यह कहा जा सकता है कि :

(क) विधान ने पारसियों के अस्पष्ट परंपरागत नियमों को वर्गीकृत किया है;

(ख) सभी नियमों को एक ही स्थान पर संहिताबद्ध किया गया है और अब नियमों का पता लगाना आसान है;

(ग) विधान प्राधिकारात्मक हैं और यह सभी पारसियों के लिए बाध्यकारी हैं;

(घ) यदि कोई पारसी विधान का अनुपालन नहीं करता है तो उसे दंड दिया जा सकता है।

3. भारत में पारसियों और यहूदियों के व्यक्तिगत कानून को न्यायिक पूर्व-निर्णयों द्वारा निम्नानुसार तैयार किया गया है :

(क) न्यायपालिका ने यह मान्यता दी है कि एक पारसी माता और गैर-पारसी पिता का बच्चा पारसी होगा।

(ख) पारसियों द्वारा दत्तक ग्रहण की परंपरागत विधि को न्यायालय ने स्वीकार किया है;

(ग) यहूदियों द्वारा संपत्ति के उपहार को वसीयत के रूप में मान्यता प्रदान की गई है;

(घ) जहां अपनी शर्तों को पूरा न करने के कारण सगाई अमान्य हो जाती हैं, वहां 'कसेप कुद्दुशिम' के प्रभाव को समाप्त करने के लिए तलाक का बिल निष्पादित करने की आवश्यकता नहीं होती है।

4. जी हां, मुझे लगता है कि न्यायिक प्रणाली में विधान तथा न्यायिक पूर्व-निर्णयों की महत्वपूर्ण भूमिका है, क्योंकि :

(क) यदि विधान नहीं होता तो न्यायालय को इन नियमों का लागू करने में कठिनाई होती;

(ख) साधारण व्यक्ति के लिए न्यायालय में परंपरागत नियमों को सिद्ध करना कठिन होता;

(ग) न्यायिक पूर्व-निर्णय भविष्य में समान प्रकार के मामलों में कानून बनाने का कार्य करते हैं।

5. **रिक्त स्थान भरें**

1. 1872
2. 1869
3. सही
4. सही

4.3

1. मिश्रित कानून प्रणाली की मुख्य विशेषताएं हैं-
   (क) एक से अधिक कानूनी प्रणालियों की उपस्थिति;
   (ख) विभिन्न कानूनी प्रणालियों के मिश्रण के अनुपात का निर्धारण नहीं किया जा सकता है; और
   (ग) यह स्थानीय कानून प्रणाली को संरक्षित रखता है।
2. मिश्रित कानून प्रणाली का अनुसरण निम्नलिखित देशों द्वारा किया जा रहा है-
   (क) सिचिलीज
   (ख) दक्षिण अफ्रीका
   (ग) फिलिपींस
   (घ) ग्रीस और
   (ङ) भारत
3. जी हां। अंतर्राष्ट्रीय कानून प्रणाली और यूरोपीय संघ द्वारा 'मिश्रित कानून प्रणाली' का अनुसरण किया जा रहा है-
   (क) इनमें कानून प्रणाली की एक से अधिक विधियां कार्य कर रही हैं; और
   (ख) ये दोनों प्रणालियां विभिन्न लोगों और संस्कृतियों से तैयार हुई हैं, इसलिए इनके पारंपरिक कानूनी प्रणालियों को विधिवत रूप से स्थान तथा मान्यता प्रदान की गई है।
4. सही
5. सही
6. सही

मॉड्यूल 2
कानून की अवधारणा

अध्याय 5 कानून और सामाजिक नियंत्रण के नियामक कार्य

अध्याय 6 नैसर्गिक न्याय के सिद्धांत

अध्याय 7 कानून की प्रविधियां और उपचार- I

अध्याय 8 कानून की प्रविधियां एवं उपचार- II

5

कानून और सामाजिक नियंत्रण के नियामक कार्य

इस अध्याय में हम विभिन्न प्रकार के सामान्य नियमों तथा मानकों से परिचित होंगे, जो समाज को एक क्रम में रखने में सहायक होते हैं। आपको अपनी रोजमर्रा की जिंदगी में ऐसे कई उदाहरण मिलेंगे। ऐसे नियम और मानक, समाज को एक शृंखला में बांधे रखते हैं। उदाहरण के लिए, यदि हम क्रिकेट, फुटबॉल, हॉकी, टेबल टेनिस जैसे खेलों की बात करें तो देखेंगे कि इन खेलों के कुछ नीति-नियम हैं, जिनका पालन हर खिलाड़ी करता है, वैसे ही आपके परिवार या स्कूल में अपने बड़े या छोटों से व्यवहार करने के कुछ नियम होते हैं, जैसे-समय पर स्कूल आना, कक्षा में उपस्थित होना। वृहत स्तर पर कहें तो विवाह, दत्तक- ग्रहण एवं उत्तराधिकार तथा वाणिज्य-व्यापार के भी नियम हैं। ये नियम या कानून नैतिकता, रीति-रिवाजों, जनमत आदि पर आधारित हैं। आधुनिक युग में लोगों के बीच संबंध स्थापन के क्षेत्र में कानून महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है। हालांकि ज्यादातर कानून, नैतिकता, रीति-रिवाजों और जनमत आदि पर आधारित है। जो कानून इन पर आधारित नहीं है, जनता के प्रतिरोध के शिकार है और ज्यादा देर तक नहीं टिकते।

उद्देश्य

इस पाठ के अध्ययन के पश्चात् आप-

- 'मानकों' की परिभाषा कर पाएंगे,
- कानूनी 'मानकों' और अन्य मानकों में भेद स्पष्ट कर पाएंगे।
- सामाजिक व्यवस्था बनाए रखने में 'मानकों' की भूमिका का मूल्यांकन कर पाएंगे,
- सामाजिक नियंत्रण के संदर्भ में कानून की भूमिका को समझ पाएंगे,
- वैकल्पिक विवाद निवारण या समाधान को परिभाषित कर पाएंगे,
- वैकल्पिक विवाद निवारण के विभिन्न प्रकारों का वर्णन कर पाएंगे,
- विवादों को निपटाने में लोक अदालतों की भूमिका को समझ पाएंगे एवं

- समाज में सामाजिक-आर्थिक परिवर्तन लाने में उच्चतम न्यायालय की भूमिका का उल्लेख कर पाएंगे।

5.1 मानकों की धारणा या अर्थ

सामाजिक मानक समाज की वे धारणाएं हैं जो यह बताती हैं कि विशेष संदर्भ में सदस्यों का व्यवहार कैसा होना चाहिए। जिसमें किसी विशेष संदर्भ में सदस्यों का आपसी व्यवहार भी है। समाजशास्त्रियों ने मानकों को अनौपचारिक समझौता माना है, जो समाज के व्यवहार को नियन्त्रित करता है।

सहज रूप से कहें तो 'मानक' शब्द समाज द्वारा अपनाए गए एक आदर्श व्यवहार को व्यक्त करता है। ये 'मानक' सामाजिक व्यवस्था को बनाए रखने में आवश्यक माने जाते है। मानक बनाने वाली अनेक संस्थाएं हैं। उनमें कुछ धर्म, नैतिकता के मापदण्ड, रीति-रिवाज तथा कानून है।

पुरातन काल में समाज को परिचालित करने में धर्म महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहा था। धर्म और कानून में कोई भेद नहीं समझा जाता था। बाद में 'मानकों' को बनाने में बहुत सारी संस्थाएं अस्तित्व में आई।

हर समाज कुछ मात्रा में अपने नागरिकों पर सामाजिक नियंत्रण बनाए रखता है। वे औपचारिक और अनौपचारिक रूप में व्यवहार पर नजर रखते हैं और नियंत्रित करते हैं। बड़े स्तर के समाजों में कानून, अदालत, पुलिस ज्यादातर नजर आने वाले तंत्र हैं। हालांकि कानून सामाजिक नियंत्रण का केवल एक पहलू है और साधारणतः सामान्य प्रभावी तत्व है। छोटे स्तर के समाज, कानूनी संस्थाओं के झमेलों में न पड़कर खुद सामाजिक नियंत्रण बनाए रखते हैं, जिससे हम सभी परिचित हैं, लेकिन इसका मतलब यह नहीं कि वे विधि के अंतर्गत नहीं आते।

सामाजिक प्रक्रिया के सामाजिक नियंत्रण को समझने के लिए पहले तो समाज आधारित मानकों को समझना है। समाज में ये सब सामान्य विचार का सकेंद्रण और संभावित व्यवहार है। समयानुसार मानकों में परिवर्तन होता है। पारंपरिक समाज में मानकों में बहुत ही धीरे परिवर्तन लक्षित होता है। वृहत एवं बहु-जातीय समाजों में मानकों में शीघ्रता से परिवर्तन होता है।

प्रायः समाज के मानक बदलतें रहते हैं। किन्तु उनसे सम्बंधित कानूनों का इनके अनुरूप बनने में समय लगता है। समाज पर प्रभावी नियंत्रण कानूनों, पुलिस तथा जेलों द्वारा नहीं रखा जाता अपितु समाज के सदस्यों द्वारा नैतिक आचार संहिता का बोध होने और मानने से होता है।

पाठगन प्रश्न 5.1

1. 'मानकों' को परिभाषित करें?
2. दो 'मानकों' का उल्लेख करें, जो सामाजिक व्यवहार को नियंत्रित करते हैं।

5.2 सामाजिक व्यवस्था को बनाए रखने में 'मानकों' की भूमिका

सामाजिक व्यवस्था को बनाए रखने में 'मानकों' की महत्वपूर्ण भूमिका है। हम देखेंगे कि जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में हमारे व्यवहार को नियंत्रण करने के लिए कुछ मानक होते हैं। उदाहरण के

तौर पर, व्यक्तियों के बीच आपसी रिश्ता बनाए रखने के लिए कुछ नैतिक मानक या मापदंड हैं। जैसे- झूठ न बोलना, मुश्किलों में एक-दूसरे की मदद करना आदि। वैसे ही, विवाह, दत्तक-ग्रहण आदि के संबंध में हर समाज के अपने-अपने सामाजिक मानक होते हैं। वैसे ही किसी विशेष व्यापार या कारोबार को परिचालित करने के लिए अपनी-अपनी पद्धति है। इसके अलावा कानून ने भी कुछ मानक बनाए हैं। आधुनिक युग में मानक बनाने के क्षेत्र में कानून की भूमिका दिन-प्रतिदिन बढ़ती जा रही है। हालांकि आज यह देख सकते हैं कि कानून संबंधित ज्यादातर मानक समाज के विभिन्न क्षेत्रों से जैसे- सामाजिक, नैतिक, व्यापार, व्यवसाय और कारोबार आदि के व्यवहार एवं मानदण्डों पर आधारित है। यह देखा गया है कि ऊपर उल्लिखित मानकों पर आधारित कानूनी मानकों को ज्यादातर व्यवहार में समाज द्वारा अपनाया जाता है। कभी-कभी कानून समाज में प्रचालित इन नैतिक-सामाजिक मानकों में हस्तक्षेप करके कुछ नये मानक बनाता है। दहेज-प्रथा, अछूत और सती-प्रथा इसके उदाहरण हैं।

पाठगत प्रश्न 5.2

सही/गलत लिखे

1. सामाजिक व्यवस्था बनाए रखने में 'मानकों' की महत्वपूर्ण भूमिका है (सही/ गलत)

2. कानून भी 'मानक' बनाता है। (सही/ गलत)

3. आधुनिक युग में 'मानक' बनाने में कानून की भूमिका दिन-प्रतिदिन बढ़ती जा रही है। (सही/ गलत)

5.3 सामाजिक नियंत्रण में कानून की भूमिका

संविधान का सामाजिक-आर्थिक लक्ष्य

भारत की आजादी ने एक नए युग की शुरूआत की। संविधान ने कुछ लक्ष्य निर्धारित किये हैं और बुनियादी सिद्धान्तों को संविधान में शामिल किया गया जिन्हें प्राप्त करने के लिए राष्ट्र प्रतिबद्ध है। सामाजिक-आर्थिक लक्ष्य और हमारे राष्ट्र का मूलभूत आस्थाओं को संविधान में सम्मिलित किया गया है। इसने कानून को यह दायित्व या कार्य सोंपा है कि वह वर्तमान कानून-प्रणाली में समय अनुसार परिवर्तन लाएं जो लोगों की आवश्यकताओं, कानून के ऐसे विकसित होते सिद्धान्तों, विधायी सूत्रीकरण तथा सांविधव्य संस्थाओं जो हमारे समय की आवश्यकताओं के अनुकूल हो तथा संविधान के लक्ष्यों को मूर्तिरूप दे सके। इस प्रकार संविधान द्वारा तय लक्ष्य सामाजिक-आर्थिक परिवर्तनों को आवश्यक बनाते हैं।

आजादी के संघर्ष के लक्ष्यों की पुन: प्राप्ती, हमारी जातीय पहचान का बोध, बुनयादी विश्वास, हमारा संघर्ष करने का जोश, हमारे दृढ़ संकल्प, जो पूर्णतया, प्रामाणिक, अधीर तथा साहसिक हैं, ही सामाजिक परिवर्तनों के पीछे प्रेरक शक्ति है। यह प्रबल बोध कि हम आजाद हैं और सामाजिक

न्याय के प्रति प्रतिबद्ध हैं, आज भी हमारी न्याय-प्रणाली को चला रहा है। राजनैतिक आजादी की घोषणा हमारे 'राष्ट्र' को मूर्त्त रूप देने जैसा है, आर्थिक आजादी के लिए आत्म-अभिव्यक्ति के लिए संविधान से लेकर व्यवहार में कानून तक अब भी संघर्ष चल रहा है।

भारतीय विधि-वेताओं से एक ऐसे शक्तिशाली सुनियोजित तथा व्यापक कानूनी विरोध, जो पांच-सितारा वैभव या सम्पन्नता, जनता की गरीबी तथा सामाजिक असमर्थता के विरूद्ध लड़ाई लड़ सके, की अपेक्षा है।

सामाजिक-आर्थिक परिवर्तन एवं भू-सम्पति सम्बन्धित कानून में विधायी सुधार

संविधान में किए गए मूल लक्ष्य को देखते हुए सामाजिक-आर्थिक परिवर्तन लाने में कानूनी प्रक्रिया की शुरूआत हुई। देश की अर्थनीति मूलतः कृषि पर आधारित है और यह सामाजिक ढांचा को परिचालित करती है। कृषिपयोगी जमीन पर बढ़ता दबाव, भू-स्वामित्व की एकाग्रता, कृषकों की दयनीय आर्थिक स्थिति और उनका शोषण, उत्पादों में वृद्धि की जरूरी आवश्यकता, कृषि प्रणालियों में आधुनिकीकरण और ब्याज के विविध स्रोत-ये सभी काश्तकारी और भू-सुधार कानून पर संचयी प्रभाव है। इसीलिए आजाद भारत का सारा ध्यान समय की जरूरतों को देखते हुए भूमि-कानूनों की पूरी तरह से जाँच को प्राथमिकता देना था। फलस्वरूप, हर राज्य में भू-सुधार कानून बनाए गए। भूमि की उच्चतम सीमा निश्चित की गई, भू-कर्जा माफ किया गया, कृषि के लिए आवश्यक कर्जा उपलब्ध कराया गया, कृषि की उन्नति के लिए तरह-तरह की परियोजनाएं, कार्यक्रमों और योजनाएं शुरू की गई। गांव की उन्नति के लिए ग्राम पंचायत शुरू की गई। साथ ही शिक्षा अभियान, कृषकों की हितों की सुरक्षा और घरेलू उद्यमों को बढ़ावा दिया गया।

5.3.1 श्रम नियम या मजदूरों से सम्बन्धित कानून

आजाद भारत में मजदूरों के हकों की सुरक्षा के लिए पहले के नियमों में परिवर्तन किए गए। प्रथम विश्वयुद्ध के समय इस तरह की कोई श्रम कानून नहीं था। 1919 ई. से 1939 ई. के बीच दूसरे विश्वयुद्ध के समय मजदूरों के हकों के लिए नियम बनाए गए। कुछ कानून दूसरे विश्व युद्ध के बाद और कुछ देश द्वारा राजनैतिक आजादी प्राप्त करने के बाद बनाए गए। किन्तु सामाजिक-आर्थिक सुधारों को देखते हुए यह पर्याप्त नहीं था। आजादी के बाद जो नए श्रम कानून बनाए गए, उसमें मजदूरों की सामाजिक और आर्थिक दशा सुधारने पर ध्यान दिया गया। नये श्रम कानून मुख्यतया श्रमिक वर्ग की भलाई के लिए बनाए गए हैं। जिनके द्वारा औद्योगिक शांति लाकर उत्पादन की गति बढ़ा कर देश में समृद्धि लाना है।

मुख्य न्यायाधीश गजेंद्रगडकर ने श्रम कानूनों को नयी समाजिक आवश्यकताओं के अनुसार ढालने की आवश्यकता पर जोर दिया। उन्होंने लिखाः

इस विषय में औद्योगिक विवाद अधिनियम, 1947 बहुत ही महत्वपूर्ण है। इसमें मजदूरी, भत्ता, बोनस समापन आदि के लिए नियम बनाए गए। हड़ताल, तालाबंदी के समय वेतन देने की व्यवस्था की गई। इसकी खातिर अनेक कानून बनाए गए, जैसे कि न्यूनतम मजदूरी अधिनियम 1948, राज्य कर्मचारी बीमा अधिनियम 1948, औद्योगिक विवाद (बैंकिंग और बीमा कंपनी) अधिनियम 1949, प्रशिक्षु अधिनियम 1961, मातृत्व लाभ अधिनियम 1961 इत्यादि। भारत में

श्रम-विधान जब उस सामाजिक एवं आर्थिक विधान का एक महत्वपूर्ण हिस्सा बन गया है। वे वृहत्त उत्तरदायित्व जो सरकार ने समुदाय के कमजोर वर्गों के संरक्षण के लिए अपने ऊपर ली हैं।

5.3.2 परिवार-कानून

आजादी से पहले अंग्रेज सरकार ने इस कानून की अवहेलना की थी। सामाजिक सुधार, प्रगतिशील अर्थनीति में इस कानून पर जोर देना जरूरी था। कुछ कट्टरपंथियों के विरोधात्मक आचरण से इस नियम को कुछ कदमों तक लागू किया गया। फिर जनता से सलाह-मशविरा लेकर इस कानून को पूर्ण रूप से लागू किया गया। इसके तहत चार अधिनियम लागू किये गये- (क) हिंदू विवाह अधिनियम, 1955 (ख) हिंदू उत्तराधिकार अधिनियम 1956, (ग) हिंदू दत्तक-ग्रहण एवं भरण-पोषण अधिनियम 1956, (घ) हिंदू अवयस्कता और अभिभावकता अधिनियम 1956। हिंदू स्वतंत्र विवाह अधिनियम 1954 में बदलती हुई समाज के साथ-साथ कई बदलाव किए गए। दहेज निषेध अधिनियम 1961 का संशोधन 1986 में किया गया और फैमिली कोर्ट अधिनियम 1984 में लागू किया गया।

सामाजिक बुराइयों और नि:शक्तता का उन्मूलन

इस समय सामाजिक कुसंस्कार और नि:शक्तता का उन्मूलन करने के लिए अनेक तरह के नियम बनाए गए। उनमें से प्रमुख हैं-

उत्तर प्रदेश सामाजिक नि:शक्तता उन्मूलन अधिनियम 1947, पश्चिम बंगाल हिंदू सामाजिक कुसंस्कार अधिनियम 1948, अछूत अपराध अधिनियम 1955 जिसे बाद में 'नागरिक अधिकार संरक्षण अधिनियम' नाम दिया गया, देवदासी प्रथा का प्रचलन, बलि प्रथा और समाज के कुछ वर्गों को मंदिर में प्रवेश निषेध आदि कुछ कुसंस्कार मद्रास बलि प्रथा अधिनियम 1950, मद्रास देवदासी प्रथा उन्मूलन 1947, मद्रास मंदिर प्रवेश अधिनियम 1947, बॉम्बे हिंदू स्थानों में सार्वजनिक पूजा अधिनियम 1956 और इस तरह के अनेक अधिनियम सामाजिक सुधार और हिंदू सामाजिक क्रम के पुन: निर्माण के लिए बनाए गए।

5.3.3 विशिष्ट आवश्यकताओं वाले व्यक्ति

भारत के संसद ने व्यक्तियों की विकलांगता के लिए चार विधेयकों को पारित किया जैसे कि

(क) विशिष्ट आवश्यकताओं वाले व्यक्ति (समानाधिकार, अधिकारों की सुरक्षा एवं पूर्ण सहभागिता) अधिनियम 1995, जो शिक्षा, रोजगार, प्रतिबंधहीन परिवेश, सामाजिक सुरक्षा आदि का प्रावधान करता है।

(ख) ऑर्टिज्म, 'सेरेब्रल पाल्सी' एवं मानसिक मंदता से ग्रस्त व्यक्तियों के कल्याण के लिए राष्ट्रीय न्यास तथा बहु-विकलांगता अधिनियम 1999 में इन चार वर्गों के कानूनी संरक्षण के लिए तथा जितना संभव हो सके उतना स्वतंत्र रहने के लिए सक्षम पर्यावरण के सृजन करने का प्रावधान है।

(ग) भारतीय परिषद अधिनियम 1992, पुनर्वास सेवा प्रदान करने के लिए जनशक्ति के विकास संबंधित है।

मानसिक स्वास्थ्य अधिनियम 1987, मानसिक स्वास्थ्य प्राधिकारियों, मनोरोग स्वास्थ्य केंद्र और नर्सिंग होम में एडमिट होने, चिकित्सा होने से संबंधित है।

5.3.4 उच्चतम न्यायालय और सामाजिक-आर्थिक परिवर्तन

उच्चतम न्यायालय, जो न्याय के उच्चतम शिखर पर है, जो मूल अधिकारों का संरक्षक, गारंटीकर्ता और संविधान का व्याख्याकार है, उसका देश के नागरिकों को सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक सुरक्षा प्रदान करने का सांविधानिक कर्तव्य है। संविधान न केवल एक कानून, बल्कि राजनीतिक दस्तावेज है। इसीलिए, महत्वपूर्ण सांविधानिक सवालों की व्याख्या नीतियों के सूत्रीकरण के लिए जरूरी है। यहां पर न्यायिक सक्रियता बहुत जरूरी है। न्यायिक सक्रियता के साथ उच्चतम न्यायालय आगे के सामाजिक-आर्थिक सुधारों के लिए, कानून की व्याख्या करता है। सच तो यह है कि उच्चतम न्यायालय ने हाल के वर्षों में सामाजिक आर्थिक सुधार के लिए अनेक कदम उठाए हैं। इस अध्याय में हर परिवर्तन का उल्लेख करना संभव नहीं। लेकिन कुछ महत्वपूर्ण बदलावों का यहां उल्लेख किया गया है।

संविधान की व्याख्या

भारतीयों के मूल अधिकार को सुरक्षित रखने के उद्देश्य हेतु संविधान के अनुच्छेद 12 में 'अन्य प्राधिकार' के अर्थ की व्याख्या की गई है और इसकी परिसीमा भी विस्तृत की गई है जिससे कि अधिक-से-अधिक संस्थाएं इसके दायरे में आ सकें और उन्हें मूल अधिकारों के उल्लंघन से रोका जा सके। नागरिक स्वतंत्रता के मामलें में उच्चतम न्यायालय (सुप्रीम कोर्ट) के विचार क्रमश: (धीरे-धीरे) व्यापक होते गये हैं। मेनका गांधी बनाम भारत सरकार के मामले के बाद एक नयी परम्परा उभर कर सामने आयी है। उसके बाद कोर्ट ने मूल अधिकारों एवं प्राकृतिक न्याय के दायरे को न्यायिक सक्रियता के द्वारा अनेक रचनात्मक विवेचनों के माध्यम से विस्तृत करना शुरू किया। इस प्रक्रिया में जजों ने संविधान के कई भागों की फिर से व्याख्या की। उदाहरण के लिए, जीने का अधिकार एवं व्यक्तिगत स्वतंत्रता का अधिकार, जो कि अनुच्छेद-21 में वर्णित है, को एक दोहरी प्रक्रिया खंड में 'वास्तविक ('defacto') एवं 'विधि सम्मत' ('de-jure') परिवर्तित कर दिया गया जो कि संविधान निर्माताओं के उद्देश्यों के प्रतिकूल था। इस अधिकार ने शीघ्र ही विस्तृत होकर अन्य तरह के जेल न्यायशास्त्र को जन्म दिया है जिसने अनुच्छेद-21 की रचना कर कैदियों को नए अधिकार दिये हैं। इस नये जेल न्यायशास्त्र में, त्वरित सुनवाई का अधिकार, मुफ्त कानूनी सहायता का अधिकार, मानव गरिमा का अधिकार, यातना के विरूद्ध अधिकार मूल अधिकारों के कुछ घटक बनाए गए हैं।

राज्य के नीति निदेशक सिद्धान्तों को कोर्ट के द्वारा अधिक-से-अधिक महत्व दिया गया है। कोर्ट की देख-रेख में यह सुनिश्चित किया गया है कि नागरिक स्वच्छता की व्यवस्थाओं के मसले पर राज्य के नीति निर्देशक सिद्धांतों एवं नगरपालिका के बीच कोई टकराव ना हो।

'मेसर्स कस्तूरीलाल बनाम जम्मू-कश्मीर सरकार' मामले में सुप्रीम कोर्ट की टिप्पणियाँ (अवलोकन) समान रूप से महत्वपूर्ण हैं। इसके अनुसार सरकार के द्वारा की गई प्रत्येक कारवाई जनहित में होनी चाहिए।

सर्वोच्च न्यायालय के विभिन्न फैसले इस देश में सामाजिक न्याय की दिशा में महत्वपूर्ण कदम हैं।

जनहित याचिका (PIL)

जनहित याचिका का आरंभ सुप्रीम कोर्ट की तरफ से शुरू की गई एक बहुत ही महत्वपूर्ण प्रक्रिया है। इसके महत्व एवं बढ़ते हुए दायरे को देखते हुए इसकी चर्चा अलग से की गई है।

जनहित कानून की व्याख्या

ग्रामीण आर्थिक उत्थान या समाज के कमजोर तबकों के कल्याण के लिए बने विधान को उदारता से उनके पक्ष में विवेचित किया गया है। सुप्रीम कोर्ट ने विभिन्न राज्यों द्वारा लागू किये गये भूमि सुधार कानूनों की वैद्यता को सही ठहराया है।

कई अवसरों पर ऐसा पाया गया है कि सामाजिक एवं आर्थिक विकास की दो एजेंसियां-विधायिका और न्यायपालिका अलग-अलग दिशाओं में अग्रसर होती हैं। इस तरह का एक महत्वपूर्ण मसला रहा है - संपत्ति का अधिकार। सुप्रीम कोर्ट द्वारा इसकी दी गई व्याख्या संसद को आर्थिक विकास के रास्ते में बाधा लगी। इस तरह, 1951 से 1964 तक कई संविधान संशोधन पारित हुए जिनके द्वारा यह स्पष्ट किया गया कि संविधान के अनुच्छेद 31 द्वारा दिये गये संपत्ति का अधिकार कानून की नजर में न्यायसंगत नहीं था तथा विधायिका द्वारा तय की गई मुआवजे की राशि (मात्रा) ही अंतिम थी। उसके बाद भी कुछ और संशोधन किये गये जिनके द्वारा अनुच्छेद 31 के प्रयोग से कानून की कुछ श्रेणियों की रक्षा हो सके। उसी प्रकार, बंगलोर जलापूर्ति मामले में दी गई 'उद्योग' की 'परिभाषा' को विधायी प्रयासों द्वारा सीमाबद्ध करने की कोशिश की गई है। हालांकि, इस तरह के बहुत अधिक अवसर नहीं रहे हैं। कानूनी परिवर्तनों के पूर्ण प्रभाव अभी भी दिखने बाकी हैं। सामान्यत:, विधायिका एवं न्यायपालिका दोनों ने संविधान में निहित सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक न्याय के लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए परस्पर कानून को अधिनियमित, परिवर्तित और आकर दिया है। यद्यपि, जनमानस में अशिक्षा एवं अज्ञानता तथा सही एवं प्रभावी तंत्र के अभाव के कारण परिवर्तनों के प्रभावों को अनुभव किया जाना अभी बाकी है।

पाठगत प्रश्न 5.3

1. मजदूरों के हालात सुधारने के लिए बनाए गए किन्हीं तीन अधिनियमों या कानूनों का उल्लेख करें।
2. परिवार कानून के तहत समाज में महिलाओं की दशा सुधार के लिए दो अधिनियमों का उल्लेख करें।

टिप्पणी

5.4 वैकल्पिक विवाद निवारण या समाधान (ADR)

वैकल्पिक विवाद सुनवाई (एडीआर) (जिसे ऑस्ट्रेलिया जैसे अनेक देशों में अदालत के बाहर समाधान भी कहा जाता है), जिसमें विवाद के समाधान के लिए प्रतिपक्ष दलों को एक अनुबंध के तहत लाया जाता है। यह समझौते का एक सामूहिक प्रयास है, जिसमें प्रतिपक्ष किसी तीसरे पक्ष (मध्यस्थ) की सहायता से या उसके बिना विवाद का समाधान करता है। शुरू में इस तरह के समाधान का विरोध होने पर भी कुछ सालों से आम जनता और कानूनी व्यवसाय के बीच इसका स्वागत किया जा रहा है। सच तो यह है कि कई अदालत आजकल कुछ पक्षों के सहारे इस तरह की वैकल्पिक विवाद सुनवाई प्रक्रिया की जरूरत महसूस कर रही हैं।

5.4.1 मध्यस्थता और सुलह अधिनियम, 1996

मध्यस्थता

विवाद से पहले दोनों पक्ष अगर सहमत हो तो आपस में इस तरह के समझौते कर सकते हैं। अधनियम के भाग-7 के अनुसार यह अनुबंध लिखित तौर पर होना चाहिए। मध्यस्थ से भी हो सकता है, जिसमें कोई लिखित कारनामा दावे के ऐसे कथन का आदान-प्रदान और बचाव जिसमें एक पक्ष के द्वारा मध्यस्थ करार का भाव आरोपित किया जाता है और दूसरे के द्वारा नकारा नहीं जाता तो यह लिखित मध्यस्थ करार के रूप में मान्य है।

विवाद से संबंधित कोई भी पक्ष मध्यस्थ नियुक्त करने की प्रक्रिया शुरू कर सकता है और यदि दूसरा पक्ष सहयोग नहीं करता तो वह पक्ष उच्च न्यायाधीश के कार्यालय में मध्यस्थ नियुक्त करने का प्रस्ताव रख सकता है। एक पक्ष दो आधार पर मध्यस्थ नियुक्त करने की चुनौती दे सकता है–

'मध्यस्थ' की नियुक्ति को दो आधारों पर चुनौती दी जा सकती है–'मध्यस्थ' की निष्पक्षता में तर्कसंगत संदेह और मध्यस्थ करार के लिए आवश्यक मध्यस्थ की आवश्यक योग्यता में कमी। इसीलिए नियुक्त किया गया 'मध्यस्थ' या अनेक मध्यस्थों की सूची मध्यस्थ (अधिकरण) अदालत का निर्माण करता है।

कुछ अंतरिम उपायों के अलावा मध्यस्थता प्रक्रिया में न्यायिक मध्यस्थता के लिए बहुत ही कम गुंजाइश है। मध्यस्थ अधिकरण का अपने निजी अधिकार क्षेत्र पर अधिकार होता है। इसीलिए अगर कोई पक्ष मध्यस्थ अधिकरण के अधिकार को चुनौती देता है तो वह सिर्फ अधिकरण से पहले ऐसा कर सकता है। अगर अधिकरण अनुरोध को खारिज करता है तो पक्षकार क लिए यह कम मौका होता है, जब वह अधिकरण के फैसले के बाद अदालत के सामने प्रस्ताव रखें। धारा-34 निर्दिष्ट क्षेत्र प्रदान करता है, जिस पर कोई पक्ष असली अधिकार-क्षेत्र के मुख्य सिविल अदालत में अपील कर सकता है।

मध्यस्थता और सुलह अधिनियम, 1996 यू.एन.सी.आइ.टी.आर.ए.एल. मॉडल सुमेलित आदेश समायोजित के लिए अधिनियमित की गई है। भारतीय विधि प्रणाली को सरल और कारगर बनाने के लिए पारंपरिक दीवानी विधि, जिसे दंड विधान संहिता के रूप में जाना जाता है, 1908 में संशोधित की गई और धारा-89 प्रवर्तित की गई। दंड विधान संहिता के धारा 89(1) अदालत के बाहर विवाद के समाधान के लिए मौका देता है। जहां अदालत के को यह उचित लगता है,

वहां यह मध्यस्थता, सुलह, बीच-बचाव और न्यायिक समझौते के रूप में पक्षकारों के द्वारा अपनाया जाता है।

धीमी न्यायिक प्रक्रिया की वजह से भारत में वैकल्पिक विवाद समाधान तंत्र पर काफी दबाव है। मध्यस्थता और सुलह अधिनियम, 1996 के अंतर्गत विवाद निवारण एक पाश्चात्य दृष्टिकोण है, जबकि राष्ट्रीय कानूनी सेवा प्राधिकरण अधिनियम, 1987 के अंतर्गत बनी लोक अदालत प्रणाली अद्वितिय रूप से एक भारतीय दृष्टिकोण है।

सुलह समझौता

यह मध्यस्थता की तरह जटिल नहीं। इस प्रक्रिया में किसी पूर्व-निर्धारित करार की जरूरत नहीं। कोई भी पक्ष दूसरे पक्ष को मध्यस्थ नियुक्त करने के लिए आग्रह कर सकता है। एक मध्यस्थ को तरजीह दी जाती है, लेकिन दो-तीन को भी अनुमति मिलती है। अनेक मध्यस्थ के मामले में, सभी का साथ में मिलकर काम करना जरूरी है। अगर कोई पक्ष मध्यस्थ के प्रस्ताव को ठुकराता है तो कोई समझौता नहीं होगा।

दोनों पक्ष लिखित रूप से अपना मत मध्यस्थ के सामने पेश करते हैं। हर पक्ष अपने मत की प्रति एक-दूसरे को भेजते हैं। मध्यस्थ आगे की कार्रवाई के लिए, दोनों पक्षों को मिलने के लिए भी कह सकते हैं या दोनों पक्षों के साथ लिखित या कथित रूप से संपर्क कर सकते हैं। यहां तक कि दोनों पक्ष समझौते के लिए अपना-अपना सुझाव मध्यस्थ के सामने प्रस्तुत कर सकते हैं।

अगर मध्यस्थ को समझौते का कोई उम्मीद नजर आती है तो वह समझौते की शर्त तैयार करके दोनों पक्षों की स्वीकृति के लिए भेजता है। अगर दोनों पक्ष समझौते के दस्तावेज पर हस्ताक्षर करते हैं तो वह अंतिम फैसला होता है, जिसे दोनों पक्षों को मानना पड़ता है।

याद रखें कि अमेरिका में यह प्रक्रिया बीच-बचाव के समान है, जबकि भारत में बीच-बचाव मध्यस्थता से अलग है और विकल्प विवाद सुनवाई का अनौपचारिक माध्यम है।

5.4.2 लोक अदालत

लोक अदालत का अर्थ 'जन अदालत' है। हमारे देश में गांव के बुजुर्गों के माध्यम के विवादों के समाधान की एक लंबी परंपरा रही है। लोक अदालत की वर्तमान व्यवस्था उसी का विकसित रूप है और गांधीवादी सिद्धांत पर आधारित है। लोक अदालतें एक गैर-विरोधी प्रणाली है, जो राज्य प्राधिकरण, जिला प्राधिकरण, उच्चतम न्यायालय कानूनी सेवा समिति, उच्च न्यायालय कानूनी सेवा समिति और तालुक कानूनी सेवा समिति द्वारा समय-समय पर इस तरह के अधिकार क्षेत्र में जहां उन्हें सही लगे, वहां व्यवस्था की जाती है। ये सारे मामले ज्यादातर सेवानिवृत न्यायाधीश, समाजसेवी और कानून व्यवस्था से संबंधित सदस्यों की अध्यक्षता में आयोजित की जाती है।

स्थायी मुकदमों में मुद्दई को निर्धारित कोर्ट फीस देनी पड़ती है, जबकि लोक अदालतों में कोई कोर्ट फीस देनी नहीं पड़ती और न ही कोई सख्त कार्यविधि की जरूरत है (जैसे भारतीय सिविल प्रक्रिया संहिता और भारतीय साक्ष्य अधिनियम के अंतर्गत कई प्रक्रिया पालन करना पड़ता है),

जिससे यह प्रक्रिया तेज होती है। पक्षकार न्यायाधीश के साथ सीधे संपर्क कर सकते हैं, जो स्थायी अदालतों में संभव नहीं।

अगर दोनों पक्ष राजी हों तो आम अदालतों में रुके हुए मामले लोक अदालतों में स्थानांतरित हो जाते है। कोई मामला अदालतों में तभी स्थानांतरित होता है, जब एक पक्ष अदालत में अर्जी करता है और दूसरे पक्ष को सुनने का मौका देने के बाद अदालत यह अनुभव करती है कि समझौते की कोई उम्मीद है।

लोक अदालतों में समझौते पर ध्यान दिया जाता है। अगर मामले का निपटारा समझौते तक नहीं पहुंचता तो वह वापस अदालत में चला जाता है। फिर भी, यदि समझौते तक बात पहुंचती है तो अधिनिर्णय बनता है, जिसे पक्षकारों पर न्यस्त किया जाता है। यह सिविल अदालत के फैसले के रूप में लागू किया जाता है। एक महत्वपूर्ण पहलू यह है कि अधिनिर्णय तय होने के बाद दोबारा अपील नहीं की जा सकती, क्योंकि यह आपसी सहमति का फैसला है। यहां तक कि भारतीय संविधान की अनुच्छेद 226 के अंतर्गत (जो वादकारी को यह अधिकार देता है कि उच्च न्यायालय से पहले समादेश-याचिका दायर कर सकता है)।

लोक अदालत की हर कार्रवाई न्यायिक कार्रवाई मानी जाती है और हर लोक अदालत सिविल अदालत माना जाता है।

जन-उपयोगी सेवाओं के लिए स्थायी लोक अदालतें

न्यायिक सेवा प्राधिकरण, 1987 के भाग-IV के अंतर्गत बनी लोक अदालत व्यवस्था में अगर कोई पक्ष समझौते के स्तर पर नहीं पहुंचता तो वह अनसुलझा मामला अदालत में वापस चला जाता है या पक्षों के समाधान के लिए अदालत की विधि अपनाने का निर्देश दिया जाता है। 1987 के अधिनियम संख्या 37/2002 को 11 जून, 2002 से लागू किया गया, जिसमें जन उपयोगी सेवा संबंधित विवादों का निपटारे की सुविधा प्रदान की गई, जैसे कि कानूनी सेवा प्राधिकरण अधिनियम, 1987 के यू./सेक्सन.22ए में परिभाषित की गई है कि अपनी पूर्व मुकदमेबाजी स्तर पर आम अदालतों का कार्य बोझ कुछ हद तक कम किया जा सका।

लोक अदालत में उच्च न्यायालय के सेवानिवृत्त अथवा सेवारत न्यायाधीश सभापति के रूप में और आमतौर पर एक वकील और समाजसेवी दो अन्य सदस्य के रूप में कार्य करते हैं। अगर यह मामला पहले से आम अदालतों में दाखिल किया गया है और यदि लोक अदालतों में विवाद का निपटारा हो जाता है तो जो फीस उसने पहले दाखिल की थी, उसे वापस मिलती है। लोक अदालतों द्वारा शिकायतों का आकलन करते समय प्रक्रियात्मक कानून और साक्ष्य अधिनियम का कड़ाई से पालन नहीं किया जाता।

लोक अदालत की मुख्य शर्त है कि विवाद में शामिल उभय पक्ष मामले के निपटारे के लिए राजी हो। विवाद को देखते हुए लोक अदालत का फैसला दोनों पक्षकारों पर न्यस्त होता है। उसका आदेश कानूनी प्रक्रिया के माध्यम से निष्पादन में सक्षम है।

पैसे के निपटारे के मामले में लोक अदालत बहुत प्रभावी हैं। विभाजन (अलगाव) के मुकदमें, वैवाहिक मामले, मुआवजे का निपटारा लोक अदालत में बहुत आसानी से होता है।

वादकारियों के लिए लोक अदालतें वरदान स्वरूप हैं, जहां उनके विवाद कम समय में और बिना पैसे के निपट जाते है।

5.4.3 जमीनी स्तर पर वैकल्पिक विवाद निवारण

अदालतों में सालों से पड़े आम आदमी के मामलों के निपटारे के लिए हमें भारत के हर राज्य के गांव में सालों से चली आ रही न्याय की विकेंद्रीकरण और न्याय-पंचायत का पुन: प्रयोग करने की आवश्यकता है। ग्रामीण स्तर पर इस तरह के विवादों का निवारण फोरम संविधान की धारा 39-क के तहत उल्लेख किया गया है।

न्याय पंचायत भारत की कुल जनसंख्या के 70 प्रतिशत लोगों का सशक्तिकरण करती है। क्षेत्रीय बोली के माध्यम से इसका संचालन होने के कारण कोई भाषागत प्रतिबंध दिखाई नहीं देता, जिससे विकल्प विवाद निवारण कार्य प्रणाली का एक आपसी समझौते का रास्ता नजर आता है। गांव के हर पंचायत में इस तरह के ग्रामीण अदालतों की स्थापना कम खर्च में आम आदमी के लिए सहज उपलब्ध है।

न्याय पंचायत बिल, 2006 के अनुसार पंचायत में पांच सदस्य होने चाहिए, जिसमें अन्य सदस्यों के अतिरिक्त एक महिला, एक अनुसूचित जाति, एक जनजाति, एक पिछड़ी जाति से क्रमावर्ती रूप से एक आरक्षित पद होता है (यदि हो), जो क्षेत्रीय चुनाव क्षेत्र के द्वारा प्रत्यक्ष रूप से चुने जाते हैं। पिछड़ी जाति और महिला आरक्षण के द्वारा जाति के आधार पर उचित न्याय सुविधा प्रदान करने की व्यवस्था की जाती है।

इसके अतिरिक्त विवाद निवारण प्रक्रिया में पक्षपात प्रभाव और राजनीतिक समर्थन से बचने के लिए, पहले यह निश्चित कर लेना आवश्यक है कि कोई भी सदस्य किसी राष्ट्रीय या प्रादेशिक राजनीतिक दल से जुड़ा न हो। राज्य के लिए न्याय पंचायतों के उत्तरदायित्व को सुरक्षित रखने के लिए, प्रस्तावित विधायी ढांचे में पंचायत के द्वारा विवाद के समाधान के लिए लिखित प्रमाण तैयार करने और राज्य सरकार को इसकी रिपोर्ट प्रस्तुत करने की सुविधा प्राप्त है। ग्रामीण क्षेत्रों में 'ग्रामीण न्यायालय' की स्थापना प्रारंभिक स्तर पर विकल्प विवाद समाधान का दूसरा महत्वपूर्ण कदम है। माध्यमिक स्तर पर राज्य सरकारें हर पंचायत में एक या अधिक ग्राम न्यायालय स्थापित करने की सोच रही हैं। हर 'ग्रामीण न्यायालय' एक न्यायाधिकारी के नेतृत्व में परिचालित होता है, जिसकी प्रथम श्रेणी के न्यायाधीश की कवायद हों और कुछ खास दीवानी और फौजदारी विवादों में विशिष्ट और मूल अधिकार क्षेत्रों से जुड़ा हो। इस विधेयक की मुख्य विशिष्टता है 'ग्राम न्यायलयों' के जरिए ग्रामीण स्तर पर 'अदालत अनुबंधित वैकल्पिक विवाद निवारण' लागू करना। दीवानी विवादों में न्यायाधिकारी को यह अधिकार या शक्ति भी है कि उच्च न्यायालय द्वारा बनाए गए नियमों के विषय में, वह कार्रवाई को स्थगित करके पक्षकारों के बीच आपसी सुलह करवा सकता है। इसके अतिरिक्त छोटे-मोटे विवाद जैसे- कृषिपयोगी जमीन को लेकर विवाद, खेती को लेकर विवाद, सामूहिक गोचर पर चराई को लेकर विवाद, नहर से पानी लेने के अधिकार को लेकर विवाद आदि ग्रामीण स्तर पर विकल्प विवाद निवारण प्रक्रिया के द्वारा लिए गए फैसले हैं। 73वें संविधान संशोधन अधिनियम में जब पंचायती राज व्यवस्था को मान्यता दी, तब तक भी न्याय पंचायत की स्थापना के लिए कोई निर्दिष्ट उल्लेख नहीं था। हाल ही के

संशोधन के बाद कुछ राज्यों जैसे-बिहार, हिमाचल प्रदेश, पंजाब, उत्तर प्रदेश, पश्चिम बंगाल ने अपने नए पंचायती राज अधिनियम में 'न्याय पंचायत' की व्यवस्था रखी है।

अब तो ग्रामीण स्तर पर समाज सेवियों की नियुक्ति किए जाने की व्यवस्था है जिनकी आवश्यक योग्यता उच्च न्यायालय के द्वारा तय की गई है। अगर यह विधेयक लागू होता है तो भारत के आर्थिक और सामाजिक रूप से शोषित व्यक्तियों को सहज और सस्ते रूप में न्याय मिलेगी, न्याय की विकेंद्रीकरण हो सकती है और मामलों का बोझ भी कम होगा।

पाठगत प्रश्न 5.4

1. जनता को सस्ता और त्वरित न्याय प्रदान करने के लिए लोक अदालत की भूमिका की व्याख्या करें।
2. वै.वि.स. (ADR) का पूरा नाम बतलाइए।
3. सुलह-समझौता (Conciliation) क्या है?

आपने क्या सीखा

- इस अध्याय में हम समाज को एक क्रम में रखने में सहायक होने वाले विभिन्न प्रकार के सामान्य नियमों तथा मानकों से परिचित हुए। यह मूल रूप से धैर्य, रीति-रिवाज, नैतिक मूल्यों और जनमतों से बने हैं। कानून इस तरह का एक स्रोत है। आधुनिक समाज में आपसी मेल-मिलाप के लिए कानून की महत्वपूर्ण भूमिका रही है।
- भारत में, समाज में सुधार लाने के लिए कानून महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है। श्रम कानून, भमि-सुधार कानून, विवाह सम्बन्धी कानून, अभिभावककर्ता सम्बन्धी कानून, उत्तराधिकार सम्बन्धी कानून, दत्तक-ग्रहण सम्बन्धी कानून, विशिष्ट आवश्यकताओं वाले व्यक्तियों के लिए कानून में समान अवसर प्रदान करना, बुजुर्ग व्यक्तियों से संबंधित कानून, आदि इसके कुछ उदाहरण हैं।
- अदालतों में सालों से पड़े मामलों की निपटारे के लिए कम खर्च पर त्वरित न्याय प्रदान करने हेतु आजकल विकल्प विवाद सुनवाई की व्यवस्था की गई है। भारत की संसद में माध्यस्थता और सुलह अधिनियम, 1996 पारित किया गया है और सिविल प्रक्रिया संहिता 1908 में संशोधन किया गया है। जमीनी स्तर पर त्वरित न्याय प्रदान करने हेतु न्यायिक सेवा प्राधिकरण, 1987 पारित किया गया है जिसके अर्न्तगत लोक अदालतों की स्थापना की गई है। ग्रामीणों को उनके द्वार पर ही न्याय देने के लिए ग्राम-न्यायालय अधिनियम, 2009 पारित किया गया है।
- भारत के उच्चतम न्यायालय और न्याय के शीर्ष अदालतों ने न्यायिक के द्वारा उत्साहित होकर समाज में सामाजिक- अर्थनैतिक परिवर्तन लाने और महिलाओं और गरीबों की स्थिति में सुधार लाने के लिए अनेक नियमों का प्रवर्तन किया है।

पाठांत प्रश्न

1. समाज को नियन्त्रित करने के लिए विभिन्न प्रकार के 'मानकों' के महत्वों की चर्चा करें।
2. कानून के विविध स्रोतों की चर्चा करें।
3. समाज के नियंत्रण में कानून की भूमिका की चर्चा करें, साथ ही कानून और अन्य मानकों के बीच अंत:संबंध का विश्लेषण करें।
4. उदाहरण सहित सामाजिक सुधार में 'कानून' की भूमिका का मूल्यांकन करें।
5. विकल्प विवाद निवारण क्या है? त्वरित न्याय प्रदान करने हेतु इसकी भूमिका की चर्चा करें।
6. कैसे 'सामाजिक मानक' और 'नैतिक मानक' कानूनी मानकों को प्रभावित करते हैं?
7. विवाद के समाधान के लिए वैकल्पिक विवाद निवारण की विभिन्न प्रकारों कौन-कौन सी है?
8. निम्न पर संक्षेप नोट लिखिए

   (क) श्रम कानून (ख) परिवार कानून (ग) रीति-रिवाज का रूढ़ि (घ) लोक अदालत

पाठगत प्रश्नों के उत्तर

5.1

1. साधारण शब्दों में समाज के द्वारा अपनाए गए 'मानक व्यवहार' को 'मानक' कहा जाता है।
2. सामाजिक व्यवहार के दो 'मानकों' के उदाहरण निम्न हैं-
   - विवाह संबंधित मानक
   - विरासत संबंधित मानक

5.2

1. सही
2. सही
3. सही

5.3

1. तीन अधिनियम निम्न हैं-

   (i) फैक्टरी अधिनियम, 1948

(ii) औद्योगिक विवाद अधिनियम, 1947

(iii) महिला क्षतिपूर्ति अधिनियम, 1923

2. दो अधिनियम निम्न हैं:

(क) हिंदू विवाह अधिनियम, 1955

(ख) हिंदू उत्तराधिकारी अधिनियम, 1986

5.4

1. लोक अदालतों में कार्याविधि कानून की कोई तकनीकी प्रणाली नहीं अपनाई जाती। यहाँ मामले या विवादों का निपटारा सर्वसम्मति से किया जाता है। यहाँ विवाद, आम या सामान्य अदालतों के मुकाबिले, कम समय और कम खर्च में निपट जाता है।
2. वैकल्पिक विवाद निवारण या समाधान
3. 'सुलह-समझौता' मध्यस्थता की अपेक्षा कम औपचारिक है। 'सुलह प्रक्रिया' में किसी पूर्व-निर्धारित करार की जरूरत नहीं होती। विवाद से सम्बन्धित कोई भी पक्ष एक 'मध्यस्थ' की नियुक्ति हेतु प्रार्थना कर सकता है। यदि कोई भी पक्ष दूसरे पक्ष के 'मध्यस्थता' के प्रस्ताव को ठुकराता है तो कोई समझौता नहीं होता।

6

प्राकृतिक न्याय के सिद्धांत

इस पाठ में आपका परिचय 'प्राकृतिक न्याय' की धारणा से कराया जाएगा। सामान्य शब्दों में, 'प्राकृतिक न्याय' का अर्थ है, वह न्यूनतम मानक एवं सिद्धांत, जिनका प्रशासनिक अधिकारियों द्वारा अनुसरण या पालन किया जाना चाहिए, जब वे उन मसलों पर फैसला कर रहे हों, जो जनता से जुड़े हों।

मुख्य रूप से प्राकृतिक न्याय के दो सिद्धांत हैं, जिनका प्रत्येक प्रशासनिक अधिकारी को पालन करना चाहिए, भले ही ये सिद्धांत प्रासंगिक अधिनियमों या कानूनों में न दिए गए हों। ये सिद्धांत हैं-

1. कोई भी व्यक्ति अपने स्वयं के मामले में न्यायाधीश (जज) नहीं होना चाहिए।
2. प्रत्येक पक्ष को सुने जाने का अवसर दिया जाना चाहिए।

उद्देश्य

इस पाठ के अध्ययन के बाद आप-

- 'प्राकृतिक न्याय' को परिभाषित कर पाएंगे;
- 'पूर्वाग्रह के विरुद्ध नियम' के विभिन्न पहलुओं पर चर्चा कर पाएंगे;
- 'निष्पक्ष सुनवाई के नियम' का विश्लेषण कर पाएंगे;
- व्यक्त/पारित आदेश के अर्थ को समझ पाएगें एवं
- प्राकृतिक न्याय के 'अपवादों' को जान पाएंगे।

6.1 प्राकृतिक न्याय की अवधारणा

प्राकृतिक न्याय का तात्पर्य है-निष्पक्षता, औचित्य एवं समानता। प्राकृतिक न्याय सामान्य कानून की एक अवधारणा है और यह अमेरिकन 'प्रक्रियात्मक कारण प्रक्रिया' का प्रतिरूप है। प्राकृतिक न्याय, न्यायधीशों द्वारा विकसित उच्च प्रक्रियात्मक सिद्धांतों का प्रतिनिधित्व करता है, जिस का प्रत्येक प्रशासनिक संस्था को कोई भी ऐसा फैसला लेते समय पालन करना चाहिए जिससे किसी व्यक्ति के अधिकार नकारात्मक रूप से प्रभावित होते हैं।

प्राकृतिक न्याय का अर्थ बहुत से लेखकों, वकीलों एवं कानूनी प्रणालियों ने अलग-अलग तरह से समझा है। यह प्राय: ईश्वरीय कानून एवं राष्ट्रों के सामान्य कानून के रूप में उपयोग किया जाता है। यह एक बदलती हुई विषय-वस्तु का सिद्धांत है। हालांकि इसका अर्थ यह नहीं है कि किसी दिए गए समय पर प्राकृतिक न्याय के कोई नियम-सिद्धांत निर्धारित नहीं किए जा सकते। न्यायालयों के विभिन्न फैसलों के द्वारा प्राकृतिक न्याय के सिद्धांत आसानी से तय किए जा सकते हैं, हालांकि किसी दी गई परिस्थिति में उनका प्रयोग अनेक कारकों पर निर्भर करता है। भारत जैसे कल्याणकारी राज्य में, प्रशासनिक संस्थाओं की भूमिका और अधिकार क्षेत्र तेजी से बढ़ रहे हैं। कानून के शासन की अवधारणा अपनी वैधता खो देगी, यदि राज्य के तंत्र इस बात के लिए उत्तरदायी न ठहराए जाएं कि वे अपने उत्तरदायित्व निष्पक्ष और न्यायोचित तरीके से निष्पादित करें।

प्राकृतिक न्याय के सिद्धांत, संविधान के विभिन्न अनुच्छेदों के अन्तर्गत में दृढ़ता से स्थापित हैं। संविधान के अनुच्छेद-21 में दी गई ठोस एवं प्रक्रियात्मक कारण प्रक्रिया की अवधारणा के साथ, प्राकृतिक न्याय के सिद्धांत अपनी पूरी स्पष्टता के साथ देखे जा सकते हैं, जब किसी व्यक्ति को अपने जीवन और स्वतंत्रता से वंचित किया जाता है। बाकी क्षेत्रों में अनुच्छेद-14 जिसमें प्राकृतिक न्याय के सिद्धान्त निहित हैं, और जो प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों को नियमित करता है।

अनुच्छेद-14 न सिर्फ भेदभावपूर्ण वर्ग कानून पर लागू होता है, बल्कि यह मनमाने या भेदभावपूर्ण राज्य कार्रवाई पर भी लागू होता है।

चूंकि प्राकृतिक न्याय का उल्लंघन निरंकुशता को जन्म देता है, इसलिए यह उल्लंघन अनुच्छेद-14 की समानता से सम्बन्धित धारा का उल्लंघन है। इस प्रकार, अब प्राकृतिक न्याय के सिद्धांत को पूरी तरह से कानून द्वारा खारिज नहीं किया जा सकता, क्योंकि इससे अनुच्छेद-14 एवं 21 में प्रत्याभूत मूल अधिकारों की अवहेलना होगी।

प्राकृतिक न्याय के मुख्यत: दो सिद्धांत हैं। ये हैं-**'नेमो जुडेक्स इन कॉजा सुआ' (Nemo Judex in Causa Sua)**- जिसका अर्थ है-कोई भी व्यक्ति अपने ही मामले में जज नहीं बनाया जाना चाहिए एवं पूर्वाग्रह के विरुद्ध नियम। **'ऑडी अल्टेरम पारेरम' (Audi Alteram partem)** जिसका अर्थ है- दूसरे पक्ष को सुनो, कोई भी व्यक्ति बिना सुनवाई के दंडित नहीं किया जाना चाहिए।

पाठगत प्रश्न 6.1

1. प्राकृतिक न्याय को परिभाषित करें।
2. प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का संवैधानिक आधार क्या है?
3. प्राकृतिक न्याय के दो प्रमुख सिद्धांतों का उल्लेख करें।

6.2 पूर्वाग्रह के विरुद्ध नियम

'पूर्वाग्रह' का अर्थ है–एक सक्रिय पूर्वाग्रह, जो कि किसी मामले में या किसी पक्ष के प्रति जानबूझकर या अनजाने में हो सकता है। इसलिए 'पूर्वाग्रह के विरुद्ध कानून' उन कारकों पर प्रहार करता है, जो किसी जज को किसी खास फैसले पर पहुंचने में अनुचित रूप से प्रभावित कर सकते हैं। इस सिद्धांत की आवश्यकता यह है कि न्यायाधीश निश्चित रूप से निष्पक्ष होना चाहिए एवं किसी मुकदमें का फैसला उसे उपलब्ध साक्ष्यों के आधार पर निष्पक्षता से करना चाहिए।

इसलिए कोई व्यक्ति, चाहे जिस कारण से भी हो, उपलब्ध साक्ष्यों के आधार पर, यदि एक निष्पक्ष निर्णय नहीं ले सकता तो उसे पूर्वाग्रह से ग्रस्त कहा जाएगा। एक व्यक्ति उस मामले में निष्पक्ष निर्णय नहीं ले सकता, जिसमें उसका अपना हित हो, क्योंकि मानवीय मनोविज्ञान कहता है कि बहुत ही विरले लोग अपने हितों के विरुद्ध निर्णय ले पाते हैं। यह अयोग्यता का नियम सिर्फ इसलिए नहीं लगाया जाता कि पक्षपातपूर्ण निर्णय न हो, बल्कि इसलिए भी लगाया जाता है, लोगों का निष्पक्ष प्रशासनिक न्याय व्यवस्था में विश्वास बना रहे, क्योंकि 'कोई भी व्यक्ति स्वयं के ही मामले में जज नहीं हो सकता', के साथ-साथ 'न्याय न सिर्फ होना चाहिए, बल्कि स्पष्ट रूप से एवं बिना किसी संदेह के होते हुए दिखना भी चाहिए।' प्राकृतिक न्याय का न्यूनतम आवश्यकता यह है कि प्राधिकार (न्याय-व्यवस्था) में वे निष्पक्ष लोग होने चाहिए, जो न्यायोचित ढंग से एवं पूर्वाग्रह रहित होकर काम कर सकें।

'पूर्वाग्रह' के वशीभूत होकर दिया गया निर्णय व्यर्थ है तथा इस तरह की सुनवाई न्यायोचित नहीं कही जा सकती। इसलिए 'पूर्वाग्रह' का निष्कर्ष, सिर्फ परोक्ष संकेत, अनुमान या संदेह के आधार पर होना चाहिए। 'पूर्वाग्रह' कई प्रकार के होते हैं एवं फैसलों को विभिन्न तरीकों से प्रभावित करते हैं।

'पूर्वाग्रह' के विभिन्न प्रकार/पहलू

6.2.1. व्यक्तिगत पूर्वाग्रह

व्यक्तिगत पूर्वाग्रह की उत्पत्ति पक्षों एवं फैसला करने वाले प्राधिकार या अधिकारी के बीच किसी विशेष संबंध के कारण होती है, जिसमें वादी/ प्रतिवादी पक्ष प्राधिकार (जज) को अपने पक्ष में या दूसरे पक्ष के विरुद्ध करने की कोशिश करते हैं। इस तरह के समीकरण विभिन्न प्रकार के व्यक्तिगत या व्यावसायिक शत्रुता या मैत्री के कारण विकसित हो सकते हैं। यद्यपि इस प्रकार के समीकरणों की कोई व्यापक सूची बनाना संभव नहीं है।

एक मामले में, सुप्रीम कोर्ट ने एक विभागीय पदोन्नति समिति द्वारा तैयार की गई सूची को खारिज कर दिया था, जिसमें समिति ने एक अफसर द्वारा तैयार की गई उम्मीदवारों की गोपनीय रिपोर्ट पर विचार किया था, जिसमें वह स्वयं ही पदोन्नति का उम्मीदवार था।

हालांकि, प्रशासनिक कार्रवाई को व्यक्तिगत पूर्वाग्रह के आधार पर सफलतापूर्वक चुनौती देने के लिए यह साबित करना आवश्यक है कि पूर्वाग्रह का एक तर्कसंगत संदेह है या फिर पूर्वाग्रह की एक वास्तविक संभावना है।

'तर्कसंगत संदेह' की जांच मुख्य रूप से बाहरी संभावना में देखती है, जबकि 'वास्तविक संभावना' जांच न्यायालय के स्वयं की संभाविता का मूल्यांकन हैं, लेकिन व्यवहार में ये परीक्षण बहुत सारे मामलों में एक-दूसरे से समानता रखते हैं एवं इनका परिणाम एक जैसा ही होता है।

'पूर्वाग्रह' के इस क्षेत्र में, वास्तविक प्रश्न यह नहीं है कि कोई व्यक्ति निष्पक्ष था या नहीं। किसी व्यक्ति की मानसिक अवस्था को साबित करना कठिन है। इसलिए न्यायालय इस बात को देखती हैं कि क्या इस बात का तर्कसंगत आधार उपलब्ध है कि फैसला करने वाला अधिकारी पक्षपातपूर्ण हो सकता था। पूर्वाग्रह के मामलों में किसी फैसले पर पहुंचने में जजों को मानवीय संभावनाओं एवं मानवीय आचरण के सामान्य पहलुओं पर विचार करना पड़ता है।

लेकिन किसी फैसला लेने वाले/ सुनवाई करने वाले अधिकारी को अयोग्य घोषित करने के लिए पूर्वाग्रह की पूरी और स्पष्ट संभाविता उपलब्ध होनी चाहिए। सुनवाई या सुनवाई करने वाले अधिकारी को सिर्फ संदेह के आधार पर खारिज नहीं किया जा सकता। संदेह के बारे में फैसला, एक स्वस्थ, तर्कसंगत एवं औसत दृष्टिकोण से लिया जाना चाहिए, न कि सिर्फ लोगों, सनकी, मनमौजी एवं अविवेकी लोगों के संदेह के आधार पर।

6.2.2 धन-संबंधी पूर्वाग्रह

न्यायिक दृष्टिकोण सर्वसम्मति से इस बात पर निर्णायक है कि आर्थिक सरोकार, चाहे वह कितना भी छोटा क्यों न हो, प्रशासनिक प्रक्रिया को दूषित करता है। प्रशासनिक प्रक्रिया में भाग लेने वाले ऐसे व्यक्ति को अयोग्य घोषित किया जाएगा जिसका निर्णय लेने वाली प्रक्रिया से आर्थिक हित जुड़ा हो। सुप्रीम कोर्ट ने एक मामले में एक पाठ्यपुस्तक चयन समिति के फैसले को इस बात के कारण खारिज कर दिया कि जो पुस्तकें चयनित हुई थीं, उनके लेखक उस चयन समिति के कुछ सदस्य भी थे।

6.2.3 विषय-वस्तु पूर्वाग्रह

वे मामलों इस श्रेणी में आते हैं, जिनमें फैसला लेने वाले अधिकारी का सीधे तरह से या अन्य रूप से मामले की (प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से) विषय-वस्तु से संबंध हो। पुनः यहां सिर्फ भागीदारी के कारण प्रशासनिक कार्रवाई नहीं हो सकती, जब तक कि पूर्वाग्रह की वास्तविक संभावना उपलब्ध न हो।

सुप्रीम कोर्ट ने, एक मामले में आंध्र प्रदेश सरकार के सड़क-परिवहन के राष्ट्रीयकरण के एक फैसले को इस आधार पर खारिज कर दिया कि परिवहन विभाग का सचिव, जिसने सुनवाई की, उस मामले की विषय-वस्तु से लाभार्थी था।

6.2.4 विभागीय पूर्वाग्रह

'विभागीय पूर्वाग्रह' की समस्या प्रशासनिक प्रक्रिया में बड़ी ही सहज है और यदि इसे प्रभावी रूप से नियंत्रित न किया जाए तो यह प्रशासनिक कार्रवाईयों में निष्पक्षता की धारणा को नकारात्मक रूप से प्रभावित कर सकती है।

'विभागीय पूर्वाग्रह' की समस्या एक अलग संदर्भ में भी उठ खड़ी होती है, जब जज एवं अभियोजक एक ही विभाग से संबंध होते हैं। यह असामान्य नहीं है कि जो विभाग एक मामले की पहल करता है, वही उसके बारे में फैसला भी करता है, इसलिए कभी-कभी विभागीय बिरादरी एवं वफादारी, निष्पक्ष सुनवाई की धारणा के विरुद्ध हो जाती है।

एक मामले में, सुप्रीम कोर्ट ने सरकार की एक अधिसूचना को रद्द कर दिया, जिसके द्वारा एक पुलिस उपाधीक्षक को हरियाणा की गाड़ियों की जांच के मामले में, रोडवेज के महाप्रबंधक की शक्तियां प्रदान की गई थीं। कोर्ट ने इस अधिसूचना को 'विभागीय पूर्वाग्रह' के आधार पर रद्द कर दिया। इस मामले में निजी बस चालकों ने यह आरोप लगाया था कि हरियाणा रोडवेज के महाप्रबंधक से, जो कि राज्य में इस व्यापार में एक प्रतिद्वंद्वी है, इस बात की उम्मीद नहीं की जा सकती कि वे अपने दायित्वों का निष्पक्ष एवं तर्कसंगत रूप से निर्वहन कर पाएंगे। उन्होंने आरोप लगाया कि वे अपने विभाग की गाड़ियों की जांच के समय आवश्यकता से अधिक उदार हो जाएंगे। सुप्रीप कोर्ट के अनुसार, अधिसूचना को रद्द करने का कारण विभाग के कर्तव्य एवं हितों के बीच टकराव था एवं उसके फलस्वरूप लोगों का प्रशासनिक न्याय में विश्वास को होने वाली कमी थी।

6.2.5 पूर्व धारणा पर आधारित पूर्वाग्रह

पहले से बनाई गई धारणा के आधार पर पक्षपात प्रशासनिक कानून की एक बहुत ही नाजुक समस्या है। एक तरफ, किसी भी जज से, व्यक्ति के रूप में, इस बात की उम्मीद नहीं की जा सकती कि वह एक सादे कागज की तरह बैठा रहा, दूसरी तरफ पहले से बनाई गई धारणाएं स्वच्छ एवं निष्पक्ष सुनवाई को दूषित करेंगी।

पहले से बनाई गई धारणा के आधार पर किए गए पक्षपात (पूर्वाग्रह) की समस्या को प्रशासनिक प्रक्रिया की सहज (अंतर्निहित) परिसीमा मानकर छोड़ना पड़ेगा। किसी लोक अधिकारी को सिर्फ इस बात के कारण पक्षपात का दोषी ठहराना कि वह किसी पॉलिसी (नीति) के प्रति संवेदनशील है, जो जनहित में है, निरर्थक है। पूर्वाग्रह के कारण किसी अधिकारी को कार्रवाई से नहीं रोका जा सकता, यदि उसके स्थान पर कोई और योग्य व्यक्ति उपलब्ध नहीं है। यह परिसीमा आवश्यकता के सिद्धांत में निहित है।

हालांकि 'पूर्वाग्रह' अपने स्थान तक सीमित किया जाना चाहिए। यदि पहले से बनाई गई धारणा के आधार पर पूर्वाग्रह का अर्थ जज के मस्तिष्क में पूर्वाग्रह की पूर्ण अनुपस्थिति है, तो किसी भी जज ने आज तक कोई स्वच्छ (निष्पक्ष) सुनवाई नहीं की है और न ही कोई कर सकेगा। इसलिए जब तक कि पहले से तय धारणाएं इतनी सशक्त न हों कि वे जज के मस्तिष्क को अपने वश में कर लें, प्रशासनिक प्रक्रिया दूषित नहीं होगी।

पाठगत प्रश्न 6.2

1. 'पूर्वाग्रह' को परिभाषित करें।

2. निम्नलिखित में प्रत्येक का एक उदाहरण दें–

   (क) धन–संबंधी पूर्वाग्रह

   (ख) विषय–वस्तु पूर्वाग्रह

   (ग) विभागीय पूर्वाग्रह

3. 'पूर्वाग्रह' के विभिन्न पहलुओं/प्रकारों की चर्चा करें।

6.3 निष्पक्ष सुनवाई के नियम

इस नियम का अर्थ है, एक व्यक्ति को स्वयं के बचाव का अवसर अवश्य दिया जाना चाहिए। यह सिद्धांत प्रत्येक सभ्य समाज की एक अनिवार्य शर्त (sine qua non) है। इस नियम का उप–सिद्धांत यह है कि ''यदि कोई व्यक्ति दूसरे पक्ष को सुने बिना फैसला करता है तो उसे सही फैसला नहीं कहा जा सकता, तब भी जबकि उसने वही किया हो, जो उचित था।'' लॉर्ड हेवार्ट ने इसी सिद्धांत को व्यक्त किया था, जब उसने कहा था, यह सिर्फ महत्व की नहीं, बल्कि मूलभूत महत्व की चीज है कि न्याय न सिर्फ होना चाहिए, बल्कि स्पष्ट रूप से बिना किसी संदेह के होते हुए दिखना भी चाहिए। किसी व्यक्ति को सुनवाई का अधिकार या नोटिस (चेतावनी) देने में कठिनाई इस बात का स्पष्टीकरण नहीं हो सकती कि उसके आधार पर किसी व्यक्ति को बचाव का अवसर या सुने जाने का अधिकार नहीं दिया यद्यपि प्राकृतिक न्याय के नियमों की अनुपालन की।

यदि विधायिका ने विशेष तौर पर, बिना सुनवाई के, कुछ अपवादों को छोड़कर, कोई प्रशासनिक कार्यवाही की है तो यह निष्पक्ष सुनवाई के सिद्धांतों का उल्लंघन है। हालांकि, बिना किसी वैध कारण के जांच में शामिल नहीं होना और बाद में इसे प्राकृतिक न्याय के सिद्धांत का उल्लंघन कहना उचित नहीं ठहराया जा सकता।

6.3.1 नोटिस (चेतावनी) का अधिकार

नोटिस किसी भी सुनवाई का आरंभ बिंदु है। जब तक किसी व्यक्ति को इस बात का पता न चले कि उस पर जो मुकदमा बना है उसका विषय क्या है और उसमें कौन–कौन से मुद्दे शामिल हैं, वह अपना बचाव नहीं कर सकता। किसी मामले में सिर्फ नोटिस दिया जाना काफी नहीं है, बल्कि यह भी आवश्यक है कि वह पर्याप्त हो। किसी नोटिस की पर्याप्तता एक सापेक्ष शब्द है और प्रत्येक मामले में अलग–अलग निर्धारित होनी चाहिए, लेकिन सामान्यत: किसी नोटिस को पर्याप्त होने के लिए, उसमें निम्न तत्व होने चाहिए–

नोटिस में इतनी सूचना होनी चाहिए, जिससे कि कोई भी व्यक्ति जिससे यह नोटिस संबंधित है, एक प्रभावी बचाव कर सके। इसलिए, नोटिस का मूल तत्व, जिसको नोटिस दी जानी है एवं नोटिस दिए जाने का समय ये तीनों तत्व किसी भी नोटिस में महत्वपूर्ण है, जो यह तय करते हैं कि प्राकृतिक न्याय के सिद्धांत का उल्लंघन न हो। इस प्रकार, किसी पुरानी (जीर्ण–शीर्ण) बिल्डिंग को गिराने के लिए जब 24 घंटे का नोटिस दिया गया तो कोर्ट ने इसे पर्याप्त नहीं माना।

उसी तरह से जब किसी व्यक्ति को एक मामले में नोटिस दिया गया तो उसे किसी दूसरे मामले में दंडित नहीं किया जा सकता, जिसका नोटिस उसे न दिया गया हो।

हालांकि, नोटिस के लिए सिर्फ इस कारण से जोर नहीं दिया जा सकता कि यह एक तकनीकी औपचारिकता है, जबकि संबंधित पक्ष अपने खिलाफ मामले को स्पष्ट रूप से जानती है और एक प्रभावी बचाव करने में हर तरह से सक्षम है।

6.3.2 मुकदमें एवं साक्ष्य को पेश करने का अधिकार

निर्णायक प्राधिकार द्वारा किसी भी पक्ष को अपना मुकदमा पेश करने का पर्याप्त एवं न्यायोचित अवसर दिया जाना चाहिए। यह लिखित या मौखिक रूप से प्राधिकार के विवेक के अनुसार दिया जाना चाहिए यदि कोई और निर्देश व्यवस्था द्वारा न दिया गया हो।

प्राकृतिक न्याय की आवश्यकताएं तभी पूरी होती हैं, यदि अभिवेदन का अवसर प्रस्तावित कार्रवाई के आलोक में दिया गया हो। ये आवश्यकताएं तब पूरी नहीं होतीं, जब वह व्यक्ति जिसके खिलाफ कार्रवाई की गई है, यदि वह कार्रवाई अनौपचारिक तरीके से या किसी और उद्देश्य से की गई है। इसका अर्थ यह नहीं है कि दिया गया अवसर एक दोहरा अवसर हो, अर्थात् एक अवसर तथ्यात्मक आरोपों के लिए एवं दूसरा अवसर प्रस्तावित दंड के लिए, बल्कि दोनों आपस में एक ही होने चाहिए।

न्यायालय इस बात पर एकमत हैं कि मौखिक सुनवाई तब तक निष्पक्ष सुनवाई का एक अभिन्न अंग नहीं है, जब तक कि परिस्थितियां इतनी असाधारण न हों कि बिना मौखिक सुनवाई के एक व्यक्ति एक प्रभावी बचाव पेश नहीं कर सकता। इसलिए, जहां पर जटिल तकनीकी एवं कानूनी प्रश्न का संबंध हों या जहां पर जोखिम बहुत अधिक हो, मौखिक सुनवाई, निष्पक्ष सुनवाई का एक अंग होनी चाहिए। इस प्रकार मौखिक सुनवाई अगर एक वैधानिक आवश्यकता न हो तो इस स्थिति में प्रत्येक मामले के तथ्यों एवं परिस्थितियों को देखते हुए न्यायालय स्वयं ही निर्णय लेगा।

6.3.3 प्रतिकूल साक्ष्य को खंडित करने का अधिकार

प्रतिकूल साक्ष्य को खंडित करने का अधिकार इस पूर्वानुमान पर आधारित है कि संबद्ध व्यक्ति को उसके खिलाफ उपलब्ध साक्ष्यों के बारे में पहले से सूचित कर दिया गया है। हालांकि इसका अर्थ यह नहीं है कि सारे मामलों में प्रतिकूल सामग्री वास्तविक रूप में भेजी गई है। यही पर्याप्त है कि प्रतिकूल सामग्री का सार उपलब्ध कराया गया है, बशर्ते वह भ्रमित करने वाली न हो।

प्रतिकूल साक्ष्य को खंडित करने का अवसर आवश्यक रूप से दो घटकों के विमर्श पर निर्भर करता है– प्रतिपरीक्षा (जिरह) एवं कानूनी–प्रतिनिधित्व

6.3.4 प्रतिपरीक्षा (जिरह)

सत्य को स्थापित करने के लिए जिरह सबसे सशक्त हथियार है। हालांकि अदालतें प्रशासनिक प्रक्रियाओं में जिरह पर तब तक जोर नहीं देतीं, जब तक कि ऐसी स्थिति न हो कि इसके बिना

व्यक्ति एक प्रभावी बचाव न कर सकें। यदि गवाह ने मौखिक गवाही दी है तो इस परिस्थिति में जिरह से मना करना अवश्य ही कुछ हद तक प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का उल्लंघन माना जाएगा। श्रम-संबंधों एवं लोक सेवकों के विरुद्ध अनुशासनात्मक कार्रवाइयों में भी, जिरह को निष्पक्ष सुनवाई के नियमों में सम्मिलित किया गया है।

6.3.5 कानूनी प्रतिनिधित्व

सामान्यत: किसी प्रशासनिक कार्रवाई में किसी अधिवक्ता के माध्यम से कानूनी प्रतिनिधित्व निष्पक्ष सुनवाई के लिए, प्राकृतिक न्याय के नियमों के अनुसार अपरिहार्य अंग नहीं माना जाता है। यह वंचना इस आधार पर सही ठहराई जा सकती है कि अधिवक्ता मामलों को उलझा देते हैं, सुनवाईयों को लंबा कर देते हैं तथा सुनवाइयों की आवश्यक अनौपचारिकता को समाप्त कर देते हैं। यह आगे इस आधार पर सही ठहराया जाता है कि अपनी पसंद का अधिवक्ता रखने का विकल्प अमीरों को गरीबों की तुलना में ज्यादा लाभ पहुंचाएगा, क्योंकि एक गरीब व्यक्ति अपने लिए एक अच्छा वकील नहीं कर सकता। इस तरह यह तथ्य है कि जब तक अभिकरण (एजेंसी) के द्वारा ही किसी प्रकार की कानूनी सहायता उपलब्ध नहीं कराई जाती तो प्रोफेसर एलेन के शब्दों में, कानूनी प्रतिनिधित्व से इनकार, गरीबों के लिए एक 'मिथ्या दयालुता' होगी।

प्रशासनिक कार्रवाईयों में कानूनी प्रतिनिधित्व किस हद तक स्वीकार्य होगी, यह कानून के प्रावधानों पर निर्भर करता है। फैक्टरी (कारखाना) कानून, कानूनी प्रतिनिधित्व की अनुमति नहीं देते, औद्योगिक विवाद अधिनियम इसकी अनुमति न्यायाधिकरण की अनुमति के बाद देते हैं तथा कुछ कानून जैसे कि आयकर अधिनियम कानूनी प्रतिनिधित्व की अनुमति एक अधिकार के रूप में देते हैं।

यद्यपि भारत में न्यायालयों ने यह माना है कि उन परिस्थितियों में जबकि व्यक्ति (अभियुक्त) अशिक्षित है या मामला तकनीकी एवं जटिल है या विशेषज्ञ साक्ष्य रिकॉर्ड में है या कानून का प्रश्न शामिल है या फिर व्यक्ति एक प्रशिक्षित अभियोजक (प्रॉसीक्यूटर) का सामना कर रहा है तो इन परिस्थितियों में उस पक्ष (अभियुक्त) को कुछ पेशेवर (प्रोफेशनल) सहायता उपलब्ध कराई जानी चाहिए, जिससे उसका स्वयं के बचाव का अधिकार अर्थपूर्ण बन सके।

6.3.6 दूसरे पक्ष को जांच की रिपोर्ट दिखाया जाना

बहुत से मामलों में, विशेषकर अनुशासनात्मक मामलों में, ऐसा होता है कि जांच में, कार्रवाई किसी अन्य को सौंपी गई है तथा जांच रिपोर्ट पर कार्रवाई सक्षम प्राधिकारी द्वारा की जाती है। इस तरह की परिस्थितियों में एक बड़ा ही स्वाभाविक एवं महत्वपूर्ण प्रश्न उठ खड़ा होता है कि क्या सक्षम प्राधिकार द्वारा अंतिम फैसला लेने के पहले जांच-अधिकारी द्वारा दी गई जांच-रिपोर्ट की एक प्रति आरोपित कर्मचारी को उपलब्ध कराई गई थी?

यह प्रश्न संवैधानिक एवं प्रशासनिक कानून दोनों के नजरिए से बहुत ही महत्वपूर्ण है। प्रशासनिक कानून का एक आधारभूत (मूल) सिद्धांत यह है कि कोई भी कार्रवाई, जिसके किसी भी व्यक्ति के लिए सिविल परिणाम हो सकते हैं, ऐसी कार्रवाई प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों के पालन के

बिना नहीं की जा सकती। इसलिए अनुशासनात्मक मामलों में, प्रशासनिक कानून में यह प्रश्न हमेशा उठता रहा है कि क्या सक्षम प्राधिकार द्वारा अंतिम फैसला लेने के पहले जांच-रिपोर्ट की प्रति आरोपित कर्मचारी को उपलब्ध कराने में असफल रहना (उपलब्ध न कराना) प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का उल्लंघन होगा?

उसी प्रकार, इस प्रकार की परिस्थिति में संवैधानिक प्रश्न यह होगा कि आरोपित (अभियुक्त) कर्मचारी को जांच-रिपोर्ट की प्रति उपलब्ध न कराना क्या भारतीय संविधान की धारा-311 (2) के प्रावधानों का उल्लंघन होगा? संविधान की धारा-311 (2) इस बात का प्रावधान करता है कि कोई भी सरकारी कर्मचारी तब तक न तो बरखास्त किया जा सकता है, न उसे हटाया जा सकता है और न ही उसको पदावनत किया जा सकता है, जब तक कि उसे उन आरोपों के खिलाफ, जो उसके विरुद्ध लगाए गए हैं, बचाव का पर्याप्त अवसर न दिया जाए या उसे अपना पक्ष रखने का अवसर न दिया जाए।

इसलिए यह हमेशा ही एक परेशान करने वाला प्रश्न रहा है कि क्या अंतिम फैसला होने के पूर्व जांच-अधिकारी की रिपोर्ट आरोपित कर्मचारी को उपलब्ध कराने में असफल रहना धारा-311 (2) के अंतर्गत उसे 'पर्याप्त अवसर' (तर्कसंगत) न दिया जाना माना जाएगा?

इस परिस्थिति में एक ओर संवैधानिक प्रश्न पूछा जा सकता है कि आरोपी को जांच-अधिकारी की रिपोर्ट की प्रति उपलब्ध कराए बिना उस रिपोर्ट के आधार पर प्राधिकार या सक्षम अधिकारी द्वारा लिया गया कोई भी अंतिम फैसला क्या मनमानी नहीं होगा और यह संविधान की धारा-14 का उल्लंघन होगा, जो इस तर्कसंगत एवं सुसंगत सिद्धांत को महानतम रूप में प्रतिष्ठापित करता है।

जांच-अधिकारी के द्वारा प्रस्तुत किए गए तथ्यों का उद्देश्य सिर्फ सरकार के विमर्श के लिए उचित (तर्कसंगत) सामग्री उपलब्ध कराना होता है। अनुशासनिक प्राधिकार जांच-अधिकारी की रिपोर्ट के निष्कर्षों या सिफारिशों को मानने के लिए बाध्य नहीं होता है।

जांच-अधिकारी द्वारा दर्ज किए गए साक्ष्य एवं जांच रिपोर्ट वह सामग्री है, जिसके आधार पर सरकार को अंतिम रूप में फैसला करना होता है। जांच- अधिकारी द्वारा की गई जांच एवं उसके फलस्वरूप तैयार की गई रिपोर्ट का एकमात्र उद्देश्य यही होता है।

प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का प्रयोग अलग-अलग मामलों में उनके तथ्यात्मक पहलुओं के आधार पर अलग-अलग होता है। उदाहरण के लिए, बड़ी सजाओं से संबंधित मामलों में इसकी बड़ी ही सख्त आवश्यकता होती है और इससे पहले कि आरोपी को बरखास्त किया जाए, हटाया जाए या उसकी पदावनति की जाए, उसे अपनी बात रखने का पर्याप्त अवसर कानून के अनुसार दिया जाता है, परंतु छोटी सजाओं से संबंधित मामलों में, आरोपी अधिकारी (कर्मचारी) द्वारा दिया गया सिर्फ स्पष्टीकरण ही प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों की आवश्यकताओं को पूरा कर देता है। कुछ मामलों में मौखिक सुनवाई आवश्यक हो सकती है, लेकिन कुछ अन्य मामलों में इसकी आवश्यकता नहीं होती।

6.3.7 फैसले के बाद सुनवाई

फैसले के पूर्व सुनवाई 'ऑडी अल्टरम पार्टम' (Audi Alteram Partem) नियम का आदर्श मानक है, लेकिन फैसले के बाद सुनवाई पीड़ित व्यक्ति को सुनवाई का एक अवसर प्रदान करती है। हालांकि फैसले के बाद सुनवाई एक अपवाद होना चाहिए न कि नियम। यह निम्नलिखित परिस्थितियों में स्वीकार्य है–

1. जहां पर मूल फैसला पीड़ित व्यक्ति को कोई पूर्वाग्रह या हानि नहीं पहुंचाता।
2. जहां पर एक त्वरित कार्रवाई की तत्काल आवश्यकता है
3. जहां फैसले के पूर्व सुनवाई करना अव्यावहारिक है।

फैसले के पश्चात् सुनवाई का विचार किसी व्यक्ति के प्रति निष्पक्षता एवं प्रशासनिक दक्षता के बीच संतुलन बनाए रखने के लिए विकसित किया गया है। तालमेल का यह उपकरण (साधन) सुप्रीम कोर्ट द्वारा 'मेनका गांधी बनाम भारत संघ' मामले में विकसित किया गया था। 1 जून, 1976 के इस मामले में निवेदक, जो कि एक पत्रकार थी, का पासपोर्ट जनहित में, सरकार के एक आदेश के द्वारा बिना कारण बताये जब्त कर लिया गया। न्यायालय की एक पक्षीय कार्यवाही से पीड़ीत होने पर तो उसने अनुच्छेद-32 के अंतर्गत सुप्रीम कोर्ट में जब्ती के सरकारी आदेश की वैधता को चुनौती देते हुए एक याचिका दायर किया। सरकार का एक तर्क यह था कि इस मामले में 'ऑडी अल्टरम पारट्म' (Audi Alterm Partem) नियम का पालन करने पर पासपोर्ट को जब्त करने का उद्देश्य ही निरर्थक हो जाता। सरकार के इस तर्क को अस्वीकार करते हुए न्यायालय ने ठीक ही कहा कि हालांकि पासपोर्ट जब्त करना एक प्रशासनिक कार्रवाई है, फिर भी निष्पक्ष सुनवाई के नियम की अनदेखी सिर्फ प्रशासनिक सहूलियत के नाम पर करना सही नहीं है। यद्यपि न्यायालय आदेश को पूर्ण रूप से निरस्त नहीं किया इसके विपरीत फैसले के पश्चात् सुनवाई की तकनीक विकसित की गई, जिससे इस पासपोर्ट जब्ती के मामले में प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का सम्मान किया जा सके और एक संतुलन की स्थिति कायम हो।

पाठगत प्रश्न 6.3

1. 'निष्पक्ष सुनवाई के नियम' को परिभाषित करें।
2. एक वैध नोटिस के मुख्य घटकों की चर्चा करें।

6.4 तर्कसंगत निर्णय या व्यक्त/पारित आदेश (Speaking Order)

प्राकृतिक न्याय का तीसरा सिद्धांत, जो समय के साथ विकसित हुआ है, यह है कि पारित होने वाला कोई भी आदेश, जो किसी व्यक्ति के अधिकारों को प्रभावित करता है, अवश्य ही एक (Speaking Order) होना चाहिए। यह कार्रवाई में मनमानेपन से बचने के लिए आवश्यक है।

यह उस मंजिल की तरफ बढ़ता हुआ एक कदम है, जहां समाज कानून के नियमों द्वारा संचालित होता है।

इस मामले का दूसरा पहलू यह है कि उस पक्ष को, जिसके खिलाफ आदेश पारित होता है, निष्पक्षता के लिए, आदेश के पारित होने का कारण अवश्य पता होना चाहिए। उस पक्ष को आदेश पारित होने के कारण जानने का अधिकार है।

वे आदेश जिनके खिलाफ याचिका दायर की जाती है, अवश्य ही Speaking Orders होने चाहिए। अन्यथा पीड़ित पक्ष अपील-प्राधिकार के समक्ष इस बात को दर्शाने की स्थिति में नहीं होता है कि पारित आदेश किस प्रकार से गलत और कानून के विरुद्ध है। बहुत हद तक, इन मामलों में आदेश निरर्थक अपील (Bold Orders) के लिए उपाय प्रस्तुत करता है। हालांकि, यह सत्य है कि प्रशासनिक प्राधिकार, से यह आशा नहीं की जाती कि वे न्यायालयों की तरह विस्तृत आदेश पारित करें। ये बहुत ही विस्तृत एवं लंबे आदेश नहीं होते, लेकिन इनसे कम-से-कम यह अवश्य दिखना चाहिए कि इन आदेशों को पारित करते समय, चाहे वे कितने ही संक्षिप्त क्यों न हों, मस्तिष्क का उपयोग किया गया है। ऐसा कोई निर्धारित प्रारूप नहीं हो सकता कि आदेश किस तरह पारित किए जाएं, लेकिन जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, इसको पारित करने की न्यूनतम जरूरतें अवश्य पूरी होनी चाहिए। सर्वोच्च न्यायालय ने कई बार यह राय दी है कि बिना सुनवाई के आदेश, किसी पक्ष के सुनवाई के अधिकार से उसे वंचित करना है। कुछ मामलों में यह भी फैसला दिया गया है कि आदेश को परिवर्तित करते समय अपील-प्राधिकार के द्वारा इसका कारण भी बताया जाना चाहिए।

पाठगत प्रश्न 6.4

1. तार्किक निर्णय (Reasoned Decision) एवं 'Speaking Orders' का अर्थ स्पष्ट करें।
2. 'Speaking Order' से आप क्या समझते हैं? प्रशासनिक कार्रवाईयों में 'Speaking Order' का महत्व बतलाएं।

6.5 प्राकृतिक न्याय के सिद्धांत के अपवाद

प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों के प्रयोगों को संविधान के अनुच्छेद-14 एवं 21 के प्रावधानों के अंतर्गत स्पष्ट रूप से या कुछ विशेष परिस्थितियों में छोड़ा जा सकता है। इसलिए यदि कानून स्पष्ट रूप से या आवश्यक निहितार्थों के द्वारा प्राकृतिक न्याय के नियमों को छोड़ देता है तो मनमानेपन के आधार पर यह नियमों की अवहेलना नहीं मानी जाएगी।

6.5.1 आपात स्थिति में निषेध (अपवर्जन)

वैसे आपात स्थिति के असाधारण मामलों में जब निरोधक या निवारक त्वरित कार्रवाई की आवश्यकता होती है, नोटिस एवं सुनवाई को छोड़ा जा सकता है। जैसे कि यदि कोई खतरनाक इमारत को गिराने के मामले में था, निवेशकों के हितों की रक्षा के लिए किसी कंपनी को बंद करने के मामले में।

यद्यपि किसी आपात स्थिति का प्रशासनिक निर्धारण, जिसके द्वारा प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का निषेध किया जाता है, अंतिम नहीं हो सकता। न्यायालयें ऐसी स्थितियों की समीक्षा कर सकते हैं।

प्राकृतिक न्याय स्पष्ट रूप से लचीला एवं बाध्यकारी दबाव की परिस्थितियों में संपुटन करने के लिए उत्तरदायी है। इस प्रसंग में सर्वोच्च न्यायालय ने कहा है, ''प्राकृतिक न्याय को अवश्य ही इसकी उचित सीमाओं के भीतर सीमित किया जाना चाहिए और इसे उन्मुक्त होने की अनुमति नहीं दी जानी चाहिए। प्राकृतिक न्याय की धारणा एक भव्य कुलीनता है, जिस पर राष्ट्र अपनी घोषित एवं नियत सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक लक्ष्यों की तरफ सरपट दौड़ लगाता है।

6.5.2 गोपनीयता के मामले में अपवाद

एक मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने यह फैसला दिया कि पुलिस द्वारा निगरानी रजिस्टर (पंजिका) का रख-रखाव एक गोपनीय दस्तावेज है। न तो वह व्यक्ति जिसका नाम इस रजिस्टर में दर्ज है और न ही किसी अन्य सामान्य व्यक्ति की इस तक पहुंच होनी चाहिए। इसके अलावा, न्यायालय ने यह पाया कि इस परिस्थिति में प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का अनुपालन निगरानी के उद्देश्यों को निष्फल कर देगा एवं इस बात की पूरी संभावना है कि न्याय का उद्देश्य पूरा होने के बदले विफल हो जाए।

इसी सिद्धांत का पालन 'एस.पी. गुप्ता बनाम भारत संघ' मामले में किया गया, जब सर्वोच्च न्यायालय ने कहा कि सुने जाने का कोई भी अवसर उच्च न्यायालय के एक अतिरिक्त न्यायाधीश को नहीं दिया जा सकता, इससे पहले कि उसके नाम की पुष्टि होने से पहले उसे हटा दिया जाए। यहां यह उल्लेख करना आवश्यक है कि भारत जैसे देश में निगरानी लोगों की आजादी में एक गंभीर अवरोध है। इसलिए निगरानी रजिस्टार का रख-रखाव पूरी तरह से इस प्रकार प्रशासनिक एवं गैर-न्यायिक नहीं हो सकता कि प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों को अमल में लाना कठिन हो जाए।

6.5.3 रोजमर्रा/नित्यचर्या के मामलों में अपवाद

एक विश्वविद्यालय के छात्र का नाम असंतोषजनक शैक्षिक प्रदर्शन के कारण विश्वविद्यालय से हटा दिया गया। इस मामले में फैसले के पूर्व कोई सुनवाई नहीं की गई। सर्वोच्च न्यायालय ने माना कि इस शैक्षिक अधिनिर्णय की प्रकृति, सुने जाने के किसी भी अवसर के विरुद्ध थी। इसलिए यदि सक्षम शैक्षिक अधिकारी छात्र के एक निश्चित समय तक प्रदर्शन की जांच एवं मूल्यांकन करने के बाद उसके प्रदर्शन को असंतोषजनक घोषित करते, तब प्राकृतिक न्याय के नियमों को छोड़ा जा सकता था। उसी प्रकार जब आयोग ने एक उम्मीदवार की परीक्षा रद्द कर दी, क्योंकि उसने नियम के विरुद्ध उत्तर पुस्तिका के हर पन्ने पर अपना क्रमांक लिख दिया था, सर्वोच्च न्यायालय ने माना कि इस मामले में प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का पालन नहीं हुआ। न्यायालय ने यह माना कि शैक्षिक क्षेत्र में सुने जाने के नियम का सख्ती से पालन होना चाहिए कि यदि इसे अनदेखा किया जाए तो यह न सिर्फ जनहित के विरुद्ध होगा, बल्कि यह निष्पक्षता की सामाजिक भावना को भी नष्ट करेगा। यद्यपि, यह अपवाद अनुशासनात्मक मामलों में लागू नहीं होना चाहिए, जहां पर शैक्षिक निकाय अशैक्षिक परिस्थितियों की अनुमति देता है।

6.5.4 अव्यावहारिकता पर आधारित अपवाद (अपवर्जन)

प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का प्रयोग प्रशासनिक अव्यवहारिकता के आधार पर छोड़ा जा सकता है। उदाहरण के लिए, एक मामले में जहां पूरी एम.बी.ए. प्रवेश परीक्षा विश्वविद्यालय द्वारा इसलिए

टिप्पणी

रद्द कर दी गई, क्योंकि सामूहिक नकल हुई थी, न्यायालय ने यह माना कि इसे मामले में सारे प्रतियोगियों को नोटिस और सुनवाई संभव नहीं थी, क्योंकि प्रतियोगिता राष्ट्रीय स्तर की थी। इस प्रकार न्यायालय ने इस मामले में प्रशासनिक अव्यवहारिकता के आधार पर प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों के अपवर्जन को सही ठहराया।

6.5.5 अंतरिम निवारक कार्रवाई के मामलों में अपवाद (अपवर्जन)

यदि एक प्रशासनिक प्राधिकार का निलंबन आदेश अंतिम न होकर एक निवारक कार्रवाई है, तो इस मामले में प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों के प्रयोग छोड़े जा सकते हैं। एक मामले में जहां एक संस्था ने एक आदेश पारित करके एक छात्र को संस्था परिसर में प्रवेश करने एवं कक्षाओं में शामिल होने से तब तक के लिए रोक दिया, जब तक कि उसके विरुद्ध अपने एक साथी को चाकू भोंकने का आपराधिक मामला निलंबित था। इस मामले में दिल्ली उच्च न्यायालय ने यह माना कि इस प्रकार के आदेश की तुलना एक निलंबन के उस आदेश से की जा सकती है, जिसमें जांच लंबित हो, और इस तरह की कार्रवाई एक निवारक कार्रवाई मानी जाएगी, जिसका उद्देश्य संस्था परिसर में शांति बनाए रखना है और इसलिए प्राकृतिक न्याय के सिद्धांत इस मामले में लागू नहीं होते।

इस प्रकार, प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों को छोड़ा जा सकता है, यदि इसका प्रयोग उस कार्रवाई को व्यर्थ करता है, जो की जानी है या फिर यह कानून के शासन को हतोत्साहित और पंगु बनाता है। सर्वोच्च न्यायालय ने, 'मेनका गांधी बनाम भारत संघ' मामले में यह पाया कि यदि नोटिस और सुने जाने का अधिकार देने का कर्तव्य त्वरित कार्रवाई में बाधा पहुंचाता है, विशेषकर निवारक प्रकृति की कार्रवाई में, तो इस परिस्थिति में पूर्व सूचना (नोटिस) के अधिकार एवं सुने जाने के अवसर को छोड़ा जा सकता है।

6.5.6 विधायी कार्रवाई के मामलों में अपवाद

पूर्ण या अधीनस्थ विधायी कार्रवाई प्राकृतिक न्याय के नियमों के विषय नहीं है, क्योंकि ये नियम बिना किसी व्यक्ति विशेष के संदर्भ में कोई नीति निर्धारित करते हैं। इसी तर्क के आधार पर प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों को संविधान के एक प्रावधान द्वारा भी छोड़ा जा सकता है। भारत का संविधान अनुच्छेदों 22, 31(अ), (ब), (स) एवं 31(2) में एक नीति के तहत, प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों के अपवर्जन का प्रावधान करता है। तथापि यदि विधायी अपवर्जन मनमाना, अनुचित एवं अकारण है तो न्यायालय इस तरह के प्रावधान को अनुच्छेद 14 एवं 21 के तहत समाप्त कर सकते हैं। एक मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने यह माना कि प्राकृतिक न्याय के किसी सिद्धांत का उल्लंघन नहीं हुआ, जब सरकार ने कुछ दवाओं के मूल्य निर्धारण संबंधी अधिसूचना जारी की। न्यायालय ने यह तर्क दिया कि चूंकि यह अधिसूचना एक प्रशासनिक कार्रवाई न होकर एक विधायी कार्रवाई थी, इसलिए इस मामले में प्राकृतिक न्याय के सिद्धांत लागू नहीं होते।

6.5.7 जहां व्यक्ति के किसी भी अधिकार का उल्लंघन नहीं होता

जहां किसी व्यक्ति को विधि द्वारा कोई अधिकार नहीं दिए गए हों और न ही इस तरह का कोई अधिकार सामान्य कानून के द्वारा मिले हों, वहां प्राकृतिक न्याय के सिद्धांत लागू नहीं होते। इसे

सर्वोच्च न्यायालय के एक फैसले के द्वारा समझाया जा सकता है। दिल्ली किराया नियंत्रण अधिनियम सीमित किराएदारी समझौते का सृजन करता है। अधिनियम के अनुच्छेद 21 एवं 37 सीमित किराएदारी समझौते की समाप्ति का प्रावधान करता है। इन अनुच्छेदों का संयुक्त प्रभाव यह है कि अवधि समाप्त होने के बाद सीमित किराएदारी समझौता समाप्त किया जा सकता है। सर्वोच्च न्यायालय ने माना कि सीमित किराएदारी समझौते की अवधि समाप्ति के बाद, एक व्यक्ति को यह अधिकार नहीं है कि वह कब्जा अपने पास रखे और इसलिए उसका कोई भी अधिकार प्रतिकूल रूप से प्रभावित नहीं होता। प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों द्वारा जिनकी गारंटी होती है।

6.5.8 सांविधिक अपवाद या आवश्यकता के मामले में अपवाद

किसी व्यक्ति को पूर्वाग्रह के आधार पर अयोग्य नहीं ठहराया जा सकता, यदि वह मामले को तय करने के लिए या कार्रवाई करने के लिए एकमात्र सक्षम अधिकारी है। यदि इस अपवाद को स्वीकृत नहीं किया जाए तो मामले को तय करने का और कोई तरीका उपलब्ध नहीं होगा और पूरा प्रशासन ठप्प हो जाएगा। लेकिन यह आवश्यकता अवश्य ही वास्तविक एवं सच्ची होनी चाहिए। इसलिए इस मामले में आवश्यकता का सिद्धांत लागू नहीं होता, जब पाठ्य-पुस्तक चयन समिति के सदस्य ही उन पुस्तकों के लेखक थे, क्योंकि चयन समिति का सांविधान सरकार द्वारा आसानी से बदला जा सकता था।

6.5.9 संविदात्मक व्यवस्था अनुबंध के मामले में अपवाद

एक मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने माना कि किसी संविदात्मक क्षेत्र में व्यवस्था की समाप्ति के मामले में प्राकृतिक न्याय के सिद्धांत लागू नहीं होते। किसी अनुबंध की समाप्ति न तो एक अर्द्धन्यायिक और न ही एक प्रशासनिक कार्रवाई है, इसलिए इस स्थिति में न्यायिक रूप से कार्रवाई करने का दायित्व लागू नहीं होता।

पाठगत प्रश्न 6.5

1. प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों के कुछ 'अपवादों' का उल्लेख करें।
2. प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का प्रयोग, संविधान के अनुच्छेद 14 एवं 21 के तहत या तो स्पष्ट या आवश्यक निहितार्थों के द्वारा निषेध किया जा सकता है। (सही/गलत)
3. प्राकृतिक न्याय, परिस्थितियों के बाध्यकारी दबाव के तहत (घृष्ट) स्पष्ट रूप से लचीला और संपुटन के लिए उत्तरदायी है। (सही/गलत)

आपने क्या सीखा

- **'प्राकृतिक न्याय'** न्यायालयों द्वारा विकसित उच्च प्रक्रियात्मक सिद्धांतों का प्रतिनिधित्व करता है, जिसका प्रत्येक प्रशासनिक संस्था को ऐसा कोई भी फैसला लेने में पालन करना चाहिए,

जो किसी व्यक्ति के अधिकारों की विपरीत रूप से प्रभावित करता है। प्राकृतिक न्याय के सिद्धांत संविधान के विभिन्न अनुच्छेद द्वारा में दृढ़ता से स्थापित हैं। प्राकृतिक न्याय के सिद्धांत मुख्यत: दो हैं-

(क) कोई भी अपने स्वयं के मामले में न्यायाधिश (जज) नहीं हो सकता तथा

(ख) प्रत्येक पक्ष को सुने जाने का अवसर दिया जाना चाहिए।

- **'पूर्वाग्रह के विरुद्ध नियम'**- जो कि इस बात पर जोर देता है कि न्यायाधीश (जज) अवश्य ही निष्पक्ष होना चाहिए एवं उसे मामले का निर्णय उपलब्ध साक्ष्यों के आधार पर निष्पक्षता से करना चाहिए।
- किसी निर्णय को प्रभावित करने वाले बहुत से कारक हो सकते हैं। ये हैं- व्यक्तिगत पूर्वाग्रह, आर्थिक पूर्वाग्रह, विषय-वस्तु पूर्वाग्रह, विभागीय पूर्वाग्रह एवं पहले से बनाई गई धारणा के आधार पर पूर्वाग्रह।
- **'निष्पक्ष सुनवाई का नियम'** जिसका अर्थ है कि किसी भी व्यक्ति को स्वयं के बचाव का पर्याप्त अवसर मिलना चाहिए। इस नियम के महत्वपूर्ण घटक हैं- नोटिस का अधिकार, मामले एवं साक्ष्यों को पेश करने का अधिकार, प्रतिकूल साक्ष्य को गलत साबित करने का अधिकार, जिरह, कानूनी प्रतिनिधित्व, दूसरे पक्ष को जांच की रिपोर्ट दिखाया जाना एवं जांच के बाद सुनवाई।
- उसी प्रकार, **प्राकृतिक न्याय** इस बात की मांग करता है कि प्रत्येक फैसले में इस तरह के फैसले तक पहुंचने के कारण का उल्लेख होना चाहिए।
- प्राकृतिक न्याय के सिद्धांत के बहुत से अपवाद हैं। ये अपवाद हैं-

  आपात स्थिति में अपवाद, गोपनीयता, रोजमर्रा के मामले, अव्यावहारिकता पर आधारित अपवाद, अंतरिम निवारक कार्रवाई के मामलों में अपवाद, विधायी कार्रवाई, जहां व्यक्ति के किसी भी अधिकार का उल्लंघन नहीं होता, सांविधिक अपवाद या आवश्यकता, संविदात्मक व्यवस्था या अनुबंध।

पाठांत प्रश्न

1. 'पूर्वाग्रह के विरुद्ध नियम' की व्याख्या करें। विभिन्न प्रकार के पूर्वाग्रहों की चर्चा करें, जो प्राशसनिक प्राधिकारों द्वारा किए गए फैसलों को प्रभावित करते हैं।
2. 'निष्पक्ष सुनवाई के नियम' की विवेचना करें। इस नियम के विभिन्न पहलुओं (पक्षों) का आलोचनात्मक विश्लेषण करें।
3. 'स्पीकिंग ऑर्डर' (Speaking Orders) को परिभाषित करें।
4. प्राकृतिक न्याय के सिद्धांत के विभिन्न अपवादों का उल्लेख करें।

पाठगत प्रश्नों के उत्तर

6.1

1. प्राकृतिक न्याय का अर्थ है- निष्पक्षता, युक्तिसंगतता, न्याय संगतता एवं समानता।
2. संविधान के अनुच्छेद 14 एवं 21 प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों के लिए दृढ़ आधार प्रदान करते हैं। अनुच्छेद-14 मनमाने कार्रवाईयों का निषेध करता है, जबकि अनुच्छेद-21 उन मामलों में ठोस एवं प्रक्रियात्मक निष्पक्षता प्रदान करता है, जो किसी व्यक्ति के जीवन एवं स्वतंत्रता को प्रभावित करते हैं।
3. प्राकृतिक न्याय के दो मुख्य सिद्धांत हैं-

   (क) कोई भी अपने स्वयं के मामले में न्यायाधीश (जज) नहीं हो सकता तथा

   (ख) प्रत्येक पक्ष को सुने जाने का अवसर दिया जाना चाहिए।

6.2

1. 'पूर्वाग्रह' (पक्षपात) का अर्थ है किसी पक्ष या मामले में अनजाने में या जानबूझकर किया गया पक्षपात।
2. उदाहरण हैं:-

   (क) न्यायकर्ता अधिकारी की किसी एक कंपनी में हिस्सेदारी है।

   (ख) चयन समिति का एक अधिकारी स्वयं ही पद के लिए आवेदनकर्ताओं में से एक है।

   (ग) सरकारी परिवहन कंपनी का एक अधिकारी सरकारी एवं निजी गाड़ियों की जांच के लिए अधिकृत है।
3. पूर्वाग्रह के विभिन्न पहलू/प्रकार हैं-
   1. व्यक्तिगत पूर्वाग्रह
   2. आर्थिक पूर्वाग्रह
   3. विषय-वस्तु पूर्वाग्रह
   4. पहले से बनी हुई धारणा के आधार पर पूर्वाग्रह तथा
   5. विभागीय पूर्वाग्रह

6.3

1. 'निष्पक्ष सुनवाई' का नियम यह कहता है कि एक व्यक्ति को स्वयं के बचाव का अवसर अवश्य ही दिया जाना चाहिए।
2. एक नोटिस (समन) के महत्वपूर्ण घटक हैं-
   1. समय, स्थान एवं सुनवाई की प्रकृति

2. विधिक प्राधिकार जिसके तहत सुनवाई होनी है
3. विशिष्ट अभियोगों (आरोपों) का विवरण, जिन्हें उस व्यक्ति के द्वारा दिया जाना है।

6.4

1. तर्कसंगत निर्णय फैसला या 'स्पीकिंग ऑर्डर' का अर्थ है कि जो आदेश किसी व्यक्ति विशेष के अधिकारों को प्रभावित करता है, वह निश्चित ही एक तर्कसंगत फैसला होना चाहिए। वह पक्ष जिसके विरुद्ध आदेश पारित होता है, निष्पक्षता की दृष्टि से उस व्यक्ति को पारित आदेश के कारण अवश्य पता होने चाहिए।
2. 'स्पीकिंग ऑर्डर' वह आदेश है, जो उन कारणों का उल्लेख करता है, जिसके आधार पर किसी विशेष निर्णय पर पहुंचा गया है। यह मनमानेपन से बचने में मदद करता है। यह तंत्र में विश्वास एवं भरोसा पैदा करता है। यदि पीड़ित पक्ष चाहे तो यह अपील के लिए जमीन (आधार) प्रदान करता है।

6.5

1. प्राकृतिक न्याय के सिद्धांत के कुछ महत्वपूर्ण अपवाद हैं–आपात स्थिति में अपवाद, गोपनीयता, रोजमर्रा के मामले, विधायी कार्रवाई, जहां व्यक्ति के किसी भी अधिकार का उल्लंघन नहीं होता, सांविधिक अपवाद या आवश्यकता, संविदात्मक व्यवस्था या अनुबंध।
2. सही
3. सही

7

कानून (विधि) की प्रविधियां (तकनीक) एवं निवारण (प्रतिकार)-I

दुनिया में कानून बनाने वालों तथा तोड़ने वालों के बीच हमेशा प्रतिस्पर्द्धा चलती रहती है। जीवन के हर स्तर पर खास तौर पर बौद्धिक स्तर और प्रौद्योगिकी का विकास इसका प्रमुख कारण है। इसीलिए कानून निर्माताओं और समाधान या उपचारों के बीच हमेशा उलझन बनी रहती है, जिसे प्रमुख रूप से दो भागों में विभाजित किया गया है-अपराधिक दंड प्रक्रिया संहिता और सिविल प्रक्रिया संहिता। कानून निर्माताओं के सामने समस्या यह है कि अपराध-कर्ता को दंड कैसे दें। जाने-माने विधि-वेत्ताओं और विधि शोधकर्ताओं ने दंड देने की प्रक्रिया को लेकर अपने-अपने मत प्रस्तुत किए हैं, जिन्हें अपराधिक दंड प्रक्रिया संहिता और सिविल प्रक्रिया संहिता के अंतर्गत सूचीबद्ध किया है। पूरे विश्व में हुए अपराधों के लिए दिए गए दंडों का विशेषत्व और मूल्यांकन करते हुए इस प्रकार के तकनीकों का विकास हुआ। कानून की प्रविधियां और उपचार इस प्रसिद्ध कथन पर आधारित है कि ''प्रत्येक ऐसा विशिष्ट अपराध, जिसके लिए कोई व्यक्ति आरोपित है, उस पर वह अलग से आरोपित होगा और हर ऐसे अपराध के लिए उस पर अलग से अभियोग चलाया जाएगा।''

उद्देश्य

यह पाठ पढ़ने के पश्चात् आप-

- 'अपराधिक कानून' के बारे में जान पाएंगे,
- 'सिविल कानून' को समझ पाएंगे,
- विभिन्न प्रकार के दंडों की पहचान कर पाएंगे,
- 'अभिवचन' (pleading) का अर्थ जान सकेंगे और इसके सिद्धांतों की व्याख्या कर पाएंगे,
- 'प्रारूपण' का अर्थ जान पाएंगे और उसके सिद्धांतों को समझ पाएंगे,
- सिविल कानून के अंतर्गत उपलब्ध विभिन्न उपचारों की व्याख्या कर पाएंगे,

- अपराधिक कानून के अंतर्गत उपलब्ध विभिन्न उपचारों को जान पाएंगे,
- रिट या 'लेख' एवं उसके विभिन्न प्रकारों का वर्णन कर पाएंगे एवं
- जनहित याचिका (PIL) के अर्थ को स्पष्ट कर पाएंगे।

7.1 दंड के प्रकार/दंड के विभिन्न सिद्धांत

दंड के विभिन्न प्रकार दंड के विभिन्न सिद्धांतों पर आधारित है। वे इस प्रकार हैं–

निवारक सिद्धांत

दंड प्राथमिक रूप से वहां निवारक है, जहां उसका उद्देश्य अपराध को व्यर्थ सिद्ध करना है और जिसके द्वारा दूसरों को सबक मिल सके। इस सिद्धांत और दंड के प्रकार के पीछे उद्देश्य यह है कि 'अपराध अपराधी के लिए एक गलत सौदा है'। इस प्रकार इस सिद्धांत के मानने वाले बड़े दंड अर्थात् प्राणदंड आदि देने की हिमायती हैं।

निरोधक सिद्धांत

इस सिद्धांत का उद्देश्य अन्याय करने वालों को निर्योग्य या विकलांग बना देना है और अपराधी के मन में दंड का भय पैदा करना है। यह सिद्धांत निम्नलिखित तीन प्रकारों का काम करता है–

- अपराधी के मन में दंड का भय उत्पन्न करना।
- अपराधी को तत्काल कोई अपराध करने से रोकने के लिए अक्षम (अपाहिज) बना देना
- अपराधी को सुधारात्मक और शिक्षा प्रक्रिया के द्वारा उसमें बदलाव लाना, जिससे वह दोबारा अपराध न करे।

इस सिद्धांत के समर्थक कारावास या जुर्माना आदि दंड की वकालत करते हैं।

सुधारात्मक सिद्धांत

इस सिद्धांत के अनुसार 'अपराध' किसी चरित्र और अपराधी की स्वभाव के बीच संघर्ष से पैदा होता है। इस सिद्धांत का उद्देश्य अपराधी के चरित्र को मजबूत बनाना, जिससे वह अपना आत्मनिरीक्षण कर मानसिक स्थिति पर नियंत्रण कर सके। इस तरह यह सिद्धांत इस उक्ति पर आधारित है कि 'आप हत्या के द्वारा उपचार नहीं कर सकते' और 'अपराध एक बीमारी के जैसा है।' यह सिद्धांत अपराधी के सुधार के लिए सुधारात्मक तरीके भी अपनाने का समर्थन करता है। यह प्रणाली रोजगार और स्व-रोजगार के साधनों का रास्ता खोलकर अपराधी को प्रेरणा देता है। इस तरह अपराधी कुछ कमाने लगता है, जिससे उसकी आर्थिक स्थिति में सुधार होता है और उसका अपराध करने का कोई उद्देश्य नहीं रहता।

इस सिद्धांत के समर्थक जेल, परख-अवधि, सुधार-गृहों और व्यवसायिक प्रशिक्षण आदि के पक्षधर हैं।

दंड की इन अवधारणाओं सीमाबद्ध कारावास तथा बंदी गृह के संबंध में एक महत्वपूर्ण बात यह है कि यद्यपि यह समानार्थक माने जाते हैं और दोनों का प्रयोग भी एक-दूसरे के लिए किया जाता है, लेकिन दोनों में निम्न अंतर है। बंदीगृह ऐसा स्थान है, जहां अपराधी कुछ अवधि के लिए सजा काटता है, जबकि सीमाबद्ध कारावास में लंबे समय तक सजा काटनी होती है। बंदीगृह में सीमाबद्ध कारावास की तुलना में कम सुविधाएं उपलब्ध है। बंदीगृह में अपराधी को सिर्फ खाना, रहना और सुरक्षा की सुविधा उपलब्ध है, जबकि सीमाबद्ध कारावास में इन सुविधाओं के अलावा बहुत कुछ अन्य सुविधाएं भी प्रदान की जाती है।

प्रतिकारी सिद्धांत

इस सिद्धांत के अनुसार न्याय की प्रशासन व्यवस्था मूलत: किसी भी बौद्धिक प्रक्रिया प्रतिकारी के भावनाओं का प्रायश्चित करने के लिए प्रयत्न करता है। इस तरह की सजा न केवल पुराने निजी प्रतिशोध के गलत इरादे का प्रायश्चित करती है, बल्कि विस्तृत रूप से समाज में उसी तरह की भावनाओं का शमन भी करती है। यह सिद्धांत प्रतिशोधात्मक न्यायिक विचार पर आधारित है, यानी दांत के बदले दांत और आंख के बदले आंख। यह सिद्धांत इस प्रकार है कि अगर कोई स्त्री/पुरुष दूसरे किसी स्त्री/पुरुष के आंख खोने का जिम्मेदार हैं तो उसकी अपनी आंख भी खो सकती है। अगर कोई व्यक्ति दूसरे व्यक्ति के पैर पर हमला करता है तो दूसरा व्यक्ति भी उस पर हमला कर सकता है। अगर कोई व्यक्ति किसी दूसरे का दांत तोड़ता है तो दूसरा उसका दांत भी तोड़ सकता है। कांत महोदय के दंड प्रतिकारी सिद्धांत के अनुसार दंड किसी परिणाम द्वारा उचित नहीं ठहराया जाता, लेकिन अपराधी के अपराध के द्वारा सरल किया जाता है। अपराधी को अपने किए हुए अपराध का फल तो भुगतना है, नहीं तो अन्याय होगा। इसके अलावा अपराध को देखते हुए दंड तय किया जाना चाहिए। कांत ने दावा किया है कि हत्या अपराध के लिए अपराधी की मृत्यु एकमात्र सही दंड है। उन्होंने कहा है कि ''जो कोई भी हत्या का अपराध करे, उसकी सजा मौत है।''

क्षतिपूर्ति सिद्धांत

इस सिद्धांत के अनुसार दंड का मूल उद्देश्य न केवल भविष्य में होने वाले अपराध को रोकना, बल्कि अपराधी के पीड़ितों को क्षतिपूर्ति प्रदान करना है। इस सिद्धान्त का यह भी मानना है कि अपराध करने का मुख्य कारण लोभ होता है। अत: यदि अपराधी को अपराध से कमाये गये धन या लाभ को लौटाने का आदेश दिया जाता है तो अपराध समाप्त हो जाएगें।

पाठगत प्रश्न 7.1

1. 'दंड' के विभिन्न सिद्धांतों का उल्लेख करें।
2. 'दंड' के क्षतिपूर्ति सिद्धांत की क्या मान्यता है?
3. क्या 'दंड' आवश्यक है?

7.2 'अभिवचन' (Pleadings) और उसके विभिन्न सिद्धांत

इंग्लैंड के हाब्सव्यूरी कानून के अनुसार, सिविल मुकदमें में न्यायालय में सुनवाई के दौरान अपना पक्ष प्रस्तुत करने के उद्देश्य में लिखित रूप से दस्तावेज तैयार करने के लिए 'अभिवचन' का उपयोग किया जाता है।

पी.सी. मोघा के अनुसार 'अभिवचन' किसी विवाद में प्रत्येक पक्ष द्वारा न्यायालय में मुकदमें की सुनवाई के दौरान लिखित रूप में दिए गए कथन एवं तर्क है, जिनमें ऐसी सभी तथ्यों का ब्योरा या जानकारी होती है, जिनकी विपक्ष को अपना पक्ष प्रस्तुत करने के लिए आवश्यकता होती है।

'अभिवचन' के विभिन्न सिद्धांत

सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश VI नियम-2 के अनुसार, 'अभिवचन' के विभिन्न सिद्धांत इस प्रकार हैं-

प्रत्येक **''अभिवचन' में तथ्यों का उल्लेख होना चाहिए, कानून का नहीं'':**

'अभिवचन' लिखते समय मूलत: दो नियमों पर जोर दिया जाता है- इनमें पहला सकारात्मक है और दूसरा नकारात्मक। पहले नियम के अनुसार अभिवचन में तथ्यों का उल्लेख होना चाहिए और दूसरे के अनुसार कानून का उल्लेख नहीं होना चाहिए। इसका तात्पर्य यह है कि अभिवचन में निम्न बातों का उल्लेख नहीं होना चाहिए-

(क) कानून के प्रावधान

(ख) कानून के निष्कर्ष एवं

(ग) मिश्रित कानून तथा तथ्यों के निष्कर्ष

न्यायालय स्पष्ट कारणों से, विवाद के पक्षों द्वारा अपनी दलीलों में उठाए गए तथ्यों से सम्बन्धित कानून का नोटिस लेने के लिए बाध्य है। इस प्रकार यदि किसी विवाद में 'अपने आप ही' न्यायालय को यह पता चलता है कि पुलिस के उपमहानिरीक्षक द्वारा जिस नियम या कानून के अर्न्तगत याचिका को खारीज किया है वह अधिकार से परे है, और इस लिए अमान्य है, तो न्यायालय का यह दायित्व है कि खारिज करने के ऐसे आदेश को वह गैर-कानूनी या अवैध घोषित कर दे।

इस नियम के निम्न अपवाद हैं-

(क) विदेशी कानून-न्यायालय विदेशी कानून को ध्यान में रखने के लिए मजबूर नहीं।

(ख) रीति-रिवाज

(ग) कानून और तथ्यों के मिश्रित प्रश्न

(घ) कानूनी तर्क एवं

(ङ) कानून के अनुमान

प्रत्येक अभिवचन को वस्तुपरक तथ्य और केवल वस्तुपरक तथ्य प्रकट करने चाहिए

इस सिद्धांत के निम्न तीन पक्ष या पहलू होते हैं –

(क) हर 'अभिवचन' केवल वस्तुपरक तथ्यों को प्रकट करे। एक 'अभिवचन' में अधिभार की समस्या से निपटने के लिए दूसरा नियम यह कहता है कि केवल वस्तुपरक तथ्यों का उल्लेख होना चाहिए। विधि-संग्रह के द्वारा दिया गया उत्तर यह है कि वस्तुपरक तथ्य वे तथ्य हैं, जो मुद्दई द्वारा मुकदमा दायर करने या प्रतिवादी निश्चित रूप से अपनी प्रतिरक्षा संस्थापित करने के आरोपी हैं।

(ख) हर 'अभिवचन' में अवश्य ही सारे वस्तुपरक तथ्यों को प्रकट करना चाहिए : एस.एन. बालकृष्ण बनाम जॉर्ज फर्नांडीस (एआईआर, 1969) के मुकदमें में उच्चतम न्यायालय ने कहा है कि एकल वस्तुपरक तथ्य का विलोपन (omission) एक अधूरी कार्रवाई के कारण की ओर ले जाता है और दावे का बयान खराब हो जाता है।

इस तरह वस्तुपरक तथ्यों का कोई भी विलोपन (omission) किसी भी कार्रवाई के कारणों की ओर नहीं ले जाता।

(ग) हर 'अभिवचन' केवल वस्तुपरक तथ्यों के बारे में कहना चाहिए, जो कार्रवाई के वर्तमान अवस्था की वस्तु (सामग्री) है। इस तरह प्रतिपक्ष के यथासंभव आपत्ति के बिना संदर्भ विशेष में विरोधी के जवाबों का पूर्वाभास करने की कोई आवश्यकता नहीं।

दूसरे नियम के अपवाद निम्नलिखित हैं–

(क) स्थिति-पूर्वता

एक पक्षकार को अपनी याचिका में प्रमाण देने के लिए किसी 'पूर्वस्थिति' का पालन करने की आवश्यकता नहीं। उदाहरण के तौर पर 'क' 'ख' के लिए निश्चित दर पर एक घर बनाने के लिए सहमत होता है। संविदा के शर्तानुसार 'ख' के निर्माता के प्रमाण-पत्र के आधार पर ही भुगतान किया जाएगा कि इस परिमाण तक काम बचा है। अगर रुपये के लिए 'क' 'ख' के खिलाफ मुकदमा दायर करता है तो 'ख' को अपने निर्माता से प्रमाण-पत्र प्राप्त करना और पेश करना 'क' के कार्रवाई के अधिकार की 'पूर्वस्थिति' है। यहां 'ख' के लिए जरूरी नहीं कि वह अपने अर्जी दावा में यह उल्लेख करें कि संबंधित प्रमाण-पत्र उसने प्राप्त किया है। वह बिना किसी प्रमाण-पत्र के अनुबंध रकम के लिए प्रत्यक्षतः अर्जी दावा का प्रारूप तैयार कर सकता है। यह 'ख' के लिए जो अभिवचन कर सकती है कि बचे हुए रकम के लिए कोई प्रमाण-पत्र दें।

(ख) विधि (कानून) का अनुमान

सीपीसी के आदेश VI, नियम 13 के अनुसार किसी भी 'अभिवचन' में आवश्यक किसी भी वस्तुस्थिति में आरोपित दूसरे पक्ष पर कानून यह अनुमान करे कि जब तक पहले यह विशेष रूप से खारिज न हो, प्रमाण का उत्तरदायित्व दूसरे पक्ष पर होता है। उदाहरण के लिए सिर्फ बिल पर ही अर्जी दावा होता है, न कि वास्तविक दावे पर विनिमय पत्र पर सोच-विचार किया जाता है।

(ग) प्रलोभन के मामले

कभी–कभी यह जरूरी है कि प्रारंभिक प्रकथन के साथ एक अर्जी दावा की शुरूआत की जाए, जिससे इस बात की जानकारी हो कि वे क्या कारोबार करते है, आपस में वे कैसे संबंधित या जुड़े हैं और विवाद संबंधी अन्य परिस्थितियां क्या–क्या है। ये सारे तथ्य कार्रवाई के कारणों के लिए जरूरी न होने की वजह से महत्वपूर्ण भी नहीं है। इसे प्रलोभन का विषय कहा जाता है। इंग्लैंड में यह मान्य है और उसी आधार पर हमारे देश में भी।

हर 'अभिवचन' में उन तथ्यों का उल्लेख अवश्य होना चाहिए, जिस पर वह पक्ष अपने 'अभिवचन' में आधार बनना चाहता है और न कि ऐसे साक्ष्य, जो अभी प्रमाणित करने हैं। यह सिद्धांत यह निर्देश देता है कि 'अभिवचन' में वे सभी वास्तविक तथ्य होने चाहिएं, जिन पर कोई पक्ष अपना दावा पेश करना चाहता है, न कि ऐसे साक्ष्य जिनके द्वारा वह ऐसा प्रमाणित होता है। एक पक्ष द्वारा ऐसे साक्ष्य/ गवाह/ गवाही जिसके द्वारा वह तथ्यों को प्रमाणित करना चाहता है, का अभिवचन में उल्लेख करना आवश्यक नहीं है। यह अति आवश्यक है कि अभिवचन विरोधी पक्ष को परेशान करने वाला न हो और न ही ऐसे तथ्य जिनका अर्थात् प्रतिपक्ष को, मुकदमा चलने के दौरान सामना करना पड़े।

नियम का व्यावहारिक या विशेष प्रयोग

मानसिक स्थिति

आदेश–6, नियम–10 के अनुसार किसी विशेष वस्तु से संबंधित किसी व्यक्ति की बुद्धिमत्ता, कपटपूर्ण आचरण, अभिप्राय प्रकट करता हो, उस क्षेत्र में 'अभिवचन' में इसका प्रयोग किया जा सकता है।

नोटिस

आदेश 6, नियम 11 के अनुसार, अगर कोई व्यक्ति विवाद में शामिल हो तो उसे नोटिस दिया जा सकता है। इस क्षेत्र में नियम का प्रयोग किया जाता है।

सापेक्षित निहित संविदा

आदेश 6, नियम 12 के अनुसार, अगर कोई व्यक्ति किसी संविदा या सापेक्ष में शामिल हो और उसे सूचना दी गई हो, उस स्थिति में इस नियम का प्रयोग किया जाता है। 'अभिवचन' लिखते समय इन नियमों का पालन करना चाहिए और यह मूल विषय से संबंधित हो। अभिवचन में अनचाहे विवाद, घटनाओं पर ध्यान न देकर विषय–वस्तु का सही वर्णन की भाषा पर ध्यान देना चाहिए।

अपवाद

रिट याचिकाओं और चुनाव याचिकाओं ही तीसरे नियम का एकमात्र अपवाद है। ऐसी याचिकाओं में शिकायत के समर्थन में सबूतों का उल्लेख होना जरूरी है।

हर 'अभिवचन' वस्तुगत तथ्यों को संक्षेप में, लेकिन सुस्पटता तथा असंदिग्धता के साथ व्यक्त करें। एक अच्छे 'अभिवचन' के लिए यह नियम दो अपेक्षित गुणों पर जोर देता है-(क) संक्षिप्तता, (ख) सुस्पष्टता या असंदिग्धता। उच्च न्यायालय, कोलकाता के पॉल जे. के अनुसार, 'अभिवचन' न केवल संक्षिप्त होने चाहिए, बल्कि स्पष्ट और असंदिग्ध होना चाहिए। इस तरह एक वाद पत्र (अर्जी दावा) को संक्षिप्त बनाने के लिए हमें तीन बातों पर ध्यान देना होगा–

(क) अनावश्यक शिकायतों को छोड़ देना होगा, (ख) जब वस्तुगत तथ्यों को लिया जाए, तब अनावश्यक विवरणों का छोड़ देना है। (ग) आरोपों में वर्णित वस्तुगत तथ्यो में भाषा पर सही ध्यान दिया जाए।

पाठगत प्रश्न 7.2

1. 'अभिवचन' शब्द की व्याख्या करें।
2. 'अभिवचन' के दो नियमों का वर्णन करें।

7.3 प्रारूपण और प्रारूपण के सिद्धांत

विधि और घटनाओं का भाषा में वर्णन को 'प्रारूपण' कहा जाता है। कानूनी तौर पर इसे याचिका दस्तावेज प्रस्तुत करना भी कहा जाता है। 'प्रारूपण' में कानूनी भाषा का प्रयोग होता है। कानूनी दस्तावेज तैयार करने के लिए 'प्रारूपण' में सही भाषा, नियम तथा घटनाओं का प्रयोग किया जाता है।

प्रारूपण के सिद्धांत

एक सही कानूनी दस्तावेज में दो प्रमुख तत्वों पर ध्यान दिया जाता है-(क) आयोजन, (ख) लेखन।

अच्छे प्रारूप के लिए आयोजन

एक अच्छे कानूनी दस्तावेज को लिखने के लिए तीन पहलू महत्वपूर्ण है।

उद्देश्य

इसे अर्थात् 'प्रारूपण' को क्या करना है? कानूनी भाषा में आप किस विषय का प्रारूपण तैयार करना चाहते हैं (जैसे-विधेयक, भाग या अनुभाग)?

ढांचा

पहले पूरी तरह संकल्पनात्मक ढांचा तैयार करना चाहिए, समूह सामग्री को विभिन्न भागों, उपभागों और अनुभागों आदि में बांटें।

क्रम

सामग्री का व्यस्थापन एक विधेयक या अधिनियम की संरचना का मूल तत्व है। सामग्री को एक तर्कसंगत क्रम में व्यवस्थित करना चाहिए।

प्रारूपण का सही लेखन

एक अच्छे कानूनी दस्तावेज लिखने के लिए पांच महत्वपूर्ण पहलू हैं।

शीर्षक

अगर संभव हो तो उसका सारांश तैयार करें, अन्यथा कोई निर्दिष्ट शीर्षक इंगित करें। संक्षेप में, लिखें। विषय-वस्तु पर नजर रखते हुए उसका खुलकर प्रयोग करें।

अनुभाग

'प्रारूप' तैयार करते समय विषय-वस्तु का सही अनुभाग में तैयार करना अनिवार्य है। भाषा का सही प्रयोग भी आवश्यक है। किसी अनुभाग में पांच से अधिक उपभाग नहीं होने चाहिए।

वाक्य

पहले से ही मुख्य मुद्दों पर ध्यान दें (पाठक के दृष्टिकोण से)। वाक्यों की संक्षिप्तता और सरलता पर भी ध्यान दें। क्रिया, मात्रा आदि व्याकरणिक संदर्भों पर ध्यान दें।

शब्द

शब्दों का सरल, सहज प्रयोग करें, जिससे कि उसका अर्थ प्रकट हो। कोई लोकोक्ति शब्दों का प्रयोग न करें। ऐसे शब्दों का प्रयोग करें, जो पाठक की समझ में आए।

सामान्य

सामान्य रूप से सकारात्मक विवरण प्रस्तुत करें।

पाठगत प्रश्न 7.3

1. 'प्रारूपण' शब्द का वर्णन करें।
2. एक अच्छे कानूनी दस्तावेज का प्रारूप तैयार करने के लिए दो मुख्य शीर्षकों या तत्वों का उल्लेख करें।

7.4 उपचारी उपाय

यह अनुभाग सिविल तथा फौजदारी कानूनों में उपलब्ध उपचारी उपायों के बारे में जानकारी देता है।

उपचार चार प्रकार के हैं-(क) क्षति या हानि, (ख) प्रत्यानयन, (ग) अवपीड़क, (घ) घोषणात्मक

उपचार : सिविल कानून

सिविल कानून में उपचार के तौर पर आर्थिक दंड विधान का प्रयोग किया जाता है। क्षति, नुकसान और कानूनी व्यय का सही आकलन करके मुआवजे की रकम तय की जाती है। उपचार विधि के विभिन्न प्रकार निम्नलिखित है–

मुआवजा

यह रकम अदालत के द्वारा निर्धारित की जाती है। पीड़ित को अपनी क्षति की भरपाई के लिए अदालत ने दोषी को दंड देने का विधान किया है।

विशिष्ट या विशेष राहत या मदद

यह कानून 1877 ई. के विनिर्दिष्ट अनुतोष अनुच्छेद 1 में उल्लेख है। इससे पहले यह कानून सिविल दंड विधान (अधिनियम–आठ) के परिच्छेद 15 और 192 में निहित था। जिस व्यक्ति का नुकसान होता हे या उसका अधिकार छीना जाता है, उसी की भरपाई के लिए इसमें व्यवस्था की गई है। उदाहरण के तौर पर जबरदस्ती किसी की जमीन पर कब्जा करना या किसी संविदा का पालन न करने पर यह नियम लागू किया जाता है।

उपचार : अपराधिक कानून

अपराधी मुकदमों में उपचार के तौर पर दंड की व्यवस्था की गई है। इसमें हर्जाने की रकम तय की जाती है। विभिन्न प्रकार के उपचार विधान इस प्रकार हैं–

क्षतिपूर्ति

यह एक ऐसी उपचार विधि है, जो पीड़ित को उसका वास्तविक नुकसान, दर्द, पीड़ा से राहत दिलाता है। कानून अपराधी को पीड़ित की क्षतिपूर्ति के लिए जुर्माने की व्यवस्था की है। कभी–कभी अदालत ने यह देखा है कि सिर्फ रुपयों से क्षतिपूर्ति नहीं होती, इसीलिए ऐसे मामलों में दंडात्मक क्षति दंड के रूप में व्यवस्था की है। दंडात्मक क्षति दंड में अदालत रूपयों के साथ–साथ कारावास का फैसला भी सुनाता है। उदाहरण के तौर पर भारतीय रेल के द्वारा नियमों का उल्लंघन दंडात्मक क्षति–दंड के अंतर्गत आता है।

विशिष्ट राहत या मदद

यह कानून 1877 ई. के विशिष्ट राहत या मदद अनुच्छेद–1 में निहित है। इससे पहले यह कानून सिविल दंड विधान (अधिनियम VIII) के परिच्छेद 15 और 192 में निहित था। जिस व्यक्ति का नुकसान होता है या उसका अधिकार छीना जाता है, उसी की भरपाई के लिए इसमें व्यवस्था की गई है। उदाहरण के तौर पर जबरदस्ती किसी की जमीन पर कब्जा करना या किसी संविदा का पालन न करने पर यह नियम लागू की जाती है।

पाठगत प्रश्न 7.4

1. सिविल विषय संबंधित 'उपचारों' का वर्णन करें।
2. निम्न शब्दों की व्याख्या कीजिए।
   (क) मुआवजा
   (ख) विशिष्ट राहत या मदद

7.5 'रिटस्'

संविधान उपचार अधिकार अधिनियम 32-35 के अनुसार कोई भी नागरिक अपनी मौलिक और कानूनी अधिकार की खातिर उच्चतम न्यायालय तक जा सकता है। संविधान के अधिनियम 32 के अनुसार कोई भी नागरिक रिटस् याचिका दायर कर सकता है। संविधान के अधिनियम 226 के अनुसार कोई भी व्यक्ति अपना मौलिक और कानूनी अधिकार के लिए रिटस् याचिका दायर कर सकता है। इस तरह उच्च न्यायालय में अधिकार की सशक्तिकरण के लिए अधिक सुविधा उपलब्ध है।

- **बंदी प्रत्यक्षीकरण** का अर्थ 'आपके पास शरीर है'। यह किसी व्यक्ति विशेष अथवा कारागार की हिरासत में निरूद्ध बंदी के व्यक्ति स्वातंत्र्य की सुरक्षा के लिए महत्वपूर्ण अस्त्र है। इस तरह, अगर 'ए' व्यक्ति अवैध तरीके से 'ब' व्यक्ति के द्वारा निरुद्धित होती है तो उच्च न्यायालय के अनुच्छेद 226 के तहत बंदी प्रत्यक्षीकरण रिट् दायर कर सकते हैं।
- **परमादेश** - इसका अर्थ है 'हमारा आदेश है'। परमादेश उच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित किसी आदेश का किसी भी प्रकार सरकारी कर्मकर्त्ता या उच्च पदाधिकारी को जनहित के लिए पालन करना कहा जाता है। जैसे कि कोई पुलिस अधिकारी शिकायत-नामा दर्ज न करने पर उच्च न्यायालय में रिट दाखिल किया जा सकता है।
- **निषेधादेश** - निषेधादेश निम्नतर न्यायालयों, न्यायाधिकरणों अथवा न्यायिक कल्प अधिकारियों या सरकार के नाम पर जारी कर उन्हें अपनी अधिकार सीमा के उल्लंघन से बचने होने या प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों की अवहेलना न करने का आदेश दिया जाता है।

उत्प्रेषणादेश

यह निषेधादेश की तरह एक प्राचीन रिट है, जिसमें उच्च न्यायालय द्वारा निम्न न्यायालय को अपना दायरा उल्लंघन न करने की निर्देश दी जाती है।

अधिकारपृच्छा प्रादेश

यह अधिकारी के पद पर आसीन व्यक्ति के नाम पर जारी कर उससे प्रश्न किया जाता है कि किन प्रमाणों के द्वारा वह उक्त पद पर आसीन रहने के अधिकार का समर्थन करता है, और किन प्रमाणों के आधार पर यह निश्चित किया जाए कि उस पद पर आसीन रहने का वास्तविक अधिकार उसे प्राप्त है।

पाठगत प्रश्न 7.5

1. पांच प्रकार की 'रिट्स' के नाम बताइए।
2. 'बंदी प्रत्यक्षीकरण' की व्याख्या करें।

7.6 जनहित याचिका

जनहित याचिका संकल्पना भारतीय संविधान के अनुच्छेद 39ए में उल्लिखित है, जिसका मूल उद्देश्य कानून की सहायता से व्यक्ति की सामाजिक न्याय को सुरक्षित रखना। 1980 से पहले, सिर्फ पीड़ित पक्ष न्याय के लिए अदालत का दरवाजा खटखटा सकता था। इस तरह यह जरूरी नहीं था कि सिर्फ जो पीड़ित है, वही विस्तृत रूप से जनहित को सुरक्षित रखने के लिए अदालत से प्रार्थना कर सकता है। अदालत के अधिकारी या खुद अदालत विस्तृत रूप से जनहित की सुरक्षा के लिए 'Suo moto' लगा सकती है। हमारे मन में यह साधारण-सा सवाल खड़ा हो सकता है कि ये 'जनहित क्या है?' इस सवाल का उत्तर है कि जनता के हित के लिए कोई भी कार्य जनहित है। और ये कार्य इस प्रकार हैं- प्रदूषण, आतंकवाद, सड़क सुरक्षा, विनिर्माण खतरा, रासायनिक खतरा आदि। इस प्रकार के हर कार्यकलापों में यह हम साफ देखते हैं कि जनहित व्यापक रूप से जुड़ा हुआ है। इस खंड के अंतर्गत फाइल की गई जाना-माना मुकदमा है- राष्ट्रमंडल खेल के बाद विभिन्न खेल परिसंघों के विरुद्ध जनहित याचिका और 'सुभाष कुमार बनाम बिहार सरकार'। इस मामले में, एक व्यक्ति जो अपनी कंपनी के डायरेक्टर के द्वारा बरखास्त किया गया था, वह अपनी कंपनी के विरुद्ध जनहित याचिका दायर की थी। 'शीला बारसे बनाम महाराष्ट्र सरकार', जिसमें बॉम्बे शहर के किसी जेल में महिला के प्रति हिंसा का व्यवहार किया गया था।

पाठगत प्रश्न 7.6

1. जनहित याचिका संकल्पना या धारणा की व्याख्या करें।
2. जनहित याचिका के कुछ कार्यकलापों/विषयों की सूची तैयार करें।

आपने क्या सीखा

- दंड के विभिन्न प्रकार दंड के विविध सिद्धांतों पर आधारित हैं। वे हैं- प्रतीकात्मक सिद्धांत, निषेधात्मक सिद्धांत, अवरोधक सिद्धांत, सुधारात्मक सिद्धांत और प्रतिपूर्ति सिद्धांत।
- अभिवचन घटनाक्रम के तथ्यों पर आधारित है, नियमों पर नहीं।
- 'अभिवचन' लिखते समय घटना का विस्तृत विवरण देना जरूरी है। विवाद के मूल कारण तथा घटना के विस्तृत विवरण प्रस्तुत करके न्यायालय को विचार को लिए मौका देना चाहिए।
- कानून तथा घटनाओं का भाषा में वर्णन को 'प्रारूपण' कहा जाता है। एक कानूनी दस्तावेज में दो प्रमुख तत्वों पर ध्यान दिया जाता है। अच्छे 'प्रारूपण' तैयार करने के लिए योजना बनानी चाहिए। अच्छे प्रारूपण लिखने चाहिए।

- फौजदारी तथा फौजदारी मामलों में विभिन्न प्रकार के उपचारी उपाय उपलब्ध है- मुआवजा तथा विशिष्ट राहत या मदद अनुतोष।
- रिट्स पांच प्रकार के हैं- (क) बंदी प्रत्यक्षीकरण, (ख) परमादेश, (ग) निषेधादेश, (घ) अधिकार पृच्छा प्रादेश, (ङ) उत्प्रेषणादेश।

पाठांत प्रश्न

1. सिविल कानून के विभिन्न प्रतीकारात्मक उपायों की संक्षेप में वर्णन करें।
2. सिविल कानून के अंतर्गत पीड़ितों के लिए उपलब्ध प्रतिकारों को सूचिबद्ध करें।
3. फौजदारी कानून के अंतर्गत पीड़ितों के लिए उपलब्ध प्रतिकारों को सूचिबद्ध करें।
4. सिविल प्रतिकारों और फौजदारी प्रतिकारों में क्या अंतर या भेद है?
5. दंड के 'सुधारात्मक सिद्धांत' की व्याख्या करें।
6. प्रतिकारात्मक सिद्धांत और सुधारात्मक सिद्धांतों में क्या अन्तर हैं?
7. 'अभिवचन' लिखते समय किन बातों पर जोर दिया जाना चाहिए।
8. 'अभिवचन' का प्रारूपण तैयार करते समय किन बातों पर ध्यान देना चाहिए?
9. 'प्रारूपण', 'अभिवचन' से किस तरह भिन्न है?
10. 'रिट' कितने प्रकार के हैं?
11. 'बंदी प्रत्यक्षीकरण' और 'अधिकारपृच्छा' में क्या अंतर या भेद है?
12. दंड विधानों के विभिन्न तकनीकों का संक्षेप में वर्णन करें।

पाठगत प्रश्नों के उत्तर

7.1

1. दंड विधि के पांच सिद्धांत हैं-
   (क) प्रतीकात्मक सिद्धांत
   (ख) निषेधात्मक सिद्धांत
   (ग) अवरोधक सिद्धांत
   (घ) सुधारात्मक सिद्धांत
   (ङ) क्षतिपूर्ति सिद्धांत
2. यह एक ऐसी उपचार विधि है, जो पीड़ित को उसको वास्तवित नुकसान, दर्द, पीड़ा से राहत दिलाता है। इसे 'मुआवजा सिद्धांत' कहा जाता है। इस सिद्धान्त का मानना है कि अपराधी

लोभ के कारण ही कोई अपराध करता है अतः उसे जितना मुनाफा होता है, उसको उसे पीड़ित को लौटाना होगा।

3. हां, दोषी को 'दंड देना' अनिवार्य है। इससे अपराधी अपराध करने से डरता है। भिन्न-भिन्न अपराधों के लिए भिन्न-भिन्न प्रकार के दंड विधान है।

7.2

1. पी.सी. मोघा के शब्दों में अभिवचन का अर्थ दोनों पक्ष मुकदमें के लिए विवाद संबंधित अपनी सफाई लिखित रूप से प्रस्तुत करना और समय-समय पर न्यायालय की जानकारी के लिए उसके सवालों का उत्तर भी देना है।
2. (क) हर 'अभिवचन' तथ्यों को प्रकट करता है।

   (ख) हर अभिवचन केवल वस्तुगत तथ्यों को ही प्रकट करता है।

7.3

1. कानून और घटनाओं का भाषा में वर्णन को 'प्रारूपण' कहा जाता है। कानूनी तौर पर इसे याचिका दस्तावेज प्रस्तुत करना कहा जाता है। 'प्रारूपण' में कानूनी भाषा का प्रयोग होता है। कानूनी दस्तावेज तैयार करने के लिए प्रारूपण में सही भाषा, नियम तथा घटनाओं का प्रयोग किया जाता है।
2. एक सही कानूनी दस्तावेज में दो प्रमुख शीर्षकों या तत्वों पर ध्यान दिया जाता है- (क) आयोजन, (ख) लेखन।

7.4

1. (क) मुआवजा

   (ख) विशिष्ट राहत या मदद
2. (क) पीड़ित व्यक्ति के हानि, दर्द को कम करने के लिए मुआवजा एक प्रतिकार है।

   (ख) पीड़ित व्यक्ति की हानि तथा उसकी भरपाई के लिए विर्निदिष्ट अनुतोष में व्यवस्था की गई है। यह कानून 1877 ई. के विर्निदिष्ट अनुतोष अनुच्छेद 1 में उल्लेख किया गया है।

7.5

1. पांच प्रकार के 'रिट्स' हैं-

   (क) बंदी प्रत्यक्षीकरण,

   (ख) परमादेश,

   (ग) निषेधादेश,

   (घ) अधिकार पृच्छाप्रादेश,

   (ङ) उत्प्रेषणादेश।

2. 'बंदी प्रत्यक्षीकरण' का अर्थ 'आपके पास शरीर है'। यह उच्चतम न्यायालय द्वारा ऐसे व्यक्ति को जिसे गैर कानूनी तौर पर बन्दी बनाया गया है, को न्यायालय को सम्मुख हाजिर करने का दिया गया आदेश है।

7.6

1. जनहित याचिका (पी.आई.एल.) भारतीय संविधान के अनुच्छेद 39-A में उल्लेखित उद्देश्यों के अनुरूप है, जिसका मूल उद्देश्य कानून की सहायता से व्यक्ति को शीघ्र सामाजिक न्याय दिलाना और उसे सुरक्षित रखना है। कोई भी व्यक्ति या पीड़ित जनहित की रक्षा के लिए न्यायालय में गुहार लगा सकता है या जनता के सामान्य हितों की रक्षा करने हेतु न्यायालय स्वत: इसका संज्ञान ले सकता है।

2. (क) प्रदूषण

   (ख) सड़क सुरक्षा

   (ग) रासायनिक खतरा

   (घ) विनिर्माण खतरा

   (ङ) आतंकवाद

8

कानून (विधि) की प्रविधियां (तकनीक) एवं निवारण (प्रतिकार)–II

आपराधिक कानून, **'अपराध' ('Actus Reus')** एवं **'आपराधिक आशय' ('Mens Rea')** के सिद्धान्त पर आधारित है। पिछले अध्याय में हम अब तक दंड के विभिन्न प्रकारों का अध्ययन कर चुके हैं। जैसे कि प्रतिकार (बदला), जिसका उद्द्देश्य है अपराधी को समाज की नजर में समान हानि (क्षति) का दण्ड देना। निर्वासन, जिसका उद्द्देश्य है– अपराधी को समाज की परिधि से बाहर कर देना, पुनर्वास, जिसका उद्द्देश्य है– अपराधी को समाज में पुन: शामिल होने में (प्रवेश करने में) सहायता करना।

यह पाठ 'कानून' की उन नई उभरती हुई तकनीकों का परिचय भी कराएगा जिनको भारतीय लोग भ्रष्टाचार और कुप्रशासन पर अंकुश लगाने के लिए प्रयोग में लाते हैं। भारत सरकार सूचना का अधिकार अधिनियम, 2005 को पारित किया है जिसके अन्तर्गत नागरिकों को सूचनाएँ प्राप्त करने का अधिकार प्राप्त है। इस सूचना के अधिकार के अधिनियम में दो अध्याय, इकतीस खंड एवं दो अनुसूचि हैं।

उद्देश्य

इस पाठ के अध्ययन के बाद आप :

- आपराधिक कानून के सामान्य एवं मूलभूत सिद्धांतों की व्याख्या करने में सक्षम होंगे;
- भारतीय दंड संहिता (IPC) में वर्णित सामान्य बचावों (प्रतिरक्षा) के बारे में जान सकेंगे;
- सूचना के अधिकार अधिनियम, 2005 (फरवरी, 2011 तक संशोधित) के मुख्य प्रावधानों की व्याख्या करने में सक्षम होंगे; एवं
- नागरिकों द्वारा सूचना पाने की प्रक्रिया को समझने में सक्षम होंगे।

8.1 आपराधिक कानून - अपराध एवं आपराधिक कानून के सामान्य सिद्धांत

'अपराध'

'अपराध' क्या है?

इससे पहले कि हम आपराधिक कानून की बात करें, इस प्रश्न पर विचार होना चाहिए कि अपराध क्या है? अपराध वह कार्य या कृत्य है, जो इसे निषेध करने वाले या नियंत्रण करने वाले, किसी कानून की अवज्ञा (अवहेलना) करता है।

लेकिन, प्रत्येक कानून की अवज्ञा अपराध नहीं हो सकता। उदाहरण के लिए, नागरिक कानूनों, विरासत सम्बन्धी कानूनों या अनुबंध के कानूनों की अवज्ञा। इसलिए, 'अपराध' का आशय है कानून की सिर्फ अवज्ञा से कुछ अधिक। 'अपराध' का अर्थ है, एक ऐसा कृत्य, जिसका कानून में निषेध हो और जो समाज की नैतिक भावनाओं के खिलाफ विद्रोह करता हो। इस प्रकार, डकैती या मर्डर (हत्या) एक 'अपराध' है, क्योंकि यह समाज की नैतिक मान्यताओं के विरुद्ध है, लेकिन राजस्व (कर) कानूनों या अनुबंध कानूनों की अवज्ञा को अपराध की संज्ञा नहीं दी जा सकती।

लेकिन, पुनः किसी समाज की नैतिक भावनाएं, एक लचीला शब्द है, क्योंकि समाज की नैतिक भावनाएं (भाव), समय के साथ समाज की बदलती आवश्यकताओं एवं लोकमत (जनता की राय), बदलने के साथ बदलती रहती हैं।

इस प्रकार आपराधिक कानून निम्नलिखित समीकरण पर केंद्रित होता है :

आपराधिक कानून के सिद्धांत :

अपराध = 'दुराचार' (Actus Reus) + आपराधिक आशय (Mens Rea) (दोनों का एक साथ होना)

इस प्रकार, ऊपर दिए गए समीकरण से यह स्पष्ट है कि सामान्यतः अपराध, 'दुराचार' और 'आपराधिक आशय' दोनों में से किसी एक अकेले के मात्र से नहीं हो सकता।

आपराधिक दायित्व का सामान्य मानक कानून, जो कि सामान्यतः लैटिन मुहावरे के द्वारा व्यक्त किया जाता है, का एक सिद्धांत के रूप में उद्धरण सी.जे. लॉर्ड केन्यन के द्वारा **'फाउलर बनाम पेजर (Fowler V. Pedges)'** में इस प्रकार किया गया है : **'It is a principle of natural justice and of our law that actes non ficit reum nisi mens sit rea.'**

जिसका अर्थ है, ''एक कृत्य किसी व्यक्ति को तब तक दोषी नहीं ठहराता, जब तक उसका मस्तिष्क (दिमाग) भी दोषी न हो।

इस प्रकार, न्यायालय में (न्यायिक प्रक्रिया में) में किसी अभियुक्त को दोषी ठहराने के लिए 'Actus Reus' के साथ-साथ 'Mens Rea' के तत्व भी मौजूद होने चाहिए।

इन सिद्धांतों का हम एक-एक करके अध्ययन करेंगे :

एक्टस रीयस (Actus Reus)

Actus Reus : यह एक लैटिन शब्द है, जिसका अर्थ है दोषपूर्ण कार्य (दुराचार), यह एक कृत्य भी हो सकता है और भूल भी। यह शब्द रसेल ने दिया था, जिसका अर्थ है भौतिक घटना। Actus Reus की अनिवार्यता है कि कृत्य अवश्य ही स्वैच्छिक होना चाहिए।

नींद में चलते हुए किए गए कार्य, मिर्गी (अपस्मार) आदि इसमें शामिल नहीं किए गए हैं, सिवाय इसके कि इस तरह की परिस्थितियां उस व्यक्ति द्वारा जानबूझकर उत्पन्न की गई हों, जो अभियुक्त को जानता हो।

हालांकि कुछ मामलों में कानून सजा देता है, तब भी जब 'Actus Reus' न हुआ हो। इसे हम 'प्रयास' (Attempt) या 'साजिश' या कुछ मामलों में 'तैयारी' के नाम से जानते हैं। इस विषय में हमने पहले विस्तार से चर्चा की है।

उदाहरण के लिए, मोहन यदि सोहन को तालाब में धकेल देता है तो यह 'Actus Reus' है, जबकि यदि मोहन और सोहन तालाब के निकट टहल रहे हैं, मोहन फिसल जाता है और धक्का लगने के कारण सोहन तालाब में गिर जाता है तो यह 'Actus Reus' नहीं है।

Mens Rea (मेन्स रीया) : यह एक लैटिन शब्द है, जिसका अर्थ है, दोषी मस्तिष्क (दिमाग) जो कि आपराधिक कानून का प्रमुख सिद्धांत माना जाता है। कोई भी फैसला लेते समय यह स्पष्ट होना चाहिए कि जो कृत्य था, वह सुविचारित था या अनजाने में किया गया था। इस प्रकार फैसले पर पहुंचने के लिए मानसिक अवस्था का निर्धारण अत्यंत आवश्यक है। 'Mens Rea' की अवधारणा का विकास सामान्य कानून काल के उत्तरार्द्ध में (ईसवी सन 1600 वर्ष के आसपास) इंग्लैंड में हुआ था, जब न्यायाधीशों ने यह फैसला दिया कि सिर्फ कोई कृत्य अकेले अपराध नहीं माना जा सकता, जब तक कि मस्तिष्क में इस कृत्य को करने की मंशा न हो। उदाहरण के लिए, हत्या के लिए एक मस्तिष्क की विद्वेषपूर्ण अवस्था आवश्यक है, जबकि चोरी के लिए मस्तिष्क की अपराधी अवस्था आवश्यक है।

पाठगत प्रश्न 8.1

1. आपराधिक कानून के सामान्य सिद्धांतों के आधार की व्याख्या करें?
2. 'अपराध' के लिए आवश्यक परिस्थितियों का संक्षेप में वर्णन करें?
3. 'Actus Reus' एवं 'Mens Rea' शब्दों का अर्थ स्पष्ट करें?

8.2 आपराधिक कानून में सामान्य प्रतिरक्षा (बचाव)

आपराधिक कानून में दोषी के लिए कई बचाव उपलब्ध हैं। ये निम्नलिखित हैं –

पागलपन या मानसिक विकार : अपराध के प्रभाव को कम करने के लिए अपराधी (दोषी) के द्वारा सबसे अधिक उपयोग किया जाने वाला यह सामान्य बचाव है। यहां दोषी को मानसिक विकार से ग्रसित घोषित कर दिया जाता है और यह साबित कर दिया जाता है कि दोषी कोई भी बुद्धिमतापूर्ण निर्णय नहीं कर सकता और सही तथा गलत में फर्क नहीं कर सकता।

स्वचलता : इसका अर्थ है कि अवश्य ही ऐसी स्थिति पैदा हुई हो, जब दोषी का स्वयं पर कोई नियंत्रण न रहा हो। इसमें बहुत अधिक समय तक ड्राइविंग के कारण हुए आंशिक चेतना ह्रास को शामिल नहीं किया जाता है। इस प्रकार, यह वह अवस्था है, जब हमारे शरीर की मांसपेशियां हमारे मस्तिष्क द्वारा नियंत्रित नहीं होती या फिर चेतना चली जाती है।

उदाहरण के लिए – 'X' ने जैसे ही दरवाजे पर दस्तक सुनी, मूर्च्छित हो गया।

नशा : यह वह अवस्था है, जब दोषी व्यक्ति ने कोई ड्रग या नशीला पदार्थ इत्यादि का सेवन किया हो और उसके परिणामस्वरूप अपनी मानसिक शक्तियों पर उसका नियंत्रण समाप्त हो गया हो। इस प्रकार, नशे में दिखाकर बचाव का मुख्य केंद्र बिंदु यह होता है कि दोषी द्वारा अपराध करने का कोई मानसिक आशय (Mens Rea) नहीं था।

उदाहरण – मोहन एक अपराध से बचाव की मांग करता है, क्योंकि उस अपराध को करते समय उसने किसी नशीले पदार्थ का अत्यधिक मात्रा में सेवन किया था।

तथ्यों की भूल : यह एक वास्तविक कारण हो सकता है एवं कानून द्वारा स्वीकृत है। आपराधिक कानून में दोषी द्वारा अपने बचाव में दी जाने वाली यह एक अन्य दलील है। इसमें अपराधी यह कहते हुए अपना बचाव करता है कि उससे भूल हो गई। उदाहरण के लिए, किसी पुलिस अधिकारी पर हमला इस वास्तविक (और शायद तर्कसंगत) तथ्य की भूल द्वारा नकारा जा सकता है कि जिस पर हमला हुआ, वह एक अपराधी था न कि एक पुलिस अधिकारी।

आवश्यकता/ कम नुकसान : इसका अर्थ है कि एक आपराधिक कृत्य इस बात को उजागर करते हुए सही ठहराया जा सकता है कि यह एक बड़े नुकसान को रोकने के लिए किया गया, जो कि हो सकता था अगर यह न किया जाता।

उदाहरण के लिए– 'अ' यह दावा करता है कि उसने 'ब' को गंभीर रूप से घायल किया है, क्योंकि 'ब' एक अतिक्रामक है और वह 'ए' की संपत्ति को आग लगाने जा रहा था।

पद की वैध क्षमता (शक्ति) एवं/ या कानूनी धर्म (ड्यूटी) : बचाव के लिए यह दलील लोकसेवकों द्वारा अपने कृत्यों को ढंकने और अपनी सत्ता द्वारा उन कृत्यों को उचित ठहराने के लिए दी जाती है।

उदाहरण के लिए – एक चिकित्सा–सहायक द्वारा किसी आपातकालीन कॉल का उत्तर देने के लिए किसी घर या इमारत में बलपूर्वक घुसना अपराध नहीं माना जा सकता। उसी प्रकार, एक

सिपाही द्वारा किसी व्यक्ति को इस आधार पर गिरफ्तार करना कि उसके पास एक बन्दूक (आग्नेयास्त्र) थी एवं पुलिसवाले को यह भय था कि वह किसी निर्दोष व्यक्ति या व्यक्तियों को नुकसान पहुंचा सकता था, दोष नहीं माना जाएगा।

आत्मरक्षा : यह वह कृत्य है, जब कोई व्यक्ति प्रतिक्रिया में कोई कार्रवाई करता है और इस प्रक्रिया में प्रतिवादी घायल हो जाता है। दोषी व्यक्ति इस अवस्था में बचाव के लिए आत्मरक्षा की दलील दे सकता है।

उदाहरण के लिए – 'ए' यह दावा करता है कि 'ब' उसे जान से मारना चाहता था। बचाव में 'ब' यह दावा करता है कि उसने जो किया वह आत्मरक्षा में किया। 'ब' कहता है कि 'ए' एक चोर है एवं वह बलात् उसके घर में घुसा है और अपनी संपत्ति की रक्षा के लिए 'ब' ने उस पर आक्रमण किया। 'ब' द्वारा इस आत्मरक्षा के कृत्य में 'ए' को अपना एक अंग गंवाना पड़ा।

भारतीय दंड संहिता के अनुसार, दोषी इस बात का तर्क दे सकता है कि उसने उचित कारणों से कथित अपराध किया और ये कारण समाज में नैतिक रूप से स्वीकार्य और उचित हैं और उसने समाज के नैतिक मूल्यों (सिद्धांतों) के विरुद्ध कोई कार्य नहीं किया है।

1. वैधानिक माफी (जिसमें कि अपराध शामिल नहीं है) : न्यायोचित (तर्कसंगत) प्रतिवाद (प्रतिरक्षा) एवं आपातकाल (आपात स्थिति) में खतरे से बचाव।
2. राहत के लिए कानूनी रूप से निर्धारित बचाव के उपाय।

भारतीय दंड संहिता (IPC) के चतुर्थ अध्याय में वर्णित प्रतिवादों की सूची:

भारतीय दंड संहिता (IPC) के चतुर्थ अध्याय में वर्णित प्रतिवादों की सूची को निम्नलिखित वर्गों में बांटा जा सकता है :

- न्यायिक विधियां (न्यायोचित कृत्य)
- तथ्य की भूल
- दुर्घटना
- आपराधिक आशय की अनुपस्थिति
- सहमति
- तुच्छ–कृत्य

व्यक्तिगत रक्षा (आत्मरक्षा)

इनको आगे निम्नलिखित रूप से वर्णित किया जा सकता है:

भारतीय दंड संहिता (IPC) के अध्याय-IV में वर्णित प्रतिरक्षा (बचावों) की सूची :

1. किसी व्यक्ति का वह कृत्य, जिसे करने के लिए वह कानून द्वारा बाध्य हो;
2. किसी न्यायाधीश का न्यायोचित कृत्य;
3. किसी न्यायालय के फैसले या आदेश के अनुसार किया गया कार्य;

4. किसी व्यक्ति का वह कृत्य, जो कानून द्वारा न्यायसंगत (उचित) हो;
5. किसी दुर्घटना के कारण हुआ कृत्य;
6. बिना किसी आपराधिक आशय के होने या हो सकने वाले कृत्य, जो किसी अन्य नुकसान को रोकने के लिए हों;
7. किसी बच्चे का कृत्य, जिसकी उम्र 7 वर्ष से कम हो;
8. किसी बच्चे का कृत्य, जिसकी उम्र 7 वर्ष से अधिक, लेकिन 12 वर्ष से कम हो, लेकिन उसकी समझ अपरिपक्व (अविकसित) हो;
9. किसी व्यक्ति का कृत्य, जिसका मस्तिष्क अस्वस्थ हो;
10. किसी व्यक्ति का कृत्य, जो नशे में हो, (आंशिक रूप से मुक्त);
11. किसी पीड़ित व्यक्ति की सहमति से किया गया कार्य, जिससे पीड़ित को जान का खतरा या गंभीर क्षति का खतरा न हो;
12. किसी पीड़ित व्यक्ति की सहमति से किया गया कार्य, जिसका इरादा जान से मारना न हो;
13. किसी बच्चे या किसी विक्षिप्त व्यक्ति के हित के लिए उसके अभिभावक द्वारा या अभिभावक की सहमति से (अच्छे) विश्वास में किया गया कार्य;
14. किसी व्यक्ति के हित में उसकी सहमति के बिना (अच्छे) विश्वास में किया गया कार्य;
15. किसी व्यक्ति के हित के लिए (अच्छे) विश्वास में उससे किया गया संप्रेषण (सम्पर्क);
16. मृत्यु के भय के कारण किया गया कार्य;
17. आंशिक हानि पहुंचाने वाला कार्य; एवं
18. आत्मरक्षा में किया गया कार्य

पाठगत प्रश्न 8.2

1. आपराधिक कानून में वर्णित 'बचावों' का उल्लेख करें।
2. भारतीय दंड संहिता (IPC) के चतुर्थ अध्याय में वर्णित 'बचावों' का उल्लेख करें।

8.3 सूचना का अधिकार

सूचना के अधिकार की मांग पहले से कहीं अधिक हो रही थी। इसके कारण थे बढ़ता हुआ भ्रष्टाचार एवं कार्यों में अवांछित विलंब। बड़े पैमाने पर जनता मानसिक, शारीरिक और आर्थिक रूप से भी त्रस्त थी। इन सब पर अंकुश लगाने के लिए वर्ष 2005 में भारत सरकार ने **सूचना का अधिकार (RTI) अधिनियम** को अधिनियमित किया।

सूचना का अधिकार अधिनियम, 2005 इस बात का अधिदेश देता है कि नागरिकों के सरकारी सूचनाओं से संबंधित आवेदनों का समय से जवाब दिया जाए।

यह कार्मिक, लोक शिकायत और पेंशन मंत्रालय, कार्मिक एवं प्रशिक्षण विभाग के द्वारा की गई एक पहल है कि ये नागरिकों को प्रथम अपीलीय प्राधिकारियों (PIOs) आदि से संबंधित सूचनाएं उपलब्ध कराने के लिए एक 'RTI' पोर्टल गेटवे' मुहैया कराएंगे। इसके अलावा वे भारत सरकार एवं विभिन्न राज्य सरकारों द्वारा सूचना के अधिकार से संबंधित सूचनाएं एवं प्रकाशनों तक जनता की पहुंच स्थापित कराएंगे। आर.टी.आई. (RTI) का उद्देश्य है नागरिकों को सूचना उपलब्ध कराना। यह अधिनियम फरवरी, 2011 तक संशोधित (अपडेटेड) है।

अधिनियम

इस अधिनियम में छह अध्याय एवं कुल 31 खंड तथा दो अनुसूचियां हैं।

प्रथम अध्याय : अधिनियम के प्रारंभिक पहलुओं जैसे- परिभाषाएं, शीर्षक एवं आरंभ की व्याख्या करता है।

द्वितीय अध्याय : सूचना के अधिकार एवं लोक अधिकारियों के दायित्वों की व्याख्या करता है। इस अध्याय के अंतर्गत निम्नलिखित खंड (अनुच्छेद) हैं-

सूचना का अधिकार, लोक सेवकों के दायित्व, लोकसेवकों के पद, सूचना पाने के लिए आवेदन, आवेदनों का निष्पादन, छूट, आवेदनों की अस्वीकृति क आधार, विच्छेदनीयता एवं तीसरे पक्ष की जानकारी।

तीसरा अध्याय : केंद्रीय सूचना आयोग के बारे में व्याख्या करता है। इस अध्याय के अंतर्गत खंड हैं-

केंद्रीय सूचना आयोग का संविधान, पदों की अवधि, सेवा की शर्तें एवं CIC की बर्खास्तगी।

चौथा अध्याय : राज्य सूचना आयोग, जो कि राज्य स्तर पर काम करता है, की व्याख्या करता है। इसके अंतर्गत भी उसी प्रकार के खंड (अनुच्छेद) है, जिस प्रकार तीसरे अध्याय में हैं, लेकिन राज्य स्तर पर।

पांचवां अध्याय : सी.आई.सी. (CIC) की विभिन्न शक्तियों एवं कार्यों की राष्ट्रीय एवं राज्य स्तर पर व्याख्या करता है। इसके अतिरिक्त दंड एवं अपील भी इस अध्याय में समाहित हैं।

छठा एवं अंतिम अध्याय : इस अधिनियम के विभिन्न पहलुओं के बारे में है। यह अधिनियम का सबसे लंबा अध्याय है, जिसमें 11 खंड हैं। ये हैं-

कार्रवाई की वास्तविक सुरक्षा, अधिभावी प्रभाव, न्यायालयों के अधिकार क्षेत्र, कुछ विशेष संस्थाओं पर अधिनियम का लागू न होना, निगरानी एवं रिपोर्टिंग, कार्यक्रमों को तैयार करने के लिए उचित सरकार, उचित सरकार द्वारा नियम बनाने की शक्तियां, सक्षम प्राधिकार द्वारा नियम बनाने की शक्ति, नियमों की अनदेखी, कठिनाइयों और खंडन को हटाने की शक्ति।

दिशा-निर्देश

सूचना चाहने वाले के काम और इस प्रक्रिया में उनके प्रयासों को आसान करने के लिए भारत सरकार ने कुछ दिशा-निर्देश जारी किए हैं। ये दिशा-निर्देश सरकारी सार्वजनिक दस्तावेज-'सूचना के अधिकार अधिनियम, 2005 के तहत केंद्र सरकार के लोक प्राधिकारियों से सूचना कैसे प्राप्त करें' में समाविष्ट हैं।

इस दस्तावेज में 17 अध्याय हैं, जिनमें इस बात का वर्णन है कि सूचना चाहने वाले के रास्ते में आने वाली कठिनाइयों को आसान कैसे बनाया जाए।

ये विषय मुख्य रूप से निम्नलिखित हैं-

1. प्रेषण
2. सूचना के अधिकार अधिनियम का उद्देश्य
3. सूचना क्या है?
4. अधिनियम के तहत सूचना का अधिकार
5. प्रकटीकरण से छूट
6. केंद्रीय सार्वजनिक सूचना अधिकारी (CPIOs)
7. CPIOs से उपलब्ध सहायता
8. स्वप्रेरणा प्रकटीकरण
9. सूचना प्राप्त करने की प्रक्रिया
10. सूचना प्राप्त करने का शुल्क (फीस)
11. आवेदन का प्रारूप
12. आवेदन का निस्पादन (निपटान)
13. प्रथम अपील (निवेदन)
14. द्वितीय अपील
15. शिकायतें
16. CIC द्वारा अपीलों एवं शिकायतों का निपटान
17. महत्वपूर्ण बेवसाइट

पाठगत प्रश्न 8.3

1. सूचना का अधिकार अधिनियम, 2005 के अधिनियमित होने के कारणों का उल्लेख करें।
2. सूचना चाहने वालों के लिए महत्वपूर्ण सरकारी दस्तावेज का नाम बताएं।
3. सूचना का अधिकार अधिनियम (RTI), 2005 को पारित करने के मुख्य उद्देश्य बताएं।
4. **रिक्त स्थानों की पूर्ति करें :**

   (क) सूचना के अधिकार अधिनियम, 2005 में .... अध्याय, ... खंड एवं .... अनुसूचियां हैं।

   (ख) सूचना का अधिकार अधिनियम, 2005 .... तक अपडेटेड या संशोधित है।

आपने क्या सीखा

- आपराधिक कानून 'दुराचार' या 'अपराध' एवं 'आपराधिक आशय' के सिद्धांत पर आधारित है। किसी प्रतिवादी को दोषी ठहराने के लिए 'दुराचार' या 'अपराध' के साथ-साथ 'आपराधिक आशय' भी होना चाहिए। इसका अर्थ यह है कि किसी प्रतिवादी को तब तक दोषी नहीं माना जा सकता, जब तक अपराध करने की उसकी मंशा न रही हो, अर्थात् उसका मस्तिष्क भी दोषी होना चाहिए।
- दोषी के लिए कई बचाव उपलब्ध हैं। ये हैं-

  पागलपन या मानसिक विकार, स्वचालन, नशा, तथ्यों की भूल, आवश्यकता/ कम नुकसान, पद की वैध क्षमता एवं या कानूनी ड्यूटी तथा आत्मरक्षा।

  इन बचावों के अतिरिक्त, भारतीय दंड संहिता (IPC) के चौथे अध्याय में 18 अन्य बचाव वर्णित हैं।
- सूचना का अधिकार अधिनियम (RTI), 2005 नागरिकों को सूचना उपलब्ध कराने के उद्देश्य के साथ अधिनियमित किया गया। इस अधिनियम को लाने का मुख्य कारण था, केंद्र और राज्य सरकारों के विभिन्न विभागों एवं संस्थाओं में लगातार बढ़ता हुआ भ्रष्टाचार तथा सरकारी कार्यों में अवांछित एवं अनावश्यक विलंब। साथ-ही-साथ, सरकारी संस्थाओं के कार्यों में अधिक-से-अधिक पारदर्शिता लाना इस अधिनियम का उद्देश्य था।
- इस अधिनियम में छह अध्याय, इकतीस खंड एवं दो अनुसूचिया हैं। यह अधिनियम फरवरी, 2011 तक संशोधित (अपडेटेड) है।

पाठांत प्रश्न

1. 'एक्टस रीयस' (Actus Reus) का शाब्दिक अर्थ क्या है?
2. 'मेन्स रीया' (Mens Rea) का शाब्दिक अर्थ क्या है?

3. आर.टी.आई. (RTI) का पूर्ण रूप (फुल फॉर्म) क्या है?
4. किसी 'अपराध' के साबित होने के लिए क्या आवश्यक है?
5. 'एक्टस रीयस' (Actus Reus) शब्द को परिभाषित करें।
6. 'मेन्स रीया' (Mens Rea) शब्द को परिभाषित करें।
7. आपराधिक कानून के अनुसार 'अपराध' को परिभाषित करें।
8. किसी अपराधी के लिए आपराधिक कानून में उपलब्ध सामान्य बचावों का उल्लेख करें।

पाठगत प्रश्नों के उत्तर

8.1

1. आपराधिक कानून का सामान्य सिद्धांत 'एक्टस रीयस' (Actus Reus) एवं 'मेन्य रीया' (Mens Rea) पर आधारित है।
2. अपराध के लिए आवश्यक शर्तें निम्नलिखित समीकरण पर आधारित हैं :

   अपराध = एक्टस रीयस + मेन्स रीया (एक साथ होते हुए)
3. एक्टस रीयस + मेन्स रीया का अर्थ है कि कोई एक कृत्य अपराध होने के लिए अकेले उत्तरदायी नहीं हो सकता, जब तक कि 'अपराध' के साथ-साथ मस्तिष्क भी उसके लिए उत्तरदायी न हो अर्थात् आपराधिक कृत्य के साथ-साथ अपराध करने की मंशा भी होनी चाहिए।

8.2

1. आपराधिक कानून में 'बचाव' का अर्थ है, प्रतिवादी के लिए उपलब्ध निवारण, जिसका तर्क देकर वह अपने को उस अपराध से निर्दोष घोषित कराना चाहता है, जिसका आरोप उस पर लगाया गया है। इसलिए ये बचाव प्रतिवादी द्वारा मामले सुनवाई के दौरान दी गई दलीलें हैं, जिनके द्वारा वह स्वयं को उस अपराध से निर्दोष साबित करने की कोशिश करता है, जो उस पर प्रतिपक्ष द्वारा लगाए गए हैं।
2. किसी प्रतिवादी को उपलब्ध निम्नलिखित बचाव हैं, जिससे वह स्वयं को निर्दोष साबित कर सकता है :

   ये बचाव दो अनुसूचियों में दिए गए हैं, जो निम्नलिखित हैं :

   (क) भारतीय दंड संहिता (IPC) के चतुर्थ अध्याय में वर्णित बचाव :

   1. किसी व्यक्ति का वह कृत्य, जिसे करने के लिए वह कानून द्वारा बाध्य हो
   2. किसी न्यायाधीश का न्यायोचित कृत्य

3. किसी न्यायालय के फैसले या आदेश के अनुसार किया गया कार्य
4. किसी व्यक्ति का वह कृत्य, जो कानून के तहत न्यायसंगत हो।
5. किसी दुर्घटनावश हुआ कृत्य
6. बिना किसी आपराधिक आशय के होने या हो सकने वाले कृत्य, जो किसी अन्य नुकसान को रोकने के लिए हों।
7. किसी बच्चे का कृत्य, जिसकी उम्र 7 वर्ष से कम हो।
8. किसी बच्चे का कृत्य, जिसकी उम्र 7 वर्ष से अधिक, लेकिन 12 वर्ष से कम हो, लेकिन उसकी समझ अपरिपक्व हो
9. किसी अस्वस्थ मस्तिष्क के व्यक्ति का कृत्य,
10. किसी व्यक्ति द्वारा नशे में किया गया कार्य
11. किसी पीड़ित व्यक्ति की सहमति से किया गया कार्य, जिससे पीड़ित को जान का खतरा या गंभीर क्षति का खतरा न हो।
12. किसी पीड़ित व्यक्ति की सहमति से किया गया कार्य, जिसका इरादा जान से मारना न हो
13. किसी बच्चे या किसी विक्षिप्त व्यक्ति के हित के लिए उसके अभिभावक द्वारा या अभिभावक की सहमति से अच्छे विश्वास में किया गया कार्य
14. किसी व्यक्ति के हित में उसकी सहमति के बिना अच्छे विश्वास में किया गया कार्य
15. किसी व्यक्ति के हित के लिए अच्छे विश्वास में उससे किया गया संपर्क (संप्रेषण)
16. मृत्यु के भय के कारण किया गया कार्य
17. आंशिक हानि पहुंचाने वाला कार्य
18. आत्मरक्षा में किया गया कार्य

(ख) भारतीय दंड संहिता (IPC) के चतुर्थ अध्याय में वर्णित बचावों को निम्नलिखित वर्गों में बांटा जा सकता है :

1. न्यायोचित कार्य
2. तथ्य की भूल
3. दुर्घटना
4. आपराधिक आशय की अनुपस्थिति
5. सहमति

टिप्पणी

6. तुच्छ कृत्य
7. आत्मरक्षा

8.3

1. सूचना का अधिकार अधिनियम के अधिनियमित होने के मुख्य कारण थे –
   (क) लगातार बढ़ता हुआ भ्रष्टाचार
   (ख) सरकारी कामकाज में अवांछित एवं अनावश्यक विलंब तथा
   (ग) पारदर्शिता का अभाव
2. केंद्र सरकार के लोक प्राधिकारियों से सूचना के अधिकार के अंतर्गत सूचना प्राप्त करना।
3. सूचना का प्राधिकार, अधिनियम 2005 का उद्देश्य है, नागरिकों तक सूचना पहुंचाना।
4. (क) छह अध्याय, इकतीस खंड एवं दो अनुसूचियां।
   (ख) फरवरी, 2011

मॉड्यूल 3
कानून के वर्गीकरण

अध्याय 9 प्रादेशिक कानून

अध्याय 10 आपराधिक और सिविल कानून

अध्याय 11 अधिष्ठायी कानून और प्रक्रियात्मक या अवलम्बित कानून

अध्याय 12 सार्वजनिक कानून या जन-कानून और निजी कानून

9

प्रादेशिक कानून

कानून को उप-विभाजित करने के अनेक तरीके हैं। यह विषय-वस्तु के आधार पर हो सकता है, जैसे 'अधिष्ठायी कानून' और 'प्रक्रियात्मक कानून', 'सिविल कानून' तथा 'आपराधिक कानून, व्यक्तिगत कानून या लोक कानून, संपत्ति कानून, संविदा कानून आदि। इसी प्रकार 'कानून' का एक वर्गीकरण प्रदेश या क्षेत्र के आधार पर भी हो सकता है।

कानून प्रादेशिक इस दृष्टि से है कि इसका प्रयोग स्वयं भी प्रादेशिक होता है। सामान्यतः राज्य द्वारा निर्मित कानून व्यक्तियों, वस्तुओं और घटनाओं पर लागू होते हैं, जो इसके प्रादेशिक न्यायाधिकार के भीतर आते हैं। अन्य शब्दों में, कानून का प्रवर्तन इसे लागू करने वाले राज्य की प्रादेशिक सीमाओं तक सीमित है। तथापि, ऐसे मामले भी हो सकते हैं जहां प्रादेशिक सीमाओं से बाहर कानून का प्रयोग होता है। प्रादेशिक सीमाओं से बाहर कानून के प्रचालन से तात्पर्य है कि यह उस राज्य के प्रादेशिक सीमाओं के बाहर भी प्रभावित होता है, जो उस कानून विशेष का निर्माण करता है।

उद्देश्य

इस पाठ का अध्ययन करने के पश्चात् आप-

- 'प्रादेशिक कानून' के अर्थ को जान पाएंगे,
- केंद्रीय कानून के अर्थ को जान पाएंगे,
- 'राज्य कानून' के अर्थ का वर्णन कर पाएंगे,
- 'स्थानीय कानून' का वर्णन कर पाएंगे,
- नगरपालिका कानून की पहचान कर पाएंगे,
- स्वायत्त कानून को चिन्हित कर पाएंगे,
- उच्चतम विधान और गौण विधान के बीच के अंतर को जान पाएंगे,
- प्रथागत या रूढ़िगत कानून के अर्थ को समझ पाएंगे।

9.1 प्रादेशिक कानून

प्रादेशिक कानून '**lex ioci**' या किसी विशिष्ट स्थान का कानून है और राज्य के उस क्षेत्र में रहने वाले सभी व्यक्तियों पर वह कानून लागू होता है, चाहें उनका व्यक्तिगत स्तर कुछ भी हो।

नियमों के निकाय के रूप में कानून का अनुप्रयोग सामान्यत: न्यायकरण के लिए होता है। सामान्य रूप से यह किसी प्रदेश से जुड़ा होता है और इसे संबंधित प्रदेश की स्वायत्त द्वारा प्रवर्तित किया जाता है।

जब हम भारत में कानून की बात करते हैं तो हमारा अर्थ मात्र उस कानून से नहीं है तो भारत में प्रवर्तित होता है। इस प्रकार का वक्तव्य न केवल कानून के प्रादेशिक प्रवर्तन को स्वयंसिद्ध करता है, बल्कि कानून की प्रादेशिकता को भी सिद्ध करता है। सामान्यत: विधान द्वारा निर्मित कानून उन व्यक्तियों और वस्तुओं पर लागू किया जाता है, जो उसके अधिकार क्षेत्र में आते हैं या जो ऐसे अधिकार-क्षेत्र के भीतर होने वाले कृत्यों और घटना से संबंधित हैं।

अंतर्राष्ट्रीय परिदृश्य में प्रादेशिक कानून अन्यथा नगरपालिका कानून या देश के घरेलू कानून के रूप में संबोधित किया जाता है। नगरपालिका कानून प्रभुसत्ता राज्य का राष्ट्रीय, घरेलू या आंतरिक कानून है, जिसे अंतर्राष्ट्रीय कानून के विपरीत परिभाषित किया गया है। अंतर्राष्ट्रीय कानून के परिप्रेक्ष्य में नगर-पालिका कानून में न केवल राष्ट्रीय स्तर पर कानून शामिल है, किंतु राज्य/ प्रांतीय या स्थानीय स्तर पर भी कानून शामिल हैं। केंद्रीय कानून, प्रांतीय/ राज्य कानून और स्थानीय कानून के रूप में कानूनों के वर्गीकरण को जब एक साथ लिया जाता है तो यह आपको प्रादेशिक कानून का समग्र दृष्टिकोण प्रस्तुत करता है। नागरिक केंद्र, राज्य तथा स्थानीय विधान सभाओं और प्रशासनिक निकायों द्वारा निर्मित विविध कानूनों के अधीन होते हैं। सामान्य रूप से सभी कानून एक अनुक्रम का भाग हैं, जिसमें केंद्रीय कानून शीर्ष पर है, स्थानीय कानून सबसे नीचे और राज्य कानून कहीं इनके बीच में है। तथापि, कानून के अन्य वर्गीकरण जैसे-अधिष्ठायी कानून, प्रक्रियात्मक कानून, सिविल कानून और दंड कानून को भी प्रवर्तन के विचारार्थ प्रादेशिक कानून के कार्यक्षेत्र में शामिल किया जा सकता है।

अधिष्ठायी कानून सामान्य रूप से पक्षों के अधिकारों और दायित्वों पर कार्य करता है, चाहें उनकी नागरिकता कहीं की भी हो, उदाहरण के लिए भारतीय संविदा अधिनियम, 1872, उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम 1982, सूचना का अधिकार अधिनियम 2005 आदि।

इसी प्रकार, प्रक्रियात्मक कानून अधिष्ठायी कानूनों के क्रियान्वयन के प्रक्रियात्मक पहलुओं को शामिल करता है, उदाहरण के लिए दंड प्रक्रिया संहिता, 1973, सिविल प्रक्रिया संहिता 1908, साक्ष्य अधिनियम, 1882, परिसीमा अधिनियम, 1963 आदि।

कानून का प्रवर्तन राज्य द्वारा किया जाना होता है और राज्य की शक्ति राज्य के अधिकार से आगे नहीं होती है। तथापि, व्यवस्था और न्याय के अनुरक्षण में राज्यों के आपसी हित यह मांग करते हैं कि राज्यों को एक-दूसरे के साथ सहयोग करना चाहिए।

एक निर्धारित प्रदेश की कानूनी प्रणाली से आंशिक तात्पर्य यह है कि इनके नियमों का अभिप्राय: राज्य क्षेत्रातीत लागू नहीं होता है, आंशिक अर्थ है कि जो उन्हें लागू तथा प्रवर्तित करते हैं, ऐसा नहीं मानते हैं कि यह राज्य क्षेत्रातीत लागू किया जा रहा है और आंशिक अर्थ

है कि अन्य राज्य उसे नहीं मानेंगे। उपर्युक्त कथन में कतिपय परिवर्तनों की आवश्यकता है। कानून की एक प्रणाली केवल एक निर्धारित प्रदेश के भीतर केवल लोगों, वस्तु, कृत्यों और घटनाओं पर लागू होती है, यह एक स्व-स्पष्ट सत्य नहीं है, यह मात्र राज्यों के व्यवहार से सामान्यीकरण है।

क्या आप जानते है

प्रादेशिक बंधन का सिद्धांत

भारतीय संविधान की धारा 245(1) में प्रावधान है कि राज्य विधानसभा उस राज्य के क्षेत्र के लिए कानून बना सकती है। राज्य विधानसभा राज्य क्षेत्रातीत कानून नहीं बना सकता है, केवल ऐसी स्थिति को छोड़कर जहां राज्य और यथा विधान की विषयवस्तु (विषय राज्य की प्रादेशिक सीमाओं के भीतर भौतिक रूप से स्थित नहीं भी हो सकती है) के बीच उपयुक्त संबंध या विधेय-संबंध थे।

संसदीय कानून का राज्य क्षेत्रातीत प्रचालन

भारतीय संविधान की धारा 245(2) में प्रावधान है कि संसद द्वारा पारित कानून को इस आधार पर अमान्य या रद्द नहीं किया जा सकता है कि इसका प्रचालन राज्यक्षेत्रातीत है अर्थात् भारत के क्षेत्र से बाहर इसका प्रभाव रहेगा।

पाठगत प्रश्न 9.1

1. प्रादेशिक कानून को परिभाषित करें।
2. 'प्रादेशिक बंधन के सिद्धांत' की व्याख्या कीजिए।
3. 'संसदीय कानून का राज्य क्षेत्रातीत प्रचालन' का अर्थ स्पष्ट करें।

9.2 केंद्रीय कानून

भारत संघ द्वारा निर्मित कानून को अन्यथा केंद्रीय कानूनों के नामसे जाना जाता है। अनुच्छेद 245 में प्रावधान है कि संसद संपूर्ण प्रादेशिक क्षेत्र या किसी भाग के लिए कानून बनाएगी और राज्य की विधानसभा संपूर्ण राज्य या उसके किसी भाग के लिए कानून बनाएगी। इसी प्रकार भारतीय संविधान का अनुच्छेद 246 संसद द्वारा निर्मित कानून और राज्यों की विधानसभाओं द्वारा निर्मित कानूनों की विषय-वस्तु से संबंधित है। भारतीय संविधान की अनुसूची ट'' तीन सूचियां उपलब्ध कराती है, जिसमें उन मुद्दों का उल्लेख है, जिन पर विभिन्न राज्यों के विधान की शक्तियां निहित हैं। ये सूचिया हैं-केंद्र सूची, राज्य सूची और समवर्ती सूची। संसद को ऐसे किसी भी मुद्दे पर कोई भी कानून बनाने की शक्ति प्राप्त है, जिनका उल्लेख 'समवर्ती सूची' और 'राज्य' सूची में नहीं है।

'संघ सूची' में उल्लिखित मुद्दों पर नियम बनाने का अधिकार विशिष्ट रूप से केंद्र सरकार को है। इस सूची में 97 प्रविष्टियां सामान्य रूप से राष्ट्रीय महत्व के मुद्दे हैं या एक या अधिक

टिप्पणी

राज्यों से संबंधित हैं। 'संघ सूची' में उल्लिखित विषयों पर केंद्र सरकार द्वारा निर्मित कानूनों को सामान्यत: केंद्रीय कानूनों के रूप में वर्गीकृत किया जाता है। ये कानून संपूर्ण देश में लागू होते हैं। तथापि, अनुप्रयोज्यता की दृष्टि से प्रत्येक कानून/ नियम का अपना न्याय क्षेत्र होता है। अधिनियम के अनुप्रयोग की सीमा सामान्यत: अधिनियम के आरंभ में ही निर्धारित की जाती है। भारत में, अधिकतर मामलों में सामान्यत: जम्मू और कश्मीर राज्य के कानून के प्रचालन और प्रवर्तन से अलग रखा जाता है। केंद्रीय कानूनों का निर्माण भारतीय संसद द्वारा किया जाता है। संसद में लोक सभा (हाउस ऑफ रिप्रजेंटेटिव या निचला सदन), राज्य सभा (राज्य परिषद् या ऊपरी सदन) और राष्ट्रपति शामिल हैं। मुद्दा जिस पर नियम बनाए जाने की आवश्यकता है, उसे विधेयक के रूप में संसद में किसी भी सदन में पेश किया जा सकता है। तत्पश्चात् उस सदन में उस विधेयक पर चर्चा-परिचर्चा होती है और यदि वह अपेक्षित गणपूर्ति के साथ पारित हो जाता है तो इसे चर्चा के लिए दूसरे सदन में भेजा जाता है। यदि दूसरे सदन में भी अपेक्षित गणपूर्ति के साथ यह पारित हो जाता है तो इसे राष्ट्रपति के पास उनकी सहमति के लिए भेजा जाता है। यदि राष्ट्रपति उसे अपनी सहमति प्रदान कर देते हैं तो यह अधिनियम बन जाता है। यहां यह उल्लेख करना महत्वपूर्ण है कि न्यायकरण के लिए संघीय ढांचा विधान स्कंद का होता है अर्थात् केंद्र और राज्य सरकार के प्रशासनिक प्राधिकरण और कानूनों के व्याख्यान और कथन का अधिकार न्यायपालिका का है। जब एक विधेयक राष्ट्रपति की सहमति के उपरांत अधिनियम बनता है तो उच्चतम न्यायालय यह देखन के लिए संवैधानिक प्रावधानों के आलोक में अधिनियम की जांच करता है कि यह भारत के संविधान के किसी प्रावधान का उल्लंघन न करे और घोषणा करता है कि यह कानून वैध है। यदि किसी भी समय उच्चतम न्यायालय संविधान के प्रावधानों को उल्लंघन देखता है तो उसे कानून को असंवैधानिक घोषित करने की शक्ति और अधिकार होता है और इस प्रकार वह अमान्य हो जाता है।

जैसा कि हम जानते हैं केंद्रीय कानून का अधिकार क्षेत्र संपूर्ण भारत है, चाहे राज्य का अधिकार क्षेत्र कुछ भी हो। यह पहले ही उल्लेख किया जा चुका है कि केंद्र सरकार को 'संघ सूची' में कानून बनाने का अधिकार है, किंतु केंद्र कतिपय अवसरों पर राज्य के मुद्दों पर भी कानून बना सकती है। भारतीय संविधान का अनुच्छेद 249 संसद को राज्य हित में 'राज्य सूची' में उल्लिखित किसी भी मुद्दे पर कानून बनाने का अधिकार प्रदान करता है। यह वर्णन करता है कि यदि राज्यों की विधान परिषद् (राज्यसभा) उपस्थित सदस्यों के दो-तिहाई बहुत से पारित संकल्प द्वारा घोषणा करती है और मतदान करती है कि राष्ट्रीय हित में यह आवश्यक या अवश्यंभावी है कि संसद संकल्प में विनिर्दिष्ट 'राज्य सूची' में उल्लिखित किसी मुद्दे पर कानून बना सकती है तो 'संकल्प' के दौरान उठे मुद्दे के संबंध में भारत के संपूर्ण प्रदेश या उसके किसी भाग के लिए संसद द्वारा कानून बनाना विधिसंगत होगा। ऊपर उल्लिखित प्रावधान के अंतर्गत पारित 'संकल्प' उसे अवधि के लिए लागू रहेगा, जैसा कि उस में उल्लेख है जो कि एक वर्ष से अधिक नहीं होगी। यदि अपेक्षित प्रक्रियाओं के माध्यम से 'संकल्प' की निरंतरता को जारी रखने की संस्वीकृति प्रदान की जाती है तो इसे आगे और वर्ष के लिए बढ़ाया जा सकता है। छह महीने की समाप्ति पर यह समाप्त हो जाएगा और 'संकल्प' प्रभावी नहीं रहेगा।

इसी प्रकार, भारतीय संविधान का अनुच्छेद 250 'राज्य सूची' में किसी विषय के संबंध में कानून बनाने के लिए संसद को शक्ति प्रदान करता है, यदि आपातकालीन स्थिति की घोषणा की गई हो। वर्ष 2010 तक लगभग 1221 केंद्रीय नियम विद्यमान हैं। भारत में केंद्रीय नियम के कुछ उदाहरण हैं- भारतीय दंड संहिता, 1860, दंड प्रक्रिया संहिता, 1973, सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908, भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872, भारतीय संविदा अधिनियम, 1872 आदि।

विधायी विषयों का वितरण

'विधान' कानून को बनाने की प्रक्रिया है। संविधान विधायी शक्तियों का दो स्तरीय संवितरण करता है-

1. प्रदेश के संबंध में, जिसके सीमा की चर्चा भारतीय संविधान के अनुच्छेद 245 में शामिल प्रादेशिक विधायी अधिकार क्षेत्र के अंतर्गत की गई है।
2. विधान की विषय-वस्तु के संबंध में (यथा तीन सूचियां)

यहां तीन सूचियां हैं, जो भारतीय संविधान की सातवीं अनुसूची के अंतर्गत विधायी शक्ति के संवितरण का प्रावधान करती हैं-

(क) संघ सूची (सूची I)-इसमें 97 मदें शामिल हैं और इसमें राष्ट्रीय महत्व के विषय समाविष्ट हैं। केवल संसद इन मुद्दों पर कानून बना सकती है, जैसे-रक्षा, विदेशी मांगें, बैंकिंग, मुद्रा, केंद्रीय कर आदि।

(ख) राज्य सूची (सूची II)-इसमें 66 मदें शामिल हैं और इसमें स्थानीय या राज्य हित के विषय समाविष्ट हैं और इसलिए यह राज्य विधानों के विधायी सक्षमताओं यथा जन-व्यवस्था और पुलिस, स्वास्थ्य, कृषि आदि के भीतर सीमित है।

(ग) समवर्ती सूची (सूची III)-इसमें 47 मदें हैं, जिसके संबंध में, केंद्रीय संसद और राज्य विधानसभाओं को विधान की समवर्ती शक्तियां प्राप्त हैं। समवर्ती सूची (जो किसी अन्य संघीय संविधान में नहीं पाई जाती है) का प्रयोजन दो स्तरीय संवितरण में किसी प्रकार की अत्यधिक कठोरता से बचने के उपकरण के रूप में प्रयोग किया जाना है। यह एक 'संधि क्षेत्र' है, जहां अत्यंत महत्वूपर्ण विषयों पर राज्य कार्रवाई कर सकता है और महत्वपूर्ण विषयों पर संसद भी कार्रवाई कर सकता है। इसके अतिरिक्त, राज्य संसद द्वारा बनाए गए नियमों के विस्तार के उद्देश्य से अनुपूरक कानून बना सकता है। इन विषयों में सामान्य कानून और सामाजिक कल्याण-सिविल तथा दंड प्रक्रिया, विवाह, संविद, नियोजन, शिक्षा आदि के विषय शामिल हैं।

क्रियाकलाप 9.1

क्या आप जानते हैं?

- भारत के राष्ट्रपति कौन हैं?
- भारत के उप-राष्ट्रपति कौन हैं?
- भारत के मुख्य न्यायाधीश कौन हैं?
- भारत के प्रधानमंत्री कौन हैं?
- लोकसभा के अध्यक्ष कौन हैं?
- राज्यसभा के सभापति कौन हैं?

पाठगत प्रश्न 9.2

1. केंद्रीय कानून को परिभाषित कीजिए।
2. 73वें और 73वें संवैधानिक संशोधित अधिनियम, 1992 के संदर्भ में विकेंद्रीकरण के कार्यक्षेत्र पर चर्चा करें।

सही विकल्प पर (√) चिह्न लगाएं-

3. राज्य सूची में कितनी प्रविष्टियां हैं-

   (क) 66 प्रविष्टियां (ख) 97 प्रविष्टियां

   (ग) 82 प्रविष्टियां (घ) 77 प्रविष्टियां

4. सामान्यत: संघ और राज्य कानूनों में विवाद के मामले में कौन प्रचलित रहता है?

   (क) राज्य कानून (ख) संघीय कानून

   (ग) कोई विद्यमान नहीं रहता (घ) कोई नहीं।

9.3 राज्य कानून

राज्य विधानसभा द्वारा निर्मित कानूनों को 'राज्य कानून' कहते हैं। इसका उस राज्य के प्रदेश के ऊपर अधिकार क्षेत्र और अनुप्रयोज्यता होती है, जिसने इसका निर्माण किया है। जैसा कि पहले चर्चा की जा चुकी है, राज्य सरकार की अनुसूची टप्प में राज्य सूची में उल्लिखित विषयों पर कानून बनाने का अधिकार है। इस सूची में 66 मदें हैं, जो राज्य के हितों से संबंधित हैं। प्रत्येक राज्य अपनी आवश्यकता के अनुसार कानून बनाने के लिए मुक्त हैं, जो केवल उसी राज्य में लागू व प्रवर्तित होगा। उल्लंघन के मामलों में, उस राज्य के व्यक्ति न्याय प्राप्त करने के लिए उस राज्य से संबंधित न्यायालय में जा सकते हैं। राज्य निर्मित कानूनों के कुछ उदाहरण हैं-

उड़ीसा राज्य विधानसभा द्वारा बनाए गए कानून

उड़ीसा नगर निगम अधिनियम, 2003

उड़ीसा शहरी पुलिस अधिनियम, 2003

उड़ीसा मूल्य संवर्धित कर अधिनियम, 2004

मध्य प्रदेश राज्य विधानसभा द्वारा बनाए गए कानून

मध्य प्रदेश नगरपालिका विधि (संशोधन) अधिनियम, 2009

मध्य प्रदेश कराधान (संशोधन) अधिनियम, 2009

मध्य प्रदेश ग्राम न्यायालय (संशोधन) अधिनियम, 2009

केंद्र और राज्य कानूनों के बीच असंगति

भारतीय संविधान के अनुच्छेद 254 में प्रावधान है कि "यदि राज्य विधानसभा द्वारा निमित कानून का कोई प्रावधान संसद द्वारा निर्मित कानून के किसी प्रावधान, जिसे पारित करने में संसद सक्षम है या समवर्ती सूची में उल्लिखित विषयों के संबंध में एक मौजूदा नियम के किसी प्रावधान के विरुद्ध है तो संसदीय कानून चाहे वह राज्य विधानसभा के कानून या मौजूदा कानून से पूर्व या पश्चात पारित किया गया हो, विद्यमान रहेगा और 'राज्य कानून' असंगतता के स्तर तक अमान्य माना जाएगा।"

अनुच्छेद 254(1) इस नियम का उल्लेख करता है कि संघ और राज्य कानूनों के बीच विवाद की स्थिति में संघीय कानून प्रचलित रहेगा। चाहे संघ कानून राज्य कानून से पूर्व पारित हुआ हो या राज्य कानून के पारित होने के बाद। इसके पीछे सिद्धांत यह है कि जब केंद्र द्वारा और राज्य द्वारा समान आधार को शामिल करने वाला विद्यमान उपस्थित है और दोनों ही इसको पारित करने के लिए सक्षम हैं तो राज्य कानून के ऊपर केंद्रीय कानून प्रचलित रहेगा। 'विद्यमान कानून' अभिव्यक्ति से तात्पर्य संविधान के निर्माण से पूर्व किसी विधान या प्राधिकरण आदि द्वारा निर्मित कानूनों से है। इसके कुछ उदाहरण हैं-आपराधिक कानून, सिविल प्रक्रिया, साक्ष्य, संविदा उपभोक्ता संरक्षण आदि।

विरोध की मात्रा (repugnancy) से यहां तात्पर्य असंगत अयोग्यता से है। विरोध की मात्रा स्पष्ट प्रत्यक्ष तथा असंगत होनी चाहिए। दो अधिनियमों के प्रावधान ऐसे होते हैं कि वे एक समान क्षेत्र में एक साथ रह सकते हैं और प्रचलित हो सकते हैं। यदि वे किसी विवाद को उत्पन्न किए बिना तीसरी सूची में समान प्रविष्टि से संबंधित समान क्षेत्र में प्रचालन कर सकते हैं तो वही किसी प्रकार का विरोध नहीं है।

संघीय कानूनों का आधिपत्य और राज्य द्वारा निर्मित सीमाबद्धताएं

1. किसी विषय पर यदि तीन सूचियों के बीच में अतिव्याप्तता है तो संघीय कानून को प्राथमिकता प्रदान की जाती है।
2. समवर्ती क्षेत्र में समान विषय के संबंध में संघ और राज्य के बीच विरोध या असंगतता के मामले में केंद्रीय कानून प्रचलित रहेगा।
3. केंद्र सूची की वृहत प्रकृति-कुछ विषय, जो सामान्यतः राज्य के अधिकार क्षेत्र में होने चाहिए थे, वे केंद्र सूची में हैं, उदाहरण के लिए उद्योग, चुनाव और लेखापरीक्षा, अंतरराज्यीय व्यापार आदि।
4. अवशिष्ट शक्तियां-ऐसे किसी विषय पर कानून बनाने की शक्ति केंद्र को प्रदान की गई हैं, जो तीनों में से किसी भी सूची में नहीं है। उदाहरण के लिए कर लगाना।
5. कतिपय परिस्थितियों में केंद्रीय विधायिका की शक्तियों का विस्तार-निम्नलिखित परिस्थितियों में संसद राज्य सूची के विषयों के संबंध में कानून बना सकती है-

   (क) राज्य परिषद् (राज्य सभा) एक-तिहाई बहुमत से पारित संकल्प द्वारा यह घोषणा करे कि राष्ट्रीय हित में ऐसा करना आवश्यक है।

(ख) आपातकालीन स्थिति के अंतर्गत।

(ग) एक राज्य में संवैधानिक तंत्र की विफलता पर।

(घ) राज्य विधानसभाओं की सहमति से राज्यों के बीच करारों द्वारा।

(ड़) अंतर्राष्ट्रीय संधियों और करारों को क्रियान्वित करने हेतु।

6. कतिपय प्रकार के विधेयकों को राष्ट्रपति की पूर्व स्वीकृति के बिना राज्य विधानसभाओं में पेश नहीं किया जा सकता है। राज्य विधानसभाओं द्वार पारित विधेयक तक प्रचलित नहीं होते हैं, जं तक कि राज्य के राज्यपाल द्वारा विचार किए जाने के लिए आरक्षित रखे जाने के पश्चात् राष्ट्रपति की सहमति प्राप्त नहीं हो जाती है।

क्या आप जानते है

भारत में विधान और जम्मू और कश्मीर राज्य में उनका प्रादेशिक अनुप्रयोग

सामान्यत: विधान आरंभिक प्रावधानों से शुरू होते हैं, जो अल्प शीर्षक, कार्यक्षेत्र और इसके प्रभावी होने की तारीख और केंद्र, राज्य कानून या किसी स्थानीय कानून की संहिता और विधानों का प्रचालन शामिल होता है।

भारत में अधिकतर कानूनों की अनुप्रयोज्यता जम्मू और कश्मीर राज्य पर लागू नहीं होती है, क्योंकि जम्मू और कश्मीर राज्य को भारतीय संविधान के अनुच्छेद 370 के अंतर्गत विशेष दर्जा प्रदान किया गया है।

भारत के राष्ट्रपति और राज्य के राज्यपाल को विधान बनाने की शक्ति

अध्यादेश जारी करने के राष्ट्रपति की सर्वाधिक महत्वपूर्ण शक्ति भारत के संविधान के अनुच्छेद 123 के अंतर्गत निहित हैं। यह कानून निर्माण की शक्ति है, जब संसद के दोनों सदनों के सत्र नहीं चल रहे होते हैं, इस प्रकार संसदीय अधिनियम संभव नहीं है। इस शक्ति की परिधि संसद की विधायी शक्ति के सह-विस्तृत हैं अर्थात् यह ऐसे किसी विषय से संबंधित हो सकता है, जिस पर संसद कानून बना सकता है और यह समान संवैधानिक परिसीमाओं के मद्देनजर भी है, जैसा कि संसद द्वारा विधान किया गया है। तथापि, राष्ट्रपति किसी भी समय अध्यादेश को वापस ले सकते हैं।

क्रियाकलाप 9.2

क्या आप जानते हैं?

- उड़ीसा राज्य के राज्यपाल कौन हैं?
- उड़ीसा के मुख्यमंत्री कौन हैं?

- उड़ीसा उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश कौन हैं?
- उड़ीसा राज्य विधानसभा के अध्यक्ष कौन हैं?

पाठगत प्रश्न 9.3

1. 'राज्य कानून' को परिभाषित कीजिए।
2. रिक्त स्थान भरें–
   (i) .... इस नियम का उल्लेख करता है कि संघ और राज्यों के कानूनों के बीच विवाद की स्थिति में संसदीय कानून अचालित रहेगा।
   (ii) किसी विषय पर तीन सूचियों के बीच यदि अतिव्याप्ता है, तो .... कानून को प्राथमिकता प्रदान की जाती है।
   (iii) ऐसे किसी विषय पर कानून बनाने की शक्ति .... को प्रदान की गई है, जो तीनों सूचियों में से किसी भी सूची में नहीं है।
   (iv) राज्य सूची में .... अविष्टियां हैं।
   (v) संघीय सूची में .... प्रविष्टियां हैं।

9.4 स्थानीय कानून

'स्थानीय' कानून से तात्पर्य उस कानून से है, जो एक राज्य के एक प्रदेश विशेष में स्थानीय स्तर पर लागू होता है। 'स्थानीय कानून' एक विशिष्ट स्थान का कानून है और यह देश का सामान्य कानून नहीं है। यह कानून दो प्रकार के होते हैं–

क) स्थानीय रूप से निर्मित कानून

ख) स्थानीय परंपरागत कानून

स्थानीय रूप से निर्मित कानून का स्रोत स्थानीय विधायी प्राधिकरण या नगरपालिकाएं या अन्य निगमित निकाय होते हैं, जिन्हें उप-नियमों, सामान्य नियमों के अनुपूरकों के द्वारा अपने कार्यक्षेत्र में संचालन करने का अधिकार प्राप्त होता है।

सामान्यत: स्थानीय कानूनों के निर्माण का अधिकार और प्राधिकार स्थानीय सरकार के पास होता है। तथापि, राज्य विधायिका को भी स्थानीय विषयों पर कानून बनाने का अधिकार प्राप्त होता है।

पाठगत प्रश्न 9.4

1. स्थानीय कानून को परिभाषित कीजिए।

9.5 नगरपालिका कानून

भारत में स्थानीय सरकार अर्थात् ग्रामीण स्थानीय सरकार और शहरी स्थानीय सरकार से संबंधित प्रावधान पंचायती कानून और नगरपालिका कानून के रूप में विद्यमान हैं।

संविधान के 73वें संशोधन अधिनियम, 1992 के अनुसार ग्रामीण स्थानीय सरकार का अर्थ और इसमें शामिल तत्व निम्नानुसार हैं-

(क) ग्रामीण स्तर पर ग्राम पंचायत,

(ख) ब्लॉक स्तर पर पंचायत समिति,

(ग) जिला स्तर पर जिला परिषद्।

इसी प्रकार 74वें संवैधानिक संशोधन अधिनियम, 1992 में शहरी स्थानीय सरकार का अर्थ और इसमें शामिल तत्व निम्नानुसार हैं-

(क) नगर पंचायत (उड़ीसा के मामले में अधिसूचित क्षेत्र परिषद् (एनएसी)-एक परिवर्ती क्षेत्र के लिए अर्थात् वह क्षेत्र को ग्रामीण क्षेत्र से शहरी क्षेत्र में परिवर्तित हो रहा है।

(ख) छोटे शहरी क्षेत्रों के लिए नगरपालिका परिषद्।

(ग) बड़े शहरी क्षेत्रों के लिए नगर निगम।

73वां और 74वां संवैधानिक अधिनियम, 1992 लोकतांत्रिक विकेंद्रीकरण की अवधारणा की शाखा-विस्तार के रूप में है। लोकतांत्रिक विकेंद्रीकरण की इस प्रक्रिया के पीछे औचित्य यह है कि स्थानीय स्तर की समस्याओं को स्थानीय लोग ही बेहतर ढंग से सुलझा पाएंगे। इन संशोधनों का उद्देश्य स्थानीय लोगों को अधिकार प्रदान करना है। ग्रामीण स्थानीय सरकार से संबंधित संविधान की ग्यारहवीं अनुसूची और शहरी स्थानीय सरकार से संबंधित संविधान की बारहवीं अनुसूची को भारत के संविधान के अनुसूचियों में संलग्न किया गया था। अनुसूची ग्यारह में 29 क्रियात्मक मदें शामिल हैं, जिन पर कानून बनाने के अधिकार का प्रयोग ग्रामीण स्थानीय सरकार द्वारा किया जा सकता है। इसी प्रकार, बारहवीं अनुसूची में 18 क्रियात्मक मदें हैं, जिन पर शहरी स्थानीय सरकार कानून बनाने के लिए स्वतंत्र है। इसलिए यहां यह उल्लेख करना अनिवार्य है कि स्थानीय स्तर से संबंधित कानूनों का निर्माण करते समय स्थानीय लोगों का हित सर्वोपरि है। तथापि, राज्य भी राज्य के व्यापक हित में ग्यारहवीं और बारहवीं अनुसूची में उल्लिखित विषयों पर कानून बनाने के लिए स्वतंत्र हैं।

पाठगत प्रश्न 9.5

रिक्त स्थान भरें-

1. शहरी स्थानीय सरकार, भारत के संविधान के .... संशोधन से संबंधित हैं।
2. भारतीय संविधान की बारहवीं अनुसूची स्थानीय सरकार के .... स्वरूप से संबंधित हैं।

3. भारतीय संविधान की ग्यारहवीं अनुसूची स्थानीय सरकार के .... स्वरूप से संबंधित हैं।
4. ग्रामीण स्थानीय सरकार, भारत के संविधान के .... संशोधन से संबंधित हैं।

9.6 विधान के प्रकार

1. **उच्चतम विधान :** विधान को उस समय उच्चतम कहा जाता है, जब इसे संसद या राज्य विधान सभाओं की उच्चतम या प्रभुसत्ता संपन्न शक्ति द्वारा बनाया जाता है। इसे किसी अन्य विधायी अधिकारियों द्वार निरस्त या कुछ नियंत्रित नहीं किया जा सकता है।
2. **अधीनस्थ विधान :** एक विधान तब अधीनस्थ होता है, जब उसका निर्माण उच्चतम अधीनस्थ प्राधिकरण से इतर किसी अन्य प्राधिकरण द्वारा उसे प्रदान की गई शक्तियों के अंतर्गत बनाया जाता है। अधीनस्थ विधान पांच प्रकार के होते हैं–

   (क) कार्यपालिका–विधान के अंतर्गत नियम बनाने की शक्ति कार्यकारी की होती है (अर्थात् सरकार की वह शाखा, जो कानूनों को लागू करती है और प्रशासन को चलाती है।

   (ख) न्यायपालिका–न्यायपालिका को अपनी प्रक्रियाओं और प्रशासन को विनियमित करने के लिए नियमों को बनाने का अधिकार प्राप्त होता है।

   (ग) नगरपालिका–नगरपालिका निकायों को अधिनियम द्वारा शक्तियां प्रत्यायुक्त की जाती हैं, जो उन्हें अस्तित्व में लाती हैं ताकि नगरपालिका को सौंपी गई, विभिन्न गतिविधियों के निष्पादन के लिए उनके क्षेत्राधिकार के अंतर्गत आने वाले क्षेत्रों के लिए नियम और उप–नियम बनाए जा सकें।

   (घ) स्वायत्त–स्वायत्त निकाय, जैसे विश्वविद्यालय को राज्य द्वारा अधिकार प्रदान किए जाते हं, ताकि वे अपने प्रशासन के लिए नियम और उप–नियम बना सकें।

   (ड़) उपनिवेशी–जो देश स्वतंत्र नहीं हैं या किसी अन्य राष्ट्र के नियंत्रण के अधीन हैं, उनके नियम नियंत्रणकर्ता राष्ट्र के उच्चतम विधान के मद्देनजर होगा।

कानून बनाने की शक्ति सामान्यत: संसद तथा राज्य विधानसभाओं की होती है, तथापि कुछ मामलों में कानून निर्माण की शक्ति को प्रशासनिक प्राधिकरणों को भी हस्तांतरित की जा सकती है।

पाठगत प्रश्न 9.6

1. उच्चतम विधान का अर्थ स्पष्ट कीजिए।
2. अधीनस्थ विधान की व्याख्या कीजिए।

9.7 स्वायत्त कानून

सरकारी प्रणाली के बाहर बड़ी संख्या में निगम विद्यमान हैं, जिन्हें स्वयं के लिए और अनेक मामलों में व्यापक स्तर पर जनसाधारण के लिए उप-नियम बनाने के अधिकार प्राप्त हैं। इस प्रकार के निगमों को 'जन उपयोगिता निकाय' कहा जाता है, उदाहरण के लिए-परिवहन, प्रकाश, ताप, जल आदि के लिए प्राधिकरण और इन निगमों को संचालित करने वाले नियमों को कड़ाई से 'स्वायत्त' कहा जाता है, क्योंकि ये केवल प्रत्यक्ष रूप से एक विशिष्ट निगम के सदस्यों से संबंधित होते हैं। इसका सर्वाधिक सामान्य उदाहरण है-'संयुक्त-स्टॉक कंपनी के संगम अनुच्छेद' रेल कंपनी के उप-नियम, विश्वविद्यालय द्वारा निर्मित नियम स्वायत्त कानून के कुछ उदाहरण हैं।

पाठगत प्रश्न 9.7

1. 'स्वायत्त कानून' के दो उदाहरण प्रस्तुत करें।

9.8 रूढ़िजन्य कानून

रूढ़िजन्य या प्रथमत कानून से तात्पर्य उन नियमों और सिद्धांतों से है, जो एक विशिष्ट समुदाय में एक लंबे समय से वास्तव में व्यवहार में लाए जा रहे हैं। इन नियमों का कानून जैसा प्रभाव रहता है। सार रूप में रूढ़िजन्य कानून स्थानीय कानून का भाग हैं, जो एक राज्य के भीतर स्थान विशेष में लागू होते हैं, जहां इनका व्यवहार किया जाता है। इनकी जड़ें चिरकालीन 'परंपराओं' से आती हैं, जो राज्य के विशिष्ट भाग में प्रचलित होते हैं और इसलिए इसमें कानून का प्रभाव होता है। ये अनेक कारणों से अस्तित्व में आए हैं। जब कुछ प्रकार की क्रियाओं को सामान्य स्वीकृति प्राप्त हो जाती है और सामान्यत: लंबे समय तक इनको व्यवहार में लाया जाता है तो ये 'परंपराएं' बन जाती हैं। कई बार ये तात्कालिता के आधार पर जन्म लेते हैं। इनके अस्तित्व में आने के अन्य कारण हैं-अनुकरण, सुविधा आदि। जब इन्हें राज्य द्वारा मान्यता प्राप्त होती है तो वे 'सिविल कानून' का भाग बन जाते हैं। परंपराओं के कार्यक्षेत्र और प्राधिकार के संबंध में न्यायाधीशों में विचारों में अंतर है। कुछ कहते हैं कि 'परंपराएं' मान्य कानून हैं। अन्य कहते हैं कि ये साधारण रूप से कानून के स्रोत हैं।

वैध परंपराओं की अपेक्षाएं या आवश्यकताएं या अनिवार्यताएं

एक वैध या मान्य परंपरा होने के लिए इसे कानून द्वारा निर्धारित कतिपय अपेक्षाओं को पूरा करना होता है, जो निम्नानुसार हैं-

(क) तर्क संगति

(ख) निरंतरता

(ग) अनिवार्य अनुसरण

(घ) निरंतरता और स्मरणातीत प्राचीनता

(ड़) निश्चितता

पाठगत प्रश्न 9.8

1. रूढ़िजन्य या प्रथागत कानून का अर्थ बताइए।
2. सही या गलत बताइए–
   (i) स्मरणातीत प्राचीनता रूढ़िजन्य कानून की मान्य अनिवार्यता है।(सही/ गलत)
   (ii) निरंतरता रूढ़िजन्य कानून की मान्य अनिवार्यता है। (सही/ गलत)
   (iii) यथोचितता रूढ़िजन्य कानून की मान्य अनिवार्यता है। (सही/ गलत)
   (iv) अनिवार्य अनुसरण रूढ़िजन्य कानून की मान्य अनिवार्यता है। (सही/ गलत)

आपने क्या सीखा

कानून सिद्धांतों का निकाय है, जिसे न्यायकरण के लिए राज्य द्वारा मान्यता प्रदान की गई है और अनुप्रयोग किया जा रहा है। कानून को राज्यों की सीमाओं के भीतर व्यापक कार्य–प्रणाली पर समाज द्वारा स्वीकृत कानूनी व्यवस्था के रूप में भी परिभाषित किया जा सकता है। कानून का वर्गीकरण अनेक रूपों में किया जा सकता है। इसे विषय–वस्तु के आधार पर वर्गीकृत किया जा सकता है, जैसे–अधिष्ठायी कानून तथा प्रक्रियात्मक कानून, सिविल कानून और आपराधिक कानून, व्यक्तिगत कानून, संपत्ति कानून, संविदा से संबंधित कानून और क्षति का कानून आदि, राज्य या सरकार द्वारा प्रयोग किए जाने वाले विशेषाधिकारों के आधार पर कानून को प्रादेशिक अधिकार क्षेत्र के आधार पर भी वर्गीकृत किया जा सकता है। जैसे–केंद्रीय कानून, राज्य या उपनिवेशीय कानून तथा स्थानीय कानून।

प्रादेशिक कानून '**lex ioci**' या किसी विशिष्ट स्थान का कानून है और राज्य के उस क्षेत्र में रहने वाले सभी व्यक्तियों पर वह कानून लागू होता है, चाहें उनका व्यक्तिगत स्तर कुछ भी हो। सामान्य रूप से यह किसी प्रदेश से जुड़ा होता है और इसे संबंधित प्रदेश की स्वायत्त द्वारा प्रवर्तित किया जाता है।

अंतर्राष्ट्रीय परिदृश्य में प्रादेशिक कानून अन्यथा नगरपालिका कानून या देश के घरेलू कानून के रूप में संबोधित किया जाता है। अंतर्राष्ट्रीय कानून के परिप्रेक्ष्य में नगरपालिका कानून में न केवल राष्ट्रीय स्तर पर कानून शामिल है, किंतु राज्य/ प्रांतीय या स्थानीय स्तर पर भी कानून शामिल हैं।

अधिष्ठायी कानून सामान्य रूप से पक्षों के अधिकारों और दायित्वों पर कार्य करता है, चाहें उनकी नागरिकता कहीं की भी हो। प्रक्रियात्मक कानून अधिष्ठायी कानूनों के क्रियान्वयन के प्रक्रियात्मक पहलुओं को शामिल करता है।

कानून का प्रवर्तन राज्य द्वारा किया जाना होता है और राज्य की शक्ति राज्य के अधिकार से आगे नहीं होती है।

भारत संघ द्वारा निर्मित कानूनों को सामान्यत: केंद्रीय नियम कहते हैं। केंद्रीय कानून का क्षेत्राधिकार संपूर्ण भारत है, चाहे राज्य क्षेत्राधिकार कुछ भी हो। राज्य विधान द्वारा निर्मित कानूनों को राज्य कानून कहते हैं। इनका क्षेत्राधिकार और अनुप्रयोक्यता उस राज्य के प्रदेश पर होती है, जिसने उसका निर्माण किया है।

'स्थानीय कानून' एक विशिष्ट कानून है और यह देश का सामान्य कानून नहीं है। यह कानून दो प्रकार के होते हैं।

भारत में स्थानीय सरकार अर्थात् ग्रामीण स्थानीय सरकार और शहरी स्थानीय सरकार से संबंधित प्रावधान पंचायती कानून और नगरपालिका कानून के रूप में विद्यमान हैं।

'संयुक्त-स्टॉक कंपनी के संगम अनुच्छेद', विश्वविद्यालय द्वारा निर्मित नियम स्वायत्त कानून के कुछ उदाहरण हैं।

रूढ़िजन्य या प्रथमत कानून से तात्पर्य उन नियमों और सिद्धांतों से है, जो एक विशिष्ट समुदाय में एक लंबे समय से वास्तव में व्यवहार में लाए जा रहे हैं। इन नियमों का कानून जैसा प्रभाव रहता है।

पाठांत प्रश्न

1. प्रादेशिक कानून के अनुप्रयोग से संबंधित महत्वपूर्ण सिद्धांतों का उल्लेख करें।
2. केंद्रीय कानून को राज्य तथा स्थानीय कानूनों के ऊपर व्यापकता प्राप्त नहीं है-वर्णन करें।
3. भारतीय संविधान के 73वें तथा 74वें अधिनियम के अंतर्गत स्थानीय निकायों को स्वायत्ता प्रदान की गई है, अपने विचार प्रस्तुत करें।
4. अभ्यादेश जारी करने के संबंध में भारत के राष्ट्रपति और राज्य के राज्यपाल की शक्तियों की चर्चा करें।
5. सामान्यत: भारत में प्रचलित विधानों के प्रकारों का उल्लेख करें।
6. 'प्रदेश-बाह्य संबंध के सिद्धांत' का वर्णन करें।
7. भारतीय संविधान की सातवीं अनुसूची के अंतर्गत सूचियों के संबंध में व्याख्यान के विभिन्न सिद्धांतों का संक्षिप्त ब्यौरा प्रस्तुत करें।
8. रुढ़िजन्य कानून के सिद्धांतों आवश्यकताओं/अनिवार्यताओं का वर्णन करें।
9. 'स्वायत्त कानून' और 'नगरपालिका कानून' की अवधारणाओं का संक्षिप्त ब्यौरा प्रस्तुत करें।

10. अंतर्राष्ट्रीय परिदृश्य में अंतर्राष्ट्रीय कानून और प्रादेशिक कानून के बीच अंतर स्पष्ट करें।
11. भारत में 'पंचायती राज प्रणालीय' पर एक संक्षिप्त नोट लिखें।
12. भारत में 'केंद्रीय कानून के अनुप्रयोग' पर एक संक्षिप्त नोट लिखें।
13. 'उच्चतम विधान' पर एक संक्षिप्त नोट लिखें।

पाठगत प्रश्नों के उत्तर

9.1

1. प्रादेशिक कानून एक प्रदेश विशिष्ट के कानून का प्रतिनिधित्व करता है। प्रादेशिक कानून '**lex ioci**' या किसी विशिष्ट स्थान का कानून है और राज्य के उस क्षेत्र में रहने वाले सभी व्यक्तियों पर वह कानून लागू होता है, चाहें उनका व्यक्तिगत स्तर कुछ भी हो। नियमों के निकाय के रूप में कानून का अनुप्रयोग सामान्यत: न्यायकरण के लिए होता है। केंद्रीय कानून, प्रांतीय/ राज्य कानून और स्थानीय कानून के रूप में कानूनों के वर्गीकरण को जब एक साथ लिया जाता है तो यह आपको प्रादेशिक कानून का समग्र दृष्टिकोण प्रस्तुत करता है। नागरिक केंद्र, राज्य तथा स्थानीय विधान सभाओं और प्रशासनिक निकायों द्वारा निर्मित विविध कानूनों के अधीन होते हैं। सामान्य रूप से सभी कानून एक अनुक्रम का भाग हैं, जिसमें केंद्रीय कानून शीर्ष पर है, स्थानीय कानून सबसे नीचे और राज्य कानून कहीं इनके बीच में है।
2. **प्रादेशिक बंधन का सिद्धांत :** भारतीय संविधान की धारा 245(1) में प्रावधान है कि राज्य विधानसभा उस राज्य के क्षेत्र के लिए कानून बना सकती है। राज्य विधानसभा राज्य क्षेत्रातीत कानून नहीं बना सकता है, केवल ऐसी स्थिति को छोड़कर जहां राज्य और यथा विधान की विषयवस्तु (विषय राज्य की प्रादेशिक सीमाओं के भीतर भौतिक रूप से स्थित नहीं भी हो सकती है) के बीच उपयुक्त संबंध या विधेय-संबंध थे।
3. **संसदीय कानून का राज्य क्षेत्रातीत प्रचालन :** भारतीय संविधान की धारा 245(2) में प्रावधान है कि संसद द्वारा पारित कानून को इदस आधार पर अमान्य या रद्द नहीं किया जा सकता है कि इसका प्रचालन राज्यक्षेत्रातीत है अर्थात् भारत के क्षेत्र से बाहर इसका प्रभाव रहेगा।

9.2

1. संघीय या केंद्रीय सरकार द्वारा बनाए गए कानूनों को केंद्रीय कानून कहा जाता है।
2. 73वां और 74वां संवैधानिक अधिनियम, 1992 लोकतांत्रिक विकेंद्रीकरण की विधारणा की उप-शाखा के रूप में है। लोकतांत्रिक विकेंद्रीकरण की इस प्रक्रिया के पीछे औचित्य यह है कि स्थानीय स्तर की समस्याओं को स्थानीय लोग ही बेहतर ढंग से सुलझा पाएंगे। इन संशोधनों का उद्देश्य स्थानीय लोगों को अधिकार प्रदान करना है। ग्रामीण स्थानीय सरकार से संबंधित संविधान की ग्यारहवीं अनुसूची और शहरी

स्थानीय सरकार से संबंधित संविधान की बारहवीं अनुसूची को भारत के संविधान के अनुसूचियों में संलग्न किया गया था। अनुसूची ग्यारह में 29 क्रियात्मक मदें शामिल हैं, जिन पर कानून बनाने के अधिकार का प्रयोग ग्रामीण स्थानीय सरकार द्वारा किया जा सकता है। इसी प्रकार, बारहवीं अनुसूची में 18 क्रियात्मक मदें हैं, जिन पर शहरी स्थानीय सरकार कानून बनाने के लिए स्वतंत्र है। इसलिए यहां यह उल्लेख करना अनिवार्य है कि स्थानीय स्तर से संबंधित कानूनों का निर्माण करते समय स्थानीय लोगों का हित सर्वोपरि है।

3. 66

4. संघीय कानून

9.3

1. राज्य विधानसभा द्वारा निर्मित कानूनों को 'राज्य कानून' कहते हैं। इसका उस राज्य के प्रदेश के ऊपर अधिकार क्षेत्र और अनुप्रयोज्यता होती है, जिसने इसका निर्माण किया है। राज्य सरकार की सातवीं अनुसूची में 'राज्य सूची' में उल्लिखित विषयों पर कानून बनाने का अधिकार है। इस सूची में 66 मदें हैं, जो राज्य के हितों से संबंधित हैं। प्रत्येक राज्य अपनी आवश्यकता के अनुसार कानून बनाने के लिए मुक्त है, जो केवल उसी राज्य में लागू व प्रवर्तित होगा। उल्लंघन के मामले में, उस राज्य के व्यक्ति न्याय प्राप्त करने के लिए उस राज्य के संबंधित न्यायालय में जा सकते हैं।

2. (i) अनुच्छेद 254(1)

   (ii) संघीय कानून

   (iii) केंद्र या संघ

   (iv) 66

   (v) 97

9.4

1. स्थानीय कानून से तात्पर्य उस कानून से है, जो एक प्रदेश विशेष में स्थानीय स्तर पर लागू होता है। स्थानीय कानून एक विशिष्ट स्थान का कानून है, और वह देश का सामान्य कानून नहीं है।

9.5

1. 74वां

2. शहरी

3. ग्रामीण

4. 73वां

9.6

1. **उच्चतम विधान :** विधान को उस समय उच्चतम कहा जाता है, जब इसे संसद या राज्य विधान सभाओं की उच्चतम या प्रभुसत्ता संपन्न शक्ति द्वारा बनाया जाता है। इसे किसी अन्य विधायी अधिकारियों द्वार निरस्त या कुछ नियंत्रित नहीं किया जा सकता है।
2. **अधीनस्थ विधान :** एक विधान तब अधीनस्थ होता है, जब उसका निर्माण उच्चतम अधीनस्थ प्राधिकरण से इतर किसी अन्य प्राधिकरण द्वारा उसे प्रदान की गई शक्तियों के अंतर्गत बनाया जाता है।

9.7

1. स्वायत्त कानून के दो उदाहरण हैं-

   (i) 'संयुक्त-स्टॉक कंपनी के संगम अनुच्छेद'

   (ii) विश्वविद्यालय द्वारा निर्मित नियम

9.8

1. रूढ़िजन्य या प्रथमत कानून से तात्पर्य उन नियमों और सिद्धांतों से है, जो एक विशिष्ट समुदाय में एक लंबे समय से वास्तव में व्यवहार में लाए जा रहे हैं। इन नियमों का कानून जैसा प्रभाव रहता है।
2. (i) सही

   (ii) सही

   (iii) सही

   (iv) सही

10

आपराधिक और सिविल कानून

किसी भी कानूनी प्रणाली में विभिन्न प्रकार के कानून विद्‌यमान होते हैं। कुछ कानूनों में वे नियम होते हैं जो अपराधों को विनियमित करते हैं जो अपराध नहीं है किन्तु अन्यों के अधिकारों को खंडित करते हैं। इस आधार पर, कानून को व्यापक स्तर पर दो भागों में विभाजित किया जा सकता है। सिविल कानून (Civil Law) और अपराधारिक कानून (Criminal Law) । ये कानून के दो व्यापक और पृथक निकायों की दो श्रेणियां है जिनके सिविल दोषों और आपराधिक दोषों से निपटने के लिए क्रमशः नियमों के पृथक समुच्य विद्‌यमान हैं। इस प्रकार, विभाजन की प्रकृति को समझना अत्यंत महत्वपूर्ण है क्योंकि कानून की प्रत्येक शाखा के प्रयोजन, प्रक्रिया तथा शब्दावली में मौलिक अंतर है। जहां सिविल कानून नियमों के शरीर से संबंधित है जो प्राइवेट अधिकारों और उनके उपचारों को परिभाषित करता है, वहीं अपराधिक कानून अधिकारों और उनके उल्लंघन के लिए उपचारों से संबंधित नियमों को परिभाषित करता है। यही कारण है कि सिविल कानून आपराधिक कानून से भिन्न है। इस पाठ में आप सिविल और आपराधिक कानून की प्रकृति और उनके बीच के अंतर को समझेंगे।

उद्देश्य

इस पाठ के अध्ययन के पश्चात आप–

- सिविल कानून और आपराधिक कानून की परिभाषा और प्रकृति को जान पाएंगे।
- समाज में इन कानूनों की आवश्यकता और महत्व को जान पाएंगे।
- सिविल कानून और आपराधिक कानून के अंतर्गत शामिल अधिकारों और उनके उल्लंघन के लिए उपचारों को जान पाएंगे।
- सिविल और आपराधिक मुद्दों से संबंधित शिकायतों के निवारक के लिए उपलब्ध फॉरमों के विषय में जान पाएंगे।
- इन नियमों के उल्लंघन के लिए प्रदान की जाने वाली विभिन्न प्रकार की राहतों के विषय में जान जाएंगे एवं
- सिविल और आपराधिक कानून के बीच में अंतर कर पाएंगे।

10.1 सिविल कानून-परिभाषा और प्रकृति

सिविल कानून और कुछ नहीं बल्कि राज्य का कानून या देश का कानून है। यह कानून और न्याय का वह क्षेत्र हैं जो व्यक्तिगत विधिक स्थिति को प्रभावित करता है। शब्द "सिविल कानून" की उत्पत्ति रोमन भाषा के शब्द "जस सिविल" (jus civil) से हुई है कि यह राज्य का कानून हैं। कानून की यह शाखा समाज के बीच प्रत्येक सदस्य के अधिकारो, दायित्वों और जिम्मेदारियों से संबंधित हैं। कई बार इसे नगरपालिका कानून भी कहा जाता है। मध्यकालीन अवधि के न्यायविद् इसे सिविल लॉ (jus positivum) कहते थे अर्थात् भगवान द्वारा बनाए गए कानून के विरुद्ध मानव द्वारा बनाए गए सकारात्मक कानून। इसे सकारात्मक कानून माना गया है क्योंकि कानून के वर्तमान परिप्रेक्ष्य से संबंधित है। सिविल कानून में विभिन्न पहलू शामिल हैं जैसे संपत्ति, पर्यावरण, परिवार, व्यापार, बौद्धिक संपत्ति, संविदा, क्षति आदि से संबंधित कानून।

सिविल कानून का उद्देश्य दोषों का कड़े माध्यमों के स्थान पर सुधार करना या मैत्रिपूर्ण रूप से विवादों का निपटान करना है। यदि कोई पीडित है तो उसे क्षतिपूर्ति प्राप्त होगी और दोषी इसका भुगतान करेगा। सिविल कानून में विवाद तब उत्पन्न होता है जब पीडित पक्ष अन्य पक्ष के विरूद्ध शिकायत दायर करता है। सिविल कानून के अंतर्गत पीडित को हुई क्षति के लिए क्षतिपूर्ति प्रदान की जाती है। उदाहरण के लिए जब एक दुर्घटना में पीड़ित व्यक्ति दुर्घटना में हुई हानि या उसे लगी चोटों के लिए चालक से क्षतिपूर्ति का दावा करता है तो इस मुद्दे का निवारण सिविल कानून के माध्यम से किया जाएगा।

सिविल कानून न केवल निजी पक्षों के बीच विवादों को निपटाता है बल्कि व्यक्तियों के लापवाही पूर्ण कृत्यों द्वारा अन्य लोगों को हुई क्षति का भी निवारण करता है। उदाहरण के लिए, जब दो पक्षों के बीच में संविदा की शर्तों के संबंध में या एक संपत्ति के स्वामित्व या अधिकार के संबंध में, या नियोक्ता द्वारा अपन कर्मचारी को गलत ढंग से निरसित किए जाने के संबंध में असहमति है तो पीड़ित पक्ष मामले के निपटान के लिए अदालत में जाकर सिविल कानून के अंतर्गत राहत प्राप्त कर सकता है। इसी प्रकार जब कोई व्यक्ति सावधानी के उस स्तर का प्रयोग करने में विफल रहता है जिसे किसी प्रकार के लापरवाहीपूर्ण कृत्य से बचने के लिए किसी स्थिति में एक सामान्य विवेक वाले व्यक्ति द्वारा अपनाया जाता है तो अन्य पक्ष सिविल कानून के अंतर्गत उपचार प्राप्त करने के लिए न्यायालय जा सकता है। यहां मूल सिद्धांत यह है कि यदि एक व्यक्ति के कानूनी अधिकार का उल्लंघन होता है तो इस पर कार्रवाई की जा सकती है चाहे उस व्यक्ति को किसी प्रकार की वास्तविक हानि हुई हो या नहीं। मामले की परिस्थितियों और गंभीरता को ध्यान में रखते हुए, एक व्यक्ति को उसके दोषपूर्ण कृत्य के परिणाम के रूप में किसी प्रकार की क्षति या चोट के लिए उत्तरदायी माना जा सकता है। परिवारिक मुद्दों से संबंधित विवादों को भी सिविल कानून के अंतर्गत शामिल किया जाता है जैसे विवाह, तलाक, अनुरक्षण, वसीयत, पति-पत्नी के बीच संपत्ति का विभाजन जैसे मामले बड़ी मात्रा में सिविल कानून के अंतर्गत शामिल होते हैं। सिविल मामले में शिकायतकर्ता व्यक्ति को वादी या आवेदक कहा जाता है और वह पक्ष जिसके विरूद्ध मामला दर्ज किया जाता है उसे प्रतिवादी कहा जाता है। न्यायालयों को यह विशेषाधिकार होता है कि वे मामले के गुण-दोषों के आधार पर उसे खारिज कर सकते हैं या यह पीडित पक्ष को हुई हानि के लिए क्षतिपूर्ति के भुगतान का आदेश दे सकते हैं। सिविल मामलों में राज्य की कोई भूमिका नहीं होती है बशर्ते सरकार स्वयं इसमें एक पक्ष हो।

10.1.1 योगदायी उपेक्षा

योगदायी उपेक्षा से तात्पर्य ऐसी उपेक्षा से है जिसके लिए वादी तथा प्रतिवादी दोनों का योगदान है। वादी तथा प्रतिवादी दोनों ही इस प्रकार की लापरवाही के लिए उत्तरदायी होते हैं। किन्तु यहां यह पता लगाना होता है कि ऐसी लापरवाही के कारण हुई हानि के लिए कौन अधिक उत्तरदायी है। उदाहरण के लिए वादी ने अपने गदहे के अगले पैरों को रस्सी से बांधकर राजमार्ग पर चरने के लिए छोड़ दिया। प्रतिवादी ने लापरवाही पूर्ण वाहन चलाते हुए उस गदहे को चोट पहुंचाई। प्रतिवादी इस दुर्घटना को रोक सकता था। यदि उसने अपनी कार सावधानीपूर्वक चलाई होती तो यह दुर्घटना नहीं होती। इस प्रकार प्रतिवादी वादी के गदहे को चोट पहुंचाने के लिए उत्तरदायी है। हालांकि कुछ स्तर तक वादी की भी लापरवाही है।

पाठगत प्रश्न 10.1

1. सिविल कानून को परिभाषित करें।
2. 'योगदायी उपेक्षा' को परिभाषित करें।

10.2 आपराधिक कानून-परिभाषा और प्रकृति

आपराधिक कानून को "नियमों के एक निकाय, जो जन सुरक्षा और कल्याण के लिए हानिकारक आचरण को प्रतिबंधित करता है और ऐसे कृत्यों के लिए दंड निर्धारित करता है" के रुप में परिभाषित किया जा सकता है।

अधिक विशिष्ट रुप से, आपराधिक कानून (जिसे दंड विधि भी कहते हैं) व्यक्तियों को जान बूझकर पहुंचाई गई हानि के कृत्यों से संबंधित है। व्यापक दृष्टिकोण में यह कहा जा सकता है कि यह राज्य के विरूद्ध अपराधों से संबंधित हैं। सभ्य समाज में अपराध को दायित्व के उल्लंघन के रूप में माना जाता है, जो न केवल एक व्यक्ति के विरूद्ध होता है किन्तु व्यापक दृष्टिकोण में समाज के विरूद्ध भी होता हैं। अन्य शब्दों में यह समग्र रूप से जन साधारण के प्रति दायित्व का उल्लंघन है जिसके लिए दोषी व्यक्ति को समाज या राज्य दंडित किया जाता है। एक अपराध सुविचारित तथा लापरवाहीपूर्ण कृत्य हैं जो अन्य व्यक्ति या उसकी संपत्ति को हानि पहुंचाता है। इसके अतिरिक्त, अन्य व्यक्तियों को हानि से सुरक्षा पहुंचाने के दायित्व में लापरवाही करना भी एक अपराध है। आपराधिक कानून से तात्पर्य कानूनों के उस निकाय से हैं। जो अपराधों और उनके परिणामों के संबंधित है ।

आपराधिक कानून में एक व्यक्ति अपराध की सूचना दे सकता है किन्तु दूसरे व्यक्ति के विरूद्ध मामला दर्ज नहीं कर सकता, यहां केवल सरकार दोषी के विरूद्ध किए जाने वाले विभिन्न अपराधों को परिभाषित करता है और उनके लिए दंडों को भी निर्धारित करता है। आपराधिक कानून का उद्देश्य अपराध करने वाले को दंडित करना और उसे पुनः अपराध को दोहराने से रोकना है। अपराध तथा दंड एक सिक्के के दो पहलू हैं। प्रत्येक कृत्य जो सामाजिक सौहार्द के लिए खतरा उत्पन्न करता है वह एक अपराध है। यद्यपि अपराध कानून द्वारा प्रतिबंधित कृत्य है और कोई व्यक्ति जो अपराध करता है वह दंड के लिए दायी है।

आपराधिक कानून की मूल अवधारणा "actus non facitreum, nisi mens sit rea" सूत्र पर आधारित है जिसका अर्थ है कि एक कृत्य स्वयं एक अपराध नहीं है जब तक कि उसके साथ आपराधिक मंशा शामिल न हो। इस प्रकार तब तक अपराध नहीं किया जा सकता है जब तक कि उसके साथ आपराधिक मंशा न हो। इसी प्रकार मात्र आपराधिक मंशा को अपराध नहीं कहा जा सकता जब तक कि उसके साथ दोषपूर्ण कृत्य शामिल न हो।

उदाहरण के लिए, यदि एक व्यक्ति अपहरण करने का केवल विचार बनाता है तो उसे अपहरणकर्ता नहीं कहा जा सकता। उसकी अपराध की मंशा के साथ-साथ अपहरण करने का दोषपूर्ण कृत्य भी शामिल होना चाहिए तभी वह अपराध बनेगा। इसी प्रकार, जब एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति को चोट पहुंचाता है तो यह चोट पहुंचाने का अपराध है किन्तु व्यक्ति तभी दायी होगा जब उसने यह चोट जान बूझकर पहुंचाई है।

यह स्पष्ट रूप से इंगित करता है कि एक अपराध के लिए मानसित कारक सर्वाधिक महत्वपूर्ण तथ्य है। जब कभी एक व्यक्ति को अपराध करने के दोष में न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत किया जाता है तो सर्वप्रथम यह सुनिश्चित करने के लिए उसकी मानसिक परिस्थिति का ध्यानपूर्वक अवलोकन किया जाता है कि क्या वह इस तथ्य से अवगत है कि उसने दोषपूर्ण कृत्य किया है। इस प्रकार, पागल व्यक्ति या नशे के प्रभाव वाले व्यक्ति द्वारा यदि बिना दोषपूर्ण मंशा के दोषपूर्ण कृत्य किया जाता है तो उसे दंड नहीं दिया जा सकता है।

आपराधिक कानून अधिकतर दो प्रकार के कानूनों से संबंधित हैं-अधिष्ठायी और प्रक्रियात्मक कानून। अधिष्ठायी कानून अपराधों को निर्धारित करता है और इन अपराधों के लिए दंडों को निर्धारित करता है जबकि प्रक्रियात्मक कानून अपराधियों को ऐसे दंड दिए जाने के लिए अनुसरण की जाने वाली प्रक्रिया को निर्धारित करता है।

भारत का आपराधिक कानून भारतीय दंड संहिता, 1860, दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 तथा भारतीय लक्ष अधिनियम, 1872 में कूटबद्ध है। इन्हें प्रमुख दंड अधिनियम कहा जाता है। इन दंड अधिनियमों के अतिरिक्त कुछ अन्य गौण दंड अधिनियम भी विद्यमान है जैसे त्वापक औषधि और मन:प्रभावी पदार्थ अधिनियम, आयुध अधिनियम तथा कास्मेटिक अधिनियम दहेज प्रतिषेध अधिनियम आदि। भारतीय दंड संहिता अधिष्ठायी कानून है क्योंकि यह विभिन्न अपराधों को परिभाषित करता है और ऐसे अपराधों के लिए दंड भी निर्धारित करता है। किन्तु दंड प्रक्रिया संहिता और भारतीय साक्ष्य अधिनियम प्रक्रियात्मक कानून हैं क्योंकि पहला अपराध की जांच की नियमों, मुकदमा चलाने की विधियाँ, अपील के प्रावधानों आदि से संबंधित है और दूसरा यह सिद्ध करने के माध्यम से संबंधित है कि व्यक्ति विशेष ने अपराध किया है या नहीं।

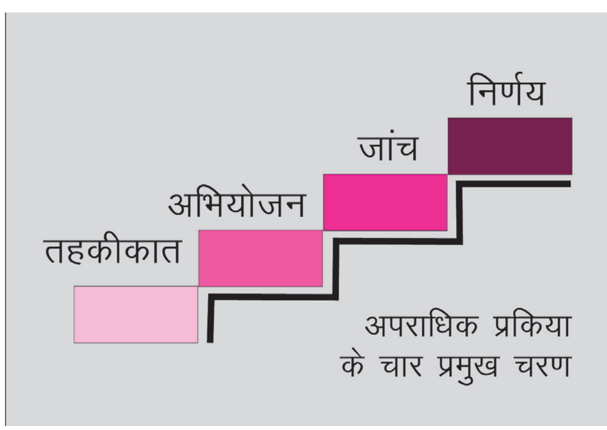

चूंकि समाज और राजनीतिक परिदृश्य में परिवर्तन के अनुसार अपराध की प्रकृति में भी परिवर्तन होता है, इस प्रकार की स्थितियों से निपटने के लिए विभिन्न नए कानून भी पारित किए जाते हैं। उदाहरण के लिए, आतंकवाद से संबंधित अपराध

तुलनात्मक दृष्टि से हाल की संकल्पनाएं हैं, जो मानव सभ्यता के आधार के लिए गंभीर खतरा उत्पन्न कर रहे हैं। चूंकि कानून में इस अपराध से निपटने के लिए कोई कई प्रावधान उपलब्ध नहीं थे इसलिए आतंकवाद निवारण अधिनियम (पीओटीए), 2002 पारित किया गया ताकि आतंकवादी गतिविधियों से प्रभावपूर्ण ढंग से निपटा जा सके जिसके अंतर्गत कुछ अपराधों के लिए आजीवन कारावास या मृत्यु दंड का भी प्रावधान है। तत्पश्चात्, इस नियम को विधि विरुद्ध क्रियाकलाप (निवारण) संशोधन अधिनियम, 2004 निरसित और प्रतिस्थापित किया गया था। नए अधिनियम में पीओटीए के सभी प्रचालनिक प्रावधान यथावत हैं किन्तु इसमें केवल कुछ उपरी परिवर्तन किए गए हैं।

'अपराध' को भारतीय दंड संहिता में परिभाषित किया गया है किन्तु कोई भी व्यवहार जो जन कल्याण के लिए हानिकारक हैं वह अपराध माना गया है।

10.2.1 भारतीय दंड संहिता, 1860

भारतीय दंड संहिता, 1860 अधिष्ठायी कानून है जिसमें 511 धाराएं हैं जो विशिष्ट अपराधों और इन अपराधों के लिए संबधित दंडों का प्रावधान करती हैं। इसमें व्यापक स्तर पर अपराध शामिल हैं।, जिनमें से कुछ संज्ञेय (cognizable) और अन्य असंज्ञेय (non-cognizable) अपराध हैं। संज्ञेय अपराध वे हैं जहां पुलिस अधिकारी बिना वारंट के अपराधी को हिरासत में ले सकता है और गैर-संज्ञेय अपराध वे हैं जहां पुलिस अधिकारी बिना वारंट के अपराधी को हिरासत में नहीं ले सकता है। दंड संहिता में राज्य के विरूद्ध अपराधों, समाज के विरूद्ध अपराधों, मानव शरीर, संपत्ति, ख्याति को प्रभावित करने वाले अपराधों आदि के लिए दंड शामिल हैं। इसमें सामाजिक अपराधों जैसे लोक समानता, चुना, सार्वजनिक न्याय, धर्म आदि के विरूद्ध अपराधों को भी संहिताबद्ध किया गया है।

उदाहरण के लिए, धारा-141 बताती है कि गैरकानूनी जमावड़ा क्या है जबकि धारा 143 गैर-कानूनी जमावड़े की सजा निर्धारित करती है। भारतीय दंड संहिता की धारा 300 हत्या के जुर्म से संबंधित है, जबकि धारा- 302 हत्या के लिए दंड से संबंधित हैं आदि।

10.2.2 अपराधिक दंड प्रक्रिया संहिता, 1973

अपराधिक दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 अपराध करने वालों को दंड दिए जाने के लिए अनुसरण की जाने वाली प्रक्रिया से संबंधित है जिसमें जांच, पूछताछ, मुकदमे और अंतिम निर्णय से संबंधित प्रक्रिया शामिल है। यदि अभियुक्त दोषी पाया जाता है तो उसे दंडित किया जाएगा और यदि युक्तिसंगत स्तर तक उसका अपराध सिद्ध नहीं हो पाता हैं तो उसे रिहा कर दिया जाएगा।

10.2.3 भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872

भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 उन साक्ष्यों को निर्धारित करता है जिन पर मामले के निपटान के लिए विचार किया जा सकता है चाहे मामला सिवल हो या आपराधिक। साक्ष्य कानून के तीन मुख्य नियम हैं- साक्ष्य मामले के तथ्यों तक सीमित होना चाहिए। साक्ष्य के रुप में केवल संगत तथ्यों को ही प्रस्तुत किया जाना चाहिए। अनुश्रुति साक्ष्यों को साक्ष्य नहीं माना जाता है और इस प्रकार इन्हें स्वीकार नहीं किया जाता है।

10.2.4 संयुक्त दायित्व का सिद्धांत

आपराधिक दायित्व का सामान्य सिद्धांत यह है कि व्यक्ति जिसने अपराध किया है उसे दोषी सिद्ध किया जाए और तदनुसार दंडित किया जाए। किन्तु कुछ ऐसे अपराध हैं जहां व्यक्ति को कुछ कारणों से अन्यों के साथ संयुक्त रूप से दायी माना जाता है। भारतीय दंड संहिता की धारा 34 से 38, 120क, 149, 396 तथा 460 के अंतर्गतसंयुक्त दायित्व का उल्लेख किया गया हैं। उदाहरण के लिए, समान उद्देश्य के लिए गैरकानूनी जमावड़ का प्रत्येक सदस्य उस जमावाड़ के किसी अन्य सदस्य द्वारा किए गए कृत्या के लिए उत्तरदायी होगा, और इस प्रकार उसे अपराधी के साथ समान रूप से दायी माना जाएगा।

पाठगत प्रश्न 10.2

1. आपराधिक कानून को परिभाषित करें।
2. 'संयुक्त दायित्व के सिद्धांत' को परिभाषित करें।

10.3 दंड के सिद्धांत

10.3.1 निवारक सिद्धांत (Deterrent Theory)

दंड का भयपरिकारी सिद्धांत दंड अपराध की गंभीरता या गंभीर प्रकृति के अनुरुप है। इस सिद्धांत के अनुसार, अपराध के लिए दोषी पाए गए व्यक्ति को इस दृष्टिकोण से दंड दिया जाता है की अन्य अपराधिकों को चेतावनी दी जा सके कि यदि वे भी इस प्रकार का अपराध करेंगे तो उन्हें भी यही दंड दिया जाएगा। इस प्रकार के दंड का उद्देश्य लोगों को अपराध करने से रोकना है। गंभीर अपराध करने वाले व्यक्ति को भारी दंड दिया जाता है। दंड का यह सिद्धांत अत्यधिक सफल नहीं है क्योंकि अधिकतर अपराध क्षणिक आवेश में किए जाते हैं। उदाहरण के लिए, व्यक्ति को दंड के रूप में मृत्यु दंड देना।

10.3.2 निरोधक सिद्धांत (Preventive Theory)

निवारक सिद्धांत के अनुसार, अपराधि को इस दृष्टिकोण से दंड दिया जाता है। कि अपराधी द्वारा इस प्रकार के अपराधों को दोहराया न जा सके और इस प्रकार के दंडों में आजीवन कारावास और मृत्यु दंड शामिल हैं। उदाहरण के लिए बाल विवाह को रोकने के लिए दंड।

10.3.3 प्रतिकारी सिद्धांत (Retributive Theory)

इस प्रकार के दंड प्रतिकार के सिद्धांत पर आधारित है अर्थात जीवन के बदले जीवन, आंख के बदले आंख, दांत के बदले दांत आदि, यह एक प्रकार क्रूर दंड है। इस प्रकार का दंड वैज्ञानिक रुप से रोग का उपचार नहीं करता है और अपराधिक मनोवृत्ति या अपराधों के कारणों का अध्ययन किए बिना आपराधिकता से निपटने का प्रयास करता है।

10.3.4 सुधारात्मक सिद्धांत

इस सिंद्धांत का उद्देश्य अपराधियों को सुधारना है ताकि उन्हें अपराधों को दोहराने से रोका जा सके। जीवन के प्रति उनकी अभिरूचि में धीरे-धीरे और वैज्ञानिक रुप से सुधार होता है उन्हें शनै-शनै समाज में स्वीकार्य व्यक्ति के रुप में परिवर्तित किया जाता है। उदाहरण के लिए, बाल कल्याण गृहों में किशोर अपराधियों का उपचार।

अपराध की क्रिया के चार स्तर होते हैं-मंशां, तैयारी, प्रयास अपराध करना। एक व्यक्ति को दोषी तभी माना जाएगा जब वह इन तीनों स्तरों से गुजरा हो।

? क्या आप जानते है

कतिपय कृत्य ऐसे हैं जिन्हें अपराध के दूसरे ही स्तर पर अपराध माना जा सकता है उदाहरण के लिए, तैयारी स्तर पर ही? उदाहरण के लिए, डकैती डालने की योजना बनाना या सरकार के विरुद्ध युद्ध की योजना बनाना कानून के अंतर्गत दंडनीय अपराध है चाहे वास्तव में डकैनी डाली न गई हो या युद्धि न छेड़ा गया हो।

यदि गलत काम करने वाला व्यक्ति यह कहता है कि उसे इस कृत्य के परिणामों का ज्ञान नहीं था तो उसे माफ नहीं किया जा सकता। क्योंकि यह माना जाता है कि हर व्यक्ति को अपने देश के कानून का ज्ञान होना चाहिए जो कि इस कथन "Ignorntiajuris non exusat" से प्रभावित है जिसका अर्थ है विधि का ज्ञान न होना कोई बहाना नहीं है।

क्रियाकलाप 10.1

अपने कम से कम 5 सह-पाठकों, मित्रों या परिवार के सदस्यों से विचार एकत्र करते हुए निम्नलिखित प्रश्नों के संक्षिप्त उत्तर लिखें-

1. क्या आपके विचार से असाधारण से भी असाधारण मामले में मृत्यु दंड देना उचित हैं?
2. क्या आपके विचार से आपराधिक कानून के अंतर्गत व्यक्ति को दंडित करने से वह व्यक्ति भविष्य में अपराध नहीं करेगा?

उनके उत्तरों को नीचे दी गई तालिका में प्रस्तुत करें और उनके उत्तरों के आधार पर निष्कर्ष निकालें। इन विषयों में आपका क्या विचार है?

प्रश्न			व्यक्तियों का उत्तर		
	व्यक्ति 1	व्यक्ति2	व्यक्ति3	व्यक्ति4	व्यक्ति5
प्रश्न1					
प्रश्न2					

पाठगत प्रश्न 10.1

1. दंड के विभिन्न सिद्धांतों का उल्लेख कीजिए।
2. निरोधक सिद्धान्त की व्याख्या कीजिए।

10.4 सिविल कानून और आपराधिक कानून के अंतर्गत शामिल अधिकार

कानूनी अधिकार को विधि द्वारा एक हित के रूप में मान्यता और संरक्षण प्रदान किया गया है। एक हित उस समय अधिकार बनता है जब उसे स्वीकृति प्रदान की जाती है। निम्नलिखित चार तत्व कानूनी अधिकार के मुख्य घटक है–

(i) व्यक्ति जिसे वह अधिकार प्राप्त है वही उस अधिकार का स्वामी है।

(ii) यह अधिकार जिस व्यक्ति के विरूद्ध विद्यमान है वह इस के लिए उत्तरदायी है।

(iii) कृत्य या सहिष्णुता, जिसके लिए व्यक्ति पात्र हैं।

(iv) अधिकार की विषय–वस्तु।

सिविल कानून के अंतर्गत एक कार्रवाई में सफल होने के लिए दायी को यह सिद्ध करना होता है कि उसके कानूनी अधिकारों के उल्लंघन के कारण उसे कानूनी क्षति पहुंची है। जब तक कानूनी अधिकार का उल्लंघन नहीं होगा, तब तक सिविल कानून के अंतर्गत कार्यवाही नहीं की जा सकती है, चाहे वादी को किसी भी प्रकार की हानि हुई हो। इसे इस विवरण द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है कि "damnum sine inguria"। दूसरी ओर यदि वादी को किसी प्रकार की हानि नहीं हुई है और इसके बावजूद उसके अधिकार का हनन हुआ है तो इस प्रकार का अनैतिक कृत्य कार्रवाई योग्य है और वादी को इसके लिए क्षतिपूर्ण प्रदान की जा सकती है। इसे 'inguria sine damno' कथन से स्पष्ट किया जा सकता है।

सिविल कानून में अधिकतर संविदा, क्षतियों के कानून, पारिवारिक कानून तथा संपत्ति कानून के अंतर्गत अधिकार शामिल होते हैं।

10.4.1 संविदा का कानून

संविदा का कानून वाणिज्यिक कानून की सर्वाधिक महत्वपूर्ण शाखा है। संविदाओं को निष्पादित किए जाने के लिए तैयार किया जाता है किन्तु यदि दोनों में से कोई भी पक्ष संविदा के अपने भाग का निष्पादन करने में विफल रहता है तो पीड़ित पक्ष को अधिनियम में उल्लिखित अनुसार उपयुक्त उपचार प्राप्त है।

रोजाना हजारों की संख्या में संविदा तैयार किए जाते हैं और इसलिए भारतीय संविदा अधिनियम, 1872 अत्यंत महत्वपूर्ण अधिनियम है। वैध करार से संबंधित सभी नियमों का उल्लेख इस अधि नियम में है। इस अधिनियम का मुख्य उद्देश्य यह सुनिश्चित करना है कि अधिनियम के अनुसार दिन–प्रतिदिन के जीवन में बनाए गए करारों का निष्पादन संबंधित पक्षों के हित में किया जा रहा है और संविदा के उल्लंघन के मामले में पीड़ित पक्ष को न्यायालय के माध्यम से अधिनियम के अनुसार उचित उपचार प्राप्त हो सके।

10.4.2 अपकृत्य या हानि का कानून

अपकृत्य का कानून दायित्वों के कानून की एक शाखा है। यह वह कानून हैं जहां दूसरे लोगों को हानि पहुचानें का कानूनी दायित्व आपका है और यदि हानि पहुंचाई जाती है तो करार द्वारा नहीं बल्कि सामान्य कानून के करार बल से इतर उसकी क्षतिपूर्ति का दायित्व आपका होगा। सामाजिक रूप से अपकृत्य की क्रिया से तात्पर्य एक व्यक्ति को होने वाली हानि को दूसरे व्यक्ति को स्थानांतरित किया जाना, जिसने यह कृत्य किया है या इस कृत्य के होने के लिए उत्तरदायी है और कुछ उपायों में इस हानि को एक उपक्रम या संपूर्ण समुदाय में फैलाने के लिए उत्तरदायी है। अपकृत्य एक प्रकार का सिविल अपराध है जो विशिष्ट रूप से किसी अन्य प्रकार का सिविल अपराध नहीं है जैसे संविदा का उल्लंघन या विश्वास भंग। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि सभी अपकृत्य सिविल अपराध हैं किन्तु सभी सिविल अपराध अपकृत्य नहीं है।

10.4.3 परिवार कानून

भारत विभिन्न संस्कृति और धर्मो का देश है। प्रत्येक धर्म विवाह, तलाक, वादपोषण, विभाजन, वसीयत तथा विरासत आदि संबंधी अपने स्वयं के व्यक्तिगत कानूनों से संचालित होते हैं। उदाहरण के लिए हिन्दू लोग हिन्दू धर्म से संचालित है जबकि मुस्लिम समुदाय मुस्लिम धर्म द्वारा संचालित है और पारसी समुदाय पारसी धर्म से संचालित हैं।

10.4.4 सम्पत्ति कानून

संपत्ति कानून चल तथा अचल संपत्तियों के हस्तांतरण के कानूनों से संबंधित है। जबकि संपत्ति हस्तांतरण अधिनियम, 1882 अचल संपत्तियों की बिक्री, पटटा मॉर्टगेज आदि के प्रावधानों को निर्धारित करता है और चल संपत्तियों के हस्तांतरण के कुछ प्रावधानों को भी निर्धारित करता है जबकि माल विक्रय अधिनियम, 1930 क्रियात्मक दावों और धनराशि को छोड़कर केवल चल संपत्तियों के हस्तांतरण के प्रावधानों को निर्धारित करता है।

सिविल कानून की तुलना में आपराधिक कानून अपने शरीर तथा संपत्ति के संबंध में व्यक्ति के अधिकारों को शामिल करता है। जब कभी राज्य या एक व्यक्ति के शरीर या संपत्ति के विरूद्ध कोई अपराध किया जाता है तो राज्य इस पर प्रत्यक्ष रूप से कार्रवाई करता है और अपराधी के विरूद्ध मामला दायर करता है।

क्रियाकलाप 10.2

समाज में दूसरों के प्रति जैसे आपका परिवार, पड़ोसी तथा अन्य अपने कानूनी अधिकारों और दायित्वों को नीचे दिए गए बॉक्स में प्रस्तुत करें।

मेरे कानूनी दायित्व

अपने परिवार के प्रति	अपने पड़ोसियों के प्रति	अपने प्रति
1.	1.	1.
2.	2.	2.

मेरे कानूनी अधिकार

अपने परिवार के प्रति	अपने पड़ोसियों के प्रति	अपने प्रति
1.	1.	1.
2.	2.	2.

पाठगत प्रश्न 10.4

1. कानूनी अधिकारों और दायित्वों से आप क्या समझते हैं? क्या इन दोनों के बीच कोई आपसी संबंध है?
2. निम्नलिखित में से कौन सा विवरण सही है और क्यों?
   (i) वादी को किसी प्रकार की वास्तविक हानि के बिना कानूनी अधिकार का उल्लंघन कार्रवाई योग्य है।
   (ii) वादी को किसी प्रकार के कानूनी अधिकार के उल्लंघन के बिना हुई हानि कार्रवाई योग्य है।
3. निम्नलिखित में से कौन से अधिकार सिविल कानून के अंतर्गत शामिल हैं?
   (i) संविदा के अंतर्गत व्यक्ति का अधिकार
   (ii) मतदान का अधिकार
   (iii) महिला का विवाहभंग या तलाक होने पर भरण-पोषण का अधिकार।

10.5 आपराधिक कानून तथा सिविल कानून में अंतर

- आपराधिक कानून व्यक्तियों संगठनों आदि के बीच के विवादों को निपटाता है जबकि आपराधिक कानून विधि का वह निकाय है जो अपराध और अपराधिक दोषों के लिए कानूनी दंड का प्रावधान करता है।
- सिविल कानून में मामले का आरंभ दोषी के विरूद्ध पीडित पक्ष द्वारा शिकायत दायर करके किया जाता है जबकि आपराधिक कानून में दोषी के विरुद्ध सरकार द्वारा मामला दायर किया जाता है।
- एक सिविल मुकदमा आपराधिक मुकदमें से कम गंभीर होता है।
- सिविल कानून में साक्ष्यों को सिद्ध करने का उत्तरदायित्व दायी का होता है जबकि आपराधिक कानून में यह उत्तरदायित्व सदैव राज्य का होता है।
- सिविल कानून में दंड क्षतिपूर्ति के रूप में दिया जाता है जिसके द्वारा अपराध करने वाला न्यायालय द्वारा निर्धारित अनुसार दायी को हुई हानि की राशि का भुगतान करता है। उदाहरण के लिए संविदा के उल्लंघन की स्थिति में पीडित पक्ष को क्षतिपूर्ति के लिए न्यायालय जाना पड़ता है जबकि आपराधिक कानून में दोषी को जुर्माने सहित या बिना जुर्माने जेल में डालकर दंडित किया जाता है और कुछ असामान्य से असामान्य मामलों में मृत्यु दंड भी दिया जाता है।

- व्यापक रूप से कहा जाए तो सिविल कानून का उद्देश्य एक व्यक्ति के हितों को दूसरों से सुरक्षा प्रदान करना है, जबकि आपराधिक कानून जनहितों को अपराधियों से सुरक्षा प्रदान करता है।
- सिविल कानून में संपत्ति, संविदा, अपकृत्य, पारिवारिक व्यवस्था आदि संबंधी विवाद शामिल है, जबकि आपराधिक कानून में मानव शरीर तथा संपत्ति को प्रभावित करने वाले अपराध और इन अपराधों के लिए संबंधित दंड शामिल है।
- आपराधिक मामलों में अभियुक्त को दोषों सिद्ध करने के लिए अधिक साक्ष्यों की जरूरत पड़ती है। जबकि सिविल मामलों में अधिक साक्ष्यों की आवश्यकता नहीं होती।
- आपराधिक कानून में संभावनाओं का प्रश्न नहीं उठता, इसे सदैव निश्चित होना चाहिए जबकि सिविल मामले में इसके विपरीत संभावनाओं द्वारा मामले को सिद्ध किया जा सकता है।

क्या आप जानते है

कुछ ऐसे अनैतिक कृत्य हैं जो सिविल तथा आपराधिक कानून दोनों के अंतगर्त आते हैं? उदाहरण के लिए, अनैतिक कृत्य जैसे मारपीट, प्रहार, अपयश, लापरवाही तथा उपद्रव के लिए सिविल तथा आपराधिक दोनों कानूनों में प्रावधान है, हालांकि इन दोनों कानूनों में इन अनैतिक कृत्यों की परिभाषा भिन्न भिन्न है। सिविल कानून के अंतर्गत एक व्यक्ति को उत्तरदायी बनाने के लिए अपकृत्य के नियम लागू किए जाते हैं और आपराधिक दायित्व स्थापित करने के लिए आपराधिक कानून के नियम लागू होते हैं।

पाठगत प्रश्न 10.5

1. सिविल कानून तथा आपराधिक कानून के बीच क्या मौलिक अंतर है?
2. निम्नलिखित में से कौन से मामले सिविल कानून और कौन से मामले आपराधिक कानून के अंतर्गत आते हैं?
   (i) दो भाईयों के बीच संपत्ति का विवाद
   (ii) एक पन्द्रह वर्षीय लड़की का अपहरण
   (iii) एक पक्ष द्वारा संविदाकारी शर्तो का उल्लंघन
   (iv) एक व्यक्ति द्वारा हत्या का अपराध
3. आपराधिक कानून में मानसिक तत्व या 'मंशा' का क्या महत्व हैं?

आपने क्या सीखा

- सिविल कानून और आपराधिक कानून विधि की दो व्यापक श्रेणियां हैं, जो व्यक्तियों और राज्य के कानूनी अधिकारों के संरक्षण द्वारा सम्पूर्ण कानूनी प्रणाली को विनियमित

करती हैं। अधिकारों के संरक्षण द्वारा सम्पूर्ण कानूनी प्रणाली को विनियमित करती हैं।

- कानूनी अधिकार को विधि द्वारा एक हित के रूप में मान्यता और सरंक्षण प्रदान किया गया है। इस प्रकार जहां किसी व्यक्ति के कानूनी अधिकार का हनन होता है, वहां वह उपयुक्त न्यायालय में जाकर राहत प्राप्त कर सकता है, अर्थात सिविल कानून के अंतर्गत किसी कृत्य के लिए सिविल न्यायालय और आपराधिक कृत्य के लिए आपराधिक न्यायालय।
- सिविल कानून अधिकार व्यक्तियों और प्राइवेट अधिकारों से संबंधित हैं जैसे संविदा के कानून, अपकृत्य, पारिवारिक कानून आदि के अंतर्गत शामिल अधिकार किन्तु आपराधिक कानून समाज में रहने के लिए लोगों के आचरण को विनियमित करता है क्योंकि एक अपराध राज्य के विरूद्ध माना जाता है।
- सिविल कानून के अंतर्गत संविदा का कानून पक्षों के बीच प्रवर्तनीय करारों, संविदा के अंतर्गत उनके अधिकारों और दायित्वों और इन संविदाओं के उल्लंघन के लिए उपचार उपलब्ध कराता है। अपकृत्य का कानून अधिकारों के उल्लंघन के मामले में समाज में व्यक्तियों के कानूनी अधिकारों के संरक्षण से संबंधित है। ये दोनों कानून अधिकतर अंग्रेजी कानून प्रणाली पर आधारित हैं। परिवार कानून पारिवारिक व्यवस्थाओं के अंतर्गत व्यक्तियों के अधिकारो और दायित्वों को विनियमित करता है जबकि हिन्दू लोग हिन्दू कानून से संचालित हैं जबकि मुस्लिम समुदाय मुस्लिम कानून द्वारा संचालित है। ईसाई लोग ईसाई कानून से, और पारसी समुदाय पारसी कानून से संचालित है।
- आपराधिक कानून अधिकतर दो प्रकार के कानूनों से संबंधित है–अधिष्ठायी और प्रक्रियात्मक कानून। अधिष्ठायी कानून अपराधों को निर्धारित करता है और इन अपराधों के लिए दंडो को निर्धारित करता है जबकि प्रक्रियात्मक कानून अपराधियों को ऐसे दंड दिए जाने के लिए अनुसरण की जाने वाली प्रक्रिया को निर्धारित करता है।

पाठांत प्रश्न

1. कानूनी अधिकारों से आप क्या समझते हैं? आप अपने किसी कानूनी अधिकार के उल्लंघन के लिए क्या कार्रवाई कर सकते हैं?
2. सिविल कानून में आपराधिक कानून की तुलना में कम गंभीर मामले शामिल होते हैं। चर्चा करे।
3. संविदागत दायित्वों से निपटने वाले कानून का संक्षिप्त ब्यौरा प्रस्तुत करें।
4. सभी अपकृत्य सिविल अपराध हैं किन्तु सभी सिविल अपराध अपकृत्य नहीं हैं। स्पष्ट करें।
5. आपराधिक कानून के अंतर्गत “actus non facitreum nisi mens sit rea” कथन के महत्व का वर्णन करें।
6. दंड के विभिन्न सिद्धांतों की चर्चा करे।

7. निम्नलिखित विवरणों को पढ़ें इनमें से सही विवरणों को पहचानें और गलत विवरणों में आवश्यक परिवर्तन करते हुए उन्हें पुनः लिखें।
   (i) जहां अधिकार है, वहीं उपचार हैं।
   (ii) सिविल कानून जन अधिकारों से संबंधित हैं।
   (iii) आपराधिक कानून के अंतर्गत, दंड क्षतिपूर्ति के रूप में दिया जाता है।
   (iv) असाधरण से असाधारण मामलों में मृत्यु दंड दिया जाता है।
   (v) संपत्ति विवादों से संबंधित मुकदमें आपराधिक कानून के अंतर्गत चलाए जाते हैं।
   (vi) सिविल कानून में सरकार द्वारा दोषी के विरूद्ध मामला दायर किया जाता है।

पाठगत प्रश्नों के उत्तर

10.1

1. सिविल कानून और कुछ नहीं बल्कि राज्य का कानून या देश का कानून है। यह कानून और न्याय का वह क्षेत्र है जो व्यक्तिगत विधिक स्थिति को प्रभावित करता है। सिविल कानून न केवल निजी पक्षों के बीच विवादों को निपटाता है बल्कि व्यक्तियों के लापरवाहीपूर्ण कृत्यों द्वारा अन्य लोंगों को हुई क्षति का भी निवारण करता है।
2. योगदायी उपेक्षा से तात्पर्य ऐसी उपेक्षा से है जिसके लिए वादी तथा प्रतिवादी दोनों का योगदान हैं। वादी तथा प्रतिवादी दोनों ही इस प्रकार की लापरवाही के लिए उत्तरदायी होते हैं।

10.2

1. आपराधिक कानून को "नियमों के एक निकाय, जो जन सुरक्षा और कल्याण के लिए हानिकारक आचरण को प्रतिबंधित करता है और ऐसे कृत्यों के लिए दंड निर्धारित करता है" के रूप में परिभाषित किया जा सकता है। आपराधिक कानून कानूनों का वह निकाय है जो अपराधों और उनके परिणामों से सम्बन्धित है।
2. आपराधिक दायित्व का सामान्य सिद्धांत यह है कि व्यक्ति जिसने अपराध किया है उसे दोषी सिद्ध किया जाए और तदनुसार दंडित किया जाए। किन्तु कुछ ऐसे अपराध हैं जहां व्यक्ति को कुछ कारणों से अन्यों के साथ संयुक्त रूप से दोषी माना जाता है। इसे संयुक्त दायित्व का सिद्धान्त कहा जाता है।

10.3

1. दंड के विभिन्न सिद्धांत निम्नानुसार हैं–
   (i) निवारक सिद्धांत (Deterrent Theory)
   (ii) निरोधक सिद्धांत (Preventive Theory)

(iii) प्रतिकारी सिद्धांत (Retributive Theory)

(iv) सुधारात्मक सिद्धांत (Reformative Theory)

2. निरोधक सिद्धांत के अनुसार, अपराधि को इस दृष्टिकोण से दंड दिया जाता है कि अपराधी द्वारा इस प्रकार के अपराधों को दोहराया न जा सके और इस प्रकार के दंडों में आजीवन कारावास और मृत्यु दंड शामिल है।

10.4

1. कानूनी अधिकार वे हित हैं जिन्हें कानून द्वारा मान्यता तथा संरक्षा प्राप्त होता है। एक हित तब अधिकार बनाता है जब उसे कानूनी संरक्षण और कानूनी मान्यता प्राप्त होती है। कानूनी अधिकार हित हैं, जिनके उल्लंघन से नैतिक अपकृत्य होता है। अन्यों के कानूनी अधिकारों का आदर करना एक व्यक्ति का कानूनी दायित्व है। जब कोई व्यक्ति अन्यों के प्रति अपने कानूनी दायित्व के बीच सदैव ही संबंध रहा है। क्योंकि जब एक व्यक्ति के कानूनी अधिकार होते हैं तो इसका अर्थ होता है कि विश्व में अन्य सभी का दायित्व है कि उस अधिकार का पालन करे अन्यथा कानून स्वयं उल्लंघन करने वाले के प्रति कार्रवाई करेगा।

2. दो प्रश्नों में से (i) सही हैं और (ii) गलत हैं। क्योंकि एक सफल कार्रवाई करने के लिए केवल एक बात सिद्ध करनी होती हैं कि वादी के कानूनी अधिकार का उल्लंघन किया गया है। चाहे उसे कोई वास्तविक हानि हुई हो या नहीं, यह महत्वपूर्ण नहीं है।

3. ये तीनों अधिकार सिविल कानून के अंतर्गत शामिल हैं।

10.5

1. सिविल कानून अधिकतर व्यक्तियों, संगठनों आदि के प्राइवेट अधिकारों को विनियमित करता है जो कम गंभीर प्रकृति के होते हैं और जिसके लिए दंड क्षतिपूर्ति की दृष्टि से प्रदान की जाती है, जबकि आपराधिक कानून अधिक गंभीर प्रकृति के अपराधियों के कृत्यों के विरूद्ध जनता के हितों को सरंक्षित करता है और इसके लिए अपराधी को जल या जुर्माने या दोनों के द्वारा दंडित किया जाता है।

2. (i) और (iii) सिविल कानून के अंतर्गत शामिल हैं और क्र सं (ii) और (iv) आपराधिक कानून के अंतर्गत शामिल हैं।

3. एक अपराध को करने के लिए "मानसिक तत्व" सर्वाधिक महत्वपूर्ण कारक है। जब तक एक अपराध 'अपराध की मंशा' से नहीं किया जाता है तब तक वह दंडनीय नहीं है।

11

अधिष्ठायी कानून और प्रक्रियात्मक या अवलम्बित कानून

'अधिष्ठायी कानून'और 'प्रक्रियात्मक कानून' विधि की दो महत्वपूर्ण शाखांए है। शब्द "अधि ष्ठायी" (Substantive) और "अवलिम्बित" (Adjective) को उत्पत्ति सनृ 1843 में बैथम द्वारा की गई थी। ऑस्टिन ने यह कहते हुए इस अंतर की आलोचना की थी कि "न्यायोचित विभाजन के आधार पर ऐसा नहीं किया जा सकता है।" हॉलैंड ने अपने "ट्रीटीस ऑन ज्यूरिसप्रूडैंस" में शब्द "अधिष्ठायी" और "अवलम्बित" को लोकप्रिय बनाया और इसे सामान्य रूप से लेखकों द्वारा स्वीकार किया गया। इस पाठ में हम कानून की इन दोनों शाखाओं के बीच के अंतर के प्रति 'न्यायिक दृष्टिकोण' पर चर्चा करेंगे क्योंकि दोनों ही कानून महत्वपूर्ण है और एक के अभाव में दूसरे को प्रभावी नहीं बनाया जा सकता है। हालांकि कानून की इन दो शाखाओं के बीच में कुछ अतिव्यापी तथ्य विद्यमान हैं। कानून की इन दो शाखाओं के बीच के अन्तरों की सटीक प्रकृति का विशुद्ध रूप से उल्लेख करना कोई सरल कार्य नहीं है। किन्तु यह कहा जा सकता है कि अधिष्ठायी प्रकृति के कानूनों के अभाव में प्रक्रियात्मक कानून में विनियमित करने के लिए ज्यादा कुछ नहीं हैं, तथा प्रक्रियात्मक कानून की अनुपिस्थत में अधिष्ठायी कानून का अनुकूल अनुप्रयोग संभव नहीं है।

उद्देश्य

इस पाठ के अध्ययन आप

- अधिष्ठायी और प्रक्रियात्मक कानून के बीच के अंतर के प्रति न्यायिक दृष्टिकोण का वर्णन कर पाएंगे।
- अधिष्ठायी कानून के अर्थ और प्रकृति को जान पाएंगे।
- प्रक्रियात्मक या अवलम्बित कानून के अर्थ और प्रकृति को जान पाएंगे।
- अधिष्ठायी और प्रक्रियात्मक कानून के बीच के अंतर को जान पाएंगे।
- उन प्रक्रियात्मक और अधिष्ठायी नियमों/सिद्धांतो का वर्णन कर पाएंगे जो समान हैं।

11.1 अधिष्ठायीकानून की तुलना में प्रक्रियात्मक कानून-न्यायिक दृष्टिकोण

Benth बैथम ने प्रतिपादित किया है कि "अधिष्ठायी कानून" तथा प्रक्रियात्मक कानून" को स्पष्ट रूप से तथा सटीक रूप में पृथक किया जा सकता है। उन्होंने उल्लेख किया कि 'प्रक्रिया से तात्पर्य कानूनों के निष्पादन में लगने वाली अवधि है....कानून विनिर्दिष्ट करता है कि, प्रक्रिया की अवधि पूर्ववर्ती आवृति पर निर्भर करती है जो शब्द 'अवलम्बी कानूनों' पर आधारित होती है।" यह उन अन्य कानूनों के विपरीत है, जिनका निष्पादन उनके दृष्टिकोण में है और जो इस समान उद्देश्य के लिए अनुवर्ती विपरीत शब्द 'अधिष्ठायी कानूनों' पर आधारित हैं।

हॉलैंड ने अपनी पुस्तक "ट्रीटीज ऑफ ज्यूरिसप्रूडेंस" में कहा है-"कानून-उन अधिकारों को परिभाषित करता है जिनको वह सहयोग प्रदान करेगा और उस माध्यम को भी विनिर्दिष्ट करता है जिस रूप में उन्हें सहयोग प्रदान करेगा। अभी तक जैसा कि परिभाषित किया गया है, उसके द्वारा 'अधिष्ठायी कानून' का सूजन किया गया। जैसा कि इसमें सहयोग और संरक्षण की विधि का प्रावधान किया गया है, वह अविलंबित कानून है।"

बहरहाल, **सेल्मंड** दूसरी और यह कहते हैं कि "पृथकत्व को सटीक रूप से सिद्धांत में निर्मित किया गया है किन्तु व्यवहारिक प्रयोग में अनेक प्रक्रियात्मक नियम "समग्र रूप से या" अधिष्ठित रूप में अधिष्ठायी कानून के नियमों के समान है।" सेल्मंड ने यह पाया कि यदि एक व्यक्ति इस तथ्य को देखता है कि "न्यायकरण (administration of justice) अपने विशिष्ट रूप में अधिकारों के उल्लंघन के लिए उपायों के अनुप्रयोग में शामिल है, तो इसका अर्थ है कि अधिष्ठायी कानून वह है जो अधिकारों को परिभाषित करता है और प्रक्रियात्मक कानून उपायों को निर्धारित करता है" किन्तु अधिकार और उपाय (jus और remedium) के बीच का यह अंतर अमान्य है क्योंकि यहां अनेक अधिकार है (व्यापक दृष्टिकोण में) जो प्रक्रिया के कार्यक्षेत्र से संबंधित हैं। उदाहरण के लिए, अपील का अधिकार, अपने स्वयं की ओर से साक्ष्य प्रस्तुत करने का अधिकार, अन्य पक्ष से पूछताछ करने का अधिकार आदि। दूसरी ओर, उपाय को परिभाषित करने वाले नियम उतने ही अधिष्ठायी कानून के भाग हैं जितने कि स्वयं अधिकार को परिभाषित करने वाले नियम हैं। आपराधिक कानून का अधिष्ठायी भाग केवल अपराध से ही संबंधित नहीं है बल्कि दंड से भी संबंधित है। इस लिए सिविल कानून में अधिष्ठायी कानून से संबंधित क्षतियों के उपाय के रूप में नियम, 'क्षति' से घोषित नियम कार्यवाही योग्य हैं। इस प्रकार, प्रक्रिया को अधिकारों से नहीं बल्कि उपायों से संबंधित होने के रूप में परिभाषित करना 'उपाय' को उस प्रक्रिया के विरोध में स्थापित करना है जिससे उसका निर्माण हुआ है।

सेल्मंड ने उल्लेख किया है कि "प्रक्रिया के कानून को विधि की उस शाखा के रूप में परिभाषित किया जा सकता है जो मुकदमावाजी (litigation) की प्रक्रिया को शासित करती है" यह कार्रवाई विधान है। अधिष्ठायी कानून में संपूर्ण अवशिष्ट, और यह अभियोग की प्रक्रिया से संबंधित नहीं हैं बल्कि इसके प्रयोजनों और विषयवस्तु से संबंधित हैं....अधिष्ठायी कानून उन छोरों से संबंधित है जो न्यायकरण की व्याख्या करते हैं। यह अभियोजित मुद्दों से संबंधित आचरण और संबंधों का निर्धारण करते हैं। इसके अतिरिक्त उन्होंने यह भी कहा कि "प्रक्रियात्मक कानून न्यायालय के भीतर के मामलों से संबंधित है।" जबकि "अधिष्ठायी कानून बाहरी विश्व के विषयों से संबंधित है।"

अन्य विधिशास्त्रीय दृष्टिकोण यह है कि "अधिष्ठायी कानून" और प्रक्रियात्मक कानून" के बीच में कोई अंतर नहीं है। अधिष्ठायी कानून और प्रक्रियात्मक कानून के बीच का अंतर कृत्रिम और अवास्तविक है। सार रूप में इनमें कोई अंतर नहीं है। वाद या वादकायी के पास अभी तक, उपचारात्मक और पूर्वनिर्धारित तंत्र के रूप में इस का प्रयोग करने के लिए मान्यता प्राप्त जो दावा अधिकार है, कानून की भाषा में वे अधिकार का ही एक भाग है।

प्रॉफेसर कूक ने "Substance" and "Procedure" in the Conflict of Laws में त्रिआधारित संकल्पना प्रस्तुत की हैं- (i) अधिष्ठा (ii) प्रक्रिया और (iii) एपिनंब्रा, "twilight zone," "no-man's land" जो प्राप्त किए जाने वाले लक्ष्य की स्थिति के आधार पर "अधिष्ठित" या "प्रक्रियात्मक" हो सकती है।

पाठगत प्रश्न 11.1

बताएं सही/गलत

1. अधिष्ठायी कानून और प्रक्रियात्मक कानून के बीच का अंतर कृत्रिम और अवास्तविक है। (सही/गलत)
2. "अधिष्ठायी कानून और प्रक्रियात्मक कानून के बीच पृथकत्व को सटीक रूप से सिद्धांत में निर्मित किया गया है किन्तु व्यवहारिक प्रयोग में अनेक प्रक्रियात्मक नियम 'समग्र रूप से या अधिष्ठित रूप में अधिष्ठायी कानून के नियमों के समान है।" सेल्मंड (सही/गलत)

11.2 अधिष्ठायी कानून का अर्थ और प्रकृति

आइए, अब अधिष्ठायी कानून और प्रक्रियात्मक कानून के अर्थ और प्रकृति पर चर्चा करें और दोनों कानूनों के कार्यक्षेत्र में आने वाले क्षेत्रों की भी चर्चा करें।

अधिष्ठायी कानून का निर्माण समान, सांविधिक, संवैधानिक और मौलिक रूप से समान तथ्यों और स्थितियों वाले मामलों के विधिक पूर्व-निर्णयों का अनुसरण करने वाले न्यायिक निर्णयों में पाए जाने वाले सिद्धांतों से होता है। समय के साथ साथ और नए कानूनों के निर्माण के साथ साथ अधिष्ठायी कानून की मात्रा में वृद्धि हुई है। उदाहरण के लिए दंड विधि, संविदा कानून, सम्पत्ति कानून विशेष राहत अधिनियम आदि अधिष्ठायी कानून हैं।

विभिन्न पेशेवरों पाठों के लेखों से यह निष्कर्ष निकलता है कि अधिष्ठायी कानून विषयों (व्यक्तियों) और विषय तथा राज्य के बीच के विधिक संबंध पर कार्य करता हैं। अधिष्ठायी कानून एक सांविधिक कानून है जो कानून द्वारा संरक्षित किए जाने वाले नागरिकों के अधिकारों और दायित्वों को परिभाषित और निर्धारित करता है। अपराध या गलत कृत्य को और उनके उपचारों को परिभाषित करता है। उन तथ्यों को निर्धारित करता है जिसमें गलत कृत्य निहित होते हैं। याथा न्यायकरण के परिप्रेक्ष्य में अभियोग की विषयवस्तु। अधिष्ठायी कानून 'उपाय' और अधिकार को परिभाषित करता है। लोक कानून और प्राइवेट कानून की सभी श्रेणियों को शामिल करता है और अधिष्ठायी कानून और आपराधिक कानून को भी शामिल करता है।

सारांश में, यह कहा जा सकता है कि अधिष्ठायी कानून वह सांविधिक कानून है जो लोगों और राज्य के बीच के संबंधों पर कार्य करता है। इसलिए, लोगों और राज्य के अधिकारों और कर्तव्यों को परिभाषित करता है। अधिष्ठायी कानून मामले की संरचना और तथ्यों से संबंधित है। नागरिकों के अधिकारों और कर्तव्यों को परिभाषित करता है तथा इसे गैरविधिक परिप्रेक्ष्य में लागू नहीं किया जा सकता है।

11.2.1 अधिष्ठायी सिविल कानून (Substantive Civil Law)

सिविल कानून में कोई प्राइवेट गलत कृत्य (private wrong), 'अपकृत्य' शामिल है जो अनैतिक रूप से किसी अन्य व्यक्ति को नुकसान या हानि पहुँचाता है जिसके परिणामस्वरूप अपराधपूर्ण कृत्य करने वाले व्यक्ति का कानूनी दायित्व उत्पन्न हो जाता है। अधिष्ठायी कानून 'अपकृत्य' के लिए आरोप को परिभाषित करता है। अधिष्ठायी कानून संविदाओं के कानून को भी शामिल करता है और परिभाषित करता है कि संविदा, सदाशयी संपत्ति के निर्माण के लिए अपेक्षित अनिवार्य तत्व कौन से हैं। भारतीय उत्तराधिकार अधिनियम, 1925 भारत में मुसलमानों से इतर व्यक्तियों के संबुंध में वसीयती उत्तराधिकार के अधिष्ठायी कानून और हिन्दुओं और मुसलमानों से इतर व्यक्तियों के संबंध में निर्वसीयत से संबंधित है। अन्य अधिनियम जिनमें भारत में अधिष्ठायी कानून से संबंधित प्रावधान है। भारतीय संविदा अधिनियम, 1872, संपत्ति अंतरण अधिनियम, 1882; विनिर्दिष्ट अनुतोष अधिनियम, भारतीय न्यास अधिनियम, 1882।

11.2.2 अधिष्ठायी आपराधिक कानून (Substantive Criminal Law)

भारत में भारतीय दंड संहिता विभिन्न दंडनीय अपराधों और अपराध के व्यक्ति को दोषी साबित करने के लिए उपलब्ध कराए जाने वाले तत्वों की सूची को परिभाषित करता है। इसमें इन अपराधों के लिए दिए जाने वाले दंडों का भी प्रावधान हैं। उदाहरण के लिए, अधिष्ठायी आपराधिक कानून "हत्या", "ढकैती", "बलात्कार", "हमले" आदि के तत्वों को परिभाषित करता है।

पाठगत प्रश्न 11.2

1. अधिष्ठायी कानून के विभिन्न स्रोतों की सूची तैयार करें।
2. अधिष्ठायी सिविल कानून को परिभाषित करें।

11.3 प्रक्रियात्मक कानून का अर्थ और प्रकृति

प्रक्रियात्मक कानून (या अवलम्बित कानून) कानून के प्रवर्तन से संबंधित है जिसे पद्धति, प्रक्रिया और तंत्र द्वारा निर्देशित और विनियमित किया जाता है। न्यायकरण के लिए यह कानून अत्यंत आवश्यक है। प्रक्रियात्मक कानून उस माध्यम के रूप में कार्य करता है जिसके द्वारा समाज अपने अधिष्ठायी लक्ष्यों को प्राप्त करता है। प्रक्रियात्मक कानून की उत्पत्ति संवैधानिक कानून, विधान द्वारा पारित अधिनियमों, विधि प्रवर्तन एजेंसियों द्वारा अपनी कर्मचारियों के लिए लिखित विनियमों के प्रचार से संबंधित है, जिनके पास कानून की शक्ति नहीं है किन्तु जिनके

उल्लंघन के परिणामस्वरूप आंतरिक प्रतिबंध उत्पन्न हो सकते हैं और उच्चतम न्यायालय द्वारा निर्धारित नियम और प्रक्रियात्मक दिशा निर्देश से हुई है। हॉलेड के अनुसार, अवलम्बित कानून, हालांकि, प्राथमिक रूप से अधिकारों और निजी अभियोजक के कृत्यों से संबंधित है, किन्तु यह न्यायालयों के संगठन, न्यायाधीशों और शैरिफों के दायित्वों जैसे विषयों से भी कुछ हद तक संबंधित है, जो कि लोक कानून का भाग हैं। इसमें शामिल हैं; (i) न्यायाधिकार (मतभेदों की दृष्टि से); (ii) न्यायाधिकार (घरेलू दृष्टि से); (iii) समन, अभिवचन, मुकदमा (साक्ष्य सहित) सहित कार्रवाई; (iv) न्यायालय का निर्णय; (v) अपील; (vi) निष्पादन।

प्रक्रियात्मक कानून वह कानून है जो अधिकारों के प्रवर्तन की विधि या इनके उल्लंघन की स्थिति में उपायों प्राप्त करने की विधि; मुकदमा करने के तंत्र को निर्धारित करता है।

भारत में प्रक्रियात्मक कानून के उदाहरण हैं: सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908; दंड प्रक्रिया संहिता, 1973; भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872; परिसीमा अधिनियम, 1963; न्यायालय फीस अधि नियम, 1870; वाद मूल्यांकन अधिनियम, 1887।

प्रक्रियात्मक कानून को वह कानून कहा जा सकता है जो कि–

- उन नियमों को निर्धारित करता है जिसकी सहायता से कानून का प्रवर्तन किया जाता है।
- अभियोजन और निर्धारण की प्रक्रिया से संबंधित है– 'गलत' और 'अपकृत्य' के सबूतों के तथ्य कौन से हैं।
- न्यायकरण के परिप्रेक्ष्य में – कानूनी प्रक्रिया अधिकारों के उल्लंघन के उपचारों के अनुप्रयोग के माध्यमों और शर्तो को परिभाषित करता है।
- अवलम्बित नियम हैं जो उस विधि को निर्धारित करता है जिसमें राज्य पर, एक व्यक्ति के रूप में अभियोजित किया जा सकता है या वाद चलाया जा सकता है।
- पुलिस तथा न्यायधीशों से साक्ष्य प्राप्त करने, खोज करने, हिरासत में लेने, बेल देने, और मुकदमें में साक्ष्य प्रस्तुत करने और निर्णय की प्रक्रिया के लिए तंत्र उपलब्ध कराता है।
- यह एक क्रियाविधि है जो सभी विधिक प्रक्रियाओं, सिविल या आपराधिक को शामिल करती हैं।

11.3.1 प्रक्रियात्मक सिविल कानून

सिविल प्रक्रियात्मक कानून में वे नियम और मानक शामिल हैं जिनका अनुसरण सिविल मुकदमों में न्यायालयों द्वारा किया जाता है। ये नियम निर्धारित करते हैं कि एक सिविल मुकदमा या मामले कैसे आरंभ किया जाए, किसी प्रकार की सेवा प्रक्रिया (यदि कोई हो) की आवश्यकता है, मामले के अभिवचनों या विवरणों के प्रकार, प्रस्ताव या आवेदन, और सिविल मामलों में अनुमत आदेश, साक्ष्यों तथा खोज या प्रकटन का समय और विधि, मुकदमों की कार्रवाई, न्याय-निर्णय की प्रक्रिया, उपलब्ध विभिन्न उपाय, और न्यायालयों और लिपिकों को किस प्रकार आचरण करना चाहिए। सिविल कार्रवाई, अन्यों के विरूद्ध प्राइवेट व्यक्ति या समूह, कंपनियों

या संगठनों द्वारा दावों के न्यायिक समाधान से संबंधित है और इसके अतिरिक्त, सरकार भी सिविल कार्रवाईयों का पक्ष बन सकती है। भारत में सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 सिविल न्यायलय की प्रक्रिया से संबंधित कानूनों के समेकन और संशोधन से संबंधित है।

11.3.2 प्रक्रियात्मक आपराधिक कानून

चूंकि प्रक्रियात्मक कानून अपराधों से संबंधित है, यह उन चरणों को उपलब्ध कराता या विनियमित करता है जिनके द्वारा, दंड अधिनियमों का उल्लंघन करने वाले व्यक्ति को दंडित किया जाता है। प्रक्रियात्मक आपराधिक कानून को दो भागों में विभाजित किया जा सकता है अर्थात जांच संबंधी और अधिनिर्णय स्तर। जांच संबंधी चरण में, जांच प्रक्रिया में प्राथमिक रूप से पुलिस अधिकारियों द्वारा मामले के तथ्यों और परिस्थितियों का निर्धारण करना और दंडात्मक अपराध के संदिग्ध व्यक्ति को हिरासत में लेना शामिल है। अधिनिर्णय चरण उस समय आरंभ होता है जब न्यायालय में कथित आपराधिक आचरण के लिए संदिग्ध के ऊपर मुकदमा चलाया जाता है। भारत में आपराधिक दंड संहिता में आपराधिक न्यायलयों द्वारा पीनल अपराधों के अभियोजन और दंड दिए जाने का प्रावधान है। यह संहिता विभिन्न अपराधों के संबंध में हिरासत, जांच, बेल, न्यायाधिकार, अपील और संशोधनों और अपराधों के संयोजन आदि के संबंध में ब्यौरा को भी उपलब्ध कराता है।

पाठगत प्रश्न 11.3

1. प्रक्रियात्मक कानून को परिभाषित करें।
2. भारत में सिविल प्रक्रियात्मक कानून के उदाहरण प्रस्तुत करें।
3. भारत में आपराधिक प्रक्रिया कानून के उदाहरण प्रस्तुत करें।
4. प्रक्रियात्मक कानून के विभिन्न स्त्रोतों की सूची बनाएं।

क्या आप जानते है

अवलम्बित/प्रक्रियात्मक कानून अधिष्ठायी कानून से कम नहीं है और यह सामान् या असामान्य भी हो सकता है (यथा कृतिम व्यक्ति, और उस प्रकार व्यक्ति जो अभियोग के संबंध में और साधारण व्यक्तियों यथा पागल, नाबालिक द्वारा अभियोजन किए जाने के संदर्भ में भिन्न स्थिति में हों।)

11.4 अधिष्ठायी और प्रक्रियात्मक कानून के बीच में अंतर

प्रक्रियात्मक कानून अधिष्ठायी कानून से सदैव ही कम महत्वपूर्ण रहा है। प्रक्रियात्मक कानून द्वारा ऐसा कुछ नहीं दिया जा सकता है जिसे कि अधिष्ठायी कानून द्वारा दिये जाने की वांछा नहीं है और प्रक्रियात्मक कानून से ऐसा कुछ भी नहीं लिया जा सकता है जो अधिष्ठायी कानून द्वारा प्रदान किया गया है।

अधिष्ठायी कानून और प्रक्रियात्मक का तुलनात्मक विश्लेषण एवं अन्तर

अधिष्ठायी कानून	प्रक्रियात्मक कानून
अधिष्ठायी कानून लोगों तथा विधिक निकायों के दायित्वों और अधिकारों को परिभाषित और निर्धारित करता है।	प्रक्रियात्मक कानून सिविल तथा आपराधिक कानून में सहयोग की विधि, प्रवर्तन के चरणों और प्रक्रियाओं को निर्धारित करता है।
जब कोई विशिष्ट कानून अधिकारों या अपराधों या किसी अधिनियम को परिभाषित करता है तो उसे अधिष्ठायी कानून कहते हैं। यह परिभाषित करता है कि किसी अपराध या अपकृत्य को किस प्रकार दंडित किया जाता है और किसी प्रकार मामले के साक्ष्यों और तथ्यों की व्यवस्था की जाती है। उदाहरण: "मानव हत्या" की परिभाषा अधिष्ठायी है।	प्रक्रियात्मक कानून यह निर्धारित करने के लिए नियम उपलब्ध कराता है कि मामले की प्रक्रिया के दौरान अधिष्ठायी कानून का किसी प्रकार न्यायाकरण, प्रवर्तन, आवेशन किया जाता है। इसमें प्रक्रिया, अभिवचन तथा साक्ष्य शामिल है। उदाहरण के लिए, 'मानव हत्या' के दोषी व्यक्ति के लिए तीव्र मुकदमें का अधिकार प्रक्रियात्मक है।
अधिष्ठायी कानून न्यायालय द्वारा निर्धारित प्रतिबंधित गतिविधियों के लिए भी प्रावधान उपलब्ध कराता है, कि किस प्रकार के व्यवहार की अनुमति है और किस प्रकार का व्यवहार प्रतिबंधित है। उदाहरण के लिए अधिष्ठायी कानून हत्या या नशीले पदार्थों की बिक्री को प्रतिबंधित करता है।	प्रक्रियात्मक कानून यह निर्धारित करने के लिए नियम उपलब्ध करता है कि अधिष्ठायी कानूनों को किस प्रकार व्यवस्थित, प्रवर्तित और आवेशित किया जाएगा और विवादों की मध्यस्था में इसका किस प्रकार प्रयोग किया जाए। उदाहरण के लिए अदालत में आरोप दायर करना और साक्ष्य प्रस्तुत करना।

आइए अधिष्ठायी कानून और प्रक्रियात्मक कानून के बीच अंतरों को कुछ उदाहरणों की सहायता से समझें।

- अपील का अधिकार एक अधिष्ठायी है और संविधि का सृजक है। परिसीमा के नियम अवलम्बित कानून के अधिकार क्षेत्र से संबंधित है।
- कतिपय परिसंपत्ति की वसूली का अधिकार अधिष्ठायी कानून का प्रश्न है (ऐसे अधिकारों का निर्धारण और संरक्षण) न्यायकरण के छोरों में से हैं); किन्तु व्यक्ति किस न्यायालय में और किस समय-सीमा के भीतर न्यायालय की प्रक्रियाओं को आरंभ करेगा, यह प्रक्रियात्मक कानून का विषय है (क्योंकि वे मात्र उन माध्यमों से संबंधित है जिनमें न्यायालय अपनी कार्यप्रणाली को पूरा करते हैं।)
- अधिकारों के उल्लंघन के उपचारों के अनुप्रयोग से संबंधित न्यायकरण का संबंध है, अधिष्ठायी कानून 'उपाय और 'अधिकार' को परिभाषित करता है। जबकि न्याय विधि एक के ऊपर दूसरे के अनुप्रयोग की विधियों और शर्तो को परिभाषित करता है।
- कानून कि 'कोकीन' को अपने पास रखना अपराध है, एक अधिष्ठायी कानून है। दंड प्रक्रिया दंडात्मक संविधि के उल्लंघनों के निर्धारण और निर्णयन के लिए नियमों को स्थापित करता है। उदाहरण के लिए, पुलिस संदग्धिों की गैरयुक्तियंगत तलाशी या उनके सामान को जब्द या बलपूर्वक अपराध स्वीकार नहीं करा सकती है। यदि

पुलिस इन या अन्य प्रक्रियात्मक नियमों का उल्लंघन करती है तो विभिन्न प्रक्रियात्मक परिणाम उत्पन्न हो सकते हैं। जैसे मुकदमें के दौरान साक्ष्यों को शामिल न किया जाना या आरोप को खारिज किया जाना।

- कोई अपराध जुर्माने की अदायगी द्वारा दंडनीय है या कारागार द्वारा, अधिष्ठायी कानून का विषय है। किन्तु कोई अपराध संक्षेप में या केवल अभ्यारोपण यह प्रक्रिया का विषय और इसलिए ये प्रक्रियात्मक कानून का प्रश्न है।

पाठगत प्रश्न 11.4

बताएं सही/गलत

1. अधिष्ठायी कानून लोगों और विधिक निकायों के दायित्वों और अधिकारों को परिभाषित और निर्धारित करता है। (सही/गलत)
2. प्रक्रियात्मक कानून सिविल तथा आपराधिक कानून में सहयोग की विधि, प्रवर्तन के चरणों और प्रक्रियाओं को निर्धारित करता है। (सही/गलत)

11.5 अधिष्ठायी और प्रक्रियात्मक कानून-पूर्वव्यापी और प्रत्याशित

सामान्य रूप से सभी प्रक्रियात्मक नियम पूर्वव्यापी होती हैं जब तक कि विधायिका में विनिर्दिष्ट न किया गया हो।

'नानी गोपाल मित्रा बनाम बिहार राज्य' (एआईआर 1970 एससी 1636) में, न्यायालय ने निर्णय दिया कि पूर्ववर्ती रूप में प्रचालित प्रक्रिया से संबंधित संशोधन इस अपवाद में मद्देनजर होंगे कि प्रक्रिया जो कोई भी हो जिसे सही रूप में अपनाया गया है और पुराने कानून के अंतर्गत सम्पन्न प्रक्रियाएं के मामले में इसे नई प्रक्रिया में लागू किए जाने के उद्देश्य से पुनः खोला नहीं जाएगा।

"हितेष विष्णु ठाकुर तथा अन्य इत्यादि बनाम महाराष्ट्र सरकार और अन्य (1994)" 4 एससीसी 602 में, न्यायालय ने अपने प्रचालन में पूर्ववर्ती होने के कारण प्रक्रियात्मक कानून के की विधिक स्थिति के संबंध में समन दिया और निम्नलिखित शब्दों में वादी को यह अधिकार प्रदान किया कि वह एक विशिष्ट अदालत में मुकदमा की कार्रवाई की जा सकती है–

(i) एक संविधि (Statute) जो अधिष्ठायी अधिकारों को प्रभावित करती है, को उसकी कार्यप्रणाली में प्रत्याशित माना जाएगा बशर्ते इसे अभिव्यक्ति रूप में या आवश्यक नियतन द्वारा पूर्वव्यापी बनाया जाए जबकि एक संविधि जो मात्र प्रक्रिया को प्रभावित करता है, बशर्ते इस प्रकार की संरचना पाठीय रूप से असंभव हो, उसे उसके अनुप्रयोग में पूर्वव्यापी माना जाएगा और इसे विस्तारित अर्थ प्रदान नहीं किया जाएगा और यह कड़ाई के साथ अपनी सुस्पष्ट परिभाषित सीमाओं के भीतर ही सीमित रहेगा।

(ii) न्यायाधिकरण (Forum) और परिसीमा से संबंधित कानून प्रकृति में प्रक्रियात्मक है, जबकि कार्रवाई के अधिकार और अपील के अधिकार से संबंधित नियम हालांकि प्रकृति में अधिष्ठायी है।

(iii) प्रत्येक वादी को अधिष्ठायी कानून में निहित अधिकार व्याप्त है किन्तु प्रक्रियात्मक कानून में ऐसा कोई अधिकार विद्यमान नहीं है।

(iv) सामान्य रूप से कहा जाए तो एक प्रक्रियात्मक संविधि का अनुप्रयोग पूर्वव्यापी रूप से नहीं किया जाना चाहिए जहां परिणाम परिणाम नई अक्षमताओं या दायित्वों के सृजन के लिए हों या पहले से किए गए संव्यवहारों के संबंध में नए दायित्वों को लगाने के विषय में हो।

(v) एक संविधि जो न केवल प्रक्रिया को परिवर्तित करती है किन्तु नए अधिकारों और दायित्वों को भी निर्माण करती है, ऐसे कार्यप्रणाली में प्रत्याशित रूप में तैयार किया जाना चाहिए, बशर्ते अन्यथा अभिव्यक्ति रूप में या आवश्यक परिणामों द्वारा प्रावध ान किया गया हो।

'राजस्थान राज्य सड़क परिवहन निगम और एएनआर बनाम बाल मुकुंद बैर्वा' (2009) 4 एससीसी 299) में न्यायालय ने न्यायमूर्ति बेंजमिन एन.कार्डोजा द्वारा अपने व्याख्यानों के प्रसिद्ध समेकन -The Nature of Judicial Process में किए गए अवलोकनों के संबंध में उत्तर दिया कि-"अधिकतर मामलों में न्याय निर्णय पूर्वव्यापी होता है। केवल उन ही स्थितियों में जहां कठिनाइयां अत्यधिक होती हैं। वहां पूर्वव्यापी कार्यप्रणाली को रोक दिया जाता है।"

पाठगत प्रश्न 11.5

बताएं सही/गलत

1. सामान्य रूप में, सभी कानून पूर्वव्यापी होते हैं बशर्ते विधान ऐसा विनिर्दिष्ट करे। (सही/गलत)

2. लोक तथा प्राइवेट कानून-दोनों 'अधिष्ठायी या प्रक्रियात्मक कानून हो सकते हैं। (सही/गलत)

क्या आप जानते है

लोक और प्राइवेट कानून अधिष्ठायी या प्रक्रियात्मक कानून हो सकते हैं। अधिष्ठायी और प्रक्रियात्मक कानून के बीच का अंतर सदैव सुगम या सुस्पष्ट नहीं होता है। एक ही कानून प्रक्रियात्मक और अधिष्ठायी हो सकता है। उदाहरण के लिए साक्ष्य अधि नियम, 1872।

11.6 समीकरण-प्रक्रियात्मक और अधिष्ठायी नियम/सिद्धांत

सेल्मंड के अनुसार, हालांकि अधिष्ठायी कानून और प्रक्रियात्मक कानून के बीच के अंतर को सिद्धांत रूप में सटीक रूप में निर्धारित किया गया है, प्रक्रिया के ऐसे अनेक नियम हैं जो अपने व्यवहारिक प्रयोग में पूर्णता या व्यापकरूप से अधिष्ठायी कानून के नियमों के समान हैं। प्रक्रियात्मक और अधिष्ठायी सिद्धांतों की इन समानताओं में से निम्नानुसार कम से कम तीन श्रेणियों का उल्लेख किया गया है-

1. एक विशिष्ट साक्ष्य तथ्य व्यवहारिक रूप में सिद्ध किए जाने के अधिकार के स्वत्वाधिकार में संगठक तत्वों के समान हैं। उदाहरण के लिए साक्ष्य का नियम कि संविदा को केवल लिखित पत्राचार के माध्यम से ही सिद्ध किया जा सकता है जबकि अधिष्ठायी कानून का नियम कहता है कि संविदा वैध है जब तक कि उसे लिखित रूप में संक्षिप्त न किया जाए।
2. निर्णायक साक्ष्य तथ्य उसके द्वारा सिद्ध तथ्यों के समान हैं और उसका स्थान ले सकते हैं। उदाहरण के लिए:
   - आठ वर्ष के कम की आयु वाला बच्चा आपराधिक मंशा के लिए अक्षम है, यह साक्ष्य का नियम है, किन्तु यह अधिष्ठायी नियम से इसे रूप में भिन्न है कि इस आयु ने कम वाला कोई भी बच्चा अपराध के लिए दंडनीय नहीं है।
   - अपने मौलिक के व्यवसाय के संबंध में अपने मालिक के प्रधिकार से किए गए नौकर के कृत्य कानून की निर्णायक उपधारणा है किन्तु यह नियोक्ता के दायित्व के हमारे आधुनिक अधिष्ठायी कानून अगुआ और समतुल्य है।
   - एक 'ब्रांड' (अर्थात मुहरा के अंतर्गत ऋणग्रस्तता की स्वीकृति) मूल रूप से ऋण के मौजूदा निर्णायक सबूत के रूप में क्रियात्मक हैं; किन्तु अब यह स्वयं ऋण का सृजक है; क्योंकि यह अब प्रक्रिया के कार्यक्षेत्र से अधिष्ठायी कानून में परिवर्तित हो गया है।
3. कार्रवाईयों की परिसीमा अधिकारों के निर्धारण के प्रक्रियात्मक समतुल्य है। पहला अधिकार और उपाय के बीच के बंधन के पोषण में समय की प्रक्रिया है और दूसरा अधिकारों के विनाश में समय की प्रक्रिया है।

पाठगत प्रश्न 11.6

बताए सही/गलत

1. एक विशिष्ट साक्ष्य तथ्य व्यवहारिक रूप में सिद्ध किए जाने के अधिकार के स्वत्वाधिकार में संगठक तत्वों के समान हैं। (सही/गलत)
2. निर्णायक साक्ष्य तथ्य उसके द्वारा सिद्ध तथ्यों के समान हैं और उसका स्थान ले सकते हैं। (सही/गलत)

आपने क्या सीखा

'अधिष्ठायी कानून' और 'प्रक्रियात्मक कानून', विधि की दो महत्वपूर्ण शाखाएं हैं। अधिष्ठायी कानून एक सांविधिक कानून है जो कानून द्वारा संरक्षित किए जाने वाले नागरिकों के अधिकारों और दायित्वों को परिभाषित और निर्धारित करता है। प्रक्रियात्मक कानून (या अवलम्बित कानून) कानून के प्रवर्तन से संबंधित है जिसे पद्धति, प्रक्रिया और तंत्र द्वारा निर्देशित और विनियमित किया जाता है।

अधिष्ठायी कानून अपराध या गलत कृत्य को और उनके उपचारों को परिभाषित करता है। उन तथ्यों को निर्धारित करता है। जिसमें गलत कृत्य निहित होते हैं यथा न्यायकरण के परिप्रेक्ष्य में अभियोग की विषयवस्तु। अधिष्ठायी कानून 'उपाय' और अधिकार को परिभाषित करता है। लोक कानून और प्राईवेट कानून की सभी श्रेणियों को शामिल करता है और अधिष्ठायी कानून और आपराधिक कानून को भी शामिल करता है।

प्रक्रियात्मक कानून उन नियमों को निर्धारित करता है जिसकी सहायता से कानून का प्रवर्तन किया जाता है। यह निर्धारित करता है कि–'गलत' और 'अपकृत्य' के सबूतों के तथ्य कौन से हैं। न्यायकरण के परिप्रेक्ष्य में– कानूनी प्रक्रिया अधिकारों के उल्लंघन के उपचारों के अनुप्रयोग के माध्यमों और शर्तो को परिभाषित करता है। अवलक्बित नियम हैं जो उस विधि को निर्धारित करता है जिसमें राज्य पर, एक व्यक्ति के रूप में अभियोजित किया जा सकता है या वाद चलाया जा सकता है। पुलिस तथा न्यायाधीशों से साक्ष्य प्राप्त करने, खोज करने, हिरासत में लेने, बेल देने, और मुकदमें में साक्ष्य प्रस्तुत करने और निर्णय की प्रक्रिया के लिए तंत्र उपलब्ध कराता है। यह एक क्रियाविधि है जो सभी विधिक प्रक्रियाओं, सिविल या आपराधिक को शामिल करती है। उदाहरण के लिए साक्ष्य कानून (साक्ष्य धिनियम, 1872)।

हालांकि 'अधिष्ठायी कानून' और 'प्रक्रियात्मक कानून' के बीच के अंतर को सिद्धांत रूप में सटीक रूप में निर्धारित किया गया है, प्रक्रिया के ऐसे अनेक नियम हैं जो अपने व्यवहारिक प्रयोग में पूर्णता या व्यापकरूप से अधिष्ठायी कानून के नियमों के समान हैं।

एक संविधि (Statute) जो अधिष्ठायी अधिकारों को प्रभावित करती है, को उसकी कार्यप्रणाली में प्रत्याशित माना जाएगा बशर्ते इसे अभिव्यक्ति रूप में या आवश्यक नियमन द्वारा पूर्वव्यापी बनाया जाए जबकि एक संविधि जो मात्र प्रक्रिया को प्रभावित करता है, बशर्ते इस प्रकार की सरंचना पाठीय रूप से असंभव हो, उसे उसके अनुप्रयोग में पूर्वव्यापी माना जाएगा और इसे विस्तारित अर्थ प्रदान नहीं किया जाएगा और यह कड़ाई के साथ अपनी सुस्पष्ट परिभाषित सीमाओं के भीतर ही सीमित रहेगा।

पाठांत प्रश्न

1. 'अधिष्ठायी कानून' परिभाषित करें।
2. 'प्रक्रियात्मक या अवलम्बित कानून' को परिभाषित करें।
3. 'अधिष्ठायी कानून' और 'प्रक्रियात्मक या अवलम्बित कानून' के बीच में उदाहरणों की सहायता से अंतर बताएं।
4. उन नियमों/सिद्धांतो का वर्णन करें जहां प्रक्रियात्मक कानून या अधिष्ठायी कानून' समान हैं।
5. उल्लेख करें कि 'अधिष्ठायी कानून' और प्रक्रियात्मक कानून' पूर्वव्यापी हैं या प्रत्याशित हैं।

पाठगत प्रश्नों के उत्तर

11.1

1. सही
2. सही

11.2

1. 'अधिष्ठायी कानून' का निर्माण, समान सांविधिक, संवैधानिक और मौलिक रूप से समान तथ्यों आदि स्थितियों बाते मामलों के विधिक पूर्व-निर्णयों का अनुसरण करने वाले निर्णयों में पाए जाने वाले सिद्धान्तों से होता है।
2. 'अधिष्ठायी सिविल कानून' वह सांविधिक कानून है जो लोगों और राज्य के बीच के संबंधो पर कार्य करता है। लोगों और राज्य के अधिकारों और कर्तव्यों को परिभाषित करता है। अधिष्ठायी सिविल कानून उस विधि के रूप में परिभाषित किया जा सकता है जो अनैतिक रूप से किसी अन्य व्यक्ति को नुकसान या हानि पहुंचाता है जिसके परिणामस्वरूप अपराधपूर्ण कृत्य करने वाले व्यक्ति का कानूनी दायित्व उत्पन्न हो जाता है।

11.3

1. 'प्रक्रियात्मक कानून' वह कानून है जो अधिकारों के प्रवर्तन की विधि या इनके उंल्लघन की स्थिति में उपायों प्राप्त करने की विधि; मुकदमा करने के तंत्र को निर्धारित करता है। 'प्रक्रियात्मक कानून' कानून के प्रवर्तन से संबंधित हैं जो पद्धति, प्रक्रिया और न्याय-तंत्र द्वारा निर्धारित और विनियमित होता है। यह न्यायकरण के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण है।
2. भारत में 'प्रक्रियात्मक कानून' के उदाहरण हैं- सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908; दंड प्रक्रिया संहिता, 1973; भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872; परिसीमा अधिनियम, 1963; न्यायालय फीस अधिनियम, 1870; वाद मूल्यांकन अधिनियम, 1887।
3. भारत में दंड प्रक्रिया संहिता आपराधिक न्यायलयों द्वारा पीनल अपराधों के लिए मुकदमा चलाने व उन्हें दंड देने की प्रक्रिया उपलब्ध कराती है।
4. 'प्रक्रियात्मक कानून' के विभिन्न स्रोत हैं (i) संवैधनिक कानून (ii) विधान द्वारा पारित अधिनियम (iii) उच्चतम न्यायालय के नियम, और (iv) विधि-प्रवर्तन एजेंसियों द्वारा अपने कर्मचारियों के लिए निर्धारित लिखित विनियम।

11.4

1. सही
2. सही

11.5

1. सही
2. सही

11.6

1. सही
2. सही

टिप्पणी

12

सार्वजनिक कानून या जन-कानून और निजी कानून

किसी भी कानूनी व्यवस्था में विधिशास्त्रीय सिद्धांतों की उत्पत्ति अधिकारों के परिप्रेक्ष में होती है और कानून समादेश के रूप में व्यक्तियों के बीच के संबंध तथा व्यक्ति और सरकार के बीच के संबंध को विनियमित करता है। जन कानून के अधिकार क्षेत्र से भिन्न संविदा और दायित्वों का निजी कानून, सामाजिक आर्थिक परिस्थितयों को आकार प्रदान करने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है। ''हॉलेंड ऑन ज्यूरिसप्रूडेंट'' के परिचय में एन.आर. माधव मेनन ने कहा है कि हॉलेंड के अनुसार, निजी कानून के क्षेत्र में राज्य की उपस्थिति केवल नागरिकों के बीच विद्यमान अधिकारों और दायित्वों के मध्यस्थ के रूप में है। जन-कानून में, राज्य न केवल एक मध्यस्थ है बल्कि एक हितधारी पक्ष भी है। जिन अधिकारों और दायित्वों के संबंध में वह कार्य करता है, वह स्वयं भी उसका भाग है और दूसरी ओर उसका विषय भी है और यह संघ न्यायाधीश के गुणा के रूप में एक व्यक्ति है और पार्टी ने उस विचार को उत्पन्न किया है कि राज्य (स्वायत्त) का उचित रूप से, न केवल कोई दायित्व नहीं है बल्कि उसके कोई अधिकार भी नहीं हैं। दो व्यक्तियों में से जो प्रत्येक अधिकार के निर्माण तत्व हैं, एक सदैव 'राज्य' होगा, जो अपनी कार्य व्यवस्थाओं के माधयम से कार्य करेगा। निजी कानून का निरंतर सृजन हो रहा है और प्रौद्योगिकी के विकास में सार्वजनिक तथा निजी दोनों कानूनों के बीच अवधारणा तथा विशिष्टताओं के नए आयाम शामिल किए हैं। आज कल सार्वजनिक निजी वर्गीकरण का विखंडन हो रहा है और सभी विवादों में मध्यस्थ के रूप में राज्य की उपस्थिति के सिद्धांत पर प्रश्न उठ रहे हैं। यद्यपि, आज अनेक विवाद राज्य तथा उसके कार्यात्मक भागों के विरूद्ध हैं। 'स्वतंत्र न्यायपालिका' विधि के नियम का मुख्य तत्व बन गया है जिसमें प्रभुसत्ता-संपन्न राज्य के दृष्टिकोण से न्यायशास्त्र को मूल रूप से पुनः लिखे जाने की आवश्यकता उत्पन्न की है।

उद्देश्य

पाठ के अध्ययन के पश्चात आप निम्नलिखित में सक्षम होंगे :

- जन-कानून या सार्वजनिक कानून के अर्थ और प्रकृति का वर्णन कर पाएंगे;
- संवैधानिक कानून की अवधारणा पर चर्चा कर पाएंगे;

- प्रशासनिक कानून की अवधारणा पर चर्चा कर पाएंगे;
- आपराधिक कानून को परिभाषित कर पाएंगे;
- निजी कानून के अर्थ और प्रकृति का वर्णन कर पाएंगे;
- सार्वजनिक और निजी कानून के बीच के अंतर को स्पष्ट कर पाएंगे; एवं
- कानून को आकार प्रदान करने में न्यायाधीश की भूमिका पर चर्चा कर पाएंगे।

12.1 जन कानून का अर्थ और प्रकृति

जन कानून विधि का वह भाग है जो राज्य (सरकार/सरकारी एजेंसियों) और उसके विषय के बीच के संबंधों तथा समाज को प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करने वाले व्यक्तियों के बीच के संबंधों को भी शासित करता है। लॉगलिंग के अनुसार :

''लोक कानून राजनैतिक न्यायशास्त्र का एक रूप है जो न्याय और अच्छाई के लोकोत्तर तथा आधयात्मिक विचारों को शामिल नहीं करता है : यह आचरण की केवल उन्हीं अवधारणाओं से संबंधित है जो एक स्वायत्त निकाय के रूप में सार्वजनिक क्षेत्र के अनुरक्षण को सुनिश्चित करने की राजनीतिक पद्धति के माधयम से उत्पन्न हुई है।''

लोक कानून या जन-कानून व्यापक परिप्रेक्ष्य में सामाजिक समस्याओं का निपटान करता है और इसमें निम्नलिखित शीर्ष शामिल हैं : संवैधानिक कानून, प्रशासनिक कानून, आपराधिक कानून तथा आपराधिक प्रक्रिया, राष्ट्र का कानून जिसे अर्ध निजी कानून के गुण देखा गया है, राष्ट्र से संबंधित प्रक्रिया जैसा समझा गया है और न्यायाधीश निर्मित कानून।

12.1.1 संवैधानिक कानून

संवैधानिक कानून का प्राथमिक कार्य एक राष्ट्र की कार्यप्रणाली में कानून की सर्वोच्चता के अभिधारण के लिए किसी प्रस्तुत राज्य की राजनयिक केन्द्रित गहनता को सुनिश्चित करना है। भारत में, संविधान, भारत को संघ और राज्यों में सरकार के संसदीय रूप के साथ एक संघीय प्रणाली सहित संप्रभु, लोकतांत्रिक गणराज्यय एक स्वतंत्र न्यायपालिका के रूप में स्थापित करता है : यह सरकार की संरचना, प्रक्रियाओं, शक्तियों और दायित्वों को भी स्थापित करता है और मौलिक मानव अधिकारों को भी निर्धारित करता है जो मौलिक अधिकारों और राज्य नीति के निर्देशक सिद्धांतों के रूप में राष्ट्र के शासन में विद्यमान हैं।

संवैधानिक कानून, लोक कानून या जन-कानून की एक शाखा है। यह राष्ट्र के राजनीतिक संगठन और उसकी शक्तियों का निर्धारण करता है और शासन की शक्तियों कर प्रयोग में कतिपय वास्तविक और प्रक्रियात्मक सीमाओं को भी स्थापित करता है। संवैधानिक कानून में उच्चतम न्यायालय द्वारा उल्लिखित अनुसार अभिलेख पर आधारित कानून के मौलिक सिद्धांतों का अनुप्रयोग शामिल है। सेल्मंड के शब्दों में, संवैधानिक कानून उन विधिक सिद्धांतों का निकाय है जो राज्य के संविधान का निर्धारण करते हैं - अर्थात जो राष्ट्र के संगठन के अनिवार्य तथा मौलिक अंगों का निर्धारण करता है।

12.1.2 प्रशासनिक कानून

हॉलैंड के अनुसार, 'प्रशासनिक कानून' संविधान द्वारा किए गए प्रावधान के अनुसार प्रभुसत्ता सम्पन्न शक्ति की गतिविधियों के तरीके या विभिन्न अंगों के लिए प्रावधान करता है। इस अर्थ में, प्रशासन की परिभाषा है, विशिष्ट मामलों में राष्ट्र की समग्र स्थूल तथा बहु-परिवर्तनशील गतिविधियों के रूप में संविधान की सीमाओं के भीतर राजनीतिक शक्तियों का प्रयोग, प्रभुसत्ता सम्पन्न शक्तिके कार्यों, या क्रियाओं के रूप में। उचित रूप से यह कहा जा सकता है कि इसमें कानूनों का निर्माण और प्रवर्तन शामिल है; अपने विदेशी संबंधों में राष्ट्र के मार्गदर्शन में सरकार की क्रियाय न्याय का प्रवर्तनय राष्ट्र की सम्पत्ति और व्यापार संव्यवहारों का प्रबंधनय और विवेक की कतिपय मात्रा प्रदान करके अधीनस्थों के माधयम से कार्यप्रणाली, जिसके द्वारा राष्ट्र अपने स्वयं के अस्तित्व के लिए तथा सामान्य कल्याण के लिए तत्काल प्रावधान करता है। यह राजस्व के आंकड़ों के एकत्रण, अंतरराष्ट्रीय व्यापार, विनिर्माण, प्रदूषण, कर-निर्धारण और इसी प्रकार के विषयों पर कार्य करता है। यह कई बार नागरिक कानूनकी उप-श्रेणी के रूप में नजर आता है और कई बार लोक कानून के रूप में क्योंकि यह विनियमन और सार्वजनिक संस्थानों पर कार्य करता है। प्रशासनिक कानून सरकार की कार्यपालक पीठ द्वारा लागू किया जाता है न कि न्यायिक या विधायी पीठों द्वारा (यदि ये उस विशिष्ट नयायाधिकार में भिन्न हैं)। प्रशासनिक कानून विधि का वह निकाय है जिसका सृजन प्रशासनिक एजेंसियों ने विनियमों, आदेशों और निर्णयों के रूप में किया है।

12.1.3 आपराधिक कानून

राज्य के कार्यों में सर्वाधिक महत्वपूर्ण कार्य वह है जिसका वह व्यवस्था बनाए रखने के लिए अभिभावक के रूप में निर्वाहन करता है। स्वयं की सभी क्षतियों, और नियमों की सभी अवज्ञाओं का निवारण करना तथा दंड देना जिन कानूनों या नियमों को उसने सामान्य कल्याण के लिए बनाया है। इस संबंध में अपने अधिकारों की परिधि को परिभाषित करने में, राज्य सामान्यत: अनेक अधिनियमों द्वारा चलता है। विधि की वह शाखा जिसमें इस विषय पर नियम समाविष्ट हैं, उन्हें तद्नुसार आपराधिक कानून, के रूप में वर्णित किया गया है (हॉलैंड)। आपराधिक कानून, राज्य, समुदाय तथा जनसाधारण के विरूद्ध गलत कृत्यों को निर्धारित करता है। विशेषणात्मक आपराधिक कानून, पीनल प्रक्रिया, अनुदेश क्रिमिनले, नियमों का समूह हैं जिसके द्वारा अपराधियों को दंड देने के लिए न्यायालयों के तंत्र को चलाया जाता है।

आपराधिक कानून अपराध, अभियोजन तथा अपराधियों के दंडात्मक उपचार की परिभाषा से संबंधित है। हालांकि, एक आपराधिक कृत्य कुछ व्यक्तियों को हानि पहुंचाता है किन्तु अपराधों को राज्य या ''उसके लोगों'' के विरूद्ध अपराध माना जाता है। एक अपराध ''सार्वजनिक अपराध'' है न कि ''व्यक्तिगत'' या ''निजी''। वह केवल राज्य है जो अपराधी के विरूद्ध कार्रवाई करेगा न कि वह व्यक्ति जिसे हानि पहुंची है।

पाठगत प्रश्न 12.1

1. आप आपराधिक कानून को परिभाषित कैसे करेंगे?
2. प्रशासनिक कानून से आप क्या समझते हैं?

टिप्पणी

12.2 निजी या व्यक्तिगत कानून का अर्थ और प्रकृति

निजी कानून व्यक्तियों का एक दूसरे के साथ संबंध या नागरिकों और कंपनियों के बीच निजी संबंधों से संबंधित है जो कि लोक महत्व के नहीं हैं। निजी कानून के मामले में राज्य की भूमिका केवल संगत कानून को पहचानना और उसे लागू करना, अपने न्यायिक निकायों के माधयम से उनके बीच के विवादित मुद्दों का निर्णय करने की है। हॉलैंड के अनुसार निजी कानून वस्तुनिष्ट है और व्यक्तियों के अधिकारों को परिभाषित करता है या यह गुणात्मक रूप में हो सकता है जो उस प्रक्रिया को दर्शाता है जिसके माधयम से अधिकारों को लागू कराया या संरक्षित रखा जाता है।

12.2.1 निजी मौलिक कानून

नीजी कानून का अध्ययन विभिन्न प्रजातियों के मौलिक कानून पर विचार करने से आरंभ होता है :

1. सामान्य मौलिक अधिकार पूर्ववर्ती या आनुवांशिक अधिकार हैं - आनुवांशिक अधिकार सर्वबंधी या व्यक्ति बंधी हो सकते हैं। सर्वबंधी आनुवांशिक अधिकार वे अधिकार हैं जो किसी भी गलत कृत्य के होने के बावजूद, आकस्मिकता के व्यक्ति के प्रति समवाय के व्यक्ति के लाभ के लिए ऐसे असीमित रूप से ये अधिकार प्राप्त होंगे कि सम्पूर्ण विश्व को प्राप्त हैं। उदराहरण के लिए : व्यक्तिगत स्वतंत्रता, ख्याति, आधिपत्य या स्वामित्व का अधिकार।

   व्यक्ति बंधी अधिकार वे अधिकार हैं जो एक विशिष्ट व्यक्ति के विरूद्ध प्राप्त होते हैं जो पक्षों के करार या कानून द्वारा प्रदान दायित्व के कारण उत्पन्न हुए हों। उदाहरण के लिए : परिवार के एक सदस्या के दूसरे के विरूद्ध अधिकार, कौशल के अभाव के लिए एक शैल्यचिकित्सक के विरूद्ध कार्रवाई के लिए व्यक्ति का अधिकार।

   उदाहरण : क नामक व्यक्ति के पास भूमि है। वह माली के साथ संविदा करता है जो एक वर्ष के लिए उसकी भूमि का अनुरक्षण करेगा। उसकी सामान्य ड्यूटी पूरे विश्व के ऊपर है कि कि वह क की भूमि में किसी को प्रवेश नहीं करने देगा। तथापि, माली की सम्पूर्ण विश्व के ऊपर अपनी ड्यूटी के अतिरिक्त क के प्रति विशेष ड्यूटी भी है।

   सामान्य मौलिक अधिकार भी उपचारात्मक हो सकते हैं - इस अधिकार का उद्देश्य प्रत्यर्पण या क्षतिपूर्ति हो सकता है। उपचारात्मक अधिकार गलत करने वाले के विरूद्ध व्यक्तिबंध अधिकार है।

2. असामान्य पूर्ववर्ती या आनुवांशिक अधिकार : असामान्य साधारण या सामान्य मनुष्य (नाबालिक शिशु, उन्मादी दोषी) हो सकता है या कृत्रिम यथा मनुष्यों या व्यक्तियों की संपत्ति का समुह जिन्हें कानून द्वारा व्यक्तिगत मनुष्य (संगठन, फाउंडेशन, निगम) माना गया है।

12.2.2 निजी गुणात्मक कानून

मौलिक कानून राज्य को अर्ध-निजी कानूनी गुणों के रूप में प्रभावित करता है, वह गुणात्मक या विशेषणात्मक कानूनों के निकाय द्वारा अनुपूरक है, जो उस माधयम को निर्धारित करता है

जिसमें राज्य एक व्यक्तित्व के रूप में मुकदमा कर सकता है या उसके विरूद्ध मुकदमा किया जा सकता है। गुणात्मक कानून, मौलिक कानून के रूप में ही, सामान्य या असामान्य हो सकता है और कृत्रिम व्यक्तियों तथा प्रकृतिक व्यक्तियों की ऐसी विविधता जैसा की ऊपर इंगित किया गया है के संबंध में स्थिति मुकदमा करने या उसके विरूद्ध मुकदमा किए जाने के संदर्भ में भिन्न है जो साधारण व्यकितयों द्वारा प्राप्त है।

बर्नार्ड रड्डान के अनुसार निजी कानून व्यक्तियों के बीच के कानूनी संबंधों से सम्बन्धित है। यह विशुद्धस्थिति (विवाह, तलाक, रिश्तेदारी आदि); किसी प्रकार की परिसंपत्ति के मामलों (संपत्ति, उत्तराधिकार, संविदाओं) य तथा व्यापक अर्थ में वाणिज्यिक गतिविधियों के मुद्दों को शामिल करता है। इसकी अनिवार्य विशेषता यह है कि यह भागीदारों को न्यायिक रूप से समान मानता है (लोक कानून के विपरीत जहां संबंध अधिक्रमिक होते हैं) ताकि एक व्यक्ति दूसरे को आदेश न दे सके, बशर्ते उसे किसी पूर्ववती संविदागत या पारिवारिक व्यवस्था के अंतर्गत प्राधिकृत किया गया हो। इसकी अनिवार्य तकनीक यह है कि इसका अधिकतर भाग स्वत् बाध्यकारी नहीं है (वकीलों की भाषा में कानूनी अधिकार) किन्तु प्रारूपों का एक निश्चित सेट उपलबध कराकर, जिसे नागरिक चाहें तो प्रयोग कर सकते हैं, कानूनी संव्यवहार को लागू कर करता है। उदाहरण के लिए निर्वसियत का नियम तल कार्य करता है जब व्यक्ति की मृत्यु बिना वसीयत किए हो जाती है। बिक्री, पट्टे, ऋण, साझेदारी और इसी प्रकारके मामलों पर नियम आदर्श के रूप में विद्यमान हैं जिन्हीं पूर्ण रूप से या संशोधनों सहित स्वीकार किया जा सकता है यदि पक्ष ऐसा करना चाहें। सतही स्तर पर और विशिष्ट रूप से विस्तृत नियमों में अनेक मदभेद होने के बावजूद, सिविल तथा सामान्य-कानून -प्रणाली दोनों में निजी कानून के समग्र ढांचे को साधारण रूप से रोग न्याय प्रणली से प्राप्त फार्मुले के रूप में स्पष्ट किया जा सकता है : निजी कानून व्यक्तियों, संपतियों, दायित्वों तथा देनदादिओं से संबंधित है।

इस प्रकार, यह कहा जा सकता है कि नजी कानून में शामिल हैं - (i) दायित्वों का कानूनध संविदा का कानून (संविदा के अंतर्गत व्यक्तियों के बीच के विधिक संबंधों को संगठित तथा विनियमित करता है) (ii) सिविल गलत कृत्यों का कानून (सिविल गलत कृत्यों संबंधी मुद्दों का निपटान तथा उपचार, जो संविदागत दायित्वों से उत्पन्न नहीं हुए हैं) (iii) सम्पत्ति का कानून (iv) उत्तराधिकार का कानून) (iv) पारिवारिक कानून - अपहरण और परस्त्रीगमन के विरूद्ध पारिवारिक अधिकार सम्बन्धी कानून।

पाठगत प्रश्न 12.2

1. सर्वबंधी आनुवांशिक अधिकार और व्यक्ति बंध पूर्ववती अधिकार में अंतर स्पष्ट करें।
2. निजी गुणात्मक या विशेषणात्मक कानून क्या है?

12.3 लोक कानून और निजी कानून में अंतर

निजी कानून के विपरीत लोक कानून की अवधारणा का निर्धारण करने के लिए, कानून प्राचीन समय के रोम में जाता है, जो उसे कहता है कि 'ad statum rei Romanae spectat,' 'in sacris, in sacerdotibus, in magistratibus cnsistit' और तथ्यात्मक रूप से भी यह अपराध

के कानून को शामिल करता है। लोक तथा निजी कानून के अंतर का सिविल कानून परम्पराओं, सामान्य कानून वाले देशों में भी अनुसरण किया जाता था।

? क्या आप जानते है

लोक तथा निजी के बीच का अंतर विशुद्ध रूप से सैद्धांतिक चर्चा का विषय है किन्तु यह कानूनी विधि को भी प्रभावित करता है। कानून के ऐस क्षेत्र हो सकते हैं जो लोक-कानून तथा निजी कानून के अंतर में उपयुक्त न होते हों। उदाहरण के लिए रोजकार कानून - रोजगार संविदा निजी कानून की प्रकृति में आता है और अन्य गतिविधियां, जहां रोजगार निरीक्षक कार्य स्थल की सुरक्षा की जांच करता है, वह लोक कानून में आता है।

12.3.1 लोक कानून तथा निजी कानून के बीच के अंतर को निर्धारित करने वाले सिद्धांत

लोक कानून तथा निजी कानून के बीच के अंतर की प्रकृति का निर्धारण करने के लिए अनेक सिद्धांतों का प्रतिपादन किया गया है।

रोम के न्यायशास्त्री उल्पेन द्वारा विकसित **हित सिद्धांत (Interest theory) :** Publicum ius est, quod ad statum rei Romanae spectat, privatum quod ad singulaorum utilitatem. लोक कानून वह है जो रोम राज्य से संबंधित है, निजी कानून नागरिकों के हितों से संबंधित है। इस सिद्धांत का कमजोर बिंदु यह है कि लोक हित को किसी प्रकार परिभाषित किया जाए क्योंकि निजी कानून के अनेक विषय लोक हित को भी प्रभावित करते हैं।

अधीनता सिद्धांत भागीदारों के संबंधों के अनुसार अंतर निर्धारित करता है। लोक कानून उच्चतर-अधीनस्थ के संबंध पर आधारित है जबकि निजी कानून समन्वय के संबंध का सृजन करता है। इसलिए, लोक कानून एकपक्षीय बाध्यकारी विनियमों जैसे स्टेटस और प्रशासनिक अधिनियमों के लिए प्रतिष्ठित है और निजी कानून संविदाओं के लिए। यह सिद्धांत पिछली शताब्दी में इस विचारधारा के साथ विकसित हुआ था कि प्रशासन कार्यकारी प्रशासन तक सीमित है। यह स्पष्ट रूप से लोक सेवा प्रशासन के क्षेत्र में संबंधों का उल्लेख करने में विफल रहा है। (रेने सीरडन एंड फ्रिट्स स्ट्रिंक, 2002)।

विषय सिद्धांत कानूनी संबंध में कानून के विषय की स्थिति से संबंधित हैं, जिसे अधिकार और दायित्व सौंपे गए हैं। यदि वह स्वयं को एक विशिष्ट परिस्थिति में एक सार्वजनिक व्यक्ति (स्वायत्त प्राधिकार के धारक जैसे राज्य या नगरपालिका) पाता है तो, लोक कानून लागू होता है, अन्यथा निजी कानून प्रत्येक व्यक्ति को प्राधिकृत या अनुग्रहित करता है।

उपर्युक्त सिद्धांतों का संयोजन कार्यशील स्थिति उपलब्ध कराता है। इस परिदृश्य के अंतर्गत कानून के क्षेत्र को लोक कानून या निजी कानून सार्वजनिक हित, शक्ति के पृष्ठांकन तथा राज्य के संबंध के आधार पर माना जाता है।

12.3.2 लोक बनाम निजी कानून

लोक कानून	निजी कानून
यह अधिकतर उन मुद्दों पर कार्य करता है जो जन साधारण (वह व्यक्ति, नागरिक या निगम हो सकता है) या स्वयं राज्य को प्रभावित करते हैं।	यह निजी व्यक्तियों या निगमों को प्रभावित करने वाले मुद्दों पर ही अधिक ध्यान केन्द्रित करता है।
इसलिए, लोक काननू अधिकार से संबंधित व्यक्ति अनिवार्य रूप से असमान होते हैं क्योंकि उनमें से एक सदैव अत्यधिक असामान्य व्यक्ति होता है, जिसे राज्य कहते हैं।	निजी कानून अधिकार में संबंधित दोनों व्यक्ति नियमों के रूप में सटीक रूप से समान तथा सामान्य प्रकार के होते हैं, जिसके लिए किसी विशेष जांच की आवश्यकता नहीं होती है।
यहां यह भी उल्लेखनीय है कि लोक कानून से संबंधित अधिकतर अधिकारों का लाभ स्थायी रूप से राज्य द्वारा समवाय रूप से अपने विषयों के विरूद्व भार के व्यक्ति के रूप में उठाया जाता है।	इसके विपरीत निजी कानून में जो व्यक्ति आज प्रसतुत विवरण के अधिकार के संदर्भ में समवाय का व्यक्ति है, वघ्ह संभवत कल सटीक रूप से समान अधिकार के संदर्भ में भार का व्यक्ति बन जाएगा।
लोक कानून में राज्य केवल मध्यस्थ नहीं होता बल्कि एक हितधारी पक्ष भी होता है। अधिकार और दायित्व जिन पर वह कार्य करता है,वे एक भाग के रूप में स्वयं सं संबंधित है और दूसरे भाग के रूप में उसके विषय से संबंधित।	निजी कानून में यद्यपि, राज्य उपस्थित होता है, किन्तु वह मात्र अधिकारों और दायित्वों के मध्यस्थ के रूप में उपस्थित होता है, जो इसके विषयों में से एक तथा अन्य के बीच में विद्यमान होता है।
लोक कानून सरकार की संरचना, अधिकारियों के दायित्वों तथा शक्तियों और व्यक्ति तथा राज्य के बीच के संबंध से संबंधित है। ''इसमें संविधानिक कानून, प्रशासनिक कानून जन-सुविधाओं का विनियमन, आपराधिक कानून और प्रक्रिया तथा राज्य और उसकी राजनीतिक उपप्रभागों की प्रोप्राइटरी शक्तियों से संबंधित नियम शामिल हैं।''	निजी कानून व्यक्तियों (जैसे क्षतियों या निजी हानियों, संविदाओं, सम्पत्तियों, वसीयतों, प्राकृतिक, विवाह, तलाक, दत्तक ग्रहण आदि) के बीच के संबंधों को शासित करने वाले मौलिक तथा प्रक्रियात्मक दोनों नियमों से संबंधित है।

क्रियाकलाप 12.3

नीचे दिए गए बॉक्सों में लोक तथा निजी कानून के बीच के किन्हीं दो अंतरों को लिखें।

पाठगत प्रश्न 12.3

1. हित सिद्धांत क्या है?

12.4 कानून का आकार प्रदान करने में न्यायाधीशों की भूमिका

सामान्य कानून (Comman Law) सामान्यत् विधिक नियमों और अधिनियमों के वृहत समेकन से असंहिताबद्ध है। हालांकि सामान्य कानून अनेक छितरे हुए अधिनियमों, जो विधायी निर्णय हैं, पर आश्रित रहता है, किनतु यह व्यापक स्तर पर पूर्ण निर्णय पर आधारित होता है अर्थात न्यायिक निर्णय जो कि समान प्रकार के मामलों में पहले ही दिए जा चुके हैं। प्रत्येक नए मामले के निर्णय में पूर्ववर्ती निर्णयों को लागू किए जाने का निर्धारण संचालन न्यायाधीश द्वारा किया जाता है। इसके परिणामस्वरूप, अमरीकी तथा ब्रिटिश कानून का आकार प्रदान करने में न्यायाधीशों की व्यापक भूमिका है। (सामान्य कानून तथा सिविल कानून परम्पराएं)

बर्नार्ड रडन ने उल्लेख किया है कि सामान्य कानून का प्रमुख सृजन न्यायपालिका है। तथापि, सिविल-कानून प्रणाली (संहिताबद्ध) में, कम से कम विगत हाल तक, न्यायाधीशों ने अपने समक्ष उपस्थित विवादों के निपटान में तुलनात्मक दृष्टि से कम भूमिका अदा की है। सिविल कानून समूह केदेशों में स्थिति, परिसिंपत्ति और व्यवसाय के इन तीन क्षेत्रों को परिवार कानून, सिविल कानून (इस शब्द को संकूचित अर्थ में प्रयोग करते हुए) तथा वाणिज्यिक कानून की पृथक सहिंताओं से निपटाया जाता है। सामान्य कानून संसार में मौलिक प्रणाली का निर्धारण मामला कानून द्वारा किया जाता है, हालांकि अनेक आधुनिक विनियम विद्यमान हैं जो प्राय : न्यायाधीशों के कार्य को पुनरूनिर्धारित और सुव्यवस्थित करते हैं। पूर्ववर्तिता का सिद्धांत सामान्य कानून प्रणाली का प्रचालन नियम है, इसप्रकार, नियम स्वयं विधायक द्वारा निर्धारित नहीं किया जाता है।यह एक न्यायिक सृजन है और इसे इसके निर्माताओं द्वारा संशोधित और रूपांतरित किया जा सकता है। उदाहरण के लिए इंग्लैंड में, 19वीं शताब्दी में उच्चतम न्यायालय (दि हाउस ऑफ लार्डस) ने घोषित किया था कि वह अपने स्वयं के पूर्व निर्णयों द्वारा निर्मित कानूनों से बाध्य है और 1960 के दशक में उसने नियमों में परिवर्तन किया और यह नोटिस दिया कि वह अब अपने विचारों को परिवर्तित करने के लिए मुक्त है। तथापि, कानून के मामले में निचली अदालतें उच्चतर अदालतों के निर्णयों से बाध्य हैं।

न्यायाधीशों की भूमिका पर बात करते हुए 8 दिसंबर, 1908 को यूनाइटिड स्टेट्स (USA) की कांग्रेस के समक्ष अपना संदेशा प्रस्तुत करते हुए राष्ट्रपति रोजेवेल्ट ने कहा कि : ''हमारे देश में प्रमुख कानून निर्माता प्राय : न्यायाधीश होते हैं, क्योंकि क्योंकि उन्हें अंतिम प्राधिकरण प्राप्त है। हर बार जब वे संविद, संपत्ति, निहित अधिकारों, कानूनकी विधिवत प्रक्रिया, स्वतंत्रता की व्याख्या करते हैं, वे अनिवार्य रूप से सामाजिक दर्शन की प्रणाली के कानूनी भागों का निर्माण करते हैं और इस प्रकार, व्याख्यान मौलिक है किन्तु वे सभी विधि निर्माणों को निर्देश देते हैं। आर्थिक तथा सामाजिक प्रश्नों पर न्यायालयों के निर्णय उनके आर्थिक और सामाजिक दर्शन पर निर्भर करते हैं और बीसवीं सदी के दौरान हमारे लोगों की शांतिपूर्वक प्रगति के लिए हमे उन अधिकतर न्यायाधीशों का आभारी रहना चाहिए जो बीसवीं सदी के आर्थिक और सामाजिक

दर्शनपर कार्य करते थे न कि परंपरागत दर्शन पर जो स्वयं रूढिवादी आर्थिक परिस्थितियों का उत्पाद था।''

डाइसी का मानना या कि न्यायालयों को न्यायाधीशों के रूप में कार्य करना चाहिए न कि मध्यस्थों के रूप में, और न्यायालय का कर्तव्य है कि वह पूर्ववर्ती निर्णयों का अनुसरण करे। हालांकि सीमित स्तर तक इसे सभी सभ्य देशों ने स्वीकार किया है और किसी अन्य महाद्वीप, यहां तक कि किसी अन्य मौजूदा राष्ट्र की तुलना में इंग्लैंड में इसे अधिक पूर्ण रूप से स्वीकार किया गया है। डाइसी के अनुसार, न्यायाधीशद्वारा निर्मित कानून वास्तविक कानून है, हालांकि यह विधिवेत्ता के रूप में निर्मित होता है, मात्र कानून की व्याख्या के रूप में, जैसा कि प्राय : न्यायाधीशों द्वारा उल्लेख किया गया है। हालांकि, न्यायाधीशों/ अदालतों की अपनी कुछ सीमाएं भी होती हैं : (क) वह कानून के नए सिद्धांत की मुक्त रूप से घोषणा नहीं कर सकता है : इसे अनिवार्य रूप से किसी कानूनी सिद्धांत के भाग के रूप में होना चाहिए जिससे उसकी वैद्यता स्वीकार की जाए या किसी सांविधिक अधिरियमनके अनुप्रयोग या व्याख्यान के रूप में होना चाहिए। वह सांविधिक कानूनका अतिक्रमण नहीं कर सकता है। (ग) न्यायालय, व्याख्यान की प्रक्रिया के माधयम से अप्रत्यक्ष रूप से अधिनियम के प्रचालन को सीमित या संभवत् विस्तारित कर सकते हैं किन्तु वे अधिनियम को अलग नहीं रख सकते हैं। वह स्वयं की प्रकृति से न्यायाधीश निर्मित कानून के किसी सिद्धांत का उल्लंखन नहीं कर सकता है। निसंदेह, उच्चतम न्यायालय कानून के ऐसे किसी सिद्धांत को खारिज कर सकता है, मात्र निचली अदालत के निर्णयों से उसके प्राधिकार को नियंत्रित करती है।

हार्ट यह स्वीकार करते हैं कि ''कठोर मामलों'' में न्यायाधीश कानून का निर्माण करते हैं चूंकि निर्णयों तक पहुंचने में, मान्यता के नियम के कारण, व्यापक विवेक प्राप्त होता है : यदि वहां किसी प्रकार का ''ऐसिड टेस्ट'' है, जिसके द्वारा न्यायाधीश यह निर्णय लेने में सक्षम हैं कि वैद्य कानूनी नियम क्या हें, तब जहां लागू कानूनी नियम उपलब्ध नहीं हैं या नियम अनिश्चित या अस्पष्ट हैं तो ऐसे कठोर मामलों में 'इस अंतर को भरने' के लिए न्यायाधीशों के पास व्यापक विवेक होता है। निसंदेह न्यायाधीशों को विभिन्न स्रातों से मार्गदर्शान प्राप्त होता है किन्तु अंतत : वे अपने निर्णय को निष्पक्षता तथा न्याय की तथ्यात्मक अवधारणाओं पर आधारित रखते हैं। कई बार न्यायाधीश के मार्गदर्शान के लिए कोई स्रोत (नियम या पूर्व निर्णय) नहीं होता है और उसे आने सुदृढ विवेक तथा विधान का प्रयोग करना चाहिए।

कंस्टिट्यूशनल जस्टिस में टी.आर.एस एलन ने कहा था कि कानून के नियम से अभिप्राय सभी सामान्य कानून विधिक प्रणालीयों में अंतर्निहित सिद्धांत है जिनका प्रयोग न्यायाधीश सरकार को, या यहां तक कि विधान, क्रिया को अक्षम करने करते हैं। लॉ, लिबर्टी और जस्टिस में एलन ने दावा किया है कि कानून का नियम एक विधिक सिद्धांत है, एक वास्तविक विधिक नियम जिसे कॉमनवेल्थ न्यायालयों द्वारा प्रयोग किया जा रहा है या किया जाना चाहिए और इस मामला कानून की जांच के माधयम से समझा जाना चाहिए।

दूसरी ओर, टोम्किन्स का विचार है कि न्यायालयों की भूमिका मात्र संसद द्वारा निर्धारित सीमाओं की चौकसी करना है। कार्यकारी निर्णय-निर्धारण की तर्कसंगतता की समीक्षा कॉमन्स पर छोड़ देनी चाहिए। इसके अतिरिक्त, टी.पूले दावा करते हैं कि, न्यायाधीशों द्वारा न्यायिक समीक्षा, नीति

के संबंध में चर्चाओं के लिए प्रधान मंच के रूप में विधानमंडल में राजनीतिक चर्चा को वैध रूप से प्रतिस्थापित नहीं कर सकती है। व्यापक स्तर के दृष्टिकोणों और विभिन्न हितों को समाहित करने के लिए विधानमंडल न्यायालयों की तुलना में अधिक बेहतर स्थिति में हैं। और, हम यह भी कह सकते हैं कि विधानमंडल सामाजिक समस्याओं के सुव्यवस्थित समाधान उत्पन्न कर सकते हैं - न्यायिक प्रक्रिया सामान्य रूप से कानून में धीमें, वृद्धात्मक, परिवर्तन प्रदान कर सकती है।

तथापि, यहां हम यह चर्चा नहीं करेंगे कि न्यायाधीश कानून के निर्माता हैं या नहीं, किन्तु निसंदेह वे कानून को आकार देने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा कर सकते हैं। भारत में, कुछ उत्कृष्ट उदाहरण हैं, जहां न्यायालय के निर्णयों के परिणामस्वरूप कानून का निर्माण हुआ है। 'विशाखा बनाम राजस्थान राज्य (1997)' में, उच्चतम न्यायालय ने कार्यक्षेत्र में यौन उत्पीड़न के विरूद्ध दिशानिर्देश तथा नियम निर्धारित किए हैं और यौन उत्पीड़न को समानता के महिलाओं के मौलिक अधिकारों के हनन के रूप में निर्धारित किया है। न्यायालय ने बल दिया कि इसे लैंगिक समानता का समर्थन करते हुए बाध्यकारी कानून के रूप में प्रयोग किया जाना चाहिए। 'इंदिरा । साहनी (1992)', तथा इंदिरा साहनी ।। (2000) 1 एससीसी 168 - इन दो मामलों यह कानून घोषित किया गया था कि सामाजिक और आर्थिक पिछड़े वर्ग के निर्धारण के लिए जाति एकमात्र आधार नहीं होगा। उन वर्गो के प्रबुद्ध लोग (क्रीमी लेयर) जो सामाजिक और आर्थिक रूप से सम्पन्न थे वे पिछले वर्ग में नहीं आ सकते चाहे वे किसी भी जाति के क्यों न हों। 'राज नारायण बनाम उत्तर प्रदेश राज्य सरकार' मामले में, उच्चतम न्यायालय ने घोषित किया कि लोग स्वयं बोल या अभिव्यक्ति नहीं कर सकते हैं जब तक कि वे जानते न हों। इसलिए, अनुच्छेद 19 में सूचना के अधिकार को अन्तरूस्थापित किया गया और यह एक मौलिक अधिकार है। 'पीपल्स यूनियन फॉर सिविल लिबर्टीस (पीयसीएल) तथा अन्य बनाम भारत संघ तथा अन्य (2002) में उच्चतम न्यायालय ने कहा कि संसद तथा विधानमंडल के चुनावों में खड़े होने वाले उम्मीदवारों से संबंधित मौलिक जानकारी संबंधी सूचना प्राप्त करने से अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता को संवर्धन मिलेगा और इसलिए, अब सूचना का अधिकार अनुच्छेद 19द्ध1ऋ(क) का एक अभिन्न अंग है। तथापि, यह सूचना का अधिकार गुणात्मक रूप से सार्वजनिक मामलों मे सूचना प्राप्त करने के अधिकार या प्रेस तथा इलैक्ट्रानिक मीडिया के माधयम से सूचना प्राप्त करने के अधिकार से भिन्न है, हालांकि कतिपय स्तर तक ये अतिव्यापी हैं।

? क्या आप जानते है

विरोधात्मक प्रणाली और परीक्षणात्मक प्रणाली के रूप में सामान्य कानून के कार्यो का अनुसरण सिविल कानून प्रणाली में किया जाता है। विरोधात्मक प्रणाली से तात्पर्य दो विपरीत पक्षों के बीच विवाद है जो अपना मामला एक निष्पक्ष न्यायाधीश के समक्ष प्रस्तुत करते हैं जिसे यह सुनिश्चित करना होता है कि मुकदमा मुकदमे के प्रक्रियात्मक नियमों के अनुसार चले या कानून की विधिवत प्रकिया से चले और प्रस्तुत साक्ष्यों को स्थापित नियमों और दिशानिर्देशों के अनुसार देखा जाए। अधिकतर देश जिन्होंने अपनी कानूनी प्रणाली को इंगलिश मॉडल से प्राप्त किया है वे विरोधात्मक विधिक प्रणाली का प्रयोग करते हैं। परीक्षणात्मक प्रणाली में न्यायाधीश पुलिस के

टिप्पणी

साथ साक्षय का तैयार करने की प्रक्रिया में शामिल होता है और यह देखता है कि किस प्रकार विभिन्न पक्ष मुकदमे में अपने मामले को प्रस्तुत करेंगे। परीक्षणात्मक प्रणाली में न्यायाधीश प्रोसिक्यूटर की भूमिका अदा करता है। परीक्षणात्मक प्रणाली में कोई जूरी मुकदमा नहीं होता है और न्यायाधीश दोशी को बयान देनेतथा प्रशनों के उत्तर देने के लिए बाध्य कर सकता है। यह अपने स्वयं की रक्षा में अपना पक्ष नर रखने के अधिकार के निर्णयज कानून तथा विरोधात्मक अधिकार से भिन्न है।

पाठगत प्रश्न 12.4

1. क्या आप मानते हैं कि न्यायाधीश भी कानून का निर्माण करते हैं? (हाँ/नहीं)
2. क्या आप इस बात से सहमत हैं कि न्यायालय का दायित्व पूर्ववती निर्णयों का अनुसरण करना है? (हाँ/नहीं)

आपने क्या सीखा

किसी भी कानूनी व्यवस्था में विधिशास्त्रीय सिद्धांतों की उत्पत्ति अधिकारों के परिप्रेक्ष में होती है और कानून समादेश के रूप में व्यक्तियों के बीच के संबंध तथा व्यक्ति और सरकार के बीच के संबंध को विनियमित करता है।

जन कानून विधि का वह भाग है जो राज्य (सरकार/सरकारी एजेंसियों) और उसके विषय के बीच के संबंधों तथा समाज को प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करने वाले व्यक्तियों के बीच के संबंधों को भी शासित करता है।

निजी कानून व्यक्तियों का एक दूसरे के साथ संबंध या नागरिकों और कंपनियों के बीच निजी संबंधों से संबंधित है जो कि लोक महत्व के नहीं हैं । यह विशुद्धस्थिति (विवाह, तलाक, रिश्तेदारी आदि); किसी प्रकार की परिसंपत्ति के मामलों (संपत्ति, उत्तराधिकार, संविदाओं) तथा व्यापक अर्थ में वाणिज्यिक गतिविधियों के मुद्दों को शामिल करता है।

पाठांत प्रश्न

1. लोक कानून के अर्थ और प्रकृति का वर्णन करें।
2. निम्नलिखित विषयों पर नोट लिखें :

   (क) संविधानिक कानून

   (ख) प्रशासनिक कानून
3. लोक तथा निजी कानून में अंतर बताएं।
4. कानून को आकार देने में न्यायाधीश क्या भूमिका अदा कर सकते हैं? चर्चा करें।

पाठगत प्रश्नों के उत्तर

12.1

1. आपराधिक कानून कानून, का वह निकाय है जो अपराध से संबंधित है। यह उन अधिनियमों की व्याख्या करता है जो लोगों के स्वास्थ्य, सुरक्षा और नैतिक कल्याण के लिए नुकसान करता है, हानि पहुंचाता है या अन्यता खतरा उत्पन्न करता है। यह ऐसे कृत्यों के लिए जिम्मेदार व्यक्ति को दंड का भी प्रावधान करता है।
2. प्रशासनिक कानून वह रूप है जिसका सृजन प्रशासनिक एजेंसियों ने विनियमों, आदेशों और निर्णयों के रूप में किया है।

12.2

1. सर्वबंधी आनुवांशिक अधिकार वे अधिकार हैं जो किसी भी गलत कृत्य के होने के बावजूद, आकस्मिकता के व्यक्ति के प्रति समवाय के व्यक्ति के लाभ के लिए ऐसे असीमित रूप से ये अधिकार प्राप्त होंगे जो सम्पूर्ण विश्व को प्राप्त हैं जबकि व्यक्ति बंधी अधिकार वे अधिकार हैं जो एक विशिष्ट व्यक्ति के विरूद्ध प्राप्त होते हैं जो पक्षों के करार या कानून द्वारा प्रदान दायित्व के कारण उत्पन्न हुए हों।
2. निजि गुणात्मक कानून उस माधयम के लिए प्रावधान प्रस्तुत करताहै जिसमें राज्य एक व्यक्ति के रूप में मुकदमा कर सकता है या उस पर मुकदमा किया जा सकता है।

12.3

1. रोम के न्यायशास्त्री उल्पेन द्वारा विकसित हित सिद्धांत (Interest theory) केअनुसार लोक कानून वह है जो रोम राज्य से संबंधित है, निजी कानून नागरिकों के हितों से संबंधित हे।

12.4

1. हाँ
2. हाँ

मॉड्यूल 4

भारतीय अदालत प्रणाली और विवादों के समाधान के तरीकें

अध्याय 13 भारतीय न्यायिक व्यवस्था

अध्याय 14 न्याय वितरण प्रणाली

अध्याय 15 विकल्प विवाद निपटारा पद्धति

अध्याय 16 विधिक सेवाएं और लोक अदालत

13

भारतीय न्यायिक व्यवस्था

कानूनी इतिहास अथवा न्यायिक व्यवस्था के अध्ययन में कानूनी व्यवस्था का कालक्रमानुसार विकास और वृद्धि निहित होती है। दूसरे शब्दों में यह किसी देश विशेष में प्रचलित न्यायिक प्रशासन की व्यवस्था का उसके ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में विश्लेषण शामिल होता है। यह भली भांति ज्ञात है कि न्यायिक व्यवस्था की प्रभावकारिता दो मुख्य बातों पर निर्भर करती है; जैसे कि अदालतों की एक निश्चित श्रृंखला पर जो एक सरल विधि और सुपरिभाषित कानून व्यवस्था को अपनाती है; तथा पूरे देश में समान रूप से प्रयुक्त होती है। इस प्रकार 'अदालतें' और 'कानून' न्याय के दो अति महत्वपूर्ण उपकरण हैं। केवल अच्छे कानूनों को लागू करने के माध्यम से ही न्याय के प्रशासन में निष्पक्षता रखी जा सकती है। इसलिए कानूनी इतिहास का विषय मुख्यत: 'अदालतों' और 'कानूनों की कालक्रमानुसार धीमी विकास प्रक्रिया और प्रगति से सम्बन्धित है।

यह ठीक ही कहा गया है कि कानून एक गतिशील अवधारणा है जो समय-समय पर और एक स्थान से दूसरे स्थान पर मानव के ज्ञान और सभ्यता की प्रगति के साथ समाज की जरूरतों और स्थितियों के अनुकूल होने के लिए निरन्तर बदलती और विकसित होती रहती है। मानव समाज का इतिहास बताता है कि वर्तमान की जड़े अतीत में निहित हैं। कानूनी संस्थानों के मामले में भी ऐसा ही है। वर्तमान अदालतों और कानूनों ने बरसों के प्रयोग और नियोजन के बाद वर्तमान रूप प्राप्त किया है। इसलिए भारत की वर्तमान न्यायिक व्यवस्था को समझने के लिए इसके क्रमिक विकास और प्रगति के पूर्व इतिहास को खोजना बहुत आवश्यक है।

उद्देश्य

इस पाठ को पढ़ने के बाद आप

- भारत की न्यायिक व्यवस्था के उद्‌गम तथा विकास के इतिहास को जान पाएंगे;
- भारत में न्यायपालिका के ढांचे (तन्त्र) को जान सकेंगे;
- भारत में न्यायिक व्यवस्था को पदानुक्रम पहचान सकेंगे;

- भारत के सर्वोच्च न्यायालय के क्षेत्राधिकार की व्याख्या कर सकेंगे;
- उच्च न्यायालय के क्षेत्राधिकार को स्पष्ट कर पाएंगे;
- अधीनस्थ न्यायालयों की कार्यप्रणाली को समझ पाएंगे;
- भारत की वर्तमान न्यायिक व्यवस्था की त्रुटियों का आकलन कर सकेंगे; तथा
- भारत में नवीनतम न्यायिक रुझानों को चिन्हित कर सकोगे।

13.1 ब्रिटिश काल से पूर्व

प्राय: यह प्रश्न उठता है कि भारत के कानूनी इतिहास के प्रारम्भ को 1600 ई. में ब्रिटिश ईस्ट इन्डिया कम्पनी के आगमन के साथ क्यों जोड़ा जाता है। क्या इसका यह अर्थ है कि इस काल से पूर्व भारत में कोई न्यायिक व्यवस्था नहीं थी? स्पष्टत: इसका उत्तर है 'न कि यहां यह व्यवस्था बहुत पहले से थी'। भारत का कानूनी और न्यायिक इतिहास आज से 5000 वर्ष पुराना है। हमारे धर्मशास्त्रों में अच्छी तरह से स्थापित न्यायिक व्यवस्था के सन्दर्भ हैं जिनमें मानव आचरण के विभिन्न पक्षों के लिए पर्याप्त कानून हैं। उस समय कानून धर्म का ही एक हिस्सा होते थे जिनका पालन सबको करना होता था। इन कानूनों की पालना न करने पर कुछ दण्ड निश्चित थे। भारत के प्राचीन कानूनी इतिहास में हिन्दु युग के आने पर हिन्दु शासकों विशेषत: सम्राट अशोक, चन्द्रगुप्त मौर्य, हर्ष वर्धन, कनिष्क इत्यादि के शासन में दीवानी, फौजदारी और राजस्व न्याय के प्रशासन हेतु कानूनों और अदालतों की एक संगठित व्यवस्था लागू थी। हालांकि भारत में मुगलों का शासन आने पर उन्होंने अपने क्षेत्रों में न्यायिक प्रशासन के लिए अपने अलग कानून लागू किए जबकि हिन्दु साम्राज्यों में न्यायिक प्रशासन के लिए अपने कानून चलते रहे। इस प्रकार भारत में ब्रिटिश ईस्ट इन्डिया कम्पनी के आगमन से तुरन्त पूर्व भारत के विभिन्न भागों में चल रहे कानून और अदालतें अव्यवस्थित थीं और उनमें कोई एक रूपता नहीं थी क्योंकि वे मुख्यत: शासक के इशारों पर निर्भर रहती थीं, जिनकी न्याय के प्रति अपनी धारणाएं थीं जो एक दूसरे से बिल्कुल भिन्न थीं। इन परिस्थितियों में 1600 ई. पूर्व की विविध न्यायिक व्यवस्थाओं और वर्तमान व्यवस्थाओं के बीच कोई सीधा सम्बन्ध स्थापित करना बहुत कठिन है। 17वीं सदी में ब्रिटिश शासन की पकड़ मजबूत होने पर यह देसी न्यायिक व्यवस्थाएं गुमनामी के अंधेरे में खो गई। मुख्य रूप से इसी कारणवश भारत में ब्रिटिश शासन से पूर्व प्रचलित देसी न्यायिक व्यवस्थाओं को भारत के कानूनी इतिहास और भारतीय न्यायिक व्यवस्था के अध्ययन क्षेत्र से बाहर रखा जाता है।

पाठगत प्रश्न 13.1

निम्नलिखित कथनों के सामने सत्य/असत्य अंकित कीजिये

1. "1600 ई. से पूर्व भारत में कोई न्यायिक व्यवस्था नहीं थी" (सत्य/असत्य)
2. धर्मशास्त्रों में एक सुस्थापित न्यायिक व्यवस्था विद्यमान थी जिसमें मानव आचरण के विभिन्न पक्षों के लिए पर्याप्त कानून थे। (सत्य/असत्य)

13.2 ब्रिटिश काल

भारतीय न्यायिक व्यवस्था के विकास अथवा भारत के कानूनी इतिहास को निम्नलिखित पक्षों के माध्यम से आसानी से समझा जा सकता है।

13.2.1 प्रथम चरण

काल क्रमानुसार भारतीय न्यायिक व्यवस्था के प्रारम्भ को एंग्लो-इन्डिया काल से जोड़ा जा सकता है जब न्यायिक व्यवस्था अपनी (प्राचीन) आदिम अवस्था में थी। ब्रिटेन से आकर बसने वालों ने अपनी पहली बस्ती सूरत में बनाई थी जो उस समय का प्रमुख व्यापार केन्द्र था। बाद में इसी प्रकार की बस्तियां बम्बई और मद्रास में भी बनीं। ब्रिटिश कम्पनी को भारत में इन तीन छोटी बस्तियों पर शासन करने का दायित्व सौंपा गया। इन बस्तियों के प्रशासन के लिए उन्होंने एक प्राथमिक न्यायिक व्यवस्था तैयार की जिसके द्वारा वे अपने आपसी झगड़े हल कर लेते थे। इस व्यवस्था की एक उल्लेखनीय विशेषता यह थी कि कानून और न्याय को लागू करने का दायित्व कानून न जानने वाले तथा गैर पेशेवर लोगों को दिया गया था जो व्यापारी समुदाय से सम्बन्ध रखते थे तथा जिन्हें न्याय और कानून की प्रक्रिया की बहुत कम जानकारी थी। सच्चाई तो यह है कि उनसे न्यायिक कार्य निभाने में अंग्रेजी कानूनों के प्रावधानों का अनुकरण करने की अपेक्षा थी। प्रेसीडेंसी शहरों में न्यायपालिका पूरी तरह से कार्यपालिका पर निर्भर थी जो उस समय भारत में ब्रिटिश कब्जे के क्षेत्रों में सर्वोच्च प्रशासनिक शक्ति थी। यह स्थिति लगभग 150 वर्ष तक चली।

13.2.2 द्वितीय चरण

भारतीय न्यायिक व्यवस्था का दूसरा चरण 1773 में ब्रिटिश पार्लियामेण्ट द्वारा पारित किए गए रेग्यूलेटिंग एक्ट के अन्तर्गत फोर्ट विलियम में सर्वोच्च न्यायालय की स्थापना से शुरू होता है जो भारत में कानूनी संस्थानों के विकास में एक ऐतिहासिक घटना मानी जाती है। यह अंग्रेजी कानूनों की अदालत थी जिसमें पेशेवर अंग्रेज न्यायाधीश थे जो कानून और कानूनी प्रथाओं से भली भांति परिचित थे। न्याय प्रदान करने हेतु अदालत में अंग्रेजों का एक विधिज्ञ वर्ग भी था। यह अदालत इग्लैण्ड की वेस्टमिन्सटर अदालत के प्रारूप पर आधारित थी। सर्वोच्च न्यायालय विधायिका और कार्यपालिका से पूरी तरह स्वतंत्र था। कुछ हद तक यह कार्यपालिका पर भी नियन्त्रण करता था और इस प्रकार इसने भारत में प्रशासनिक कार्यों पर न्यायिक नियन्त्रण के सिद्धान्त को लागू किया । इसका परिणाम यह हुआ कि कार्यपालिका की शक्तियों को बहुत कम कर दिया गया और इससे सर्वोच्च न्यायालय और सर्वोच्च परिषद में आमतौर पर टकराव होते रहे। 1781 के सेटलमेण्ट एक्ट के बाद ही परिषद को सर्वोच्च न्यायालय के क्षेत्राधिकार से स्वतंत्र करके कम्पनी की सरकार के दो प्रमुख संस्थानों के बीच के भेद को मिटाया गया।

13.2.3 तीसरा चरण

भारतीय न्यायिक व्यवस्था के विकास अथवा एंग्लो इन्डियन विधिक (कानूनी) इतिहास के तीसरे चरण का प्रारम्भ तब हुआ जब कम्पनी ने बंगाल में मोफसिल्स में अदालती

व्यवस्था शुरू करके न्याय व्यवस्था को स्वयं सम्भाल लिया। प्रारम्भ में अदालतों में कम्पनी के ब्रिटिश लोक सेवकों को लगाया गया जिनके पास कोई विधिक प्रशिक्षण नहीं था। प्राथमिक रूप से कम्पनी सरकार के कार्यपालिका लोक सेवक होने के नाते वे न्यायिक कार्य को कम महत्व का अर्थात गौण कार्य समझते थे। हालांकि समय के साथ नागरिक मामलों में न्यायिक कार्यों को कार्यपालिका के कार्यों से अलग किया गया जबकि आपराधिक न्याय अभी भी कार्यकारी अधिकारी कलेक्टर के पास ही था। अतः कलेक्टर-मजिस्ट्रेट ने भारत में कम्पनी की सरकार के नागरिक प्रशासन तथा आपराधिक न्याय व्यवस्था में अति महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। बाद में अदालती व्यवस्था को कम्पनी के अन्य नये अधिग्रहित क्षेत्रों में विस्तार दिया गया।

13.2.4 चौथा चरण

भारत के विधिक इतिहास का अगला चरण प्रेसीडेंसी शहरों तथा मोफ्सिल क्षेत्रों में प्रचलित अदालतों की दोहरी व्यवस्था को हाई कोर्ट्स एक्ट 1861 के अन्तर्गत हाईकोर्ट स्थापित करके एक करना था। प्रेसीडेंसी शहरों की न्यायिक व्यवस्था अनिवार्य रूप से इंग्लिश कानूनों पर आधारित थी जिसका अलग ब्रिटिश चरित्र था जबकि प्रेसीडेंसी शहरों से बाहर मोफ्सिल क्षेत्रों में हिन्दुओं और मुसलमानों के देशी कानूनों पर आधारित अदालती व्यवस्था थी। प्रेसीडेंसी शहरों की सुप्रीम कोर्ट और सदर अदालतों को समाप्त करके हाई कोर्ट की स्थापना न्यायिक व्यवस्था को सरल बनाने की दिशा में एक कदम था। इसलिए डा. एम. पी. जैन ने ठीक ही कहा है कि इन हाई कोर्ट्स को भारत में विधि की आधुनिक व्यवस्था और न्याय का अग्रदूत माना जा सकता है। शुरू में हाई कोर्ट कलकत्ता, मद्रास और बाम्बे में स्थापित किए गए जिन्हें बाद में अन्य उत्तरी और पश्चिमी प्रान्तों में भी विस्तार दिया गया।

13.2.5 पांचवा चरण

भारत में प्रिवी कोंसिल का अपील की उच्चतम अदालत के रूप में उदय भारतीय न्यायिक व्यवस्था के विकास का एक और महत्वपूर्ण चरण था। इसने भारत में एक समान प्रतिमान पर कानूनों के उचित विकास को प्रोत्साहित किया और अदालतों को न्याय देने वाली संस्था के रूप में अपने कार्यों में उच्च स्तरीय न्यायिक मानकों को लागू करने के लिए प्रेरित किया। 1833 के बाद न्यायिक प्रशासन में समानता और निश्चितता को सुनिश्चित करने के लिए पहले ला कमीशन के गठन के साथ ही भारतीय कानूनों को संहिताबद्ध करने की प्रक्रिया शुरू हुई जिसने कानूनों के विकास को अधिक स्पष्ट ढंग से प्रकट किया। दूसरे और तीसरे ला कमीशन ने भारत में प्रमुख कानूनों को संहिताबद्ध करने का काम अपने हाथ में लिया।

13.2.6 छठा चरण

भारत सरकार अधिनियम 1935 ने भारत की फेडरल कोर्ट का गठन किया जो भारतीय संविधान की व्याख्या के मामलों में हाई कोर्ट्स और प्रिवी कोंसिल के बीच मध्यस्थ अपीलीय अदालत के रूप में कार्य करने के लिए गठित की गई। इस अदालत को घोषणात्मक निर्णय के अतिरिक्त कोई अन्य निर्णय घोषित करने का अधिकार नहीं था जिसका अर्थ

था कि यह 'कानून क्या है' के विषय में तो घोषणा कर सकती थी परन्तु अपने निर्णय के अनुसार उसका पालन करवाने का कोई अधिकार नहीं रखती थी। फेडरेल कोर्ट की न्यायिक पुनरावलोकन की शक्ति केवल कागजी थी और इसके पास बहुत ही सीमित शक्ति थी।

13.2.7 उत्तर स्वतंत्रता काल

फेडरेल कोर्ट पर लगाई गई पाबन्दियों के बावजूद इसने 26 जनवरी 1950 तक अपना कार्य करना जारी रखा, जब भारत का संविधान लागू हुआ था। इस दौरान संविधान सभा विधि व्यवस्था और न्यायपालिका का आधारभूत ढांचा तैयार करने में जुट गई। संविधान सभा के सदस्यों ने न्यायपालिका की कल्पना अधिकारों और न्याय के संरक्षक के रूप में की। वे न्यायपालिका को सरकार के अन्य अंगों के दबाव और शक्ति से स्वतंत्र और मुक्त रखना चाहते थे। न्यायपालिका पर सप्रू कमेटी की रिपोर्ट तथा संविधान सभा की सर्वोच्च न्यायालय पर बनी एडहाक कमेटी की रिपोर्ट ने न्यायपालिका के लिए काफी दिशा निर्देश बनाए। भारत में न्यायिक व्यवस्था को आकार रूप देने में ए. के. अय्यर, के. सान्थानम, एम. ए. अंयगर, तेज बहादुर सप्रू, के. एम. मुन्शी, सदाउल्ला और डा. बी. आर. अम्बेडकर ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

ऐसा प्रतीत होता है कि एकीकृत न्यायिक व्यवस्था को बिना किसी सवाल जवाब के स्वीकार किया गया है। सर्वोच्च न्यायालय को देशभर में व्यक्तिगत अधिकारों की रक्षा का विशेष दायित्व लेना था। कदाचित अम्बेडकर संविधान सभा में इस बात के सबसे बड़े समर्थक थे कि देश की एकता को बनाए रखने के लिए संवैधानिक, दीवानी और आपराधिक कानूनों तक क्षेत्राधिकार रखने वाली तथा ऐसे सभी मामलों का उपचार प्रदान करने वाली 'एक अकेली एकीकृत न्यायपालिका' अनिवार्य है।

चित्र 13.1
डा. भीम राव अंबेडकर
अध्यक्ष, प्रारूप समिति

1947 में स्वतंत्रता के साथ ही बदली हुई परिस्थितियों के अनुकूल न्यायिक व्यवस्था में भी बदलाव करना पड़ा। प्रिवी कौंसिल का भारतीय अपीलों पर क्षेत्राधिकार 26 जनवरी 1950 को सर्वोच्च न्यायालय की स्थापना के साथ ही समाप्त हो गया। यहां उल्लेखनीय है कि भारत में स्वतंत्रता के बाद भी न्यायिक प्रशासन का तौर-तरीका न्यूनाधिक (कमोवेश) पहले जैसा ही रहा। अत: आधुनिक न्यायिक व्यवस्था अनिवार्यत: हमें अंग्रज शासकों द्वारा दी गई व्यवस्था जैसी ही है। ऐसा कहा गया है कि शायद यह व्यवस्था अंग्रेजों द्वारा दी गई सर्वश्रेष्ठ विरासत है।

वर्तमान में भारत में एक उन्नत न्यायिक व्यवस्था है जिसमें शीर्ष पर सर्वोच्च न्यायालय तथा उसके नीचे अनेक अधीनस्थ न्यायालयों की सुपरिभाषित श्रृंखला हैं। अधिकांश कानून वर्गीकृत हैं जो पूरे देश में एक समान लागू होते हैं। न्यायिक प्रशासन का प्राथमिक उद्देश्य समान लोगों को समान रूप से न्याय प्रदान करना तथा पूरे देश में कानून का शासन स्थापित करना है। हालांकि यह दु:ख की बात है कि भारतीय संविधान के अनुच्छेद 44 में विचारित समान नागरिक आचार संहिता को शहबानो केस के ऐतिहासिक निर्णय के बावजूद अभी तक लागू नहीं किया गया।

भारत का संविधान न्यायपालिका की स्वतंत्रता की अच्छी तरह रक्षा करता है तथा अपील करने के प्रावधान आम आदमी को न्याय दिलवाने के लिए उपयुक्त एवं पर्याप्त हैं।

पाठगत प्रश्न 13.2

1. "ब्रिटिश पार्लियामेण्ट द्वारा लागू किए गए 1773 के रेगूलेटिंग एक्ट को भारत में विधिक संस्थाओं के विकास में मील का पत्थर माना जाता है" क्या आप इस कथन से सहमत हैं? अपने विचार लिखिए।

13.3 आधुनिक न्यायिक व्यवस्था और अदालतों का श्रेणीबद्ध गठन

आधुनिक राष्ट्र-राज्य अनेक संस्थाओं के माध्यम से काम करते हैं। ब्रिटिश सुधारों ने वर्तमान विधायी ढांचे को रूप देने में सहायता की है। संसद, न्यायपालिका और कार्यपालिका के तंत्र जैसे अफसरशाही, पुलिस और केन्द्र-राज्यों के औपचारिक ढांचे के साथ-साथ चुनावी व्यवस्था जैसी संस्थाओं को संविधानवाद के विचार से प्रेरित हो कर गठित किया गया। उनके प्रबन्ध, निर्भरता और पारस्परिक निर्भरता को हमारे देश के सर्वोच्च राजनीतिक - विधिक दस्तावेज ने प्रत्यक्ष रूप से आकार रूप दिया है। कानूनी व्यवस्था अपने सभी अधिकार संविधान से प्राप्त करती है और पूरी राजनीतिक व्यवस्था में गहराई तक समाई हुई है। न्यायपालिका की उपस्थिति शक्तियों के पृथक्करण के सिद्धान्त को सिद्ध करती है जहां अन्य दो अंग अर्थात विधायिका और कार्यपालिका इससे अलग हैं।

संसदीय लोकतन्त्र 'शक्तियों के विभाजन' के सिद्धान्त पर कार्य करता है और कानून बनाने में विधायिका और कार्यपालिका की सीधी प्रतिभागिता है। केवल न्यायपालिका ही अन्य अंगों को उनकी संविधानिक सीमा लांघने की अनुमति न देकर नागरिकों के हितों की मजबूती से रक्षा करते हुए स्वयं स्वतंत्र बनी रहती है। यह अन्य दो अंगों के कार्यों पर एक अंकुश के रूप में कार्य करती है जो अपनी शक्तियों, ढांचे और संविधान का उल्लंघन कर सकते हैं। केवल न्यायपालिका के पास ही संविधान, उसके निर्णयों और आदेशों की व्याख्या करने की शक्ति है तथा न्यायपालिका के मत की सभी अंगों द्वारा पालना की जाती है।

चित्र 13.2 **भारत की संसद**

भारतीय न्यायपालिका केन्द्र तथा राज्यों के न्यायालयों की एकल एकीकृत व्यवस्था है जो केन्द्र तथा राज्यों के कानूनों को लागू करती हैं तथा पूरी व्यवस्था के शीर्ष पर भारत का सर्वोच्च न्यायालय है। न्यायिक व्यवस्था की विकास यात्रा को आधुनिक राष्ट्र-राज्यों तथा संविधानवाद के विकास के माध्यम से खोजा जा सकता है।

चित्र 13.3 **भारत का सर्वोच्च न्यायालय**

पाठगत प्रश्न 13.3

निम्नलिखित कथनों के समक्ष सत्य/असत्य लिखिए।

1. भारतीय न्यायपालिका संघ एवं राज्यों के लिए एक एकल एकीकृत न्यायिक व्यवस्था है। (सत्य/असत्य)
2. 'विधिक व्यवस्था' संविधान से शक्ति प्राप्त करती है। (सत्य/असत्य)

13.4 न्यायपालिका का ढांचा

भारत में न्यायालयों का ढांचा एक पिरामिड की भांति है। संविधान के अन्तर्गत भारत में केन्द्र तथा राज्यों के लिए एकल एकीकृत न्यायालयों की व्यवस्था है जो केन्द्र तथा राज्यों के कानूनों के आधार पर न्याय करते हैं तथा सबसे शीर्ष पर एक सर्वोच्च न्यायालय है। सर्वोच्च न्यायालय के नीचे विभिन्न राज्यों के उच्च न्यायालय हैं और प्रत्येक उच्च न्यायालय के नीचे अधीनस्थ न्यायालय हैं जो इसके के आधीन एवं नियन्त्रण में हैं। देश में कुल 21 उच्च न्यायालय हैं और जिला स्तर पर अधीनस्थ न्यायालय हैं।

भारत का सर्वोच्च न्यायालय

भारत के संविधान के अनुच्छेद 124(1) के अन्तर्गत 28 जनवरी 1950 को राष्ट्रीय स्तर पर स्थापित सर्वोच्च न्यायालय देश का सबसे उच्च न्यायालय है। इस सन्दर्भ में अनुच्छेद 124(1) कहता है कि भारत का एक सर्वोच्च न्यायालय होगा जिसमें मुख्य न्यायाधीश के अतिरिक्त सात अन्य न्यायाधीश होगें जब तक कि संसद कानून बना कर इस संख्या में परिवर्तन नहीं करती। 2009 में किए गए संशोधन द्वारा इस संख्या को मुख्य न्यायाध ीश सहित 31 तब बढ़ा दिया गया है। सर्वोच्च न्यायालय की सारी कारवाई अंग्रेजी भाषा में होती है। सर्वोच्च न्यायालय दिल्ली में स्थित है और इसकी कार्यवाही आम जनता के लिए खुली है।

दीवानी न्यायिक व्यवस्था में क्रमबद्धता (पद सोपान)

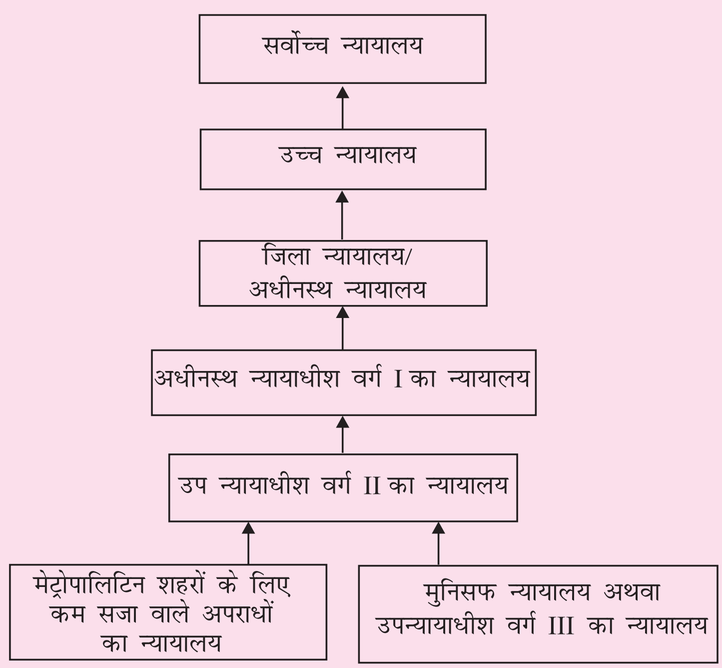

उच्च न्यायालय

किसी भी राज्य का सबसे बड़ा न्यायालय संविधान के अनुच्छेद 214 के अन्तर्गत गठित उच्च न्यायालय होगा। इस समय देश में 21 उच्च न्यायालय हैं। प्रत्येक उच्च न्यायालय

में एक मुख्य न्यायाधीश तथा समय-समय पर राष्ट्रपति द्वारा नियुक्त किए गए अन्य न्यायाधीश होते हैं।

अधीनस्थ न्यायालय

न्यायिक व्यवस्था में अधीनस्थ न्यायालय भी आते हैं जो न्यायिक ढांचे के पहले स्तर का प्रतिनिधित्व करते हैं। एक सामान्य नियमानुसार दीवानी मामलों को एक प्रकार के न्यायालयों की श्रेणी द्वारा देखा जाता है तथा आपराधिक मामले एक अन्य न्यायालय, जिसे आपराधिक न्यायालय कहा जाता है, द्वारा देखे जाते हैं। दीवानी अदालतों (नागरिक न्यायालयों) की शक्ति सिविल प्रोसीजर कोड (नागरिक कार्यप्रणाली संहिता) द्वारा तथा आपराधिक न्यायालयों की शक्ति क्रिमीनल प्रोसीजर कोड द्वारा शासित होती है। भारत में दीवानी तथा आपराधिक न्यायालयों की क्रमबद्धता का चार्ट नीचे दिया गया है।

दीवानी एवं फौजदारी न्यायलयों की क्रमबद्धता (पद-सोपान)

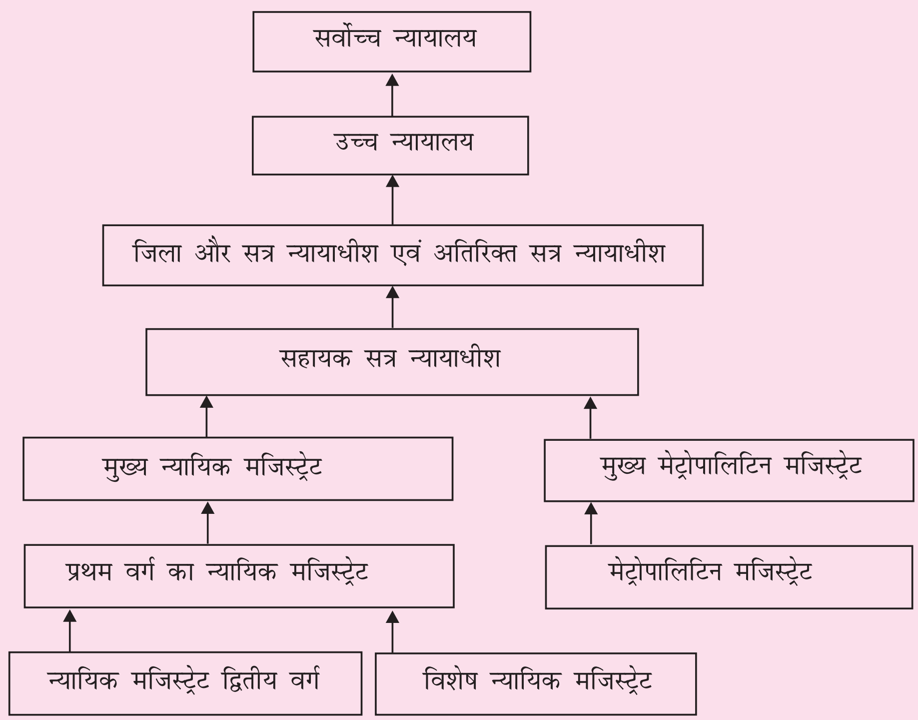

पाठगत प्रश्न 13.4

निम्नलिखित कथनों के समझ सत्य अथवा असत्य लिखिए।

1. भारतीय न्यायापालिका की प्रमुख विशेषता इसकी एकल एकीकृत न्यायिक व्यवस्था है। (सत्य/असत्य)
2. भारत में न्यायालयों का ढांचा एक पिरामिड की भांति हैं। (सत्य/असत्य)

3. 26 जनवरी 1950 को सर्वोच्च न्यायालय की स्थापना के साथ ही प्रिवी कौंसिलों का भारतीय अपीलों पर क्षेत्राधिकार समाप्त हो गया। (सत्य/असत्य)
4. भारत में सर्वोच्च न्यायालय सबसे शीर्ष न्यायालय है। (सत्य/असत्य)

13.5 सर्वोच्च न्यायालय का क्षेत्राधिकार

सर्वोच्च न्यायालय का क्षेत्राधिकार बहुत विस्तृत है और इसकी स्थिति इस कारण सुदृढ़ है कि यह एक अपीलीय न्यायालय, संविधान का रक्षक तथा अपने ही निर्णयों के समीक्षक के रूपमें कार्य करता है। संविधान का अनुच्छेद 141 कहता है कि सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित कानून भारत के सीमा क्षेत्र में स्थित सभी न्यायालयों पर बाध्यकारी होंगे। इसके क्षेत्राधिकार को चार वर्गों में बांटा गया है।

(a) ***मूल क्षेत्राधिकार तथा याचिका क्षेत्राधिकार:*** अनुच्छेद 131 के अनुसार सर्वोच्च न्यायालय का संघ और किसी राज्य के बीच के किसी विवाद, एक राज्य का दूसरे राज्य के साथ अथवा कुछ राज्यों के एक समूह का दूसरे राज्यों के समूह के साथ किसी विवाद पर मूल क्षेत्राधिकार है। इसलिए यह एक फेडरेल कोर्ट की तरह काम करती है अर्थात विवाद से सम्बद्ध सभी पक्ष फेडरेशन की इकाई होने चाहिए। भारत में किसी अन्य न्यायालय को इस प्रकार के विवाद सुनने का अधिकार नहीं है। सर्वोच्च न्यायालय मौलिक अधिकारों का संरक्षक हैं अतः मौलिक अधिकारों के संरक्षक के रूप में इसको मौलिक अधिकारों का प्राथमिक क्षेत्राधिकार प्राप्त है। इसको बन्दी प्रत्यक्षीकरण, अधिकार पृच्छा, प्रतिषेध, उत्प्रेषण और परमादेश जैसे आज्ञा पत्र जारी करने का भी अधिकार हैं। इन आज्ञा पत्रों सहित सर्वोच्च न्यायालय को कार्यपालिका को उपयुक्त दिशा निर्देश एवं आदेश जारी करने की शक्ति प्राप्त है। संविधान का अनुच्छेद 32 संविधान के भाग III में दर्ज मौलिक अधिकारों को प्राप्त करने हेतु नागरिकों को सीधे सर्वोच्च न्यायालय में जाने का अधिकार प्रदान करता है।

(b) ***अपीलीय न्यायालय:*** सर्वोच्च न्यायालय सभी न्यायालयों के विरूद्ध अपील सुनने का उच्चतम न्यायालय है। इसके अपीलीय क्षेत्राधिकार को निम्नलिखित ढंग से विभाजित किया जा सकता है।

   (i) संविधान की व्याख्या से जुड़े मामले - दीवानी, आपराधिक अथवा अन्य प्रकार के मामले

   (ii) सांविधनिक प्रश्न से निरपेक्ष दीवानी मामले

   (iii) सांविधानिक प्रश्न से निरपेक्ष आपराधिक मामले

   अनुच्छेद 132 उच्च न्यायालय के प्रमणीकरण के आधार पर सर्वोच्च न्यायालय में अपील करने की अनुमति प्रदान करता है और सर्वोच्च न्यायालय अपील स्वीकार कर सकता है। अनुच्छेद 133 दीवानी मामलों में तथा अनुच्छेद 134 आपराधिक मामलों में सर्वोच्च न्यायालय को अपील सुनने का क्षेत्राधिकार प्रदान करता है। हालांकि सर्वोच्च न्यायालय को से किसी भी निर्णय, आदेश, दण्ड अथवा किसी भी न्यायालय अथवा ट्रिब्यूनल द्वारा पारित अथवा दिए गए निर्णय के विरूद्ध अपनी इच्छा से अपील सुनने का विशेष क्षेत्राधिकार प्राप्त है।

(c) **परामर्श का क्षेत्राधिकारः** संविधान का अनुच्छेद 143 राष्ट्रपति को कानून के किसी प्रश्न, सार्वजनिक हित के किसी तथ्य अथवा पूर्व निर्धारित सन्धियों और समझौतों से उत्पन्न विवादों से जुड़े मामलों पर सर्वोच्च न्यायालय से परामर्श मांगने की शक्ति प्रदान करता है; जो इसके मूल क्षेत्रधिकार से बाहर के मामले हैं। इस क्षेत्राधिकार में कोई कानून शामिल नहीं होता, इसका परामर्श सरकार पर बाध्यमारी नहीं है, इसको न्यायालय के निर्णय के रूप में लागू नहीं किया जा सकता और न्यायालय विवादित परिस्थितियों में जैसे बाबरी मस्जिद मामले इत्यादि में अपने परामर्श को सुरक्षित रख सकता है।

(d) **पुनरावलोकन क्षेत्राधिकारः** सर्वोच्च न्यायालय को अपने द्वारा दिए गए ऐसे किसी निर्णय तथा आदेश के विरूद्ध अनुच्छेद 137 के अन्तर्गत पुनावलोकन करने का अधिकार है जिसमें संसद द्वारा बनाए गए किसी कानून अथवा अनुच्छेद 145 के अन्तर्गत बनाए गए नियमों के प्रावधान सम्मिलित हों। हालांकि सर्वोच्च न्यायालय के क्षेत्राधिकार को संसद द्वारा बनाए गए कानून के द्वारा संघीय सूची के किसी विषय में विस्तार दिया जा सकता है। संसद कानून द्वारा सर्वोच्च न्यायालय द्वारा किए जाने वाले कार्यो और शक्तियों पर पबिन्दयां लगा सकती है। क्योंकि संसद और न्यायपालिका दोनों ही संविधान द्वारा निर्मित हैं इसलिए पूर्वोक्त कार्यो द्वारा दोनों के बीच मधुर सम्बन्ध बने रहने चाहिए और इससे संविधान का आधारभूत ढांचा नहीं बदलना चाहिए। जब कभी देश में संकटकाल घोषित किया गया हो तो यह सभी शक्तियां निरस्त अथवा दबायी जा सकती हैं।

पाठगत प्रश्न 13.5

रिक्त स्थान भरिये:

1. सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीशों को .... द्वारा नियुक्त किया जाता है। (प्रधानमंत्री/राष्ट्रपति/कानून मंत्री)
2. सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीश .... वर्ष की आयु के बाद सेवा निवृत होते हैं। (60/62/65)
3. दो अथवा दो से अधिक राज्यों के बीच विवाद को .... क्षेत्राधिकार के अन्तर्गत सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष लाया जा सकता है। (मूल क्षेत्रधिकार/अपीलीय/परामर्श)
4. भारत के संविधान की व्याख्या करने का अन्तिम अधिकार .... के पास है। (उच्च न्यायालय/सर्वोच्च न्यायालय/सत्र न्यायालय)

13.6 उच्च न्यायालय

अनुच्छेद 214 के अनुसार प्रत्येक राज्य के लिए एक उच्च न्यायालय होगा और प्रत्येक उच्च न्यायालय एक अभिलेख न्यायालय होगा और उसके पास ऐसे न्यायालय की सारी शक्तियां होगी जिनमें अपनी ही अवमानना के लिए दण्ड देने की शक्ति भी होगी। हालांकि संसद कानून बनाकर दो अथवा दो से अधिक राज्यों और एक केन्द्रशासित क्षेत्र के लिए

एक ही उच्च न्यायालय स्थापित कर सकती है। प्रत्येक उच्च न्यायालय में एक मुख्य न्यायाधीश तथा समय-समय पर नियुक्ति के लिए आवश्यक राष्ट्रपति द्वारा नियुक्त न्यायाधीश होंगे। संविधान में राष्ट्रपति द्वारा अतिरिक्त न्यायाधीशों तथा कार्यकारी न्यायाधीशों की नियुक्ति के प्रावधान हैं। राष्ट्रपति न्यायाधीशों की नियुक्ति के लिए भारत के मुख्य न्यायाधीश, राज्य के राज्यपाल तथा उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश से परामर्श करेगा। उच्च न्यायालय का न्यायाधीश 62 वर्ष की आयु तक अपने पद पर बना रहता है। कोई न्यायाधीश त्यागपत्र देकर अथवा सर्वोच्च न्यायालय का न्यायाधीश नियुक्त होने पर अथवा राष्ट्रपति द्वारा किसी अन्य उच्च न्यायालय में स्थानान्तरित किए जाने पर अपना पद त्याग सकता है। राष्ट्रपति द्वारा किसी न्यायाधीश को दुराचार अथवा अक्षमता के कारण ठीक उसी प्रकार से हटाया जा सकता है जैसे सर्वोच्च न्यायालय के किसी न्यायाधीश को अपने पद से हटाने की एक सुनिश्चित प्रक्रिया है।

उच्च न्यायालयों का क्षेत्राधिकार

किसी राज्य के उच्च न्यायालय का क्षेत्राधिकार उस राज्य की क्षेत्रीय सीमाओं से सम्बद्ध है। उच्च न्यायालय के मूल क्षेत्राधिकार में मौलिक अधिकारों को लागू करना, केन्द्र अथवा राज्य विधायिकाओं से सम्बन्धित चुनावों के विवादों को सुलझाना तथा राजस्व से जुड़े विवाद आते हैं। इसका अपीलीय क्षेत्राधिकार दीवानी तथा आपराधिक मामलों तक फैला हुआ है। दीवानों मामलों में उच्च न्यायालय में अपील या तो पहली अपील होती है अथवा दूसरी।

आपराधिक अपीलीय क्षेत्राधिकार में निम्नलिखित निर्णयों से सम्बन्धित अपीलें होती है–

(a) किसी सत्र न्यायाधीश अथवा अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश के निर्णय के विरूद्ध जहां सजा सात वर्ष से अधिक हुई हो।

(b) छोटे मुकद्मों के अतिरिक्त केवल प्रमाणित मुकद्मों में किसी सहायक सत्र न्यायाधीश, मेट्रोपोलिटिन मजिस्ट्रट अथवा अन्य न्यायिक मजिस्ट्रेट के निर्णयों के विरूद्ध

उच्च न्यायालीय द्वारा याचिका क्षेत्राधिकार का अर्थ मौलिक अधिकारों तथा सामान्य कानूनी अधिकारों को लागू करने के लिए आज्ञा पत्र जारी करना है। उच्च न्यायालय को सैनिक बलों से जुड़ी अदालतों एवं ट्रिब्यूनलों को छोड़कर अन्य अदालतों एवं ट्रिब्यूनलों पर अधीक्षण की शक्ति है। प्रभावकारी एवं तीव्र न्यायिक उपचारों के लिए यह समय-समय पर नियम बना सकता है तथा मार्ग दर्शन के लिए दिशा निर्देश जारी कर सकता है। संविधान की व्याख्या से सम्बन्धित मामलों को करने की शक्ति रखता है। संविधान की व्याख्या का अर्थ है कि प्रावधानों को लागू करने के तरीकों के लिए सही मार्गदर्शन देना। हालांकि संसद कानून बनाकर किसी उच्च न्यायालय के क्षेत्रधिकार को बढ़ा सकती है या किसी केन्द्रशासित क्षेत्र को उसके क्षेत्राधिकार से बाहर कर सकती है। उच्च न्यायालय के मूल क्षेत्राधिकार तथा अपीलीय क्षेत्राधिकार को भी द्वारा केन्द्र सरकार के अन्तर्गत सेवा करने वालों के लिए केन्द्रीय प्रशासनिक ट्रिब्यूनल बना कर सीमित किया गया हैं और इसको किसी केन्द्रीय प्रशासनिक प्राधिकरण द्वारा बनाए गए किसी केन्द्रीय एक्ट, नियम, अधिसूचना को अमान्य घोषित करने का कोई अधिकार नहीं है।

पाठगत प्रश्न 13.6

रिक्त स्थान भरिये:

1. उच्च न्यायालय के न्यायाधीश .... द्वारा नियुक्त किए जाते हैं? (राज्यपाल/राष्ट्रपति/प्रधानमंत्री)
2. वर्तमान में भारत में कुल .... उच्च न्यायालय हैं। (20, 21, 18)
3. उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों की सेवानिवृति की आयु .... वर्ष है। (60, 65, 62)

13.7 अधीनस्थ न्यायालय

न्यायालयों की क्रमबद्धता में उच्च न्यायालय के आधीन न्यायालयों को अधीनस्थ न्यायालय कहा जाता है। अधीनस्थ न्यायालयों को बनाने का कार्य राज्य सरकारों का है। इन अधीनस्थ न्यायालयों के नाम एक राज्य से दूसरे राज्य में बदल जाते हैं परन्तु सांगठनिक ढांचा लगभग एक सा ही है। प्रत्येक जिले के लिए उच्च न्यायालय के नीचे जिला न्यायालय हैं और उनके पास जिले में अपीलीय क्षेत्राधिकार है। जिला न्यायालय के अन्तर्गत निम्न स्तर के न्यायालय हैं जैसे अतिरिक्त जिला (सत्र) न्यायालय, उप न्यायालय, मुन्सिफ मजिस्ट्रेट कोर्ट, विशेष न्यायिक मजिस्ट्रेट (प्रथम वर्ग) का न्यायालय, विशेष न्यायिक मजिस्ट्रेट द्वितीय वर्ग का न्यायालय, फैक्ट्रीज एक्ट और श्रम कानूनों के लिए विशेष मुन्सिफ न्यायाधीश का न्यायालय, इत्यादि। अधीनस्थ न्यायालयों के सबसे निचले स्तर पर पंचायत अदालते हैं जैसे न्याय पंचायत ग्राम पंचायत, पंचायत अदालत इत्यादि।

इन न्यायालयों को आपराधिक न्यायालय क्षेत्राधिकार के अन्तर्गत नहीं माना जाता। विशेष दर्जे के अन्तर्गत जिला न्यायालय मूल मामलों को संज्ञान में ले सकता है। उच्च न्यायालय से परामर्श करके राज्यपाल जिला अदालतों में नियुक्तियां करता है। किसी राज्य की न्यायिक सेवा में जिला न्यायाधीशों के अतिरिक्त अन्य न्यायाधीशों नियुक्तियां राज्यपाल द्वारा राज्य लोक सेवा आयोग तथा उच्च न्यायालय के परामर्श पर आयोग द्वारा बनाए गए नियमों के अनुसार की जाती हैं। उच्च न्यायालय, जिला न्यायालयों तथा उनके अधीनस्थ न्यायालयों पर नियुक्ति एवं पदोन्नतियों के मामलों और राज्य न्यायिक सेवा से सम्बन्ध रखने वाले सभी व्यक्तियों को अवकाश प्रदान करने के मामले में प्रशासनिक नियन्त्रण रखता है।

पाठगत प्रश्न 13.7

1. किसी जिले मे सबसे बड़ा आपराधिक न्यायालय कौन सा होता है?
2. किसी जिले के सबसे बड़े दीवानी न्यायालय का नाम लिखिए।

13.8 प्रचलित न्यायिक व्यवस्था के दोष

भारतीय विधिक व्यवस्था के अनेक सकारात्मक पहलुओं के बावजूद न्यायिक व्यवस्था में कुछ स्पष्ट दोष हैं जिनको दूर करना आवश्यक है। उनमें से कुछ दोष निम्नलिखित हैः

1. सर्वोच्च न्यायालय और उच्च न्यायालय अपीलीय कार्यों के भारी बोझ तले दबे हैं जिनसे अपीलों का निपटारा करने में व्यर्थ का बिलम्ब होता है।
2. अधीनस्थ न्यायालयों के पास भी काम अधिक है। इसके अतिरिक्त उन पर कार्यपालिका का भी प्रभाव होता है जो निष्पक्ष न्याय के काम को प्रभावित करता है। दीवानी और आपराधिक मुकदमों को सम्बन्धित व्यक्तियों तथा उनके वकीलों द्वारा बार-बार बीच में रोक कर लम्बा खींचा जाता है। न्यायाधीशों की भी आम तौर पर स्थगन जारी करने की प्रवृति बन जाती है।
3. मुकदमा विशेषतः दीवानी मुकद्मा इतना महंगा मामला है कि गरीबों की पहुँच से बाहर हैं। कई बार लोग अपने जायज दावों को भी छोड़ने पर विवश होते हैं और महंगे न्याय के कारण अन्याय को सहना पसन्द करते हैं।
4. 'बार' में भ्रष्ट आचरण तथा न्यायालयों में मन्त्रियों की दखलान्दजी से कानून और न्याय के उद्देश्य को हार का सामना करना पड़ता है।
5. दलाल और पेशेवर गवाह गाहक की तलाश में अदालतों में घूमते देखे जा सकते हैं। मासूम और अनपढ़ वादी उनकी गलत चालाकियों का शिकार हो जाते हैं जिससे न्याय का काम प्रभावित होता है।
6. अनेक प्रचलित कानून सदियों पुराने हैं और बेकार तथा समय से पिछड़ गए हैं। इसलिए उनको हटाना अथवा संशोधित करना आवश्यक है। क्षति से सम्बन्धित कानून में समरूपता तथा निश्चितता लाने के लिए क्षति के कानून को अमरीका के क्षति कानून के पुर्नकथन के तरीके पर वर्गीकृत किया जाना चाहिए।

पाठगत प्रश्न 13.8

1. भारत में वर्तमान न्यायिक व्यवस्था के मुख्य दोषों की सूची बनाईये।
2. वर्तमान न्यायिक व्यवस्था के कोई तीन दोष लिखिए।

13.9 भारतीय न्यायिक व्यवस्था में नई प्रवृतियां अथवा घटनाएं

स्वतंत्रता के बाद सर्वोच्च न्यायालय भारतीय कानूनों को बदलते समाज की आवश्यकताओं को न्यायिक उद्घोषणओं के माध्यम से नया रूप देने का अनथक प्रयास कर रहा है, जिनमें से कुछ तो गत वर्षों में ऐतिहासिक महत्व प्राप्त कर चुके हैं। उल्लेख करने की दृष्टि से केशवानन्द भारती के मामले में दिया गया निर्णय जिसे मौलिक अधिकारों का मुकद्मा कहा जाता है, न्यायाधीशों के स्थानान्तरण का मुकद्मा, मेनका गांधी, हुसैनारा खातून, शाहबानो केस, एशियाड केस, डा. दास्तान केस, 12; बंगलोर जल आपूर्ति बनाम राजप्पा; नेशनल टेक्सटाइल मजदूर संघ बनाम पी. आर. रामकृष्णनन् एम. सी. मेहता बनाम

भारतीय संघ जैसे केसों के निर्णय भारत के सर्वोच्च न्यायालय की सृजनात्मक भूमिका के कुछ उदाहरण हैं।

कुछ ही समय पहले जनहित याचिका की नये रुझान से, जिसे प्रो. उपेन्द्र बक्शी सामाजिक कारवाई का मुकदमा कहना पसन्द करते हैं, न्यायिक सक्रियता और न्याय को आम आदमी के करीब ले जाने के नये क्षेत्र खुले हैं। सर्वोच्च न्यायालय और कुछ उच्च न्यायालयों ने जनहित याचिकाओं में गहरी रूचि दिखाई है जिसका उद्देश्य गरीब अभियोजकों की कठिनाइयों और मुसीबतों को कम करना है जो मुकद्मेंबाजी की परम्परागत कुव्यवस्था की मार को झेलने में असमर्थ थे तथा जिनसे केवल अमीर अभियोजकों को ही लाभ और राहत मिलती थी। गरीब और जरूरतमन्द। अभियोजकों को राहत देने के इलावा जनहित याचिकाएं कानून के प्रति सरकारी अवहेलना तथा सरकारी अधिकारियों की लापरवाही और निस्पृह प्रवृति के विरूद्ध रोक लगाने के लिए उन्हें अपने कृत्यों, गलतियों तथा मनमर्जी के लिए उत्तरदायी बनाकर प्रभावशाली ढंग से अंकुश लगाया है। बीसवीं सदी के भारत के विधिक इतिहास में यह बहुत ही सुखदायी घटना है जिसने भारत की न्यायिक व्यवस्था को पूरे भारत के लोगों के कल्याण के लिए सामाजिक न्याय का एक यंत्र बना दिया है। दीवानी, राजस्व, आपराधिक, विवाह सम्बन्धी मामलों और बीमा सम्बन्धी दावों अथवा मोटर वाहनों से हुई दुर्घटनाओं के मुकद्मों को उसी समय हल करने के लिए लोक अदालतों का बनना भारत की आधुनिक न्यायिक व्यवस्था की एक और उल्लेखनीय विशेषता है।

वास्तव में 1970 के दशक के अन्तिम वर्षों में भारत में कानूनी सहायता आन्दोलन का एक सशक्त हथियार 'जनहित याचिका' की अगले दो दशकों में पूरी तरह से मजबूत हथियार के रूप में तैयार हो गया। जनहित याचिका की उपलब्धियों तथा पहलूओं पर टिप्पणी करते हुए भारत के सर्वोच्च न्यायालय ने पी. नालाथम्पी थेरा बनाम संघीय सरकार के निर्णय में हेनरी पीटर ब्रोघम से उल्लेख करते हुए कहा कि यह अगस्तटस का गरूर था कि उसे ईंटो से बना रोम मिला और उसने उसे संगमरमर का बनाकर छोड़ा। लेकिन स्वतंत्र भारत के नागरिकों की गर्वोक्ति कितनी सच होगी जब उन्हें कहना होगा कि उन्हें मंहगा कानून मिला था, जिसे सस्ता बनाया; बन्द किताब के रूप में पाया और इसको जीवन्त बना कर छोड़ा, इसको अमीरों की बपौती के रूप में पाया और गरीबों की विरासत के रूप में छोड़ा, इसको शिल्प और अभिव्याक्ती की स्वतंत्रता की दुधारी तलवार के रूप में पाया और इमानदारी तथा भोलेपन का कवच बना कर छोड़ा। जनहित याचिका न्याय प्राप्त करने में बहुत सहायक है और इससे न्यायिक सक्रियता का प्रारम्भ हुआ।

पुनः मानव अधिकारों और संविधान द्वारा प्रत्याभूत मौलिक स्वतंत्रताओं के प्रति गम्भीर रूख अपनाते हुए सर्वोच्च न्यायालय ने नीलाबती बेहरा बनाम उड़ीसा राज्य केस में सरकार की संप्रभु निरापदता के दावे को ठुकराते हुए निर्णय दिया कि संप्रभु निरापदता का नियम मौलिक अधिकारों की गारंटी के सिद्धान्त से जुड़ा हुआ नहीं है और संविधानिक उपचार के रूप में इस प्रकार के बचाव का कोई प्रश्न नहीं है। न्यायालय का आगे कहना था कि सार्वजनिक कानून में गरीबों द्वारा प्रयोग करने पर उपचार अधिक शीघ्र मिलना चाहिए जिनके पास निजी कानून में निहित अपने अधिकारों को पाने के साधन नहीं है। यद्यपि इसकी कार्रवाई जहां उपयुक्त होगी वहां निजी कानूनी उपचारों के धोखे से बचने के

लिए न्यायिक रोक से प्रभावित होगी। इस मामले में न्यायालय ने अभियोजक को उसके पुत्र सुमर बेहरा की हिरासत में मौत होने पर एक लाख रूपये की क्षतिपूर्ति देने के आदेश दिए।

आधुनिक भारतीय न्यायिक व्यवस्था किसी एक व्यक्ति अथवा एक दिन की उपज नहीं है। यह अनेक योग्य प्रशासकों के निरन्तर प्रयासों और अनुभवों का परिणाम है जिन्होंने पीड़ियों तक बड़े धैर्य से मेहनत की। इस बात पर जोर देना भी जरूरी है कि विधिक इतिहास का विषय का केवल सैद्धान्तिक महत्व नहीं है अपितु यह व्यावहारिक रूप से भी अमूल्य है। न्यायपालिका ने बड़े कानूनी महत्व के मुकद्मों पर निर्णय दिए जिनसे भारत में न्यायिक संस्थानों को रूप देने में बहुत सहायता प्राप्त हुई। विशेष रूप से इस क्षेत्र में प्रिवी कौंसिल का योगदान उल्लेखनीय है क्योंकि उसके अधिकांश निर्णयों का पूर्वोदहरण के रूप में प्रयोग किया जाता है जो आज भी विश्वास पैदा करने की दृष्टि से बेशकीमती हैं।

पाठगत प्रश्न 13.9

1. जनहित याचिका का अर्थ स्पष्ट कीजिए।
2. भारतीय न्यायिक व्यवस्था में दो नई प्रवृत्तियां क्या हैं?

आपने क्या सीखा

भारत का विधिक और न्यायिक इतिहास आज से 5000 वर्ष पुराना है। कालक्रम के दृष्टिकोण से भारतीय न्यायिक व्यवस्था का आरम्भ एंग्लो इन्डिया के युग में खोजा जा सकता है जब न्यायिक व्यवस्था अपनी आदिम अवस्था में थी। भारत में भारतीय न्यायिक व्यवस्था के विकास में ब्रिटिश संसद द्वारा 1773 में लागू किये गए रेग्यूलेटिंग एक्ट को मील का पत्थर समझा जाता है।

प्रिवी कौंसित का भारतीय अपीलों पर क्षेत्राधिकार 26 जनवरी 1950 को सर्वोच्च न्यायालय स्थापित होने के साथ समाप्त हो गया।

भारतीय न्यायपालिका की प्रमुख विशेषता यहां की एकल एकीकृति न्यायिक व्यवस्था है।

भारत में न्यायालयों का ढांचा एक पिरमिड की भांति है। भारत में सर्वोच्च न्यायालय सबसे शीर्ष पर है। राज्य में सबसे बड़ा न्यायालय उच्च न्यायालय है। उसके बाद जिला, उपमण्डल और तहसील स्तर पर अधीनस्थ न्यायालय हैं।

आधुनिक भारतीय न्यायिक व्यवस्था किसी एक व्यक्ति अथवा किसी एक दिन की उपज नहीं है। यह अनेक योग्य प्रशासकों के निरन्तर प्रयासों और अनुभवों का परिणाम है जिन्होंने पीढ़ियों तक धैर्य से श्रम किया।

पाठांत प्रश्न

1. सर्वोच्च न्यायालय के मूल क्षेत्रधिकार तथा अपीलीय क्षेत्रधिकार की व्याख्या कीजिए।
2. "सर्वोच्च न्यायालय भारतीय संविधान का संरक्षक और मौलिक अधिकारों का रक्षक हैं" व्याख्या कीजिए।
3. उच्च न्यायालय के मूल एवं अपीलीय क्षेत्राधिकार का संक्षेप में वर्णन कीजिए।
5. हमारे दैनिक जीवन में जनहित याचिका के महत्व को स्पष्ट कीजिए।

पाठगत प्रश्नों के उत्तर

13.1

1. असत्य
2. सत्य

13.2

1. सत्य

13.3

1. सत्य
2. सत्य

13.4

1. सत्य
2. सत्य
3. सत्य
4. सत्य

13.5

1. राष्ट्रपति
2. 65 वर्ष
3. मूल
4. सर्वोच्च न्यायालय

13.6

1. राष्ट्रपति
2. 21
3. 62 वर्ष

13.7

1. जिला और सत्र न्यायाधीश
2. जिला और सत्र न्यायाधीश

13.8

1. मुख्य दोषः
   i) मुकद्मों को निपटाने में अनावश्यक विलम्ब
   ii) बार में भ्रष्ट आचरण और छोटी आदालतों में क्लर्कों के स्तर पर भ्रष्टाचार
   iii) अभियोजन बहुत मंहगा है और गरीबों की पहुंच से बाहर है
   iv) वर्तमान कानून पुराने और निरर्थक हो चुके हैं
   v) सर्वोच्च न्यायालय और उच्च न्यायालय अपीलीय कामों के बोझ तले दबे हैं।

13.9

1. जनहित याचिका भारत में कानूनी सहायता आन्दोलन का एक सशक्त हथियार है। यह लोगों को शीघ्र न्याय दिलाने में काफी सहायक है। इसके परिणाम स्वरूप न्यायिक सक्रियता का दौर शुरू हुआ।
2. (i) न्यायिक सक्रियता

   (ii) जनहित याचिका (पी आई एल)

14

न्याय वितरण प्रणाली

भारतीय न्यायिक व्यवस्था के उद्भव और विकास तथा आधुनिक भारत में दीवानी और फौजदारी न्यायालयों की कार्य-पद्धति पर चर्चा के बाद दीवानी और फौजदारी मामलों, उनके प्रकार तथा न्यायालय में उनके विभिन्न चरणों से गुजरने की स्थिति के बारे में जानना उचित रहेगा।

विवादों को हल करने के लिए दीवानी और फौजदारी न्यायालयों के अतिरिक्त अन्य कई तरीके हैं। न्यायालयों के अतिरिक्त न्यायाधिकरण (ट्रिब्यूनल), जिन्हें न्यायिक निकाय के रूप में परिभाषित किया जाता है, विशेष प्रकार के अथवा तकनीकी प्रकार के विवादों को हल करके न्यायालयों पर बोझ कम करने में सहायता करते हैं। अतः न्यायाधिकरणों (ट्रिब्यूनलों) के माध्यम से विवाद समाधान करना भी आधुनिक भारत में विवाद हल करने के तंत्र का एक भाग है। मूलतः न्यायाधिकरणों (ट्रिब्यूनलों) को कानून की विशेष शाखा से सम्बन्धी मामलों के लिए ही गठित किया जाता है।

नियमित न्यायालयों और न्यायाधिकरणों ट्रिब्यूनलों और उनकी कार्य-पद्धति के बीच तुलना करते हुए यह कहा जा सकता है कि दीवानी और फौजदारी न्यायालय कानून की कठोर कार्य-प्रणाली का पालन करते हैं, वहीं ट्रिब्यूनल कानून के तकनीकी नियमों का सहजता से पालन करते हैं। संबंधित क्षेत्र के विशेषज्ञ चेयरमैन तथा अन्य सदस्य मामले पर निर्णय लेते हैं। जैसे ट्रिब्यूनल भारत अर्थात केन्द्र स्तर पर कार्य कर रहे हैं राज्य स्तर पर भी कुछ न्यायाधिकरण (ट्रिब्यूनल) गठित किये गये है तथा वे कार्य कर रहे हैं।

उद्देश्य

इस पाठ को पढ़ने के बाद आप :

- दीवानी मामलों का वर्णन कर सकेंगे;
- फौजदारी मामले अथवा विवाद का अर्थ समझ सकेंगे;
- दीवानी मुकदमे के विभिन्न चरणों को पहचान सकेंगे;
- फौजदारी मुकदमे अथवा विवाद के विभिन्न चरणों को जान पाएंगे;
- न्यायाधिकरण (ट्रिब्यूनल) को परिभाषित कर सकेंगे और इसकी कार्य-पद्धति पर चर्चा कर सकेंगे; तथा
- नियमित न्यायालय और न्यायाधिकरण (ट्रिब्यूनल) के बीच अंतर समझ सकेंगे।

14.1 दीवानी और फौजदारी मामले अथवा विवाद

साधारण भाषा में विवाद दो प्रकार के होते हैं– दीवानी और फौजदारी। दीवानी मामलों को दीवानी कानून (नागरिक कानून) के अंतर्गत उठाया जाता है। दीवानी मामलों अथवा विवादों में पार्टियां (पक्ष) अपना अधिकार जताती अथवा अधिकार पर विवाद उत्पन्न करती हैं, जैसे संपत्ति का अधिकार, स्वामित्व का अधिकार, संपत्ति का बंटवारा, अनुबंध के अधिकार इत्यादि। पैसा वसूली के मामले, संपत्ति के मामले, मनाही के मामले, लापरवाही इत्यादि के मामले दीवानी मामलों के कुछ उदाहरण हैं। दीवानी मामले निजी गलतियों से संबंधित होते हैं, जबकि फौजदारी मामले सार्वजनिक गलतियों से संबंधित होते हैं (कानूनी भाषा में दीवानी मामले केवल पार्टियों से ही संबंधित होते हैं)।

फौजदारी मामले आपराधिक कानून के अंतर्गत उठाए गए कानूनी मामले होते हैं। दंडनीय अपराध; चोट, जख्म, हत्या जैसे मामले एक पार्टी द्वारा दूसरी पार्टी से किया गया अपराध हैं, परंतु इन्हें सार्वजनिक अपराध माना जाता है। सार्वजनिक अधिकारों और कर्तव्यों का उल्लंघन सार्वजनिक गलती होती है, जो पूरे समुदाय को प्रभावित करती है। सारे समुदाय के विरुद्ध की गई गलती मामले में सरकार दोषी व्यक्ति के विरुद्ध मुकदमा दर्ज करवाती है। कुछ मामलों में राज्य के अतिरिक्त किसी एक व्यक्ति की शिकायत पर भी आपराधिक कार्यवाही की जाती है।

लापरवाही, अवैध नजरबंदी, भूमि पर जबरन अधिकार (दूसरे की भूमि पर घुसपैठ करना), शारीरिक हमला इत्यादि को दीवानी गलती माना जाता है और उन्हें कानून की एक अन्य शाखा क्षति (टार्ट्स) के कानून के अंतर्गत निपटाया जाता है।

चित्र 14.1: भारत का सर्वोच्च न्यायालय

पाठगत प्रश्न 14.1

निम्नलिखित कथनों के समक्ष सत्य अथवा असत्य लिखिए

1. दीवानी मामले; दीवानी कानून के अंतर्गत उठाए गए कानूनी मामले होते हैं। (सत्य/असत्य)
2. फौजदारी मामले आपराधिक कानून के अंतर्गत उठाए गए कानूनी मामले होते हैं। (सत्य/असत्य)
3. लापरवाही, गैरकानून नजरबंदी, अत्याचार इत्यादि को दीवानी गलती माना जाता है और इन्हें 'टार्ट्स' के कानून के अंतर्गत निपटाया जाता है। (सत्य/असत्य)

14.2 दीवानी मामले - विभिन्न चरण

दीवानी मामलों में केस दर्ज करवाने वाली पार्टी को वादी (अभियोगी) कहा जाता है और जिसके विरुद्ध केस दर्ज किया जाता है, उसे डिफेंडेंट (प्रतिवादी) कहा जाता है। कानूनी भाषा में दीवानी मुकदमे को दीवानी मामला या (सूट) कहा जाता है। दीवानी मुकदमा निम्नलिखित चरणों से गुजरता है–

1. **शिकायत दाखिल करवाना :** दीवानी मुकदमे का पहला चरण शिकायत दर्ज करवाना होता है। वकील द्वारा तैयार शिकायत को उपयुक्त न्यायालय में दाखिल किया जाता है।

2. **प्रतिवादी को सम्मन जारी करना :** एक बार मुकदमा दाखिल हो जाने पर न्यायालय दूसरी पार्टी को मुकदमा दर्ज होने की सूचना देता है।

3. **प्रतिवादी की उपस्थिति :** सम्मन प्राप्त होने पर प्रतिवादी अपनी उपस्थिति दर्ज करवाता है और वादी द्वारा दाखिल किए गए मुकदमे के जवाब में अपना जवाबनामा दाखिल करता है। प्रतिवादी का जवाबनामा को लिखित बयान (कथन) कहा जाता है। वादी प्रतिवादी के जवाबनामे के जवाब में अपना बयान दाखिल कर सकता है।

4. **मुद्दे तय करना :** वादी द्वारा बयान दाखिल करने के बाद अदालत (न्यायालय) उस मुकदमे में उठाए गए मुद्दे तय करती है।

5. **साक्ष्य दर्ज करना :** उसके बाद दोनों पक्षों द्वारा साक्ष्य प्रस्तुत किए जाते हैं। साक्ष्यों के द्वारा दोनों पार्टियां अपने केस को सिद्ध करने तथा दूसरे को झूठा सिद्ध करने की कोशिश करते हैं। आमतौर पर वादी के साक्ष्य पहले लिए जाते हैं और उसके बाद प्रतिवादी के साक्ष्य किए जाते हैं।

6. **बहस :** साक्ष्यों को दर्ज करने के बाद दोनों पार्टियों के बीच बहस होती है और तर्क प्रस्तुत किए जाते हैं।

7. **निर्णय :** बहस सुनने के बाद तथा पार्टियों द्वारा दर्ज किए गए साक्ष्यों को देखकर न्यायाधीश अपना निर्णय देता है और किसी एक पार्टी के पक्ष में फैसला होता है। असंतुष्ट पार्टी को ऊंची अदालतों में अपील अथवा किसी अन्य उपचार के लिए जाने का अधिकार है।

क्रियाकलाप 14.1

अपने जिले के किसी दीवानी अदालत में जाइए और उसकी कार्य-पद्धति को देखिए तथा लम्बित पड़े दीवानी मुकदमों की एक सूची बनाइए।

पाठगत प्रश्न 14.2

1. **रिक्त स्थान भरिए :**

(क) दीवानी मामलों में केस दाखिल करने वाली पार्टी को .... कहा जाता है।

(ख) दीवानी मामले में जिस पार्टी के विरुद्ध मुकदमा दाखिल किया जाता है, उसको .... कहते हैं।

(ग) कानूनी भाषा में दीवानी मुकदमे को .... कहा जाता है।

2. किसी दीवानी मुकदमे को जिन चरणों से गुजरना होता है, उसकी एक सूची बनाइए।

14.3 आपराधिक मामले - विभिन्न चरण

फौजदारी मामलों में राज्य पीड़ित व्यक्ति की ओर से दोषी व्यक्ति के विरुद्ध कानूनी कार्यवाही शुरू करता है। फौजदारी मामले किसी अपराधिक कृत्य से संबंधित होते हैं। यह अपराध सार्वजनिक गलती अथवा अपराध होता है। चोट पहुंचाना अथवा जख्मी करना, चोरी, डकैती, हत्या, अपहरण आदि इसके कुछ उदाहरण हैं। अपराध करने वाले व्यक्ति को अभियुक्त कहा जाता है। आपराधिक मुकदमा निम्नलिखित विभिन्न चरणों से गुजरता है।

1. **प्राथमिकी दर्ज होना :** एफ.आई.आर. का अर्थ है-फर्स्ट इन्फॉर्मेशन रिपोर्ट। यह वादी द्वारा पुलिस को दी गई सूचना होती है कि पीड़ित व्यक्ति के विरुद्ध अपराध किया गया है। पुलिस स्टेशन में प्राथमिकी दर्ज करवाना आपराधिक मुकदमे का पहला चरण है। प्राथमिकी दर्ज होने के बाद ही पुलिस मुकदमे की जांच कर सकती है।

2. **जांच :** प्राथमिकी दर्ज होने के बाद ही पुलिस अधिकारी यह जानने की कार्यवाही शुरू करते हैं कि क्या वास्तव में कोई अपराध किया गया है अथवा नहीं और यदि किया गया है तो किसने किया है। आपराधिक मामलों में साक्ष्य एकत्रित करना जांच अधिकारी का काम है। साक्ष्य एकत्रित करने में गवाहों के बयान दर्ज करना, प्रपत्रों को कब्जे में लेना तथा अपराध करने में प्रयुक्त चीजों को कब्जे में लेना शामिल होता है। यदि जांच करने पर अपराध का होना पाया जाए तो चार्जशीट (आरोप-पत्र) दाखिल की जाती है और मामला मुकदमे के रूप में जाता है अन्यथा मामला समाप्त माना जाता है और क्लोजर रिपोर्ट दाखिल की जाती है।

3. **आरोप पत्र दाखिल करना :** चार्जशीट एक प्रकार की रिपोर्ट होती है, जिसमें स्पष्ट किया जाता है कि कोई अपराध कैसे किया गया, किसने किया और कौन से कानून के अंतर्गत आता है? चार्जशीट दाखिल होने पर यदि अदालत संतुष्ट हो जाती है कि अपराध हुआ है तो अदालत उस मामले पर संज्ञान लेती है और अभियुक्त को अपने समक्ष उपस्थित होने के लिए सम्मन जारी करती है।

4. **आरोप तय करना :** जांच एजेंसी द्वारा एकत्रित सामग्री में ध्यान से देखने के बाद अदालत देखती है कि कौन-सा अपराध हुआ है और कानून के कौन-से प्रावधान के अंतर्गत अभियोग चलाया जाना चाहिए, जैसे अभियुक्त ने चोरी की, डकैती डाली अथवा अन्य कोई अपराध किया। अदालत जांच एजेंसी द्वारा इकट्ठे किए गए साक्ष्यों के आधार पर इस निर्णय पर भी पहुंच सकती है कि कोई अपराध नहीं किया गया और इस आधार पर अभियुक्त को बरी कर दिया जाएगा और घोषित किया जाएगा कि कोई अपराध नहीं किया गया।

5. **अभियोजन साक्ष्य :** आरोप तय करने के बाद जांच एजेंसी द्वारा एकत्रित सारे साक्ष्यों के साथ अभियोजन पक्ष का बयान प्रस्तुत करने के लिए अभियोजन की जरूरत होती है। गवाह उस व्यक्ति को कहते हैं, जो किसी पार्टी के पक्ष में बयान देता है, जो उसे अपना पक्ष सिद्ध करने के लिए लेकर आता है।

6. **अभियुक्त का बयान :** इसके बाद अदालत अभियुक्त से उसके विरुद्ध लगाए गए आरोपों के संबंध में स्पष्टीकरण मांगती है। अभियुक्त को स्पष्टीकरण देने का अवसर दिया जाता है।

7. **बचाव साक्ष्य :** अभियुक्त का बयान दर्ज करने के बाद यदि न्यायालय को लगता है कि अभियुक्त द्वारा कोई अपराध नहीं किया गया, तब उसे बरी कर दिया जाता है अर्थात् कोर्ट मान सकता है कि कोई अपराध नहीं किया गया, लेकिन यदि न्यायालय को अपराध करने के संबंध में कोई संदेह हो तो वह बचाव पक्ष के गवाहों को अस्वीकार या निरनुमोदन करने के लिए बुलाता है। तब अभियुक्त अपने को निर्दोष सिद्ध करने के लिए गवाह प्रस्तुत करता है।

8. **तर्क-वितर्क (दलील) :** गवाहों के बयान दर्ज करने के बाद दोनों ओर से दलील प्रस्तुत जाती हैं।

9. **निर्णय :** इसके बाद या तो अभियुक्त को दोषी अर्थात् अपराध करने के लिए दोषी अथवा बरी करने का निर्णय दिया जाता है।

10. **बहस और सजा पर निर्णय :** यदि अभियुक्त को किसी अपराध के लिए दोषी घोषित किया जाता है तो अभियोजन एवं बचाव पक्ष दोनों ही अपराधी को कानून के अंतर्गत तय अधिकतम सजा में से कितनी सजा दी जाए, पर तर्क प्रस्तुत करते हैं।

11. **सजा पर निर्णय :** सजा पर तर्क सुनने के बाद अदालत अपराधी को दी जाने वाली सजा पर निर्णय देती है। अभियुक्त को सजा देने में अभियुक्त की आयु, पृष्ठभूमि, पिछला आपराधिक इतिहास भी निर्धारक कारक होते हैं।

12. **अपील :** अभियुक्त अथवा अभियोजन दोनों ही पक्षों में कोई भी जो न्यायालय के निर्णय से संतुष्ट न हो, वह ऊपर के न्यायालय में अपील के लिए जा सकता है।

पाठगत प्रश्न 14.3

1. निम्नलिखित पदों को परिभाषित कीजिए-

   (क) प्राथमिकी

   (ख) बहस (जिरह)

   (ग) निर्णय

   (घ) अपील

2. निम्नलिखित कथनों के समक्ष सत्य अथवा असत्य लिखिए-

(क) आपराधिक मामलों में, राज्य अपराध का शिकार हुए व्यक्ति की ओर से दोषी के विरुद्ध कानूनी कार्यवाही करता है। (सत्य/असत्य)

(ख) अपराध एक सार्वजनिक गलती होता है। (सत्य/असत्य)

14.4 न्यायाधिकरण के माध्यम से विवाद निपटाना

किसी विवाद को हल करने के कई तरीके हैं, परंतु न्याय प्राप्त करने के लिए किसी औपचारिक न्यायालय के समक्ष जाना कोई आवश्यक नहीं है। ट्रिब्यूनल्स को अदालत से अलग ऐसे न्यायिक निकाय के रूप में परिभाषित किया जा सकता है, जिसके पास प्रशासनिक और न्यायिक कार्य होते हैं। विभिन्न कानूनों के अंतर्गत पार्टियों में विवाद सुलझाने के लिए कई ट्रिब्यूनल गठित किए गए हैं, जैसे औद्योगिक विवादों को निपटाने के लिए औद्योगिक ट्रिब्यूनल (न्यायाधिकरण) : सरकार से संबंधित विवादों को निपटाने के लिए प्रशासनिक ट्रिब्यूनल और आयकर संबंधी विवादों को सुलझाने के लिए आयकर ट्रिब्यूनल इत्यादि। ये ट्रिब्यूनल अदालतों की तुलना में कम खर्चीले और कम औपचारिक है तथा यहां विवादों का निपटारा अधिक आसानी से हो जाता है। ट्रिब्यूनलों का गठन मूलतः कानून की किसी एक शाखा विशेष के मामलों से निपटने के लिए किया जाता है। ट्रिब्यूनल में विवाद पर मामले की विशेष जानकारी रखने वाले सदस्यों द्वारा निर्णय लिया जाता है। ट्रिब्यूनल विशेष अथवा तकनीकी प्रकार के विवादों, जिनके लिए विशेष ज्ञान की आवश्यकता होती है, के फैसले करके न्यायालयों के बोझ को कम करने में भी सहायता करते हैं।

पाठगत प्रश्न 14.4

1. न्यायाधिकरण (ट्रिब्यूनल) की परिभाषा लिखिए।

2. **रिक्त स्थान भरिए-**

(क) औद्योगिक विवाद को निपटाने के लिए गठित न्यायाधिकरण (ट्रिब्यूनल) को .... कहते हैं।

(ख) आयकर संबंधी विवादों को निपटाने के लिए गठित न्यायाधिकरण (ट्रिब्यूनल) को .... कहते हैं।

3. **प्रत्येक कथन के सामने सत्य अथवा असत्य लिखिए-**

(क) न्यायाधिकरणों (ट्रिब्यूनलों) में विवाद पर मामले की विशेष जानकारी रखने वाले सदस्यों द्वारा निर्णय लिया जाता है। (सत्य/असत्य)

(ख) न्यायाधिकरण (ट्रिब्यूनल) का गठन मूलतः कानून की एक शाखा विशेष के संबंधित मामलों के निपटाने के लिए किया जाता है। (सत्य/असत्य)

(ग) ट्रिब्यूनल विशेष अथवा तकनीकी प्रकार के विवादों, जिनके लिए विशेष ज्ञान की आवश्यकता होती है, के फैसले करके अदालतों (न्यायालयों) के बोझ को कम करने में सहायता करते हैं। (सत्य/असत्य)

14.5 न्यायालयों और न्यायाधिकरणों (ट्रिब्यूनलों) की तुलना

न्यायालय कानून की कठोर प्रक्रिया का पालन करते हैं, जबकि ट्रिब्यूनल कानून के तकनीकी नियमों का सहजता से प्रयोग करते हैं।

न्यायालयों में लोगों का बोलने का मौका कम ही मिलता है और अधिकांश बात वकील ही करते हैं, परंतु दूसरी ओर ट्रिब्यूनल लोगों को अपनी बात कहने के लिए प्रोत्साहित करते हैं और विवादों को निपटारे में वकीलों की भूमिका कम ही होती है।

न्यायालयों के पास कई प्रकार के मुकदमों पर फैसला लेने की शक्ति होती है, जबकि ट्रिब्यूनल कानून के किसी विशेष क्षेत्र की विशेषज्ञता रखते हैं।

न्यायालयों में मुकदमेबाजी बहुत महंगी है, क्योंकि न्यायालयों में वकीलों की फीस देनी पड़ती है। दूसरी ओर ट्रिब्यूनल द्वारा दिया गया न्याय सस्ता और शीघ्र मिलता है। किसी न्यायालय की कार्यवाही पर जज अथवा मजिस्ट्रेट अध्यक्षता करता है। दूसरी ओर ट्रिब्यूनलों में संबंधित क्षेत्र के विशेषज्ञ चेयरमैन अथवा सदस्य फैसला करते हैं।

न्यायाधिकरणों (ट्रिब्यूनलों) के पास नियमित न्यायालयों की तुलना में कम शक्तियां होती हैं। उदाहरण के लिए कोई ट्रिब्यूनल किसी व्यक्ति को जेल नहीं भेज सकता, जो कि नियमित न्यायालयों के लिए सामान्य बात है।

न्यायालयों में वकील का होना आवश्यक होता है, जबकि ट्रिब्यूनलों में उनकी जरूरत कम ही होती है।

पाठगत प्रश्न 14.5

प्रत्येक कथन के समक्ष सत्य अथवा असत्य लिखिए-

(क) न्यायालयों के पास कई प्रकार के मुकदमों पर फैसला करने की शक्ति है, जबकि न्यायाधिकरण (ट्रिब्यूनल) कानून के किसी क्षेत्र विशेष में विशेषज्ञता रखते हैं। (सत्य/असत्य)

(ख) न्यायालय कानून की कठोर प्रक्रिया का पालन करते हैं, जबकि न्यायाधिकरण (ट्रिब्यूनल) कानून के तकनीकी नियमों का सहजता से प्रयोग करते हैं। (सत्य/असत्य)

(ग) न्यायाधिकरणों (ट्रिब्यूनलों) के पास नियमित न्यायालयों से कम शक्तियां होती हैं। (सत्य/असत्य)

(घ) न्यायालयों में मुकदमेबाजी बहुत महंगी है, जबकि ट्रिब्यूनलों द्वारा दिया गया न्याय कम खर्चीला और शीघ्र होता है। (सत्य/असत्य)

आपने क्या सीखा

विवाद प्रायः दो प्रकार के होते हैं–दीवानी और फौजदारी। एक दीवानी मामला अथवा विवाद दीवानी कानून के अंतर्गत उठने वाला कानूनी मामला होता है। आपराधिक कानून आपराधिक मामलों से संबंधित होते हैं, जैसे–हत्या, चोट पहुंचाना, चोरी, डकैती और अपहरण इत्यादि।

दीवानी मामलों अथवा विवादों के विभिन्न चरण इस प्रकार हैं-शिकायत दाखिल करना, प्रतिवादी को सम्मन जारी करना, प्रतिवादी (डिफेंडेंट) की उपस्थिति, मुद्दे तय करना, साक्ष्य दर्ज करना, पार्टियों की ओर से तर्क प्रस्तुत करना और अदालत द्वारा फैसला देना।

फौजदारी मामले जिन विभिन्न चरणों से गुजरते हैं। वे इस प्रकार हैं- प्राथमिकी दर्ज करवाना, पुलिस द्वारा जांच करना, आरोप पत्र (चार्जशीट) दाखिल करना, आरोप तय करना, अभियोजन साक्ष्य, अभियुक्त का बयान, विवाद से जुड़ी दोनों पार्टियों द्वारा दिए गए तर्क, न्यायालय का फैसला, सजा पर बहस और अधीनस्थ न्यायालय के फैसले के विरुद्ध अपील।

न्यायाधिकरण (ट्रिब्यूनल) को न्यायालयों से अलग ऐसे न्यायिक निकाय के रूप में परिभाषित किया जा सकता है, जिसके पास प्रशासनिक और न्यायिक शक्तियां होती हैं। पार्टियों के बीच विवादों को हल करने के लिए अलग-अलग कानूनों के अंतर्गत कई न्यायाधिकरणों (ट्रिब्यूनलों) का गठन किया गया है, जैसे- औद्योगिक विवादों को सुलझाने के लिए औद्यागिक न्यायाधिकरण (ट्रिब्यूनल), सरकार से संबंधित विवादों को सुलझाने के लिए प्रशासनिक न्यायाधिकरण (ट्रिब्यूनल) और आयकर संबंधित विवादों को सुलझाने के लिए आयकर न्यायाधिकरण (ट्रिब्यूनल) इत्यादि।

न्यायालयों और न्यायाधिकरणों (ट्रिब्यूनलों) के बीच तुलना करने पर यह कहा जा सकता है कि न्यायालय कानून की कठोर प्रकिया का पालन करते हैं, जबकि ट्रिब्यूनल कानून के तकनीकी नियमों का सहजता से पालन करते हैं। न्यायालयों के पास कई प्रकार के मुकदमों पर फैसला लेने की शक्ति होती है। ट्रिब्यूनल कानून के एक विशेष क्षेत्र के विशेषज्ञ होते हैं।

किसी न्यायालय की कार्यवाही पर जज अथवा मजिस्ट्रेट अध्यक्षता करता है और दूसरी ओर ट्रिब्यूनल में संबंधित क्षेत्र के विशेषज्ञ चेयरमैन और सदस्य फैसला करते हैं।

पाठांत प्रश्न

1. दीवानी मामलों को परिभाषित कीजिए।
2. फौजदारी मामलों को परिभाषित कीजिए।
3. फौजदारी मामलों के विभिन्न चरण लिखिए।
4. दीवानी मामलों के विभिनन चरण लिखिए।
5. न्यायाधिकरण (ट्रिब्यूनल) को परिभाषित कीजिए।
6. न्यायालयों और न्यायाधिकरणों (ट्रिब्यूनलों) के बीच तुलना कीजिए।

पाठगत प्रश्नों के उत्तर

14.1

1. सत्य
2. सत्य
3. सत्य

14.2

1. (क) वादी

   (ख) प्रतिवादी

   (ग) दीवानी मामला (सूट)

2. (i) शिकायत दर्ज करवाना,

   (ii) विरोधी पार्टी को सम्मन जारी करना,

   (iii) डिफेंडेंट (प्रतिवादी) की उपस्थिति,

   (iv) आरोप तय करना,

   (v) गवाहों के बयान दर्ज करना,

   (vi) बहस,

   (vii) फैसला।

14.3

1. (a) (क) **प्राथमिकी (FIR) :** एफ.आई.आर. का अर्थ है–प्रथम सूचना रिपोर्ट। यह पुलिस अधिकारियों को दी गई सूचना है कि पीड़ित व्यक्ति के साथ एक विशेष अपराध किया गया है। किसी फौजदारी मामले को शुरू करने में प्राथमिकी (FIR) पहला कदम है।

   (ख) **तर्क-वितर्क (बहस) :** गवाहों के बयान दर्ज करने के बाद विवाद से जुड़ी दोनों पार्टियां अपने तर्क प्रस्तुत करती हैं।

   (ग) **निर्णय :** निर्णय का अर्थ है न्यायालय का फैसला।

   (घ) **अपील :** वादी अथवा प्रतिवादी (डिफेंडेंट) यदि निचली अदालत के फैसले से संतुष्ट न हो तो वे ऊंची अदालत में अपील कर सकते हैं।

2. (क) सत्य

   (ख) सत्य

14.4

1. ट्रिब्यूनलों को न्यायालयों से अलग ऐसे न्यायिक निकायों के रूप में परिभाषित किया जा सकता है, जो प्रशासनिक और न्यायिक कार्य करता है।

2. (क) औद्योगिक न्यायाधिकरण (ट्रिब्यूनल)

   (ख) आयकर न्यायाधिकरण (ट्रिब्यूनल)

3. (क) सत्य

   (ख) सत्य

   (ग) सत्य

14.5

(क) सत्य

(ख) सत्य

(ग) सत्य

(घ) सत्य

15

वैकल्पिक विवाद समाधान पद्धति

भारत के संविधान का लक्ष्य जीवन और व्यक्तिगत स्वतंत्रता को सुरक्षा प्रदान करना है। इस उद्देश्य हेतु संविधान न्यायालयों की व्यवस्था प्रदान करता है। भारत में सर्वोच्च न्यायालय न्यायिक व्यवस्था में सबसे शीर्ष पर है, जिसमें प्रत्येक राज्य अथवा राज्यों के समूह के लिए एक उच्च न्यायालय है। पंजाब और हरियाणा का एक उच्च न्यायालय चंडीगढ़ में है। उत्तर–पूर्व के सात राज्यों के लिए केवल एक ही उच्च न्यायालय गुवाहटी में है। उच्च न्यायालय के अंतर्गत कई अधीनस्थ न्यायालयों की श्रृंखला है। न्यायालयों के पास विवादों को निपटाने के लिए सुपरिभाषित और मान्य व्यवस्था है। न्यायालयों के पास विवाद सुलझाने के लिए औपचारिक नियम हैं और उनके निर्णय बाध्यकारी हैं। यह व्यवस्था काफी तकनीकी और औपचारिक है, लेकिन मुकदमे सदैव संतोषजनक परिणाम नहीं देते। पैसे और समय की दृष्टि से यह महंगी प्रक्रिया है। इन कारणों के वशीभूत मुकदमें में लिप्त पक्ष अपने विवादों को सुलझाने के लिए वैकल्पिक तरीकों को खोजते हैं।

उद्देश्य

इस पाठ को पढ़ने के बाद आप–

- वैकल्पिक विवाद समाधान पद्धति की आवश्यकता की गंभीरता समझ पाएंगे;
- वैकल्पिक विवाद समाधान पद्धति के कई तरीकों की सूची बना सकेंगे;
- वैकल्पिक विवाद समाधान पद्धति को अपनाने से होने वाले लाभों, तरीकों तथा विधियों का वर्णन कर सकेंगे;
- वैकल्पिक विवाद समाधान पद्धति से संबंधित कई कानूनी पदों की व्याख्या कर सकेंगे;
- वैकल्पिक विवाद समाधान पद्धति (एडीआर) की सस्ते और तेज न्याय में भूमिका को समझ सकेंगे;
- 'एडीआर' अपना कर हल किए जा सकने वाले विवादों की प्रकृति पर चर्चा कर सकेंगे; तथा
- विधिक सेवाएं प्राधिकरण अधिनियम 1987 (संशोधित 1994) के विभिन्न प्रावधानों को जान सकेंगे।

15.1 वैकल्पिक विवाद निपटारा पद्धति की आवश्यकता

यह भली भांति ज्ञात है कि वर्तमान न्यायिक व्यवस्था काफी महंगी और विलंबकारी है। विवाद से जुड़ी पार्टियों (पक्षों) को सालों इंतजार करना पड़ता है। मुकदमें की इस महंगी और लंबी प्रक्रिया ने अदालतों द्वारा अपनाई जा रही न्यायिक व्यवस्था के प्रति आम लोगों के विश्वास को कम किया है। न्यायिक व्यवस्था की इन कमजोरियों ने विवादों को सुलझाने के वैकल्पिक उपचारों को जन्म दिया है। एडीआर सस्ता और तेज न्याय प्रदान करता है, जिसके कारण विवाद ग्रस्त पार्टियां विवाद सुलझाने के लिए इस पद्धति को प्राथमिकता देते हैं।

15.2 वैकल्पिक विवाद समाधान पद्धति (एडीआर)

प्राचीन भारत में मध्यस्थता अति लोकप्रिय एवं प्रचलित थी। पंचायतों द्वारा दिए गए निर्णय पंचाट कहलाते थे और बाध्यकारी होते थे। एडीआर अदालतों में मुकदमेबाजी का विकल्प हैं। एडीआर प्रक्रियाएं निर्णय लेने की प्रक्रियाएं हैं, जिनमें मुकदमा और हिंसा का स्थान नहीं है। भारत में वैकल्पिक व्यवस्था मधयस्थता, समझौता, बीच-बचाव और बातचीत के रूप में उपलब्ध है।

पूरी दुनियां में न्यायाधीशों, वकीलों और विवाद में फंसे पक्षों की राय एडीआर अपनाने के पक्ष में बदल रही है। मध्यस्थता करने वाली संस्थाएं भीड़- भाड़ वाली अदालती व्यवस्था से बाहर तेज, सस्ता और सहमति पर आधारित समाधान प्रदान करती हैं। एडीआर संबंधित पक्षों में वार्तालाप को बढ़ावा देती है और उन्हें विवाद के पीछे छुपे वास्तविक मुद्दों को हल करने योग्य बनाती है।

उपभोक्ता शिकायतें, पारिवारिक विवाद, निर्माण विवाद, व्यापार विवाद जैसे अनेक विवादों को एडीआर के माध्यम से आसानी से सुलझाया जा सकता है। इसको लगभग ऐसे सभी विवादों के लिए प्रयोग किया जा सकता है, जिन्हें दीवानी मुकदमों के रूप में अदालतों में ले जाया जाता है। जब किस अदालत में दीवानी मुकदमा दर्ज किया जाता है तो यह औपचारिक प्रक्रिया से गुजरता है, जिसका संचालन एडवोकेट करते हैं और अदालती प्रबंध की देख-रेख में संबंधित पक्ष अदालती आदेश की प्रतीक्षा करते हैं। मुकदमों का परिणाम अनिश्चित होता है। मुकदमें का निर्णय होने के बाद अपील की जा सकती है, जो मुकदमे के फैसले को लागू करने में और देरी करता है।

चित्र 15.1

पाठगत प्रश्न 15.1 और 15.2

1. वैकल्पिक विवाद निपटारा पद्धति की आवश्यकता कीजिए।
2. वैकल्पिक विवाद निपटारा पद्धति को पारिभाषित कीजिए।
3. कुछ ऐसे विवादों की पहचान कीजिए, जिनको एडीआर के माध्यम से निपटाया जा सकता है।

15.3 वैकल्पिक विवाद समाधान पद्धति (एडीआर) के लाभ तथा प्रक्रिया

मुकदमेबाजी महंगा होता है और न्यायालय से अंतिम फैसला पाने में काफी समय लगता है। दुर्भाग्यवश मुकदमेबाजी से संबंधों को नुकसान पहुंचता है और इससे मुकदमों में फंसे लोगों पर भावनात्मक दवाब होता है। किसी दीवानी मुकदमें में एक पार्टी होना थकाऊ और उबाऊ होता है। अदालती फीस, वकीलों की फीस, अदालत की कार्रवाई एवं आदेशकी प्रतियां प्राप्त करने की फीस में काफी खर्च होता है। किसी केस में फंसे व्यक्ति को केस की कार्रवाई के सिलसिले में कई बार अदालत आना पड़ता है, जिससे यात्रा पर खर्च होता है, अदालत में समय लगाना पड़ता है और कई अन्य खर्च करने पड़ते हैं। दूसरी ओर इसके कुछ लाभ भी हैं। जहां कानूनी व्याख्या की आवश्यकता होती है, वहां कानूनी अधिकार निर्धारित किए जा सकते हैं। एडीआर संबंधित पक्षों को संबंध खराब किए बिना विवाद हल करने का अवसर प्रदान करती है। अतः कई विवाद जैसे वस्तुओं के व्यापार में गुणवत्ता, वाणिज्यिक संपति का किराया, उपभोक्ता विवाद और कई छोटे विाद एडीआर के माध्यम से सुलझाए जा सकते हैं।

एडीआर की कार्रवाई लचीली होती है। पार्टियों (पक्षों) को उपयुक्त कानूनों को चुनने की स्वतंत्रता होती है। इनको किसी भी तरीके और पार्टियों की सहमति से किसी भी भाषा में संचालित किया जा सकता है, जिससे खर्च में कमी आती है। कोई कोर्ट फीस नहीं होती। कार्रवाई और रिपोर्टों की प्रतियां लेने में कुछ खर्च नहीं करना होता।

कोई निष्पक्ष तीसरी पार्टी (पक्ष) मामले को आपसी सहमति से सुलझाने के लिए सेवाएं दे सकती है। पार्टियां अपनी सुविधा अनुसार मीटिंग के लिए स्थान और तिथि चुन सकती हैं। पार्टियां ऐसी निष्पक्ष तीसरी पार्टी को दी जाने वाली फीस भी निर्धारित कर सकती हैं। तीसरी पार्टी को आपसी सहमति से चुना जाता है।

मीटिंग में की गई बातों को गुप्त रखा जाता है, जबकि अदालती कार्रवाई में एक पक्ष जीतता और दूसरा हारता है, लेकिन सफल एडीआर में मध्यस्थता अथवा समझौते से दोनों पार्टियां जीतती हैं। इससे पार्टियों के बीच संवाद और संबंध बेहतर होते हैं। नीचे कुछ उदाहरण हैं। यह पहचान करने के लिए दर्शाए गए हैं कि कौन-सा विवाद या मुकदमा दीवानी है, जिसको एडीआर के माध्यम से परस्पर सुलझाया जा सकता है।

a) ठंडे पेय की किसी बोतल को एमआरपी (अधिकतम खुदरा मूल्य) से अधिक पर बेचना;

b) जहां परिवार के सदस्यों में संपति के बंटवारे का केस दर्ज कर दिया गया हो अथवा लंबित पड़ा हो;

c) जब ठेकेदार निर्माण कार्य में घटिया सामग्री प्रयोग कर रहा हो, परंतु ऊंची कीमत वसूल रहा हो;

d) किसी से पैसा वापस लेने का मामला; और

e) सांझेदारी समाप्त होने के मामले में संपतियों का बंटवारा और अधिकार निश्चित करना इत्यादि।

पाठगत प्रश्न 15.3

1. प्राचीन भारत में एडीआर का कौन-सा रूप प्रचलित था?
2. एडीआर का विकसित रूप क्या है?
3. अभियोजन (मुकदमेबाजी) शब्द का क्या अर्थ है?
4. ऐसे केसों की सूची बनाइए, जिन्हें एडीआर के माध्यम से हल किया जा सकता है।
5. एडीआर के मुख्य लाभों की सूची बनाइए।
6. गुवाहटी उच्च न्यायालय के अंतर्गत कितने राज्य हैं?

15.4 एडीआर की विभिन्न तकनीकें, उनकी प्रक्रियाएं तथा लोगों को उनके लाभ

एडीआर के मुख्य तकनीकें निम्नलिखित हैं–

A. विवाचन

B. समझौता

C. बीच-बचाव (मध्यस्थता)

D. मुकदमे से पूर्व निपटारा/ मध्यस्थता,

E. बातचीत/(संधि-) वार्ता

F. लोक अदालत

G. विवाचन मध्यस्थता

H. मेडोला

I. छोटा मुकदमा

चित्र 15.2: कार्यालय, सेन्टर फार अलटारनेटिव डिस्पुयट, रिजोलुशन, नई दिल्ली

A. विवाचन

जब दो या उससे अधिक व्यक्ति इस बात पर सहमत हो जाएं कि उनके बीच विवाद को कानूनी बाध्यता के साथ एक अधिक निष्पक्ष लोगों द्वारा न्यायिक ढंग से साक्ष्य रिकार्ड करने के बाद सुलझा/ निपटा दिया जाए, तो ऐसे समझौते को विवाचन कहते हैं। जब किसी विवाद के उभरने पर उसे ऐसे लोगों के समक्ष रख दिया जाता है तो इस प्रक्रिया को विवाचना कहते हैं और लिए गए निर्णय को पंचाट कहते है। विवाचन प्रक्रिया को संचारित करने वाले व्यक्ति को विवाचक कहा जाता है। विवाचक को विवाद में फंसी पार्टियां नियुक्त करती हैं और विवाचक की नियुक्ति पर किसी विाद के मामले में न्यायालय को विवाचक नियुक्त करने के लिए कहा जा सकता है। जब विवाचकों की संख्या एक से अधिक हो तो मुख्य विवाचक को अंपायर कहा जाता है, जो कार्रवाई संचालित करने के लिए जिम्मेवार होता है। विवाचकों की संख्या केवल विषम संख्या में ही हो सकती है। ऐसे मामलों में निर्णय विवाचकों के बहुमत से होता है।

विवाचन को पारंपरिक मुकदमेबाजी से पहले वरीयता दी जाती है, क्योंकि यह प्राय: मुकदमेबाजी से कम खर्चीली है। यह लचीले समय और साधारण कानूनों के माध्यम से तेजी से हल प्रदान करती है। न्यायालय दैनिक सुनवाई के बोझ से लदे हुए हैं। लेकिन विवाचक केवल उसी कार्रवाई को संचालित करते हैं, जो संबंधित पार्टियां उनको सौंपती है।

विवाचन वो लाभ प्रदान करते हैं जो न्यायालयों में मुकदमें प्रदान नहीं कर सकते। कई मामलों में एक बड़ा लाभ यह होता है कि विवाचक अथवा विवाचक ट्रिब्यूनल विवाद सुलझाने में निपुर्ण होता है, इसलिए कार्रवाई को वकीलों अथवा अन्य प्रतिनिधियों की भागीदारी के बिना तेजी से सुलझाया जा सकता है। व्यापार में विवाद, संपतियों के किराये, संपति का बंटवारा, फर्म सांझेदारी का बंटवारा और विभिन्न उपभोक्ता विवादों को इस तरीके से हल किया जा सकता है।

विवाचकों का पंचाट पार्टियों पर बाध्यकारी होता हैं और अदालतों द्वारा लागू किया जा सकता है। पंचाट के विरुद्ध अपील नहीं होती।

वास्तव में सभी विवाद विवाचन से हल किए जा सकते हैं, जब तक कि वे कानून द्वारा प्रतिबंधित न हो। निम्नलिखित केस विवाचन द्वारा हल नहीं किए जा सकते।

a) आपराधिक प्रश्नों से जुड़े मामले या सार्वजनिक कानूनों से जुड़े मामले

b) वैवाहिक मामले जैसे तलाक, गुजारा भत्ता अथवा बच्चे पर अधिकार

c) दीवालिया होने के मामले–जैसे किसी व्यकित को दीवालिया घोषित करना

d) किसी कंपनी को भंग करना

e) आयु से जुड़े विवाद

B. समझौता

'समझौता' एक ऐसी प्रक्रिया है, जिसमें कोई तीसरी पार्टी विवाद में फंसी पार्टियों को समझौते से अपना विवाद हल करने में सहायता करती है। पार्टियों की सहायता करने वाले को मध्यस्थ कहा जाता है। मध्यस्थ की नियुक्ति विवादग्रस्त दोनों पार्टियों की सहमति से की जाती है। एक दीवानी अदालत भी विवाद से संबंधित दोनों पार्टियों को किसी मध्यस्थ के पास भेज सकती है। एक मध्यस्थ विवाद के मुद्दों पर अपनी राय देकर विवाद सुलझाने के लिए समझौते पर पहुंचने में सहायता कर सकता है। समझौता मध्यस्थ की सहायता से दोनों पार्टियों के बीच बनी सहमति होती है। मध्यस्थ विवाद पर कोई निर्णय उनके सामने नहीं लेता। मध्यस्थ द्वारा कोई साक्ष्य रिकार्ड नहीं किया जाता और न ही कोई तर्क सुना जाता है। दोनों पार्टियां अपने दृष्टिकोण पर चर्चा कर सकती हैं और मध्यस्थ के समक्ष कार्रवाई गुप्त रखी जाती है और अदालत के समक्ष कार्यवाही पर उसका कोई असर नहीं होता।

न्यायालय में मुकदमे अथवा विवाचन की तुलना में समझौता एक स्वैच्छिक और अबाध्यकारी प्रक्रिया है। विवाचन और न्यायालय में अभियोजन (मुकदमा) में पार्टियों की केस के फैसले में अथवा विवाचक द्वारा पंचाट तैयार करने में कोई भूमिका नहीं होती। मध्यस्थ निष्ठापूर्वक दोनों पार्टियों को आपसी सहमति से समझौता करने का आग्रह करता है।

C. मध्यस्थता

मध्यस्थता, एक स्वतंत्र तीसरे व्यक्ति की सहायता से विवाद सुलझाने की प्रक्रिया है, जिसमें तीसरा व्यक्ति बातचीत से हल पर पहुंचने में सहायता करता है। मध्यस्थता, किसी विवाद में तीसरी पार्टी का स्वीकृत हस्तक्षेप है जिसको निर्णय लेने का कोई अधिकार नहीं है। इस प्रक्रिया में मध्यस्थता करने वाले व्यक्ति को मध्यस्थ कहते हैं।

समझौता प्रक्रिया की भांति मध्यस्थता प्रक्रिया भी स्वैच्छिक है और विवाद हल करने का एक अन्य तरीका है।

मध्यस्थता की कार्रवाई गुप्त होती है और यह विवाद के हल अथवा समझौते तक पहुंचती है।

मध्यस्थ पार्टियों को विवाद हल करने में एक सहमति तक पहुंचने में सहायता करता है। वह विवाद के गुण–दोषों पर अपनी राय व्यक्त नहीं करता। दूसरी ओर एक समझौता करवाने वाला विवाद के गुण–दोषों पर अपनी राय व्यक्त कर सकता है।

दोनों ही प्रक्रियाओं में पार्टियों को अपना विवाद सुलझाने तथा किसी सहमति पर पहुंचने के लिए एक तीसरी पार्टी को नियुक्त किया जाता है। उसका कार्य केवल गतिरोध को समाप्त करना तथा

पार्टियों को परस्पर सहमति से समझौते तक पहुंचने के लिए प्रोत्साहित करना होता है। मध्यस्थ पार्टियों के बीच विवाद का कोई निर्णय नहीं देता।

D. अभियोजन से पूर्व मध्यस्थता

इस प्रक्रिया को दीवानी प्रक्रिया संहिता 1908 की धारा 89 द्वारा 2002 में हुए संविधान संशोधन अधिनियम के अंतर्गत लागू किया गया था। इसको मुकदमे से पूर्व विवाद हल करने के लिए लागू किया गया था। अभियोजन से पूर्व मध्यस्थता अदालतों द्वारा अपने सामने लाए गए अभियोजन पर कार्यवाही शुरू करने से पहले विवाद हल करने का प्रयास है। दीवानी प्रक्रिया संहिता 1908 एक ऐसा कानून है जो दीवानी मुकदमों को सुनने और हल करने की प्रक्रिया को शासित करता है।

दीवानी प्रक्रिया संहिता 1908 की धारा 89 की एक विशेष भूमिका है, विशेषत: पारिवारिक सदस्यों के मामले में, क्योंकि इसका मुख्य उद्देश्य पारिवारिक विवाद को बिना कड़वाहट और मुकदमें के हल करना है।

E. बातचीत

बातचीत विवाद हल करने हेतु एडीआर का एक अन्य रूप है। पार्टियां किसी कार्रवाई पर सहमत हो जाती हैं और लाभ उठाने के लिए सौदेबाजी करती हैं। कभी-कभी वे एक सृजनात्मक विकल्प को अपनाने का प्रयास करते हैं जो उनके आपसी हितों का ध्यान रखता है। इसके आपसी लाभों के कारण लोग लगभग जीवन के सभी पहलुओं पर घर से अदालत तक बातचीत करते हैं। विवाद हल करने का यह सबसे अधिक प्रचलित तरीका है और इसके अधिकांश विवाद हल हो जाते हैं परंतु यदि बातचीत असफल हो जाती है तो समाधान तक पहुंचने के लिए किसी तीसरी निष्पक्ष पार्टी की मदद लेनी चाहिए। बातचीत द्वारा सौदेबाजी के तरीके में दोनों पक्ष सहयोग करते हैं और ऐसा समाधान तलाशते हैं जो दोनों के लिए लाभकारी हो। जब कोई बातचीत सफल हो जाती है तो दोनों पार्टियां एक निर्णायक समझौते पर हस्ताक्षर करते हैं जिसमें समझौते की शर्तें और नियम लिखी होती हैं।

हमारी कानून प्रक्रिया भी आपराधिक मामलों को सुलझाने का प्रावधान करती हैं। हालांकि अदालतों ऐसे आपराधिक मामलों में समझौते की अनुमति देती हैं जो बहुत हल्के अपराध के होते हैं। यह मामले आपराधिक दंड प्रक्रिया 1973 की धारा 320 द्वारा संचालित होते हैं और इस प्रावधान के अंतर्गत सुलझाए मुकदमों को संयोजित (कंपाऊंडिड) कहा जाता है। इस कोड में कंपाउंड किए जा सकने वाले केसों की श्रेणी निश्चित की गई है। आपराधिक दंड प्रक्रिया 1973 आपराधिक मामलों में अपनाई जाने वाली प्रक्रिया को निर्धारित करता है तो भी आपराधिक दंड प्रक्रिया 1973 की धारा 265A के अंतर्गत एक अन्य प्रावधान प्ली बार्गेनिंग के रूप में उपलब्ध है। इस प्रावधान के अंतर्गत यदि अभियुक्त अपने पर लगाए गए आरोप को स्वीकार करने का इच्छुक होता है और समझौता करने की इच्छा दर्शाता है तो उसे अदालत की सहमति से इसकी अनुमति दी जा सकती है।

यह सारे प्रावधान अदालतों का कार्य बोझ कम करने तथा मुकदमों को शीघ्र से निपटाने के लिए किए गए हैं।

F. लोक अदालत

लोक अदालत एडीआर का एक अन्य रूप है जिसको विशेष क्षेत्रों में लोगों की जरूरतों को देखकर निर्मित किया गया है। 1982 में गुजरात के लोक अदालत के कैंप शुरू किए गए थे और अब उन्हें पूरे भारत में लगाया जाता है। लोक अदालतों की स्थापना का मुख्य उद्देश्य अदालतों में लंबित पड़े छोटे- छोटे केसों के भरी बोझ को कम करना है। न्याय की अपेक्षा करने वालों की गिनती लाखों में है और अदालतों पर निरंतर बढ़ते मुकदमों के दृष्टिगत उन्हें निपटाना भारी बोझ बनता जा रहा है।

लोक अदालतों सरकार से प्राप्त वित्तीय सहायता से आयोजित की जाती हैं जिसकी देखभाल न्यायपालिका करती है। भारत में लोक अदालतों ने मुकदमों को सुलझाने हेतु समझौता प्रक्रिया शुरू की है। लोक अदालतों को विधिक सेवाएं प्राधिकरण अधिनियम 1987 के अंतर्गत वैधानिक मान्यता है। विधिक सेवाएं प्राधिकरण की धारा 19 में लोक अदालतों को मान्यता देने का प्रावधान है। इसके अतिरिक्त इसके पास विवाद से जुड़ी पार्टियों के बीच फैसला अथवा समझौता करवाने का क्षेत्राधिकार है। लोक अदालत के प्रत्येक फैसले को किसी दीवानी अदालत का निर्णय माना जाता है अथवा जैसा केस हो उसके अनुसार किसी अन्य दीवानी अदालत का आदेश माना जाता है। जिन मामलों में लोक अदालत द्वारा फैसला अथवा समझौता करवाया जाता है, उन मामलों में दी गई अदालती फीस वापस कर दी जाती है। अदालत द्वारा मध्यस्थता सेल को प्रेषित मामलों के सुलझने पर भी यही स्थिति होती है।

लोक अदालतें विकल्प विवाद निपटारा पद्धति (एडीआर) में सबसे लोकप्रिय तकनीक है। लोक अदालतें कम खर्च पर तेजी से न्याय प्रदान कर रही हैं। लोक अदालतों को विधिक सेवाएं प्राधिकरण अधिनियम 1987 के अंतर्गत वैधानिक मान्यता प्राप्त है।

G. मध्यस्थ विवाचन

एडीआर की एक अन्य तकनीक मध्यस्थ विवाचन है। जब कोई मामला मेल मिलाप समझौते से नहीं निपटता तो दोनों पक्ष किसी तीसरे व्यक्ति को विवाद निपटाने के लिए अधिकृत करते हैं और तीसरे व्यक्ति का निर्णय दोनों पार्टियों पर बाध्यकारी होता है। मध्यस्थ विवाचन एक ऐसा तरीका है, जो आर्बिट्रेशन एक्ट द्वारा संचालित नहीं है तथा इसमें कोई औपचारिकता नहीं है। मामले को गैर सरकारी ढंग से सौंपा जाता है और अधिकृत तीसरे व्यक्ति का निर्णय बाध्यकारी होता है।

H. मेडोला

मेडोला एडीआर की एक अन्य तकनीक है। जब विवाचक के लिए किसी निर्णय पर पहुंचना असंभव हो जाता है तो मेडोला प्रयोग किया जाता है। यह ऐसा तरीका है जिसमें बातचीत करने वाला व्यक्ति विवाचक की जगह लेता है और बिना पक्षपात के काम करता है। ऐसा व्यक्ति विवाद से जुड़ी पार्टियों से चर्चा और प्रयास करने के दौरान किसी बीच के रास्ते पर पहुंचने का प्रयास करता है। यह विवाद से जुड़ी पार्टियों के लिए बाध्यकारी होता है।

I. (मिनी ट्रायल) मुकमदे की छोटी कार्यवाही

मुकदमे की छोटी कार्यवाही एडीआर तकनीक का एक महत्वपूर्ण विकल्प है। यह सरकारी मुकदमे से अलग होता है। विवाद से जुड़ी पार्टियां एक स्वतंत्र व्यक्ति को चुनती हैं। तब पार्टियां अपना विवाद उसके समक्ष रखती हैं और अपने पक्ष में तर्क और साक्ष्य देती हैं। निष्पक्ष स्वतंत्र व्यक्ति दोनों पक्षों को सुनने के बाद एक निष्कर्ष निकालता है। विवाद से जुड़ी पार्टियां विश्वास करती हैं कि ऐसा व्यक्ति निष्पक्ष, ईमानदार और स्वतंत्र है और वह दोनों पार्टियों को सुनने के बाद अपना विचार रखता है। विवाद से जुड़ी दोनों पार्टियां उसके निर्णय पर सहमत हो जाती हैं।

15.4.1 भारत में एडीआर का महत्व

भारत में विकल्प विवाद निपटारा पद्धति का बहुत महत्व है। यहां अदालतों के पास बहुत बड़ी संख्या में मुकदमे लंबित हैं, जिनके निपटारे के लिए काफी समय चाहिए क्योंकि अदालतों की प्रक्रिया बहुत लंबी है।

यह बहुत खर्चीली भी है। 25 जनवरी, 2002 को तत्कालीन कानून मंत्री अरुण जेटली ने संसद को बताया कि विभिन्न अदालतों में अंतिम निर्णय के लिए 2 करोड़ 34 मुकदमें लंबित पड़े हैं। विकल्प विवाद निपटारा पद्धति की उनके शीघ्र निपटारे हेतु आवश्यकता है।

अदालतों में लंबित मुकदमों की संख्या में वृद्धि, मुकदमे की कार्यवाही में देरी, बहुत महंगे अभियोजन इत्यादि कुछ ऐसे कारण हैं जिनके फलस्वरूप आर्बिट्रेशन एंड कोंसीलेशन एक्ट 1996 लागू किया गया।

भारत में निरक्षर और गरीब लोगों की बहुत बड़ी संख्या है जो लंबे, तकनीकी और अदालतों की महंगी व्यवस्था का निर्वहण नहीं कर सकते और एडीआर उनके लिए वरदान सिद्ध हो सकता है।

वर्तमान समय में अदालतों को छोटे मुकदमों के भारी बोझ से मुक्त करने की जरूरत है ताकि वे अपना समय समाज के लिए खतरनाक अपराधियों तथा जघन्य अपराधों के मुकदमों पर लगा सकें।

यह आवश्यक है कि एक विद्यार्थी को मुकदमा छोड़कर विकल्प विवाद निपटारा पद्धति अपनाने के लाभ का आधारभूत ज्ञान होना चाहिए। प्रत्येक को ज्ञात होना चाहिए कि अदालतों का समय व्यर्थ करने से अदालतों के खर्च बढ़ जाते हैं। इन खर्चों को सरकार देश के नागरिकों द्वारा दिए गए टैक्सों के पैसे उठाती है।

विवाद को शांतिपूर्व ढंग से हल करने के तरीके और साधन हैं। केवल एक चीज आवश्यक है कि हमें खुले दिमाग से बातचीत करनी चाहिए और अदालतों में जाने से बचना चाहिए।

इन पाठ में आपने विकल्प विवाद निपटारा पद्धति के तरीकों जैसे विवाचन, समझौता, मध्यस्थता, बातचीत और लोक अदालत के बारे में पढ़ा है।

पाठगत प्रश्न 15.4

1. 'विवाचन समझौते' को पारिभाषित कीजिए।
2. तुम 20 वर्ष के हो या 18 वर्ष के, इसका निर्णय तीन विवाचकों के पेनल द्वारा ही किया जा सकता है? (गलत/सही)
3. 'जितनी जल्दी संभव हो कार्य पूरा करना' के लिए एक शब्द लिखिए।
4. क्या पंचाट निर्णय पार्टियों पर बाध्यकारी है?
5. मध्यस्थता और समझौते के बीच मूल अंतर क्या है?
6. रिक्त स्थान भरिये :-

   'मध्यस्थता' किसी विवाद को किसी तीसरे निष्पक्ष और स्वतंत्र व्यक्ति की सहायता से हल करने की प्रक्रिया है, जो पार्टियों को विवाद में .... समाधान पर पहुंचने में सहायता करता है।
7. लोक अदालत को सबसे पहले कब और कहां से शुरू किया गया?
8. लोक अदालत का मुख्य उद्देश्य क्या है?
9. लोक अदालत आयोजित करने के लिए आवश्यक राशि कौन देता है?
10. लोक अदालतें विकल्प विवाद निपटारा पद्धति में सबसे अधिक लोकप्रिय है। (गलत/ सही)
11. मध्यस्थ विवाचन को संक्षेप में पारिभाषित कीजिए।
12. मेडोला का अर्थ स्पष्ट कीजिए।
13. मिनि ट्रायल किसी मुकदमे की अधिकृत कार्यवाही से अलग होता है। (गलत/ सही)
14. रिक्त स्थान भरिये :-

   (अ) .... विकल्प विवाद निपटारा पद्धति में सबसे लोकप्रिय हैं।

   (ब) .... ऐसी प्रक्रिया है जिसमें तीसरी पार्टी पार्टियों को अपना विवाद सहमति से निपटाने में सहायता करती है।

   (स) .... ऐसी प्रक्रिया है जिसमें पार्टियां अपना विवाद निजी स्तर पर हल कर सकती हैं।
15. लोक अदालतें सरकार से प्राप्त वित्तीय सहायता से आयोजित की जाती है जिनकी देखभाल न्यायपालिका करती है।

15.5 विधिक सेवाएं प्राधिकरणों की भूमिका : विधिक सेवाएं प्राधिकरण अधिनियम (संशोधित) अधिनियम, 1994

संविधान का अनुच्छेद 39-A कहता है कि किसी भी व्यक्ति को न्याय से केवल गरीब अथवा अन्य अयोग्यता के आधार पर वंचित नहीं किया जा सकता। इसका अर्थ है कि प्रत्येक व्यक्ति

को न्याय पाने का अधिकार है, भले ही वह किसी भी ढंग से निर्धन हो। संविधान का यह रवैया विभिन्न कानूनी प्रावधानों और न्यायिक निर्णयों से घिरा हुआ है। इनमें से एक है–विधिक सेवाएं प्राधिकरण अधिनियम, 1987 (1994 में संशोधित और अब इसे विधिक सेवाएं प्राधिकरण अधिनियम (संशोधित) 1994 कहते हैं।

यह अधिनियम कानूनी सेवाओं के विस्तृत प्रावधान निर्धारित करता है। लेकिन इसको कुछ कारणों वश लागू नहीं किया जा सका। बाद में 1994 में इसमें अनेक संशोधन किए गए और संशोधित रूप में लागू किया गया।

विधिक सेवाएं प्राधिकरण अधिनियम (संशोधित) 1994 के प्रमुख प्रावधान :-

(a) राष्ट्रीय विधिक सेवाएं प्राधिकरण का गठन : इस अधिनियम की धारा 3 में कानूनी सेवाएं प्रदान करने, सामाजिक न्याय की दिशा में उपयुक्त कदम उठाने, विवादों का निपटारा, चर्चा, समझौते और मध्यस्थता द्वारा करने, समय-समय पर कानूनी सहायता कार्यक्रम विकसित करने, कानूनी जागरूकता को फैलाने के लिए राष्ट्रीय विधिक सेवाएं प्राधिकरण गठित करने का प्रावधान है।

भारत के सर्वोच्च न्यायालय का मुख्य न्यायाधीश इसका मुख्य संरक्षक होगा। इसका एक कार्यवाह अध्यक्ष होगा जिसको भारत के मुख्य न्यायाधीश की सलाह पर राष्टपति नियुक्त करेगा।

(b) राज्य विधिक सेवाएं प्राधिकरण का गठन :

केंद्र की भांति राज्य विधिक सेवाएं प्राधिकरण गठित करने की सुविधा प्रदान की गई है। धारा G के अनुसार राज्य के उच्च न्यायालय का मुख्य न्यायाधीश इसका मुख्य संरक्षक होगा। इसका एक कार्यवाह अध्यक्ष भी होगा जिसको राज्य के उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश की सलाह पर राज्य का राज्यपाल नियुक्त करेगा।

राज्य विधिक सेवाएं प्राधिकरण का मुख्य कर्तव्य कानूनी सहायता प्राप्त करने योग्य लोगों को कानूनी सहायता प्रदान करना, लोक अदालत आयोजित करना, कानूनी सहायता कार्यक्रमों को गति प्रदान करना तथा राष्टीय विधिक सेवाएं प्राधिकरण की नीतियों और दिशा-निर्देशों को लागू करना है।

(c) जिला विधिक सेवाएं प्राधिकरण का गठन :

अधिनियम की धारा 9 प्रत्येक जिले में एक जिला विधिक सेवाएं प्राधिकरण गठित करने का प्रावधान करती है। इसका अध्यक्ष जिला न्यायाधीश होता है और कुछ अन्य सदस्य भी होते हैं। जिला विधिक सेवाएं प्राधिकरण का मुख्य कार्य राज्य विधिक सेवाएं प्राधिकरण द्वारा दिए कार्यों का निर्वहन, प्रत्येक जिले में लोक अदालतें आयोजित करना, जिले की अनेक विधिक सेवाएं समितियों के बीच तालमेल स्थापित करना तथा कानूनी सहायता कार्यक्रमों को लागू करना होता है।

(d) सर्वोच्च न्यायालय कानूनी सहायता कमेटी का गठन :

अधिनियम की धारा 3A लोक अदालतों के आयोजनों के लिए तथा सर्वोच्च न्यायालय के लंबित पड़े मामलों के शीघ्र निपटारे के लिए पात्र पार्टियों को कानूनी सहायता प्रदान करने

के लिए सर्वोच्च न्यायालय कानूनी सहायता कमेटी गठित करने का प्रावधान है। सर्वोच्च न्यायालय का अध्यक्ष न्यायाधीश इसका चेयरमैन होता है।

(e) उच्च न्यायालय कानूनी सहायता कमेटी का गठन :

अधिनियम की धारा 8A लोक अदालतों के आयोजनों, उच्च न्यायालय में लंबित पड़े मामलों के शीघ्र निपटारे हेतु पात्र पार्टियों को कानूनी सहायता उपलब्ध करवाने हेतु, उच्च न्यायालय कानूनी सहायता कमेटी गठित करने का प्रावधान है।

(f) जिला/ब्लाक विधिक सेवाएं कमेटियों का गठन :

अधिनियम की धारा 11A ब्लाक में विधि संबंधी गतिविधियों में तालमेल स्थापित करने, लोक अदालतें आयोजित करने तथा जिला विधिक सेवाएं प्राधिकरण द्वारा समय-समय पर सौंपे गए कार्यों को करने के लिए जिला/ ब्लाक सेवाएं प्राधिकरण गठित करने का प्रावधान है। इसका अधिकृत चेयरमैन क्षेत्र का वरिष्ठ सिविल जज होता है।

(g) कानूनी सहायता कोरा स्थापित करना :

अधिनियम की धारा 15, 16, 17 क्रमशः राष्टीय विधिक सहायता कोष, राज्य विधिक सहायता कोष और जिला विधिक सहायता कोष स्थापित करने का प्रावधान है जो राष्टीय विधिक सेवाएं प्राधिकरण, राज्य विधिक सेवाएं प्राधिकरण तथा जिला कानूनी सेवाएं प्राधि करण द्वारा कानूनी सहायता प्रदान करने में हुए खर्चों को पूरा करते हैं।

(h) निशुल्क कानूनी सहायता :

जैसा कि हमने ऊपर पढ़ा कि इस अधिनियम का मुख्य उद्देश्य समाज के कमजोर वर्गों को निशुल्क कानूनी सहायता प्रदान करना है। इस उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए एक्ट की धारा 12 उन लोगों का उल्लेख करती है जो निशुल्क कानूनी सहायता के हकदार हैं।

(i) लोक अदालतें :

इस अधिनियम की मुख्य विशेषता लोक अदालतों को वैधानिक दर्जा देना है। इस अधिनियम की धारा 19 लोक अदालतों के निर्माण, धारा 20 लोक अदालतों की कार्य प्रणाली, धारा 21 उनके निर्णय और फैसलों का प्रावधान करती है। यह उल्लेखनीय है कि लोक अदालत द्वारा दिया गया निर्णय दीवानी अदालत के फैसले के बराबर होगा।

(j) स्थायी लोक अदालत :

अधिनियम की धारा 22A स्थायी लोक अदालत की स्थापना का प्रावधान करती है। यह विधिक सेवाएं प्राधिकरण (संशोधित) अधिनियम 2002 का परिणाम है। एक स्थायी लोक अदालत समझौतों के माध्यम से विवाद हल करने का मजबूत और शक्तिशाली माध्यम तथा एक नयी अवधारणा है।

स्थायी लोक अदालत का एक चेयरमैन तथा पांच अन्य सदस्य होते हैं। स्थायी लोक अदालत मुख्यतः लोक कल्याण सेवाओं से संबंधित विवादों को हल करती है।

(k) सार्वजनिक उपयोगी सेवाएं :

इस अधिनियम की एक बड़ी उपलब्धि सार्वजनिक उपयोगी सेवाओं संबंधी प्रावधान करना है।

अत: विधिक सेवाएं प्राधिकरण अधिनियम 1987 (संशोधित अधिनियम 1994) कानूनी सेवाओं, कानूनी सहायता और लोक अदालतों के संबंध में प्रावधान करता है।

क्रियाकलाप 15.1

अपने जिले की लोक अदालत को देखिए और इसकी कार्य प्रणाली को देखकर अपने विचार लिखिए।

पाठगत प्रश्न 15.5

1. विधिक सेवाएं प्राधिकरण (संशोधित) अधिनियम 1994 के मुख्य प्रावधानों की सूची बनाइए।
2. निम्नलिखित को पारिभाषित कीजिए–

   (क) कानूनी सहायता कोष (राशि)

   (ख) निशुल्क कानूनी सहायता

आपने क्या सीखा

विवाचन, प्राचीन भारत में भी लोकप्रिय और प्रचलित था और इनके निर्माण (पंचाट) पंचायतों के फैसले थे जो बाध्यकारी थे।

विकल्प विवाद निपटारा पद्धति (एडीआर) ऐसी प्रणाणी है, जिसमें विवाद हल करने के ऐसे तरीके हैं जो अदालती मुकदमों का विकल्प हैं। एडीआर व्यवस्था की प्रक्रियाएं ऐसे निर्णय हैं जिसमें मुकदमे (अभियोजन) को शामिल नहीं किया जाता। भारत में अब विवाद से जुड़ी पार्टियों के लिए एक विकल्प व्यवस्था उपलब्ध है (जिसमें विवाचन, समझौता, मध्यस्थता, बातचीत और लोक अदालतें इत्यादि सम्मिलित हैं।

विवाचन संबंधी संस्थाए भीड़भरी अदालतों के बाहर दीवानी विवादों को हल करने हेतु विकल्प विवाद निपटारे की सेवाएं शीघ्र, कम खर्चीला और सहमत हल प्रदान करती हैं। एडीआर विवाद ग्रस्त पार्टियों के बीच संवाद को बढ़ाती है तथा उन्हें अपने विवाद हल करने योग्य बनाता है।

विधिक सेवाएं प्राधिकरण अधिनियम 1987 (संशोधित) 1994 राष्टीय विधिक सेवाएं प्राधि करण, राज्य विधिक सेवाएं प्राधिकरण, जिला विधिक सेवाएं प्राधिकरण, सर्वोच्च न्यायालय कानूनी सहायता कमेटी, उच्च न्यायालय कानूनी सहायता कमेटी, जिला/ ब्लाक कानूनी सहायता कमेटी, कानूनी सहायता कोष स्थापित करने और निशुल्क कानूनी सहायता प्रदान करने के महत्वपूर्ण प्रावधान करता है।

यह अधिनियम लोक अदालतों को वैधानिक ऊर्जा प्रदान करता है और सार्वजनिक उपयोगी सेवाएं प्रदान करने के संबंध में भी प्रावधान करता है।

पाठांत प्रश्न

1. विकल्प विवाद निपटारा पद्धति की क्या आवश्यकता है?
2. विकल्प विवाद निपटारा पद्धति के क्या लाभ हैं?
3. विकल्प विवाद निपटारा पद्धति की अन्य तकनीकों की सूची बनाइए।
4. विधिक सेवाएं प्राधिकरण (संशोधित) 1994 के मुख्य प्रावधानों का वर्णन कीजिए।
5. भारत में विकल्प विवाद निपटारा पद्धति के महत्व को स्पष्ट कीजिए।
6. निम्नलिखित को पारिभाषित कीजिए–
   (क) स्थायी लोक अदालत
   (ख) सार्वजनिक उपयोगी सेवाएं
   (ग) राष्टीय विधिक सेवाएं प्राधिकरण
   (घ) राज्य विधिक सेवाएं प्राधिकरण

पाठगत प्रश्नों के उत्तर

15.1 और 15.2

1. वर्तमान न्यायिक व्यवस्था बहुत महंगी और देर करने वाली है। अदालतों द्वारा मुकदमों को इस लंबी और खर्चीली प्रक्रिया ने आम आदमी का न्यायिक व्यवस्था में विश्वास कम किया है और इसने विकल्प विवाद निपटारा पद्धति को जन्म दिया। एडीआर शीघ्र और सस्ता न्याय प्रदान करती है।
2. एडीआर विवाद हल करने के उन तरीकों को कहते है जो अदालती मुकदमों का विकल्प प्रदान करते हैं।

3.उपभोक्ता शिकायतें, पारिवारिक विवाद, संपति विवाद, निर्माण विवाद और व्यापारिक विवाद

15.3

1. प्राचीन काल में 'विवाचन' एडीआर का बहुत लोकप्रिय और प्रचलित रूप था।
2. एडीआर का विस्तृत रूप है 'आल्टरनेट डिस्ट्यूट रिजोल्यूशन'।
3. अभियोजन का अर्थ है अदालत में मुकदमा लड़ना।
4. वस्तु की गुणवत्ता से जुड़े विवाद, व्यापार में सांझेदारी, व्यापार, वाणिज्यिक संपति का किराया, उपभोक्ता विवाद और अन्य कई छोटे विवाद एडीआर के माध्यम से हल किए जा सकते हैं।

टिप्पणी

5. पार्टियों को लागू होने वाले कानून को चुनने की स्वतंत्रता है। उन्हें किसी भी तरीके और पार्टियों द्वारा सहमत भाषा में चलाया जा सकता है। मामले को कुछ ही बैठकों में सुलझाया जा सकता है जिससे खर्च कम होता है। कोई अदालती फीस नहीं देनी पड़ती। कार्यवाही और रिपोर्टों की प्रतियां लेने में खर्च नहीं करना पड़ता। वे बैठकों के लिए समय और स्थान चुन सकते हैं। एडीआर शीघ्र और सस्ता न्याय प्रदान करता है।
6. उत्तर-पूर्व भारत के सात राज्य गुवाहटी उच्च न्यायालय के आधीन हैं।

15.4

1. 'विवाचन समझौता' उस समझौते को कहते हैं विवादों में फंसे जहां दो या दो अधिक व्यक्ति सहमत हो जाते हैं कि एक निष्पक्ष व्यक्ति उनके विवाद को हल कर सकता है और वे उसके निर्णय को मानेंगे।
2. नहीं, आयु के प्रश्न पर केवल अदालत निर्णय कर सकती है।
3. शीघ्रता
4. हां, विवाचक निर्णय (पंचाट) पार्टियों पर बाध्यकारी होता है।
5. मध्यस्थता और समझौते में आधारभूत अंतर यह है कि मध्यस्थ विवाद के गुण-दोष पर अपना विचार व्यक्त नहीं करता। दूसरी ओर समझौता कर9वाने वाला विवाद के गुण-दोष पर पार्टियों को अपनी राय अभिव्यक्त करता है।
6. बातचीत करके।
7. लोक अदालत प्रारंभ में गुजरात में 1982 में शुरू की गई थीं।
8. लोक अदालतों को स्थापित करने का मुख्य उद्देश्य अदालतों में लंबित पड़े मामलों के बोझ को कम करना है, जो बहुत ही हल्के मामले हैं।
9. लोक अदालतों के लिए राशि सरकार देती है।
10. सत्य।
11. Med-Arbitration मध्यस्थ विवाचन एक ऐसा तरीका है जो आर्बिट्रेशन एक्ट से संचालित होता है और इसमें कोई औपचारिकता नहीं होती। विाद ग्रस्त पार्टियों द्वारा आधिकृत व्यक्ति को विवाद सौंप दिया जाता है और आधिकृत तीसरी पार्टी द्वारा निर्णय दोनों पार्टियों के लिए बाध्यकारी होता है।
12. मेडोला एडीआर व्यवस्था की एक अन्य तकनीक है। जब किसी विवाचक (पंच) द्वारा समझौते पर पहुंचना संभव नहीं होता तो मेडोला का प्रयोग किया जाता है। यह ऐसा तरीका है जिसमें बातचीत करने वाला व्यक्ति विवाचक का स्थान लेता है और निष्पक्ष भाव से काम करता है। ऐसा व्यक्ति चर्चा के दौरान किसी बीच के रास्ते तक पहुंचने की कोशिश करता है जिससे विवाद ग्रस्त पार्टियों के बीच सहमति हो सके। यह विवाद से जुड़ी पार्टियों पर बाध्यकारी होता है।

13. सत्य

14. (क) लोक अदालत

    (ख) समझौता

    (ग) विवाचन

15. (क) सत्य

    (ख) सत्य

15.5

1. (क) राष्टीय विधिक सेवाएं प्राधिकरण का गठन

   (ख) राज्य विधिक सेवाएं प्राधिकरण का गठन

   (ग) जिला विधिक सेवाएं प्राधिकरण का गठन

   (घ) सर्वोच्च न्यायालय कानूनी सहायता कमेटी का गठन

   (ड़) उच्च न्यायालय कानूनी सहायता कमेटी का गठन

   (च) जिला/ ब्लाक न्यायालय कानूनी सहायता कमेटी का गठन

   (छ) कानूनी सहायता कोष (राशि) की स्थापना

   (ज) निशुल्क कानूनी सहायता

   (ञ) लोक अदालत

2. (क) कानूनी सहायता कोष ' विधिक सेवाएं प्राधिकरण (संशोधित) अधिनियम 1994 समाज के कमजोर वर्गों को निशुल्क कानूनी सहायता प्रदान करने के लिए निशुल्क कानूनी सहायता कोष गठित करने का प्रावधान करता है।

   (ख) निशुल्क कानूनी सहायता : विधिक सेवाएं प्राधिकरण (संशोधित) अधिनियम 1994 समाज के कमजोर वर्गों को निशुल्क कानूनी सहायता प्रदान करने का प्रावधान करता है।

16

विधिक सेवाएं और लोक अदालत

आपको ज्ञात ही होगा कि भारत के ग्रामीण क्षेत्रों में रहने वाले लोगों में से 70% निरक्षर हैं और उनमें से कई बहुत गरीब हैं। कानूनी प्रक्रिया का लाभ गरीबों तक पहुँचाना और उन्हें अन्याय से बचाना बहुत कठिन है। इसलिए इसकी तुरन्त आवश्यकता है कि गरीब और जरूरतमन्द लोगों तक न्याय पहुँचाने के लिए गतिशील और कानूनी (विधिक) सेवा के व्यापक कार्यक्रम लागू किए जाएं। अदालती व्यवस्था तक पहुँचने तथा कानूनी प्रतिनिधि का खर्च वहन कर पाने में असमर्थ लोगों को सहायता देने के प्रावधान को कानूनी सहायता कहते हैं। अत: कानूनी सहायता अदालती व्यवस्था तक पहुँचा पाने की दृष्टि से अति महत्वपूर्ण है। आप यह भी समझ सकते हैं कि सामान्य अदालती प्रक्रिया बहुत मंहगी और समय खाने वाली है। इस के लिए काफी धन और संसाधन चाहिए जो एक गरीब आदमी की हिम्मत से बाहर है। इसलिए नये कानूनों द्वारा अदालतों की एक नयी व्यवस्था शुरू की गई है जिसे लोक अदालत कहते हैं। ये अदालतें औपचारिक रूप में काम कर रही अदालतों से भिन्न प्रकार से काम करती हैं। फौजदारी मुकदमों में सजा देने की एक लम्बी प्रक्रिया होती है जिससे सजा देने का उद्देश्य ही खो जाता है। इसलिए आज के समय में 'प्ली बार्गेनिंग' बहुत महत्वपूर्ण हो गयी है। भारत के कानून में आवश्यक परिवर्तनों के बाद को हमारी आपराधिक न्याय व्यवस्था को महत्वपूर्ण स्थान मिल गया है।

उद्देश्य

इस पाठ को पढ़ने के बाद आप:

- 'कानूनी (विधिक) सहायता' और इसकी अवधारणा के अर्थ की व्याख्या कर पाएंगे;
- 'कानूनी सहायता' की अवधारणा ऐतिहासिक पृष्ठभूमि को समझ पाएंगे;
- विधिक सेवाएं प्राधिकरण अधिनियम, 1987 के मुख्य प्रावधानों की व्याख्या कर पाएंगे;
- 'लोक अदालतों' की आवश्यकता को समझ पांएगे;
- 'लोक अदालतों' के संगठन एवं उनके अधिकार-क्षेत्र को स्पष्ट कर पाएंगे;

- 'प्ली बार्गेनिंग' की अवधारणा पाएंगे; तथा
- 'प्ली बार्गेनिंग' के विभिन्न प्रकारों एवं 'प्ली वार्गेनिंग' के लाभों को समझ पाएंगे।

16.1 कानूनी (विधिक) सहायता और सेवाओं का इतिहास

'कानूनी सहायता' आन्दोलन की सबसे पहली शुरूआत 1851 में दिखाई देती है जब गरीबों को कानूनी सहायता देने के लिए फ्रांस में कुछ कानून लागू किए गए थे। ब्रिटेन में गरीबों को कानूनी सेवाएं प्रदान करने का संगठित प्रयास 1944 में किया गया जब लार्ड चांसलर विसकाऊन्ट साइयन ने इग्लैण्ड और वेल्स में गरीबों को कानूनी सलाह देने की प्रचलित सुविधाओं की जांच पड़ताल करने तथा जरूरतमन्द लोगों को राज्य द्वारा दी जाने वाली कानूनी सलाह को सुनिश्चित बनाने के लिए आवश्यक दिखाई देने वाली सिफारिशें करने के लिए रशेलिफ कमेटी नियुक्त की थी। 1952 से भारत सरकार ने भी गरीबों को कानूनी सहायता देने के प्रश्न को कानून मन्त्रियों और कानून आयोगों की बैठकों में उठाना शुरू कर दिया है। 1960 में कानूनी सहायता योजनाओं के लिए कुछ मार्गदर्शक बिन्दु तय किए गए थे। अलग अलग राज्यों में कानूनी सहायता बोर्ड, सोसाइटियों तथा कानून विभागों द्वारा कानूनी सहायता योजनाएं शुरू हो गई हैं।

1980 में सर्वोच्च न्यायालय के तत्कालीन न्यायधीश पी. एन. भगवती की अध्यक्षता में पूरे देश में कानूनी सहायता कार्यक्रमों पर नजर रखने और निरीक्षण करने के लिए राष्ट्रीय स्तर पर एक कमेटी का गठन किया गया। इस कमेटी को कानूनी सहायता स्कीमों को लागू करने वाली कमेटी के नाम से जाना गया और इसने पूरे देश में कानूनी सहायता की गतिविधियों की जांच पड़ताल का काम शुरू किया।

भारतीय संविधान के अनुच्छेद 39A में प्रावधान है कि राज्य यह सुनिश्चित करे कि न्यायिक व्यवस्था समान अवसरों के आधार पर न्याय को बढ़ावा दे और विशेष रूप से उपयुक्त कानूनों अथवा योजनाओं अथवा किसी अन्य तरीके से आर्थिक या अन्य किसी अक्षमता के कारणवश लाचार किसी भी नागरिक को नि:शुल्क कानूनी सहायता दे कर न्याय प्राप्त करने के अवसरों से वंचित न होने दिया जाए। अनुच्छेद 14 और 22(1) भी राज्य से यह सुनिश्चित करना अनिवार्य मानते हैं कि कानून के समक्ष सब समान होंगे तथा राज्य ऐसी न्यायिक व्यवस्था स्थापित करेगी जो सभी के लिए समान अवसर के आधार पर न्याय सुनिश्चित करेगी। कानूनी सहायता का प्रयास होगा कि संवैधानिक दायित्व अक्षरश: और भाव से पूरा हो और गरीबों, दलितों तथा समाज के कमजोर वर्गो को समानता के आधार पर न्याय उपलब्ध हो।

भारत के संविधान का अनुच्छेद 39A इस बात पर बल देता है कि 'नि:शुल्क कानूनी सेवा' तर्कसंगत, स्वच्छ और न्यायपूर्ण विधि का एक अटूट तत्व है और इसके बिना निर्धन एवं अन्य अक्षमताओं से ग्रस्त व्यक्ति न्याय पाने के अवसर से वंचित हो जाएगा। अत: इस कारण से किसी अपराध में अभियुक्त व्यक्ति के लिए नि:शुल्क कानूनी सहायता प्राप्त करने का अधिकार तर्क संगत, स्वच्छ और न्यायपूर्ण विधि की एक अनिवार्य तत्व है और यह संविधान के अनुच्छेद 21 में दी गई गारंटी के अनुसार है। गरीबी और दुर्दशा के कारण कानूनी सहायता प्राप्त करने अथवा वकील करने में असमर्थ प्रत्येक अभियुक्त

का यह संवैधानिक अधिकार है और राज्य का संवैधानिक दायित्व है कि ऐसे अभियुक्त को वकील उपलब्ध करवाए बशर्ते केस के हालात और न्याय की मांग तथा अभियुक्त को ऐसे वकील के प्रावधान पर कोई आपति न हो।

क्रियाकलाप 16.1

- अपने क्षेत्र में कार्य कर रही अदालतों के नाम लिखिए।
- ऐसे गरीब व्यक्तियों को ढूढियें जो कानूनी सहायता प्राप्त करने की पात्रता रखते हों।
- अदालत जाने का सामर्थ्य न रखने वाले लोगों से उनकी असमथर्ता के कारण जानिये।

16.2 विधिक सेवाएं प्राधिकरण अधिनियम 1987, (1994 में संशोधित)

16.2.1. कानूनी सहायता देने के लिए बने कानून के मुख्य प्रावधान

1987 (1994 में संशोधित) में पूरे देश में कानूनी सहायता कार्यक्रमों को समान रूप से संवैधानिक आधार देने के लिए विधिक सेवा प्राधिकरण अधिनियम लागू किया गया। इस अधिनियम ने कानूनी सेवाओं के क्षेत्र में बड़े परिवर्तन किए। यह समाज के कमजोर वर्गो को निःशुल्क और सक्षम विधिक सेवाएं प्रदान करने के लिए 'कानूनी सेवाएं प्राधिकरण' गठित करने का अधिनियम है जो यह सुनिश्चित करता है कि किसी भी नागरिक को आर्थिक अथवा अन्य किसी अक्षमता के कारण न्याय प्राप्त करने के अवसरों से वंचित नहीं किया जाएगा।

प्रत्येक ऐसे व्यक्ति को जो मुकद्मा डालना चाहे अथवा अपना बचाव करना चाहे, इस अधिनियम के अन्तर्गत कानूनी सेवाएं लेने का अधिकार है, यदि वह व्यक्ति–

(a) अनुसूचित जाति अथवा अनुसूचित जनजाति का सदस्य हो

(b) मानव व्यापार अथवा बेगार का शिकार हो

(c) महिला अथवा बच्चा हो

(d) दिमागी रूप से बीमार अथवा अन्य प्रकार से अक्षम हो

(e) किसी अनापेक्षित कमी के हालात जैसे किसी बड़ी आपदा, जातीय हिंसा, जातिगत अत्याचार, बाढ़, सूखा, भूचाल अथवा औद्योगिक आपदा का शिकार हो

(f) औद्योगिक मजदूर हो अथवा

(g) उसकी वार्षिक आय 9000 रु से कम हो अथवा ऐसी किसी राशि से कम हो जो राज्य सरकार द्वारा निश्चित की गई हो, और मुकद्मा सर्वोच्च न्यायालय के अतिरिक्त किसी अन्य न्यायालय में चल रहा हो अथवा उसकी वार्षिक आय 12,000 रु से कम हो या राज्य सरकार द्वारा निश्चित किसी राशि से कम हो और मुकद्मा सर्वोच्च न्यायालय में चल रहा हो

(आय की सीमा को बढ़ाने के लिए नियमों में संशोधन पहले से किए जा चुके हैं)

'कानूनी सेवाएं प्राधिकरण' किसी आवेदक के पक्ष में किसी मुकद्मे के लिए उसकी योग्यता की जांच करने के बाद उसको राज्य के खर्चे पर वकील उपलब्ध करवाता है, उस मामले से सम्बन्धित अदालती फीस जमा करता है और उस मामले से जुड़े सब छोटे बड़े खर्च करता है। जिस व्यक्ति को कानूनी सहायता प्रदान की जाती है उसे एक बार 'कानूनी सेवाएं प्राधिकरण' से सहयोग मिलने के बाद मुकद्मे पर कुछ भी खर्च करने के लिए नहीं कहा जाता।

क्रियाकलाप 16.2.1

अपने क्षेत्र के ऐसे लोगों की पहचान कीजिए जो कानूनी सेवाएं प्राधिकरण अधिनियम के अनुसार कानूनी सहायता प्राप्त करने योग्य है। उन्हें विभिन्न वर्गों में वर्गीकृत कीजिए जैसे महिलाएं, बच्चे, अल्प आय समूह और किसी प्राकृतिक आपदा के शिकार।

16.2.2 विधिक सेवाएं प्राधिकरण अधिनियम 1987 (संशोधित 1994) के अन्तर्गत अधिकारी

कानूनी सेवाएं प्राधिकारण 1987 में यह प्रावधान है कि केन्द्रीय सरकार एक ऐसी संस्था का गठन करेगी जिसको राष्ट्रीय विधिक सेवाएं प्राधिकरण कहा जाएगा और वह इस अधिनियम के अन्तर्गत केन्द्रीय प्राधिकरण को दी गई शक्तियों का प्रयोग तथा सौंपे गए कार्यों को करेगा। इस अधिनियम के अन्तर्गत कानूनी सहायता और सहयोग देने के लिए एक राष्ट्रव्यापी तन्त्र की रचना की गई है। 'राष्ट्रीय विधिक सेवाएं प्राधिकरण' शीर्ष संस्था है जिसका गठन, इस अधिनियम के अन्तर्गत कानूनी सेवाएं उपलब्ध करवाने हेतु नीतियां और सिद्धान्त निर्धारित करने तथा कानूनी सेवाओं के लिए सबसे अधिक प्रभावशाली और सस्ती योजनाएं बनाने के लिए किया गया है। यह 'राज्य कानूनी सेवाएं प्राधिकरणों' तथा गैर सरकारी संस्थाओं को कानूनी सहायता योजनाओं तथा कार्यक्रमों को क्रियान्वित करने के लिए **फंड** (राशि) का वितरण भी करता है। विधिक सेवाएं प्राधिकरण अधिनियम 1987 में 'राज्य कानूनी सेवाएं प्राधिकरण' गठित करने का प्रावधान है। प्रत्येक राज्य में केन्द्रीय प्राधिकरण के दिशा निर्देशों तथा नीतियों को प्रभावशाली बनाने के लिए तथा लोगों को कानूनी सेवाएं प्रदान करने एवं राज्य में लोक अदालतें चलाने के लिए 'राज्य कानूनी सेवाएं प्राधिकरण' गठित किए जाते हैं। 'राज्य कानूनी सेवाएं प्राधिकरण' का अध्यक्ष राज्य के उच्च न्यायालय का मुख्य न्यायाधीश होता है जो मुख्य संरक्षक भी होता है। उच्च न्यायालय में काम कर रहे अथवा सेवानिवृत किसी न्यायधीश को इसका कार्यकारी चेरयमैन नामित किया जाता है।

'जिला कानूनी सेवाएं प्राधिकरण' का गठन प्रत्येक जिले में कानूनी सहायता कार्यक्रमों और योजनाओं को लागू करने के लिए किया जाता है। जिले का जिला न्यायाधीश इसका पदेन अध्यक्ष होता है।

प्रत्येक तालुक अथवा मण्डल अथवा तालुकों या मण्डलों के समूह में 'तालुक कानूनी सेवाएं कमेटियां' तालुक में कानूनी सेवाएं और लोक अदालतों के आयोजन में तालमेल करने के लिए गठित की जाती हैं। प्रत्येक 'तालुक कानूनी सेवाएं कमेटी' का अध्यक्ष, उस कमेटी के क्षेत्राधिकार में काम करने वाला कोई वरिष्ठ सिविल जज होता है; जो उसका पदेन अध्यक्ष होता है।

विधिक सेवाएं प्राधिकरण अधिनियम 1987 (संशोधित 1994)
↓
राष्ट्रीय केन्द्रीय विधिक सेवाएं प्राधिकरण
↓
राज्य विधिक सेवाएं प्राधिकरण
↓
जिला विधिक सेवाएं प्राधिकरण
↓
तालुक विधिक सेवाएं प्राधिकरण

केन्द्रीय प्राधिकरण तथा **राष्ट्रीय विधिक सेवाएं प्राधिकरण** (नालसा) की स्थापना के बाद 1998 के प्रारम्भ में निम्नलिखित योजनाओं और उपायों को केन्द्रीय प्राधिकरण द्वारा लागू किया गया है।

(a) इस अधिनियम के अन्तर्गत कानूनी सेवाएं उपलब्ध करवाने के लिए नीतियों और सिद्धान्तों को निर्धारित करना

(b) इस अधिनियम के अन्तर्गत कानूनी सेवाएं सस्ती दर पर उपलब्ध करवाने के लिए अति प्रभावशाली योजनाएं बनाना

(c) अपने पास उपलब्ध कोष का उपयोग करना तथा राज्य प्राधिकरणों और जिला प्राधिकरणों के लिए उपयुक्त कोष/राशि निर्धारित करना

(d) उपभोक्ता संरक्षण, पर्यावरण संरक्षण अथवा समाज के कमजोर वर्गो से सम्बन्धित किसी अन्य विशेष मुद्दे के लिए सामाजिक न्याय के मुकद्मों के माध्यम से सामाजिक कार्यकर्ताओं को प्रशिक्षण देने के लिए आवश्यक कदम उठाना

(e) विशेष रूप से ग्रामीण क्षेत्रों, गन्दी बस्तियों अथवा कालोनियों में समाज के कमजोर वर्गों को अपने अधिकारों के प्रति शिक्षित करने तथा लोक अदालतों के माध्यम से अपने विवादों को सुलझाने के लिए प्रोत्साहित करने के दोहरे उद्देश्य से कानूनी सहायता कैम्प लगाना

(f) बातचीत, मध्यस्थता और पंचाट के रास्ते से विवादों का हल करने हेतु प्रोत्साहित करना

(g) कानूनी सेवाओं के क्षेत्र में और विशेष रूप से गरीबों के लिए ऐसी सेवाओं की आवश्यकता के सन्दर्भ में शोध कार्य करना और उसे बढ़ावा देना

(h) इस अधिनियम के अन्तर्गत प्रदान की गई राशि द्वारा संचालित कानूनी सहायता कार्यक्रमों के क्रियान्वयन का आवधिक मूल्यांकन एवं देखभाल करना तथा पूरे देश अथवा देश के किसी भाग में लागू योजनाओं और कार्यक्रमों का स्वतंत्र मूल्यांकन करना

(i) इस अधिनियम के प्रावधानों के अन्तर्गत कानूनी सेवाएं और योजनाएं लागू करने के लिए अपने पास उपलब्ध कोष में से विशिष्ट योजनाओं के लिए विभिन्न स्वैच्छिक समाज सेवी संस्थाओं एवं राज्य और जिला प्राधिकरणों को सहायता के रूप में ग्रांट देना

(j) बार कौंसिल आफ इन्डिया के साथ सलाह-मशविरे को विकसित करना, क्लीनीकल कानूनी सेवा के कार्यक्रमों के लिए विश्वविद्यालयों, लॉ कालिजों और अन्य संस्थानों में कानूनी सेवा क्लीनिक स्थापित करना, देखभाल करना तथा उनकी कार्यप्रणाली का निरीक्षण करने हेतु मार्गदर्शन को बढ़ावा देना।

(k) लोगों में कानूनी साक्षरता और कानूनी जागरूकता का प्रसार करने हेतु तथा विशेष रूप से समाज के कमजोर वर्गों को उनके अधिकारों, सामाजिक कल्याण के विध ेयकों तथा अन्य कानूनों के साथ-साथ प्रशासनिक कार्यक्रमों और उपायों के प्रति शिक्षित करने के लिए उपयुक्त उपाय करना

(l) सबसे निचले स्तर पर काम कर रही स्वैच्छिक सामाजिक संस्थाओं; विशेष रूप से अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों, महिलाओं और ग्रामीण व शहरी मजदूरों के बीच काम कर रही संस्थाओं से सहयोग प्राप्त करने के लिए विशेष प्रयास करना

(m) राज्य प्राधिकरणों, जिला प्राधिकरणों, सर्वोच्च न्यायालय विधिक सेवाएं कमेटी, उच्च न्यायालय विधिक सेवाएं कमेटी, तालुक कानूनी सेवाएं कमेटियों और स्वैच्छिक समाज सेवी संस्थाओं तथा अन्य कानूनी सेवाएं संगठनों की कार्यप्रणाली की देखभाल करना तथा उन्हें समन्वित करना तथा कानूनी सेवाएं कार्यक्रमों को सही ढंग से लागू करने के लिए सामान्य निर्देश देना

देश में अधिकांश न्यायधीशों की अदालतों में उन कैदियों के लिए, जो अपने लिए वकील करने में असमर्थ हैं, तुरन्त कानूनी सहायता प्रदान करने के लिए कानूनी सहायता परामर्शक (कौसंलर) उपलब्ध करवा दिए गए हैं।

इस देश के लाखों लोगों को; जो जनजातीय, पिछड़े अथवा दूर-दराज के क्षेत्रों में गरीबी रेखा से नीचे जी रहे हैं; और अपनी कानूनी समस्याओं के हल के लिए आवश्यक सहायता और सहयोग हेतु कानूनी सेवाएं प्राधिकरणों की ओर देखने वालों को नियुक्त वकीलों (एडवोकेटों) द्वारा निशुल्क कानूनी सहायता प्रदान की जा रही है। मुकदमें में घिर जाने के बाद उन्हें प्राय: ऐसा लगता है कि वे एक गैर बराबरी की लड़ाई लड़ रहे हैं जिसमें बेहतर वित्तीय संसाधनों वाली पार्टी अधिक योग्य कानूनी सहायता प्राप्त कर सकती है। इन गरीब और कमजोर वर्गों के बीच यह सोच नहीं रहनी चाहिए कि उन्हे तुलनात्मक दृष्टि से घटिया कानूनी सेवा उपलब्ध है। कानूनी सेवाएं प्राधिकरणों को अपने पेनल के कानूनी सहायता देने वाले वकीलों की फीस दरों पर पुनर्विचार करना चाहिए और पेनलों को चुस्त बनाना चाहिए ताकि पेनल के एडवोकेट्स को अधिक काम तथा कानूनी सेवाएं प्राधिकरण से बेहतर मानदेय मिले और वे सहायता प्राप्त लोगों को प्रभावकारी कानूनी सहायता देने के लिए उत्साहित हों।

'नालसा' ने राज्य विधिक सेवाएं प्राधिकरणों को जेलों में कानूनी सहायता कक्ष स्थापित करने का आह्वान किया है ताकि जेलों में बन्द कैदियों को कानूनी सेवाएं प्राधिकरण अधिनियम 1994 के कारण तुरन्त और प्रभावशाली कानूनी सहायता प्राप्त हो जिसके वो अधिकारी है।

क्रियाकलाप 16.2.2

अपने क्षेत्र के कानूनी सेवाएं प्राधिकरणों की जानकारी प्राप्त करके उनकी सूची बनाईये। यदि आप दिल्ली में रहते हैं तो आप को सभी स्तरों के कानूनी सेवाएं प्राधिकरण मिल

जाएंगे और यदि आप किसी प्रान्त की राजधानी में रहते हैं तो आपको राज्य और जिला कानूनी सेवाएं प्राधिकरण मिल सकते हैं और यदि आप किसी जिले में रहते हैं तो आपको कम से कम एक और अधिक से अधिक दो कानूनी सेवाएं प्राधिकरण मिल सकते हैं।

16.3. लोक अदालत

लोक अदालत समझौता करने अथवा सौदेबाजी (बातचीत) करने की एक व्यवस्था है। इसको लोगों की अदालत भी कहा जाता है। इसको ऐसी अदालत के रूप में समझा जा सकता है जिसमें किसी विवाद अथवा शिकायत से प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से प्रभावित लोगों को शामिल किया जाता है। सरकार द्वारा स्थापित लोक अदालतें समझा बुझाकर और समझौते से विवाद को हल करती हैं। पहली लोक अदालत 1986 में चेन्नई में हुई थी। लोक अदालत ऐसे मुकद्मों को स्वीकार करती है जो उसके क्षेत्राधिकार में लटके पड़े हैं और उनको समझाने-बुझाने तथा समझौते से हल किया जा सकता है।

चित्र 16.1: लोक अदालत

16.3.1 लोक अदालतों की आवश्यकता

जैसा कि हम जानते हैं कि न्याय में देरी न्याय न देना है। विभिन्न स्तरों के न्यायालयों में लम्बित पड़े मामलों को देखने से यह कथन सत्य प्रतीत होता है। बकाया पड़े मुकद्मों की बढ़ती संख्या ने न्यायपालिका और न्यायिक प्रक्रिया को टूटने के कगार पर ला खड़ा किया है। ऐसी स्थिति में लोगों के पास सस्ता और शीघ्र न्याय पाने के लिए लोक अदालत ही एक मात्र विकल्प है। लोक अदालतें लम्बित मुकद्मों की संख्या के साथ प्रभावकारी ढंग से निबटती हैं। लोक अदालत की दृष्टि में क्षेत्र, समुदाय और परिवार में शान्ति की पुर्नस्थापना के लिए विवादों को लटकाने के बजाय कड़वाहट को समाप्त करने का 'सामाजिक लक्ष्य' होता है।

व्यक्ति
- औपचारिक अदालत ⟶ पैसे और समय की बर्बादी
- लोक अदालत ⟶ पैसे और समय की बचत

इसलिए लोक आदलातें समाज के गरीब वर्ग के हित में हैं।

16.3.2 लोक अदालतों की संवैधानिक आधार

भारत के संविधान के अनुच्छेद 39A के अन्तर्गत संसद ने विधिक सेवाएं प्राधिकरण अधिनियम 1994 लागू किया गया जिसमें समाज के कमजोर वर्गों को सुनिश्चित करने के लिए

देश के किसी भी नागरिक को आर्थिक अथवा अन्य अक्षमताओं के कारण न्याय प्राप्त करने के अवसरो से वंचित नहीं किया जाएगा, नि:शुल्क और सक्षम कानूनी सेवाएं प्रदान करने हेतु विभिन्न विधिक सेवाएं प्राधिकरणों को गठित करने तथा न्यायिक प्रक्रिया समान अवसरों के आधार पर न्याय को बढ़ावा देने के लिए; लोक अदालतें स्थापित करने की विधायी इच्छा को कार्य रूप दिया गया। वंचित और त्रस्त लोगों को सस्ता और शीघ्र न्याय दिलाने के लिए विधिक सेवाएं प्राधिकरणों के निर्माण तथा लोक अदालतों के गठन द्वारा संविधान के सामाजिक न्याय के मिशन को आगे बढ़ाने के लिए इस अधिनियम को पारित किया गया।

इस अधिनियम ने 'लोक अदालतों' को पहली बार संसदीय विधेयक के माध्यम से संवैधनिक दर्जा दिया यद्यपि यह संस्था भारत में सामाजिक सांस्कृतिक धरोहर के रूप में पहले से विद्यमान थी।

? क्या आप जानते हैं

विभिन्न अदालतों में लम्बित मुकद्मों की संख्या बहुत बड़ी है। उच्च न्यायालयों में बकाया मुकद्मों की स्थिति भयावह है। ऐसा अनुमान है कि भारत के विभिन्न उच्च न्यायालयों में लगभग 20 लाख मुकद्मे लम्बित पड़े हैं। इन सबसे यह दिखाई देता है कि हमारी न्यायिक क्षमता निरन्तर घट रही है और लोगों को न्याय दिला पाना लगभग असम्भव हो गया है।

16.3.3 लोक अदालतों का संगठन

प्रत्येक राज्य प्राधिकरण अथवा जिला प्राधिकरण अथवा सर्वोच्च न्यायालय विधिक सेवाएं कमेटी अथवा प्रत्येक उच्च न्यायालय विधिक सेवाएं कमेटी या तालुक कानूनी सेवा कमेटियां लोक अदालत आयोजित कर सकती हैं। लोक अदालत में तीन सदस्य होते हैं – एक सेवा निवृत अथवा सेवारत न्यायिक अधिकारी, कानूनी व्यवसाय से सम्बन्धित एक सदस्य (एडवोकेट, ला आफीसर अथवा कानूनी शिक्षक) और एक सामाजिक कार्यकर्ता जो महिला हो तो अच्छा। अधिनियम और इसके नियमों के अनुसार कानूनी सेवाएं प्राधिकरण के सचिव को लोक अदालतों के सफल संचालन के लिए विद्यार्थियों, सामाजिक कार्यकर्ताओं और समुदाय में काम करने वाली स्वैच्छिक संगठनों को इस कार्य के साथ जोड़ना चाहिए।

16.3.4 लोक अदालतों का क्षेत्राधिकार और निर्णय

लोक अदालतों का लक्ष्य समझौते और समाधान पर पहुँचना है। ऐसा करने के लिए इसको गवाहों को बुलाने तथा सवाल जवाब करने के लिए, प्रपत्रों को खोजने के लिए, शपथ पत्रों पर गवाही दर्ज करने के लिए तथा सार्वजनिक रिकार्ड मांगवाने के लिए सिविल न्यायालय की शक्ति प्राप्त है।

जब कभी कोई समझौता होता है तो एक निर्णय दिया जाता है जिससे सिविल न्यायालय की निर्णय माना जाता है। इसको सरल और स्पष्ट तरीके से लिखा जाता है। ऐसे निर्णयों के विरूद्ध किसी प्रकार की अपील की अनुमति नहीं दी जाती क्योंकि इन्हें अन्तिम माना जाता है। यदि कोई समझौता नहीं हो पाता तो इसको वापस अदालत में भेज दिया जाता है।

बहुत से लोग लोक अदालतों को औपचारिक अदालतों तथा ट्रिब्यूनलों से मुकद्में को हटाने के एक उपाय तथा औपचारिक अदालती व्यवस्था में मुकद्मों की बढ़ती संख्या को घटाने की एक रणनीति के रूप में देखते हैं। बीमा कम्पनियां लोक अदालतों के माध्यम से मोटर दुर्घटना मामलों में क्षतिपूर्ति को सस्ते और प्रशसनिक दृष्टि से सुविधाजनक पा कर अब लोग ट्रिब्यूनल के बजाय लोक अदालतों को प्राथमिकता देने लगे हैं।

पाठगत प्रश्न 16.1

1. हमें लोक अदालतों की आवश्यकता क्यों है? लोक अदालतों के संवैधानिक आधार की संक्षेप में चर्चा कीजिए।
2. क्या आपने अपने जिले में आयोजित किसी लोक अदालत को देखा है? यदि हाँ तो अपना अनुभव लिखिए।
3. रिक्त स्थान भरिये–
   (a) लोक अदालतों में तीन सदस्य होते हैं। – एक सेवारत अथवा सेवानिवृत ...., एक .... का सदस्य तथा एक सामाजिक कार्यकर्ता परन्तु महिला को प्राथमिकता।
   (b) लोक अदालत के निर्णय के विरूद्ध अपील ....जा सकती है।

16.4. प्ली बार्गेनिंग का सिद्धान्त

भारत जैसे लोकतान्त्रिक देश में न्याय का राज्य स्थापित करने में न्यायपालिका की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। इस पृथ्वी का प्रत्येक व्यक्ति न्याय की इच्छा रखता है। लेकिन जैसा कि हम जानते हैं कि न्याय में विलम्ब न्याय न मिलने के समान है। अत: यह चिन्तन का विषय है कि वास्तव में कितने लोगों को समय पर न्याय मिलता है। विभिन्न न्यायालयों में बहुत बड़ी संख्या में मुकद्में लम्बित पड़े हैं। मुकदमों के ढेर ने भारतीय अदालतों को बहुत समय से भयभीत कर रखा है।

अत: यह बहुत जरूरी है कि परीक्षण की प्रक्रिया को तेज करने तथा न्यायालयों को मुकद्मों के ढेर से मुक्त करने के लिए किसी अन्य प्रकार की व्यवस्था को अपनाना होगा। इतनी बड़ी जनसंख्या के देश में रोजाना हजारों अपराध किए जाते हैं। अत: यह बिल्कुल स्पष्ट है कि अदालतों में आपराधिक मुकद्मों के तेज दर से बढ़ने के कारण उपलब्ध कार्यबल अपेक्षा से कम पड़ जाता है। इसके अतिरिक्त मुकद्मों से जन्मी बहुत सी अपीलें भी न्यायालयों में मुकद्मों की संख्या को बढ़ा देती हैं। ऐसी स्थिति में यह चिन्ता का विषय है कि इस समस्या पर किस प्रकार नियन्त्रण पाया जाए।

16.4.1 प्ली बार्गेनिंग का अर्थ

"अपराध स्वीकार कर के कम सजा को सुनिश्चित करना" प्ली बार्गेनिंग का सम्भवत: सबसे छोटा अर्थ है। भारतीय विधायिका द्वारा अपनायी गई 'प्ली बार्गेनिंग' वास्तव में पश्चिम की देन है। 19वीं सदी में अमरीकी व्यवस्था में यह सिद्धान्त अच्छी तरह से प्रचलित था। प्ली बार्गेनिंग अमरीकी व्यवस्था में इतना सामान्य है कि अमरीकी दण्ड न्यायालय

में प्रत्येक मिनिट में एक मुकद्मा दोष मानने पर सुलझा लिया जाता है। इग्लैण्ड, वेल्स आस्ट्रेलिया और विक्टोरिया में भी 'प्ली बार्गेनिंग' को स्वीकार किया जाता है।

प्ली बार्गेनिंग को अभियुक्त और अभियोजन के बीच परीक्षण से पूर्व सौदेबाजी (बातचीत) के रूप में परिभाषित किया जा सकता है जिस दौरान अभियुक्त अभियोजन से कुछ रियायतों के बदले में अपराध स्वीकार करने को सहमत हो जाता है। इससे अपराधी के बचाव करने वालों को परीक्षण की प्रक्रिया से गुजरने से बचने का मौका मिलता है अन्यथा वास्तविक गम्भीर दोष के कारण उसमें अधिक दण्ड का खतरा होता है। उदाहरण के लिए चोरी के दोष से आरोपित एक अपराधी के लिए राज्य की जेल में कैद होने की सजा है, परन्तु उसे चोरी के दोष का अपराध स्वीकार करने का अवसर दिया जा सकता है जिसके लिए जेल की सजा नहीं होगी।

प्ली बार्गेनिंग के प्रकारः

प्ली बार्गेनिंग को व्यापक रूप से तीन प्रकार में विभाजित किया जा सकता है। a) आरोप बार्गेनिंग, b) दण्ड बार्गेनिंग और c) तथ्य बार्गेनिंग

(a) आरोप (चार्ज) बार्गेनिंग एक सामान्य और व्यापक रूप से सुपरिचित 'प्ली' है। इसमें अभियुक्त को जिन आरोपों अथवा अपराधों के परीक्षण का सामना करना होगा, उन के लिए सौदेबाजी करने को शामिल किया जाता है। प्रायः अपराध स्वीकार करने के बदले अभियोजक बड़े आरोपों अथवा अन्य कुछ आरोपों को निरस्त कर देता है। उदाहरण के लिए हत्या के प्रथम श्रेणी के आरोपों को निरस्त करने के बदले में एक अभियोजक हत्या के अपराध की स्वीकृति को मान सकता है।

(b) दण्ड बार्गेनिंग में हल्की सजा के लिए अपराध स्वीकार करने की दलील पर समझौते को शामिल किया जाता है। यह अभियोजन को परीक्षण और केस सिद्ध करने की आवश्यकता से बचाता है। यह डिफेन्डेन्ट (बचाव पक्ष) को हल्की सजा का अवसर प्रदान करता है।

(c) तथ्यों की बार्गेनिंग का ऐसे अभियोजन में बहुत कम प्रयोग किया जाता है जिसमें अभियोजन पक्ष उत्तेजक तथ्यात्मक हालात को अदालत के समक्ष प्रस्तुत न करने पर सहमत हो जाता है क्योंकि अन्यथा दण्ड सम्बन्धी दिशा निर्देशों के अन्तर्गत आवश्यक न्यूनतम अथवा उससे अधिक कठोर दण्ड दिया जा सकता है।

? क्या आप जानते है

संयुक्त राज्य अमेरिका में प्ली बार्गेनिंग बहुत सामान्य है। अधिकाधिक आपराधिक मामले न्यायिक परीक्षण के बजाय प्ली बार्गेनिंग से सुलझाए जाते हैं। संयुक्त राज्य में मानव हत्याओं के 95% अभियुक्तों को प्ली बार्गेनिंग के आधार पर दोषी करार दिया जाता है।

पाठगत प्रश्न 16.2

1. 'प्ली बार्गेनिंग' की व्याख्या कीजिए।
2. 'प्ली बार्गेनिंग' की विभिन्न प्रकारों को सूचिबद्ध कीजिए।

16.5 आपराधिक मामलों में प्ली बार्गेनिंग

16.5.1. आपराधिक न्यायिक व्यवस्था में प्ली बार्गेनिंग को शामिल करना

मूल रूप से प्ली बार्गेनिंग का अभिप्राय आपराधिक मुकद्मों में लगने वाले समय को कम करना है। प्ली बार्गेनिंग अवधारणा के लागू होने से पहले सर्वोच्च न्यायालय इसका घोर विरोधी था। सर्वोच्च न्यायालय के विचारानुसार मुकद्मों पर न्यायालय को उनके गुण दोष के आधार पर ही निर्णय लेना होता है।

यदि अभियुक्त अपना अपराध स्वीकार कर लेता है तब भी उसको उपयुक्त दण्ड देना बनता है। न्यायालय का विचार था कि केवल अपराध स्वीकार लेना दण्ड कम करने का आधार नहीं होना चाहिए; न ही अभियुक्त इस दलील पर सौदेबाजी कर सकता है कि क्योंकि वह अपराध स्वीकार कर रहा है – इसलिए दण्ड को कम किया जाना चाहिए। सर्वोच्च न्यायालय के दृढ़ विरोध के बावजूद सरकार को इस सिद्धान्त को लागू करना सुखद प्रतीत हुआ। दण्ड न्यायालयों के पास लम्बित पड़े मामलों की बड़ी संख्या को इस अधिनियम को लागू करने का कारण बताया गया। यदि कोई व्यक्ति अपना अपराध स्वीकार कर लेता है तो अभियोजन का समय बचता है जिसको अन्य अधिक गम्भीर अपराधों को सिद्ध करने में लगाया जा सकता है।

'प्ली बार्गेनिंग' केवल उन्हीं मामलों में प्रयोग की जा सकती है जिनमें अधिकतम सात साल की कैद हो सकती है। यह उस अपराध में लागू नहीं होती जहाँ अपराध से देश की सामाजिक आर्थिक स्थिति प्रभावित होती हो अथवा अपराध किसी महिला या 14 वर्ष से छोटे बच्चे के साथ किया गया हो।

प्ली बार्गेनिंग का आवेदन अपराध का परीक्षण करने वाली अदालत के समक्ष स्वेच्छा से करना चाहिए। तब शिकायतकर्ता और अभियुक्त को सन्तोषजनक ढंग से केस निपटाने के लिए समय दिया जाता है। अदालत अपराध स्वीकृती के मामले में दण्ड को एक चौथाई कर सकता है। प्ली बार्गेनिंग के आधार पर दी गई सजा के विरूद्ध कोई अपील नहीं की जा सकती।

प्ली बार्गेनिंग पिछले दशकों में उभर कर सामने आई है और कानूनी समुदाय में अपनी स्वीकृति बना चुकी है। द क्रिमीनल ला बिल (संशोधन) 2003 को जब संसद में प्रस्तुत किया गया तो इस पर खूब सार्वजनिक बहस हुई। खूब हो-हल्ले के बावजूद सरकार ने इसे स्वीकार करने योग्य पाया और अन्त में आपराधिक प्रक्रिया संहिता में धारा 265A से 265L तक को जोड़ा गया ताकि प्ली बार्गेनिंग लागू की जा सके।

16.5.2 प्ली बार्गेनिंग के लाभ

'प्ली बार्गेनिंग' विधि की सबसे महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि इस से अदालतों और राज्य को मुकदमों का बोझ कम करने में सहायता मिलती है। छोटे मामलों को प्ली बार्गेनिंग के द्वारा सुलझाने के तरीके से अभियोजकों के कार्य भार को कम करके यह उन्हें गम्भीरतम मामलों पर तैयारी करने योग्य बनाती है। अपराधी द्वारा अपने कृत्यों का उत्तरदायित्व स्वीकार

करने एवं कीमती और लम्बी परीक्षण प्रक्रिया के बिना स्वेच्छा से कानून के समक्ष प्रस्तुत होने के कारण यह सुधार का भी एक घटक है। ऐसे मामलों में जहाँ अभियोजन कमजोर हो, वहाँ गवाहों और साक्ष्यों की कमी के कारण परीक्षण पूरा किया जाता है और अन्तिम परिणाम बरी करना हो सकता है, वहाँ अभियोजन के पास एक अवसर होता है कि वह अभियुक्त के साथ प्ली बार्गेनिंग के लिए सहयोग दे कर अपराध सिद्ध कर सके। एक बुद्धिमान अभियोजक गम्भीर अभियुक्त के विरूद्ध साक्ष्य जुटाने के लिए किसी महत्वहीन अभियुक्त के साथ प्ली बार्गेनिंग की सहमति बना सकता है। प्राय: ऐसे मामलों में जहाँ अभियुक्त के विरूद्ध अपराध सिद्ध करने में वृद्धजनों अथवा महिलाओं की भूमिका प्रमुख होती है, वहाँ (बृद्धजनों की) मृत्यु अथवा असहयोग मुकद्मों के विपरीत परिणाम का मुख्य कारण बनता है। इसके द्वारा अभियोजन बरी हो जाने की सम्भावना को नकारता है और अपराधी अधिक गम्भीर आरोपों के फलस्वरूप होने वाली अधिक सजा से बचने का मौका पाता है। अपराध के शिकार हुए व्यक्ति की दृष्टि से भी प्ली बार्गेनिंग एक अच्छा विकल्प है जिसमें उसे अधिकतम राहत मिलती है और अभियुक्त दण्डित होने तक की लम्बी अदालती प्रक्रिया से बच पाता है।

इस व्यवस्था से जेलों में बन्द विचाराधीन मुकद्मों में फंसे कैदियों की बड़ी संख्या को बहुत राहत मिलती है और अदालतों में लम्बे समय से लटके मामलों में भी कमी आती है।

प्ली बार्गेनिंग के पक्ष में कुछ अन्य कारक भी हैं जो तीन मुख्य वर्गों में आते हैं। प्रथम तो कुछ न्यायविद् यह मानते हैं कि ऐसे बचाव पक्ष को दण्ड नीति के अन्तर्गत लाभ मिलना चाहिए जो अपना अपराध स्वीकार कर लेता है। वे इस स्थिति के पक्ष में अनेक तर्क प्रस्तुत करते हैं। विशेष रूप से अपराध स्वीकृति से उत्तरदायित्व स्वीकार करना परिलक्षित होता है और इससे ऐसी मानसिकता प्रकट होती है जो सुधार की ओर जाने की इच्छा दर्शाती है जिसके कारण लम्बे समय के बजाय कम समय में पुनर्वास की उम्मीद जगती है। दूसरा विचार प्ली बार्गेनिंग को प्राथमिक रूप से दण्ड प्रक्रिया के रूप में नहीं अपितु विवाद समाधान के रूप में लेता है। प्ली बार्गेनिंग के कुछ पैरोकार मानते हैं कि अभियुक्त को तथ्यात्मक तथा कानूनी विवादों पर समझौता करने का अवसर देना वांछनीय है। उनकी दृष्टि में यदि प्ली समझौते से अभियुक्त और राज्य, दोनों की परिस्थिति में सुधार नहीं होता तो कोई न कोई पक्ष अवश्य ही परीक्षण (मुकद्मे) के लिए आग्रह करेगा।

अन्त में कुछ लोग प्ली बार्गेनिंग का समर्थन आवश्यकता और सस्ता होने के आधार पर करते हैं। वे प्ली नेगोसिएशन को दण्ड विधान अथवा विवाद समाधान के रूप में न मान कर यह तर्क देते हैं कि समाज ऐसे सभी अपराधियों पर मुकद्मा (परीक्षण) नहीं चला सकता जिनकी अपराध स्वीकृति का उन्हें कोई लाभ नहीं मिले और वह (अपराधी) मुकदमा चलाने की मांग करें। कम से कम प्ली बार्गेनिंग के कारण बचे अतिरिक्त संसाधनों के अन्य अधिक उपयुक्त लाभ हैं।

पाठगत प्रश्न 16.3

1. 'प्ली बार्गेनिंग' के क्या लाभ है?

क्रियाकलाप 16.5

1. अपने अध्ययन केन्द्र के विद्यार्थियों के दो समूह बनाइये और उनके बीच बाद-विवाद करवाइये। एक समूह 'प्ली बार्गेनिंग' का पक्ष लेगा और दूसरा विरोध करेगा। चर्चा के मुख्य बिन्दुओं को नोट कीजिए।

आपने क्या सीखा

- 'विधिक सहायता और सेवाएं' ऐसे प्रावधान हैं जिनका लाभ कोई भी गरीब व्यक्ति उठा सकता है। यदि कोई व्यक्ति गरीब और अनपढ़ है तो भी उसके लिए न्याय सुरक्षित है। अब गरीब के लिए न्याय पाने के रास्ते में पैसा कोई अड़चन नहीं है।
- सबसे पहले कानूनी सहायता सेवाएं फ्रांस सरकार द्वारा 1851 में प्रदान की गई थीं। बाद में 1944 में इग्लैण्ड सरकार ने गरीबों और जरूरतमन्दों को कानूनी सहायता प्रदान करने के लिए प्रयास किए। हमारा संविधान भी समाज के कमजोर वर्गों के लिए कानूनी सहायता और सेवाएं सुरक्षित करता है। यह सुविधा हमारे संविधान के अनुच्छेद 39A के अन्तर्गत प्रदान की जाती है। विधिक सेवाएं प्राधिकरण अधिनियम 1987 में लागू किया गया। इस अधिनियम को भारत के संविधान के अनुच्छेद 39 में दिए गए लाभ को सुरक्षित करने के लिए लागू किया गया है।

  अधिनियम परिभाषित करता है कि कानूनी सहायता के लिए कौन अधिकृत हैं और किन परिस्थितियों में उनको यह अधिकार प्राप्त है?

  इस अधिनियम में चार स्तरों पर कानूनी प्राधिकरण गठित करने के प्रावधान है।

  (1) राष्ट्रीय विधिक सेवाएं प्राधिकरण

  (2) राज्य विधिक सेवाएं प्राधिकरण

  (3) जिला विधिक सेवाएं प्राधिकरण

  (4) तालुक विधिक (कानूनी) सेवाएं प्राधिकरण
- लोक अदालत का अभिप्राय है लोगों की अदालत। यह ऐसी व्यवस्था है जिसमें लोग अपने झगड़ों (विवादों) और समस्याओं को समझौते और बातचीत के आधार पर हल कर सकते हैं। यदि कोई पीड़ित व्यक्ति न्याय पाने के लिए अदालत जाता है तो उसे काफी पैसा और समय खर्च करना पड़ता है। लोक अदालत पीड़ित व्यक्ति का समय और पैसा बचाती है।
- प्ली बार्गेनिंग की अवधारणा अमेरिकी व्यवस्था से ली गई है। अमेरिकी व्यवस्था में इस सिद्धान्त को अपनाने से केस निपटाने में तेजी आई है। प्ली बार्गेनिंग का अर्थ है कि अभियुक्त अपराध स्वीकार करने के लिए तैयार है, पर बदले में अभियोजन द्वारा कुछ रियायतें मिलनी चाहिए।

  प्ली बार्गेनिंग तीन स्तर पर की जा सकती है

  (1) दोष बार्गेनिंग : दोष निर्धारित करते समय प्ली बार्गेनिंग करना

टिप्पणी

(2) दण्ड बार्गेनिंग : इसमें अपराध स्वीकार करने पर कम सजा का समझौता शामिल होता है।

(3) तथ्य बार्गेनिंग : इसमें अभियोजन कुछ ऐसी तथ्यात्मक परिस्थितियों को अदालत को न बताने के लिए सहमत होता है क्योंकि उनको बताने के कारण अभियुक्त को निश्चित न्यूनतम सजा तो अवश्य होगी।

कानूनी सहायता कार्यक्रमों को पूरे देश में एक समान तरीके से लागू करने को संवैधानिक आधार प्रदान करने के लिए 1987 में विधिक सेवाएं प्राधिकरण अधिनियम लागू किया गया जिसको बाद में 1994 में संशोधित किया गया।

लोक अदालत, जिसे लोगों की अदालत भी कहा जाता है; विवादों को बातचीत और आपसी समझौते से सुलझाने की व्यवस्था है। आज के समय में प्ली बार्गेनिंग बहुत महत्वपूर्ण बन चुकी है और इसलिए इसका हमारी आपराधिक न्यायिक व्यवस्था में एक महत्वपूर्ण स्थान है।

पाठांत प्रश्न

1. विधिक (कानूनी) सेवाएं प्राधिकरण अधिनियम 1987 (संशोधित 1994) के मुख्य प्रावधानों की व्याख्या कीजिए।
2. विधिक सेवाएं प्राधिकरण अधिनियम 1987 के अन्तर्गत गठित प्राधिकरणों के नाम लिखिए। उनके क्या कार्य हैं?
3. "लोक अदालत व्यवस्था समाज के गरीब वर्गों के लिए लाभदायक है" व्याख्या कीजिए।
4. लोक अदालत के क्षेत्राधिकार एवं निर्णय की संक्षेप में व्याख्या कीजिए।
5. प्ली बार्गेनिंग का क्या अर्थ है? प्ली बार्गेनिंग के लाभ लिखिए।
6. कालम 'A' में लिखे अधिकारों को कालम 'B' में लिखे उनसे सम्बन्धित कर्त्तव्यों के साथ मिलाईये

A	B
(a) विधिक सेवाएं प्राधिकरण अधिनियम 1987 को गठित करने का अधिकार है	(a) मुकद्मों का बोझ कम करने में
(b) लोक अदालत को कहते हैं –	(b) लोक अदालत आयोजित कर सकता है
(c) राज्य प्राधिकरण –	(c) अमरीकी व्यवस्था से
(d) प्ली बार्गेनिंग अवधारणा ली गई है –	(d) लोगों की अदालत
(e) प्ली बार्गेनिंग अदालतों की सहायता करती है –	(e) राष्ट्रीय कानूनी सेवाएं प्राधिकरण

पाठगत प्रश्नों के उत्तर

16.1

1. जैसा कि हम जानते हैं कि देरी से न्याय मिलना, न्याय न मिलने के बराबर है। यदि हम विभिन्न स्तरों की अदालतों में बकाया केसों के ढेर की ओर देखते हैं तो यह कथन सत्य लगता है। बकाया केसों के बढ़ते हुए ढेर ने न्यायपालिका और न्यायिक प्रक्रिया को टूटने के कगार पर ला खड़ा किया है। इस स्थिति में लोगों के समक्ष सस्ता और शीघ्र न्याय पाने के लिए लोक अदालत सबसे अच्छा विकल्प है। लोक अदालतें बातचीत और समझौते से तय/हल होने वाले केस लेती हैं। लोक अदालतें गरीब लोगों के समय और पैसे की बचत करती हैं।

   संवैधानिक आधार

   भारत के संविधान के अनुच्छेद 39A के अन्तर्गत संसद ने विधिक सेवाएं प्राधिकरण अधिनियम 1987 पारित किया जिसमें यह सुनिश्चित करने के लिए, कि भारत के किसी भी नागरिक को आर्थिक अथवा अन्य किसी अयोग्यता के आधार पर न्याय प्राप्त करने के अवसर से वंचित नहीं किया जाएगा, समाज के कमजोर वर्गों को नि:शुल्क तथा सक्षम कानूनी सेवाएं प्रदान करने के लिए विभिन्न 'विधिक सेवाएं प्राधिकरण' गठित करने तथा समानता के आधार पर न्याय को बढ़ावा देने हेतु कानूनी व्यवस्था के क्रियान्वयन को सुनिश्चित करने के लिए लोक अदालतें स्थापित करने की संसद की विधायी इच्छा थी।

   वंचित तथा बेसहारा लोगों को सस्ता और शीघ्र न्याय प्रदान करने के लिए लोक अदालतें आयोजित करना तथा विधिक सेवाएं प्राधिकरण निर्मित करके सामाजिक न्याय के संवैधानिक मिशन को आगे बढ़ाने के लिए यह अधिनियम पारित किया गया था।

2. हाँ, लोक अदालत में उपस्थित रहने का मेरा अनुभव बहुत उत्साहवर्द्धक था

3. (a) (i) न्यायिक अधिकारी (ii) कानूनी व्यवसाय

   (b) नहीं

16.2

1. 'प्ली बार्गेनिंग' को अभियुक्त और अभियोजन के बीच 'परीक्षण' (ट्रायल) से पूर्व सौदेबाजी (बातचीत) के रूप में परिभाषित किया जा सकता है।

2. (क) आरोप (चार्ज) बार्गेनिंग

   (ख) दण्ड बार्गेनिंग एवं

   (ग) तथ्यों को बार्गेनिंग

16.3

1. 'प्ली बार्गेनिंग' विधि का सबसे बड़ा लाभ यह है कि इससे अदालतों का भार कम करने में सहायता मिलती है। अपराधी अधिक गम्भीर आरापों के फलस्वरूप होने वाली अधिक सजा से बचने का मौका पाता है। अपराध के शिकार हुए व्यक्ति की दृष्टि से भी 'प्ली बार्गेनिंग' एक अच्छा विकल्प है। जिसमें अधिकतम राहत मिलती है और अभियुक्त दण्डित होने की लम्बी अदालती प्रक्रिया से बच जाता है।

मॉड्यूल 5
भारतीय संविधान-I

अध्याय 17 भारतीय संविधान का स्वरूप

अध्याय 18 संविधानवाद एवं प्रस्तावना

अध्याय 19 मौलिक अधिकार और कर्त्तव्य

अध्याय 20 राज्य के नीति निदेशक सिद्धान्त

टिप्पणी

17

भारतीय संविधान का स्वरूप

संविधान किसी राज्य की मशीनरी को चलाने वाले कानूनों और नियमों का समुच्चय है जो सरकार की भिन्न संस्थाओं तथा क्षेत्रों जैसे कार्यपालिका, विधायिका, न्यायपालिका एवं केंद्रीय, क्षेत्रीय (प्रांतीय) तथा स्थानीय सरकारों के बीच सम्बन्धों को परिभाषित एवं निर्धारित करता है। प्रत्येक संविधान का लक्ष्य कुछ आधारभूत और सुस्थापित सिद्धान्तों के आधार पर एक सरकारी ढांचा निर्मित करना होता है। यद्यपि इन सिद्धान्तों में से कुछतो अधिकांश संविधानों में पाए जाते हैं, परन्तु कुछ ऐसे सिद्धान्त हैं जो प्रत्येक संविधान में अलग-अलग होते हैं। भारत का संविध ान भी कोई अपवाद नहीं है और इसके अपने अलग कुछ मूल सिद्धान्त हैं।

भारत का संविधान इस देश का सर्वोच्च कानून है। यह मूल राजनीतिक सिद्धान्तों को परिभाषित करते हुए इसके ढांचे, विधियों, शक्तियों, सरकार के कर्तव्यों को निश्चित करता है तथा मूल कर्त्तव्यों, नीति निदेशक सिद्धान्तों और नागरिकों के अन्य कर्त्तव्यों को स्पष्ट करता है। 26 नवम्बर 1949 को संविधान सभा द्वारा अपनाया गया यह संविधान दुनिया के किसी भी संप्रभु देश का सबसे बड़ा लिखित संविधान है जिसमें 395 अनुच्छेद, 24 भागों में विभाजित, 12 अनुसूचियां हैं। यह संविधान 26 जनवरी 1950 को लागू हुआ। 26 जवनरी की तिथि विशेष रूप से 1930 में की गई पूर्ण स्वतंत्रता की घोषणा की स्मृति बनाए रखने के लिए चुनी गई थी। हमारा संविध ान भारत संघ को एक संप्रभु, समाजवादी, पंथ निरपेक्ष, लोकतांत्रिक गणराज्य घोषित करता है जो अपने सभी नागरिकों को न्याय, समानता और स्वतंत्रता के प्रति आश्वस्त करता है तथा उन सबके बीच भ्रातृत्व का भावना को बढ़ावा देने का प्रयास करता है।

उद्देश्य

इस पाठ को पढ़ने के बाद आप:

- भारतीय संविधान के स्वरूप को समझ पाएंगे;
- संविधान सभा के संगठन, प्रारूप समिति की भूमिका तथा संविधान के उद्देश्यों का वर्णन कर सकेंगे;
- भारत के संविधान की प्रस्तावना का महत्व समझ सकेंगे;
- भारत के संविधान की मुख्य विशेषताओं का वर्णन कर सकेंगे;

- लिखित और अलिखित संविधान में अन्तर कर सकेंगे; तथा
- भारतीय संविधान के संघात्मक और एकात्मक ढांचे को पहचान सकेंगे।

17.1 भारतीय संविधान का स्वरूप

भारत राज्य के प्रमुख लक्षण निम्नलिखत हैं जो स्वयं इस की प्रकृति को उजागर करते हैं।

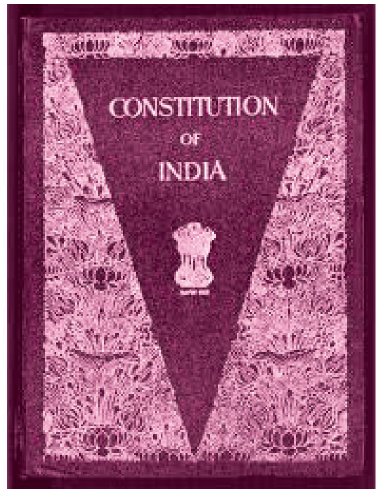

चित्र 17.1: भारत का संविधान

(i) **उदारवादी - लोकतांत्रिक राज्य:** उदारवादी लोकतांत्रिक राज्य का माडल एक ऐसी राजनीतिक व्यवस्था की ओर इंगित करता है जिसमें लोकतंत्र अथवा लोगों का शासन अपने वास्तविक अर्थ में शासन को वैध बनाने हेतु कार्य करता है। सरकार रूपी मशीनरी को लोगों द्वारा चुने हुए प्रतिनिधि चलाते हैं तथा अपनी नीतियों और कार्यों के लिए लोगों के प्रति जवाबदेह होते हैं। उदारवादी लोकतांत्रिक राज्य इस धारणा पर आधारित है कि सरकार अपने आप में कोई अंतिम लक्ष्य नहीं है अपितु यह अधिकाधिक लोगों के अधिकाधिक लाभ को अनुभूत करने का एक माध्यम है। इसके अतिरिक्त सरकार के प्राधिकार निरपेक्ष नहीं है अपितु कानूनों द्वारा सीमित कर दिए गए हैं।

इन सब बातों से हमें ज्ञात होता है कि भारत एक उदारवादी लोकतांत्रिक राज्य की सभी शर्तों को पूरा करने के लिए प्रतिबद्ध है। यह ठीक ही कहा गया है कि भारतीय संविधान सार्वभौमिक व्यस्क मताधिकार, आवधिक चुनावोंश प्रतिनिधियात्मक और उत्तरदायी सरकार, स्वतंत्र न्यापालिका, कानून का शासन और शक्तियों के विभाजन का प्रावधान करता है।

(ii) **संघीय राज्य:** महात्मा गांधी ने भारतीय सन्दर्भ में शक्तियों के विकेन्द्रीकरण की चर्चा की थी। आर्थिक विकास और सामाजिक परिवर्तन की सभी शक्तियां राज्य में निहित हैं। राज्य को कृषि तथा औद्योगिक क्षेत्र में विकास की बहुत शक्तियां प्राप्त हैं। रजनी कोठारी के शब्दों में "शक्तिशाली और एकात्मक राज्य की विचारधारा और व्यक्तिपूजा ने देश को केंद्रीकृत बना दिया है।

(iii) **कल्याणकारी राज्य:** भारतीय संविधान के निर्माताओं ने भारत को कल्याणकारी राज्य बनाने के लिए अनेक प्रावधान किए हैं। एक कल्याणकारी राज्य के मूल उद्देश्यों को स्पष्टतया संविधान की प्रस्तावना में शामिल किया गया और वस्तुत: संविधान के भाग IV के सभी प्रावधानों, जिनमें राज्य के नीति निदेशक सिद्धान्त भी सम्मिलत हैं, में भी शामिल किया गया। अनुच्छेद 38 के अनुसार "राज्य लोगों के कल्याण के लिए एक ऐसी सामाजिक व्यवस्था को रक्षित एवं संरक्षित करेगा जिसमें राष्ट्रीय जीवन की सभी संस्थाएं सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक न्याय सुनिश्चित करेंगी।

(iv) **जाति आधारित समाज:** प्राचीन सभ्यता के प्रारम्भ से ही हमारे पूर्वज वंशानुगत सामाजिक संगठन की व्यवस्था को विकसित कर के व्यवहार में लाते रहे हैं जो भारतीय सामाजिक संरचना का मूल आधार है। जाति की व्यवस्था जन्म के साथ ही किसी व्यक्ति का स्थान निर्धारित कर देती है, वह अपने पिता के व्यवसाय को विरासत में प्राप्त करता है और आगे अपने बच्चों को सौंप देता है। जाति व्यवस्था के बारे में महत्वपूर्ण बात यह है कि केवल हिन्दुओं में ही जाति पर बल नहीं दिया जाता है अपितु यह भारतीय मुसलमानों, इसाईयों, सिक्खों, जैनियों और यहूदियों में भी कुछ हद तक प्रचलित है।

(v) **बहुधर्मी समाज:** यहां धर्म के आधार पर समरसता की कमी है। अंग्रेजों ने भारतीय जनसंख्या को हिन्दुओं, मुसलमानों, बौध, पारसी और इसाईयों में बांटा। यह तथ्य है कि ऐसा एक भी समुदाय नहीं है जिसमें विविधता न हो। व्यक्तिगत कानून तक भी एक जैसे नहीं हैं।

सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक और जातीय विविधताओं के बावजूद भारत मुख्यत: एक संगठित समाज रहा है। इस देश की धर्म, भाषा और प्रथाओं की विस्मयकारी विविधता के नीचे छिपी एकता उल्लेखनीय अचरज की बात है। भारत एक राजनीतिक इकाई है जिसका प्रत्येक भाग एक ही संविधान से शासित है।

पाठगत प्रश्न 17.1

1. 'कल्याणकारी राज्य' का क्या अर्थ है?

2. भारतीय सन्दर्भ में 'राज्य' की किन्हीं दो विशेषताओं का उल्लेख कीजिए।

17.2 संविधान सभा

एक नये संविधान को अपनाने अथवा बनाने के लिए एक संविधान सभा का गठन किया गया था। संविधान सभा की अवधारणा का अर्थ था 'लोगों को अपना भविष्य तथा जिन नीतियों के अन्तर्गत वह रहना चाहें, उन्हें निर्धारित करने का अधिकार।'

भारत के संविधान को तैयार करने के व्यापक काम को भारतीय लोगों की इच्छा से स्वीकार किया गया। संविधान को दिसम्बर 1946 से नवम्बर 1949 के बीच तैयार किया गया। इस दौरान

इस सभा के 11 अधिवेशन हुए और वास्तविक कार्य 165 दिन हुआ। ऐतिहासिक दस्तावेज - 'स्वतंत्र भारत का संविधान' सभा द्वारा 26 नवम्बर 1949 को पारित एवं स्वीकार किया गया और इसको 26 जनवरी 1950 को लागू किया गया।

संविधान सभा को कुल 389 सदस्य लेने थे। इनमें से 296 सदस्य ब्रिटिश भारत से निर्वाचित किए जाने थे तथा शेष 93 देशी रियासतों के प्रतिनिधि होने थे। संविधान सभा के सदस्यों को अप्रत्यक्ष रूप से उस समय की प्रान्तीय विधानसभाओं के सदस्यों द्वारा निर्वाचित किया गया था। इसके साथ ही रजवाड़ों ने भी सदस्य मनोनीत किए थे। निर्वाचित सदस्यों के लिए साम्प्रदायिक आधार पर स्थान आरक्षित किए गए थे। जब संविधान सभा गठित की गई थी तब भारत एक था और अविभाजित था। स्वतंत्रता के समय मुस्लिम लीग ने संविधान सभा का बहिष्कार किया। परिणाम स्वरूप पाकिस्तान में शामिल किए गए क्षेत्रों के प्रतिनिधि भारत की संविधान सभा के सदस्य नहीं रहे। इसलिए निर्वाचित 296 सदस्यों में से 31 दिसम्बर 1947 को केवल 229 सदस्य रह गए। संविधान सभा में कांग्रेस से सम्बद्ध सदस्यों की संख्या अधिक थी। कांग्रेस के भीतर भी स्वतंत्रता आन्दोलन से जुड़े कई नेता संविधान सभा के सदस्य थे। सभा में 29 मुस्लिम लीग, 1 अकाली तथा अन्य सात निर्दलीय थे।

संविधान सभा की पहली बैठक की अध्यक्षता डा. सच्चिदानन्द ने की थी। बाद में डा. राजेन्द्र प्रसाद को संविधान सभा का अध्यक्ष निर्वाचित किया गया था। संविधान सभा के सदस्यों को विशुद्ध रूप से पार्टी के आधार पर नहीं चुना गया था अपितु उन्हें जीवन के सभी पहलुओं से लिया जो भारतीय जनसंख्या के प्रत्येक वर्ग का प्रतिनिधित्व करते थे। स्वतंत्र भारत के प्रथम प्रधान मन्त्री पं. जवाहर लाल नेहरू संविधान सभा की प्रेरक शक्ति थे। सुभाष कश्यप के विचारानुसार नेहरु ने इसके ढांचे और आकार को तो तैयार किया परन्तु सबसे महत्वपूर्ण है कि नेहरु जी ने भारत के संविधान को दर्शन और दृष्टि दी तथा प्रेरक शक्ति और आत्मा प्रदान की।

17.2.1 संविधान सभा की समितियां

संविधान सभा की कुल मिलाकर 15 से अधिक समितियां थी जिनमें से प्रमुख थी - प्रारूप समिति, संघीय शक्ति समिति, संघीय संविधान समिति, अल्प संख्यकों और मौलिक अधिकारों की परामर्श समिति, चीफ कमिशनर के प्रान्तों की समिति, संघीय संविधान के वित्तीय प्रावधानों की समिति। इन समितियों ने अप्रैल से अगस्त 1948 के बीच जनजातीय क्षेत्रों पर परामर्श समिति अपनी रिपोर्ट संविधान सभा विचारार्थ्र सौंपी थी जिन पर संविधान सभा ने विचार किया था। इन निर्णयों के आधार पर प्रारूप समिति में डा. बी. आर. अम्बेडकर और उसके साथियों ने प्रारूप को अन्तिम रूप और आकार दिया। संविधान सभा द्वारा 29 अगस्त 1947 को संविधान के प्रारूप पर विचार करने के लिए एक प्रारूप समिति नियुक्त की गई थी। डा. बी. आर. अम्बेडकर को इसका अध्यक्ष नियुक्त किया गया था तथा इसमें कुछ अन्य सहायक सदस्य भी थे। डा. अम्बेडकर की अध्यक्षता में प्रारूप समिति ने संविधान सभा के निर्णयों को वैकल्पिक एवं अतिरिक्त प्रस्तावों के साथ 'भारत के संविधान का प्रारूप' के रूप में तैयार किया जिसको फरवरी 1948 में प्रकाशित किया गया। प्रारूप समिति ने प्रारूप तैयार करने में छः मास से कम का समय लिया।

पाठगत प्रश्न 17.2

उपयुक्त शब्दों से रिक्त स्थान भरिये

1. .... प्रारूप समिति के अध्यक्ष थे। (पं. नेहरू, डा. राजेन्द्र प्रसाद, डा. बी. आर. अम्बेडकर)
2. .... संविधान सभा के अध्यक्ष थे। (डा. राजेन्द्र प्रसाद/डा. बी. आर. अम्बेडकर)

17.3 संविधान के उद्देश्य

अनेक राजनीतिक विचारकों का मत है कि स्वतंत्र भारत के संविधान को लगभग 200 वर्षों के औपनिवेशिक शासन, जन आधारित स्वतंत्रता संघर्ष, राष्ट्रीय आन्दोलन, देश का विभाजन और साम्प्रदायिक हिंसा की पृष्ठभूमि में तैयार किया गया। संविधान के निर्माता लोगों की आकांक्षाओं, देश की एकता और अखण्डता तथा एक लोकतान्त्रिक समाज की स्थापना के प्रति चिन्तित थे। संविधान सभा के अलग-अलग सदस्यों की अलग-अलग विचाराधारा थी। उनमें से कुछ का समाजवादी सिद्धान्तों के प्रति झुकाव था, और कुछ अन्य गांधीवादी विचारों पर जोर देते थे। उनमें से अधिकांश सदस्य लोगों को उनके प्रिय आदर्शों को पूरा करने वाला संविधान देने पर सहमत थे।

परिणाम स्वरूप विवादों और असहमति को टालने के लिए विभिन्न मुद्दों और सिद्धान्तों पर सर्वसम्मति बनाने के सजग प्रयास किए गए। यह सहमति 17 दिसम्बर 1946 को पं. जवाहर लाल नेहरू द्वारा प्रस्तावित 'उद्देश्य प्रस्ताव' के रूप में प्रकट हुई जिसे लगभग सर्व सम्मति से 22 जनवरी 1949 को स्वीकार किया गया। इन उद्देश्यों/लक्ष्यों के प्रकाश में समिति ने अपना कार्य 26 नवम्बर 1949 को पूरा किया। संविधान को 26 जनवरी 1950 को लागू किया गया। इस शुभ दिन से भारत एक गणतन्त्र बन गया। ठीक 20 वर्ष पूर्व 26 जनवरी 1930 को लाहौर कांग्रेस अधिवेशन के निर्णयानुसार पहला स्वतंत्रता दिवस मनाया गया था। इसलिए भारत के संविधान को लागू करने के लिए 26 जनवरी का दिन चुना गया। पहले दिए गए 'उद्देश्य प्रस्ताव' पर बोलते हुए पं. जवाहर लाल नेहरु ने कहा था "उद्देश्य प्रस्ताव एक प्रस्ताव से कुछ अधिक है। यह हम सब के लिए निष्ठा और समर्पण की एक घोषणा, दृढ़ निश्चय, एक शपथ और प्रतिज्ञा है।"

पाठगत प्रश्न 17.3

ठीक उत्तर के सामने सही √ का निशान लगाएं

1. 17 दिसम्बर 1946 को पं. जवाहर लाल नेहरू ने 'उद्देश्य प्रस्ताव' प्रस्तुत किया।
2. भारतीय संविधान के निर्माताओं का एक मुख्य उद्देश्य देश की एकता और अखण्डता को बनाए रखना था।

17.4 भारतीय संविधान की प्रस्तावना और इसका महत्व

किसी भी संविधान की प्रस्तावना में ऐसे मौलिक मूल्य और दर्शन समाहित करने की अपेक्षा की जाती है जिन पर संविधान आधारित होता है तथा वे उद्देश्य और लक्ष्य सम्मिलित होते हैं जिन्हें प्राप्त करने के लिए हमारे पूवर्जों ने संघर्ष किया। दूसरे शब्दों में प्रस्तावना एक लिखित अथवा मौखिक, प्राथमिक अथवा परिचयात्मक कथन होता है। ठीक ही कहा गया है कि प्रस्तावना किसी पुस्तक के आमुख की भांति होती है। इस दस्तावेज के प्रारम्भिक और अन्तिम शब्द है। "हम भारत के लोग – इस संविधान को अंगीकृत, अधिनियमित और आत्म समर्पित करते हैं" इससे यह सन्देश मिलता है कि संविधान स्वयं लोगों द्वारा लागू किया गया था और संविधान में दर्ज संप्रभुता लोगों में निहित है।

संविधान द्वारा प्रस्तावना भारत के लोगों के लिए निश्चित की गई सरकार - संप्रभु, समाजवादी, पंथ निरपेक्ष, लोकतान्त्रिक गणराज्य थी।

क. संप्रभुता

संप्रभुता किसी स्वतंत्र राज्य का सबसे पहला तत्व है। इसका अर्थ निरपेक्ष स्वतंत्रता है अर्थात् - ऐसी सरकार जिस पर किसी बाह्य अथवा आन्तरिक शक्ति का नियन्त्रण नहीं होता है। कोई भी देश संप्रभु हुए बिना अपना संविधान नहीं रख सकता। इसलिए भारत एक संप्रभु देश है। यह बाह्य नियन्त्रण से मुक्त है। यह अपनी नीतियां स्वयं बना सकता है और अपनी विदेश नीति बनाने में स्वतंत्र है।

ख. समाजवादी

'समाजवादी' शब्द मूल रूप से संविधान में नहीं था। इस शब्द को 1976 में संविधान के 42वें संशोधन द्वारा जोड़ा गया है। समाजवादी शब्द का अर्थ विवादित है क्योंकि यह अलग अलग लोगों के लिए अलग अलग अर्थ रखता है। हमारे संविधान में इसका प्रयोग आर्थिक नियोजन के सन्दर्भ में किया गया है। 'समाजवाद' शब्द का प्रयोग अर्थ व्यवस्था में राज्य की मुख्य भूमिका को स्वीकृति प्रदान करता है। इसका अर्थ असमनताओं को दूर करना, सबकी मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति करना, समान कार्य के लिए समान वेतन, पैसों तथा उत्पादन के साधनों को कुछ हाथों में संकेन्द्रित होने से रोकना जैसे आदर्शों को प्राप्त करना भी है। राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक लोकतन्त्र के आदर्शों को समानता और भाईचारे के साथ मिलाकर। 'प्रस्तावना' महात्मा गांधी द्वारा वर्णित 'मेरे सपनों का भारत' स्थापित करने का उद्देश्य रखती है, जिसमें सबसे गरीब आदमी यह अनुभव कर सके कि यह उनका अपना देश है जहाँ उसकी प्रभावशाली आवाज होगी। एक ऐसा भारत जहां सभी समुदाय पूर्ण समरसता के साथ आपस में मिल कर रहते हैं, जहां महिलाओं को भी पुरूषों के समान अधिकार प्राप्त हैं।

ग. पंथ निरपेक्ष

भारत में अलग अलग धर्म और आस्था रखने वाले लोगों के बीच एकता और भाईचारे की भावना बढ़ाने के लिए - पंथ निरपेक्षता के आदर्श को डाला गया, जिसका अर्थ है कि राज्य सभी धर्मों की समान रूप से रक्षा करता है और किसी भी धर्म को राज्य का धर्म नहीं मानता। दूसरे शब्दों में भारत न तो धार्मिक देश है, न अधार्मिक और न

ही धर्म विरोधी है। इस का स्पष्ट अर्थ है कि देश का अपना कोई धर्म नहीं होगा और राज्य किसी विशेष धर्म की सरकारी कोष से सहायता नहीं करेगा।

इससे स्पष्ट होता है कि भारत का अपना कोई धर्म नहीं होगा। सभी व्यक्तियों को विवेक की स्वतंत्रता, अपनी पसन्द के किसी भी धर्म को अपनाने तथा प्रचार करने का समान अधिकार होगा। इसके दो अभिप्राय हैं- अ) प्रत्येक व्यक्ति को अपने धर्म में विश्वास करने तथा पूजा पद्धति अपनाने की स्वतंत्रता होगी ब) राज्य किसी व्यक्ति अथवा समूह के साथ धर्म के आधार पर कोई भेदभाव नहीं करेगा।

घ. लोकतांत्रिक

'लोकतान्त्रिक शब्द' बड़ा व्यापक अर्थ रखता है। संकुचित राजनीतिक दृष्टि से तो यह केवल सरकार के रूप से सम्बन्धित है जो प्रतिनिधियात्मक और जिम्मेदार व्यवस्था होती है और जिसके अन्तर्गत राज्य के मामलों का प्रशासन सम्भालने वालों को मतदाता चुनते हैं और वे मतदाताओं के प्रति जवाबदेह होते हैं। लेकिन व्यापक अर्थ में यह राजनीतिक लोकतन्त्र के अतिरिक्त सामाजिक और आर्थिक लोकतन्त्र को भी साथ लेकर चलता है। प्रस्तावना की अन्तिम पंक्ति कहती है "इस संविधान को अंगीकृत, अधिनियमित और आत्मर्पित करते हैं" वास्तव में देश के राजनीतिक सिद्धान्त प्रस्तावना की अन्तिम पंक्ति से फूटते हैं। लोकतन्त्र को आमतौर पर लोगों का शासन, लोगों के द्वारा, लोगों के लिए जाना जाता है।

ड़. गणराज्य

'गणराज्य' का अभिप्राय है 'राज्य का निर्वाचित मुखिया'। एक लोकतान्त्रिक देश में निर्वाचित अथवा वंशानुगत मुखिया हो सकता है। वंशानुगत ब्रिटिश राजा/रानी लोकतन्त्र में किसी प्रकार की बाधा नहीं हैं। वहां वंशानुगत राजा लोकतान्त्रिक शासन में बाधक नहीं हैं क्योंकि राज्य का वास्तविक शासन मतदाताओं के प्रतिनिधियों के हाथ में ही है। परन्तु गणतन्त्रात्मक राज्य में राज्य का मुखिया, किसी एक को या समूह को सदैव एक निश्चित अवधि के लिए निर्वाचित किया जाता है। उदाहरण के लिए अमेरिका में राज्याध्यक्ष और कार्यपालिका के मुखिया को चार वर्ष की अवधि के लिए चुना जाता है। इसी प्रकार स्विट्जरलैण्ड में सात सदस्यों के कोलेजियम को कार्यपालिका का गठन करने के लिए चार वर्षो हेतु चुना जाता है।

आगे चल कर प्रस्तावना भारतीय राजनीतिक व्यवस्था के उद्देश्यों को परिभाषित करती है। ये चार उद्देश्य हैं 'न्याय, स्वतंत्रता, समानता और भ्रातृभाव। यह ठीक ही कहा गया है कि स्वतंत्रता आन्दोलन केवल ब्रिटिश शासन के विरुद्ध नहीं था अपितु यह तो पुरूष और महिलाओं की गरिमा को पुर्नस्थापित करने, गरीबी हटाने और सब प्रकार से शोषण को समाप्त करने की शुरूआत थी। ऐसी दृढ़ प्रेरणा और आदर्शों ने संविधान निर्माताओं को पहले उल्लिखित चार उद्देश्यों के प्रावधानों पर बल देने के लिए प्रोत्साहित किया।

क. न्याय

न्याय का अभिप्राय व्यक्ति के व्यक्तिगत आचरण का समान के सामान्य कल्याण के साथ समरस सहमति। न्याय का सार है सबकी भलाई को प्राप्त करना। प्रस्तावना में मानव

टिप्पणी

गतिविधि के समस्त सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक क्षेत्र सम्मिलित हैं। दूसरे शब्दों में न्याय, लोगों को आधारभूत आवश्यकताओं को प्रदान करने, भोजन, कपड़े और आवास का अधिकार, निर्णय करने में भागीदारी तथा मानव रूप में गरिमा के साथ रहने का अधिकार प्रदान करने का वायदा करती है। प्रस्तावना केवल न्याय के विभिन्न आयामों तक ही नहीं पहुंचती अपितु 'सार्वभौमिक व्यस्क मताधिकार' के रूप में राजनीतिक न्याय भी प्रदान करती है। अथवा प्रतिनिधियात्मक लोकतन्त्र प्रदान करती है।

ख. स्वतंत्रता

स्वतंत्रता: 'प्रस्तावना' में इस शब्द का प्रयोग नकारात्मक भाव से नहीं अपितु सकारात्मक भाव से किया गया है। यह केवल व्यक्ति की स्वतंत्र गतिविधियों पर किसी प्रकार के मनचाहे प्रतिरोध को अनुपस्थिति को ही नहीं दर्शाती अपितु व्यक्ति के व्यक्तित्व के सम्पूर्ण विकास के लिए आवश्यक अनिवार्य परिस्थितियों को भी निर्मित करती है। 'प्रस्तावना' विचार और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता पर बल देती है जिसको संविधान द्वारा मौलिक अधिकारों के अन्तर्गत प्रदान किया गया है।

ग. समानता

समानता के बिना स्वतंत्रता मिथ्या है। वास्तव में स्वतंत्रता और समानता एक दूसरे के पूरक हैं। समानता का यह अर्थ नहीं है कि सभी लोग मानसिक और शारीरिक रूप से एक समान हैं। दूसरी और यह सामाजिक स्तर और अवसरों की समानता को दर्शाती है। स्थिति की समानता धर्म, जाति, वंश, रंग और निवास स्थान के आधार पर किसी प्रकार के भेदभाव पर अंकुश लगा कर प्रदान की जाती है। छूआछात पर प्रतिबन्ध लगाकर तथा सभी उपाधियों का उन्मूलन करके इस पर अतिरिक्त बल दिया गया है। इसके साथ ही कानून का शासन सुनिश्चित करके, सरकारी नौकरियों के मामले में भेदभाव को रोककर तथा कानून के सामने सबको बाराबरी देकर अवसरों की समानता सुनिश्चित की जाती है।

प्रस्तावना भ्रातृभाव के उद्देश्य पर बल देती है ताकि व्यक्ति की गरिमा और देश की एकता दोनों सुनिश्चित रहें। भ्रातृभाव भावना हमारे जैसे देश के लिए अति आवश्यक है क्योंकि यह विभिन्न जातियों और धर्मों का देश है। व्यक्ति की गरिमा के सन्दर्भ में के. एम. मुन्शी कहते हैं कि यह लोकतान्त्रिक व्यवस्था को बनाए रखने का एक साधन ही नहीं है अपितु यह प्रत्येक व्यक्ति के व्यक्तित्व को भी गरिमामय मानता है। इसी प्रकार एकता और अखण्डता जैसे शब्दों को क्षेत्रवाद, प्रान्तवाद, भाषावाद, सम्प्रदायवाद, अलगाववाद और अलग होने की गतिविधियों की प्रवृति पर रोक लगाने के सन्दर्भ में प्रयुक्त किया गया है। ताकि पंथ निरपेक्षता के आधार पर राष्ट्रीय एकता के सपने को साकार किया जा सके।

सरल शब्दों में किसी देश का संविधान देश का शासन चलाने वाले कानूनी नियमों का संग्रह होता है। यह प्रमुख विश्वासों और हितों अथवा टकरावपूर्ण विश्वासों और हितों के बीच कुछ समझौतों को दर्शाता है जो संविधान बनाने और अपनाने के समय के समाज की विशेषताएं हैं। यह सत्य है कि कोई संविधान त्रुटिरहित नहीं और भारतीय संविधान भी इस सामान्य सत्य का अपवाद नहीं है। यह भारत के लिए सम्मान की बात है कि

एक सांविधानिक सरकार के लिए संघर्ष इतना गहरा था कि इसने अपनी राजनीतिक स्वतंत्रता प्राप्त करने के 3 वर्ष के भीतर ही अपने लिए एक संविधान निर्मित कर लिया। स्वीकार किए गए संविधान का लक्ष्य न केवल सरकारी मशीनरी स्थापित करने का माध्यम बनना था अपितु इसको सामाजिक व्यवस्था के क्रमबद्ध परिवर्तन का प्रभावशाली औजार भी बनना था। किसी संविधान की ताकत और स्थायित्व अधिकांशत: एक स्वस्थ और शान्तिपूर्ण सामाजिक व्यवस्था को बनाए रखने की योग्यता और अवसर की मांग के अनुसार अपने आर्थिक और सामाजिक व्यवस्था में शान्तिपूर्ण परिवर्तन को लाने में सहायक होने पर निर्भर करता है। इस दृष्टिकोण के अन्तर्गत संविधान में एक भी ऐसा आदर्श नहीं है जिसको इसके सबसे बड़े आलोचक भी प्रतिक्रियावादी कह सकें। इसका आधारभूत उद्देश्य अपने सभी नागरिकों के लिए न्याय, स्वतंत्रता, समानता और भाई चारा प्राप्त करने के लिए एक लोकतान्त्रिक, समाजवादी, पंथ निरपेक्ष गणतन्त्र स्थापित करना है।

पाठगत प्रश्न 17.4

रिक्त स्थान भरिये

(क) प्रस्तावना संविधान के .... की व्याख्या करती है।

(ख) संविधान की प्रस्तावना भारत को .... राज्य के रूप में वर्णित करती है।

(ग) संविधान के .... वें संशोधन द्वारा इसमें समाजवादी और पंथ निरपेक्ष शब्दों को जोड़ा गया।

17.5 संविधान की प्रमुख विशेषताएं

यदि हम विश्व के विभिन्न संविधानों पर नजर डालें तो हमें इन संविधानों की अलग-अलग विशेषताएं देखने को मिलती हैं। व्यापक रूप से हम इन संविधानों को उस देश द्वारा अपनाई गई राजनीतिक व्यवस्थाओं के आधार पर वर्गीकृत कर सकते हैं। निम्न चार आधारों पर आधुनिक राजनीतिक व्यवस्था को वर्गीकृत किया जाता है। पहले तो लोकतान्त्रिक और तानाशाही सरकारें हैं - जिनका वर्गीकरण लोगों की सहभागिता और व्यवस्था को प्रदान की गई स्वायतता के आधार पर किया जाता है। दूसरा विधायिका और कार्यपालिका के लोकतांत्रिक व्यवस्था में आपसी सम्बन्धों पर आधारित है - इस आधार पर हम उनका संसदीय और अध्यक्षात्मक राजनीतिक व्यवस्था के रूप में अन्तर करते हैं। तीसरी राजनीतिक व्यवस्था को शक्तियों के भौगोलिक वितरण के आधार पर संघात्मक और एकात्मक के रूप में वर्गीकृत करते हैं। अन्त में हम राजनीतिक व्यवस्थाओं को आर्थिक ढांचे के आधार पर पूंजीवादी और समाजवादी व्यवस्था के रूप में वर्गीकृत करते हैं।

उपरोक्त के अतिरिक्त एक अन्य प्रकार का वर्गीकरण लिखित और अलिखित संविधान है। अधिकांश राजनीतिक व्यवस्थाओं में संविधान लिखित रूप में हैं। केवल ब्रिटेन में संविधान अलिखित है। इंग्लैण्ड के संविधान के बारे में एक विवाद रहा है। कुछ विचारकों का विचार है कि वास्तव में इग्लैण्ड में कोई संविधान नहीं है जबकि कुछ अन्य कहते हैं कि यह विश्व का सबसे पुराना संविधान है।

यह पर्यवेक्षण एक ही दस्तावेज की अलग-अलग व्याख्या का परिणाम है जिसको एक विशेष समय पर लिखा और लागू किया गया तथा जिसमें मौलिक पावनता निहित है। ऐसा संविधान किसी परम्परा अथवा इस उद्देश्य से बनाई गई सभा अथवा किसी सम्राट अथवा किसी तानाशाह द्वारा जारी किया गया हो सकता है।

बुश पेइन और ताक्यूविले के निगाहें इसकी विषय वस्तु के बजाय इसके रूप पर टिकी थीं। प्रों. डायसी इस उलझन को हल करने का प्रयास करता है और संविधान को उस तरह से परिभाषित करता है जैसा ब्रिटिश लोग समझते हैं अर्थात राज्य की संप्रभु शक्ति को विभाजित करने अथवा लागू करने वाले कानूनों का कुल योग जो प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से शक्ति विभाजन को प्रभावित करते हैं।

सारांश में इग्लैण्ड में ऐसा संविधान है जिसे कभी लागू नहीं किया गया और न ही लिखा गया। यह सैकडों वर्षों से हुए राजनीतिक संस्थाओं के क्रमिक विकास का परिणाम है और परम्पराओं के विकास पर आधारित है जिसको या तो नई परम्पराओं से अथवा संप्रभु संसद के कानूनों द्वारा सुधारा जा सकता है। यह बुद्धिमता और अवसर की सन्तान है जिसकी शक्तियां कभी कभी अचानक घटी घटना से और कभी कभी सुविचारित सोच से प्रेरित होती है।

17.5.1 लिखित संविधान

इग्लैण्ड के संविधान के विपरीत संयुक्त राज्य अमरीका, कनाडा, फ्रांस और भारत के संविधान लिखित हैं यद्यपि ये एक दूसरे से किसी न किसी आधार पर अलग हैं। भारत का संविधान दुनिया का सबसे बड़ा लिखित और विस्तृत संविधान है। इसमं 395 अनुच्छेद और 12 अनुसूचियां हैं। संविधान निर्माताओं का प्रशासन और सरकार की सभी समस्याओं का समाधान प्रदान करने का प्रयास रहा है। अन्य देशों में परम्परा का विषय रहा सभी बातों तक को भारत के संविधान में लेखनीबद्ध किया गया है। संयुक्त राज्य अमेरिका के संविधान में केवल सात अनुच्छेद हैं, आस्ट्रेलिया संविधान में 128 और कनाडा के संविधान में 147 अनुच्छेद है। ऐसे विस्तृत दस्तावेज को तैयार करने में भारतीय संविधान के संस्थापकों ने 2 वर्ष 11 महीने 18 दिन का समय लिया। कभी कभी यह पूछा जाता है कि भारतीय संविधान निर्माताओं ने इतना विस्तृत संवैधानिक दस्तावेज बनाना क्यों आवश्यक समझा और सर आइवर के गोल्डन रूल की अवहेलना की जिसमें कहा गया है कि ऐसी कोई चीज शामिल न की जाए जिसको सुरक्षित ढंग से छोड़ा जा सकता है। सर आईवर जेनिंग का उत्तर अपने आप स्पष्ट संकेत करता है कि भारतीय संविधान का इतना बड़ा आकार अतीत की विरासत है।

किसी संघ के लिए अनिवार्य है कि इसका संविधान लिखित होना चाहिए ताकि जब जरूरत हो तब केन्द्र और राज्य सरकारें इसका प्रयोग कर सकें। इसके अनुसार संविधान सभा ने एक लिखित संविधान तैयार किया जिसमें 395 अनुच्छेद और 12 अनुसूचियां शामिल हैं। अत: यह विश्व का सबसे विस्तृत संविधान है जिसको पूरा करने में लगभग 3 वर्ष लग गए।

17.5.2 कठोर और लचीलेपन का सम्मिश्रण

भारतीय संविधान की एक अन्य विशेषता जो इसको दुनियां के अन्य संविधानों से अलग करती है वह है कि इसमें कठोरता और लचीलेपन का मिश्रण है। संविधान में संशोधन करने की प्रक्रिया न तो इग्लैण्ड की तरह बहुत सरल है और नही अमरीका की तरह बहुत कठिन। इग्लैण्ड में जहां लिखित संविधान नहीं है वहां संवैधानिक कानून और साधारण कानून में कोई अन्तर नहीं है। संवैधानिक कानून को ठीक उसी तरह संशोधित किया जा सकता है जैसे किसी साधारण कानून को पारित अथवा संशोधित किया जा सकता है। हलांकि संयुक्त राज्य अमरीका में संविधान संशोधन का तरीका बहुत कठोर है। यह केवल कांग्रेस के सदस्यों के दो तिहाई बहुमत से किया जा सकता है जिसको बाद में कम से कम तीन चौथाई राज्यों की स्वीकृति चाहिए। भारत का संविधान एक अच्छी व्यवस्था को अपनाता है जिसमें ब्रिटिश संविधान का लचीलापान और अमेरीकी संविधान की कठोरता की अनदेखी की गई या लचीले औरर कठोरता का मिश्रण अपनाया गया है।

भारत में संविधानों के कुछ ही प्रावधानों में संशोधन के लिये राज्य विधानसभाओं की स्वीकृति चाहिए और वह भी केवल आधे राज्यों की स्वीकृति पर्याप्त हैं शेष संविधान को उपस्थित और मत देने वाले सदस्यों के दो तिहाई बहुमत से संशोधित किया जा सकता है परन्तु यह बहुमत सदन की कुल सदस्य संख्या का बहुमत होना चाहिए।

उपरोक्त तरीकों के अतिरिक्त संसद को संविधान के कुछ प्रावधानों को साधारण बहुमत से बदलने अथवा सुधारने की शक्ति दी गई है जैसा कि साधारण विधेयक के मामले में साधारण बहुमत की आवश्यकता होती है और संविधान में ऐसा दर्ज है कि ऐसे संशोधनों अथवा परिवर्तनों को संविधान संशोधन नहीं माना जाएगा। यह उल्लेखनीय है कि विगत 62 वर्षों में अनेक संशोधन या तो पारित किए गए हैं अथवा विचाराधीन हैं। यह संकेत है कि भारतीय संविधान लचीला है। हालांकि यह स्मरण रखना चाहिए कि हमारे संविधान के मूल (आधारभूत) ढांचे को नहीं बदला जा सकता या आधारभूत ढाँचे में संशोधन नहीं किया जा सकता।

17.5.3 एकात्मक प्रवृति वाला संघात्मक ढांचा

भारतीय संविधान की एक प्रमुख विशेषता इसका संघात्मक ढांचा है जिसका झुकाव एकात्मता की ओर है। दूसरे शब्दों में साधारणतया व्यवस्था संघात्मक है परन्तु संविधान संघात्मकता को एकात्मकता में परिवर्तित होने की क्षमता देता है।

संघवाद एक आधुनिक अवधारणा है। आधुनिक समय में इसके सिद्धान्त और व्यावहारिकता अमेरीका से पुरानी नहीं है जो 1787 में अस्तित्व में आया। किसी भी संघीय ढांचे में सरकार के सुपरिभाषित शक्तियों और कार्यों वाले दो स्तर होते हैं ऐसी व्यवस्था में केन्द्रीय सरकार और इकाईयों की सरकारें सुपरिभाषित क्षेत्रों में कार्य करती हैं, एक दूसरे से तालमेल/सहयोग करती हैं दूसरे शब्दों में संघीय राजनीति सामान्य राष्ट्रीय लक्ष्यों को प्राप्त करने तथा विविधता में एकता लाने की एक संवैधानिक विधि प्रदान करती है। आज की भारतीय संघीय व्यवस्था में ऐसी सभी विशेषताएं हैं जो संघीय राजनीति के लिए आवश्यक हैं। भारतीय संविधान की मुख्य संघात्मक विशेषताएं निम्नलिखित हैं–

17.5 संघात्मक विशेषताएं

क) लिखित और कठोर संविधान

किसी संघात्मक संविधान की एक अनिवार्य विशेषता है कि संविधान ने केवल लिखित अपितु कठोर भी होना चाहिए। यह कठोरता विशेष रूप से संघ बनाने वाली इकाईयों के लिए आवश्यक है ताकि केन्द्र अपनी सुविधानुसार या मनमाने तरीके से विषय सूची को बदल न सके। दूसरे शब्दों में इसमें आसानी से संशोधन नहीं किया जा सकता। केन्द्र-राज्य सम्बन्धों से जुड़े सभी संवैधानिक प्रावधानों को केवल राज्य विधान सभाओं और केन्द्रीय संसद की संयुक्त कार्यवाही से बदला जा सकता है। ऐसे प्रावधानों को केवल तभी संशोधित किया जा सकता है यदि संसद के उपस्थित और मतदान करने वाले दो तिहाई सदस्य संशोधन को पारित करें, जो कि कुल सदस्य संख्या का साधारण बहुमत होना चाहिए और जिसको कम से कम आधे राज्यों की स्वीकृति प्राप्त होनी चाहिए।

ख) संविधान की सर्वोच्चता

किसी भी संघीय ढांचें में संविधान केंद्र तथा संघीय इकाईयों के लिए बराबर रूप से सर्वोच्च होना चाहिए। संविधान देश का सर्वोच्च कानून है तथा केंद्र अथवा राज्यों द्वारा पारित कानून संविधान सम्मत होने चाहिए। इसके अनुसार भारत का संविधान भी सर्वोच्च है और न केंद्र न ही राज्यों के हाथ की कठपुतली है। यदि किसी कारणवश राज्य का कोई अंग संविधान के किसी प्रावधान का उल्लंघन करता है तो न्यायालय संविधान की गरिमा को हर हाल में बनाए रखने को सुनिश्चित करते हैं।

ग) शक्तियों का विभाजन

किसी भी संघ में शक्तियों का स्पष्ट विभाजन होना चाहिए ताकि इकाईयां और केंद्र अपने क्षेत्र में रह कर कानून बना और लागू कर सके और कोई भी अपनी सीमा का उल्लंघन कर दूसरे के कार्यक्षेत्र का अतिक्रमण न कर सके। यह अनिवार्यता हमारे संविधान में प्रत्यक्ष है। सातवीं अनुसूची में तीन प्रकार की सूचियां हैं जिन्हें संघीय सूची, राज्य सूची और समवर्ती सूची कहा जाता है।

संघीय सूची में 97 विषय हैं जिनमें से रक्षा, विदेशी मामले, डाक एवं तार, मुद्रा इत्यादि महत्वपूर्ण हैं। राज्य सूची में 66 विषय है जिनमें जेल, पुलिस, न्याय प्रशासन, जन स्वास्थ्य, कृषि इत्यादि शामिल हैं। समवर्ती सूची में 47 विषय शामिल हैं जिनमें आपराधिक कानून, विवाह, तलाक, दीवालिया, व्यापार संघ, बिजली, अर्थव्यवस्था, सामाजिक नियोजन और शिक्षा इत्यादि शामिल हैं। संघीय सरकार को संघीय सूची के विषयों पर कानून बनाने की विधायी शक्ति है। राज्य सरकारों को राज्य सूची के विषयों पर कानून बनाने का पूरा अधिकार है। केंद्र और राज्य दोनों समवर्ती सूची में शामिल विषयों पर कानून बना सकते हैं जैसे शिक्षा, स्टैम्प ड्यूटी, दवाएं और विषैले पदार्थ, अखबार इत्यादि। केंद्र और राज्य के बीच टकराव की स्थिति में केंद्र द्वारा बनाया गया कानून राज्य कानून के ऊपर मान्य होगा। तीनों सूचियों में शामिल न किए गए विषयों अर्थात अवशिष्ट विषय/शक्तियों पर कानून बनाने का अधिकार संघीय सरकार के पास है।

घ) न्यायपालिका की स्वतंत्रता और सर्वोच्च न्यायालय का प्रावधान

किसी भी संघ के लिए अनिवार्य है कि उसकी न्यायपालिका स्वतंत्र तथा वहाँ संघीय विवादों के निपटारे के लिये सर्वोच्च न्यायालय की व्याख्या हो। वह संविधान की संरक्षक होनी चाहिए। यदि कोई कानून संविधान के किसी प्रावधान का उल्लंघन करता है तो सर्वोच्च न्यायालय ऐसे कानून को असंवैधानिक करार कर के रद्द कर सकता है। न्यायपालिका की निष्पक्षता को सुनिश्चित करने के लिए मुख्य न्यायाधीश अथवा अन्य न्यायाधीशों को कार्यपालिका द्वारा अपदस्थ नहीं किया जा सकता और न ही संसद द्वारा उनके वेतन कम किए जा सकते हैं।

ङ) द्विसदनीय विधायिका

संघीय व्यवस्था के लिए द्विसदनीय विधायिका को आवश्यक समझा जाता है। उच्च सदन, राज्यों की परिषद (राज्य सभा) में राज्यों को प्रतिनिधित्व दिया जाता है जबकि लोक सभा में लोगों द्वारा निर्वाचित सदस्य लोगों की प्रतिनिधित्व करते हैं। राज्य सभा के सदस्यों को राज्य विधानसभाएं निर्वाचित करती है लेकिन संयुक्त राज्य की सीनेट की तरह यहां सबको एक समान प्रतिनिधत्व नहीं मिलता (संयुक्त राज्य में 50 राज्यों में से प्रत्येक को एक समाज प्रतिनिधित्व (2 सीनेटर दिए जाते हैं।) भारत में 28 राज्यों का प्रतिनिधित्व एक समान नहीं होता।

पाठगत प्रश्न 17.5 एवं 17.6

अ) भारतीय संविधान की किन्हीं चार विशेषताओं का उल्लेख कीजिए।

ब) भारत के संविधान में कितने अनुच्छेद हैं?

स) भारत के संविधान की किन्हीं दो संघात्म के विशेषताओं का उल्लेख कीजिए।

17.7 एकात्मक विशेषताएं

इन विशेषताओं को देखते हुए हम कह सकते हैं कि भारत में संघीय व्यवस्था है। भारतीय संविधान के निर्माताओं का भी यही दृष्टिकोण था। लेकिन कुछ विचारकों का मत है कि भारतीय संघ वास्तव में एक सच्चा संघ नहीं है क्योंकि इसमें कई एकात्मक विशेषतायें हैं। इसीलिए कहा जाता है कि भारत के संविधान का ढांचा एकात्मक है परन्तु इसकी आत्मा एकात्मक है। अब हम भारतीय संघ की एकात्मक विशेषताओं का परीक्षण करेगें।

क) सशक्त केंद्र

शक्तियों के विभाजन से यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि राज्य सरकारों की शक्ति सीमित और प्रगणनीय है। इसके विपरीत संघीय सरकार को कुछ परिस्थितियों में राज्य सरकारों की तुलना में अधिक शक्तियां प्राप्त है तथा इसका अवशिष्ट विषयों पर भी नियंत्रण है।

ख) संघ और राज्यों के लिए एक ही संविधान

साधारणयत: एक संघात्मक ढांचे के अन्तर्गत राज्यों के अपने अलग संविधान होते हैं। संयुक्त राज्य में ऐसा ही है। इसके विपरीत भारतीय संघ में केवल एक ही संविधान है और राज्यों के लिए कोई अलग संविधान नहीं है।

ग) एकीकृत न्याय प्रणाली

संयुक्त राज्य के राज्यों की अपनी स्वतंत्र न्याय व्यवस्था होती है जिसका संघीय न्यायपालिका से काई सम्बन्ध नहीं है। आस्ट्रेलिया में भी लगभग यही प्रणाली है। लेकिन भारत में सर्वोच्च न्यायालय, उच्च न्यायालय और अधीनस्थ एकल एकीकृत न्याय प्रणाली का निर्माण करते हैं जिनके शीर्ष पर सर्वोच्च न्यायालय है।। दीवानी और फौजदारी कानूनों को वर्गीकृत किया गया है और वे पूरे देश में लागू होते हैं।

घ) अखिल भारतीय सेवाएं

भारतीय संवधिान में प्रशासनिक व्यवस्था में समरूपता सुनिश्चित करने के लिए कुछ विशेष प्रावधान किए गए हैं जिससे संघात्मक सिद्धान्तों के साथ समझौता किए बिना न्यूनतम संयुक्त प्रशासनिक मापदण्ड बनाए रखे जा सकें।

ड़) राष्ट्रपति द्वारा राज्यपाल की नियुक्ति

राज्य के अध्यक्ष राज्यपाल का निर्वाचन अमेरिकी राज्य के गवर्नरों की भांती नहीं होता। भारत में उनको राष्ट्रपति द्वारा नियुक्त किया जाता है। वे राष्ट्रपति के प्रसाद पर्यन्त अपने पद पर बने रहते हैं। राष्ट्रपति उसको कुछ अवसरों पर एक से अधिक राज्यों का कार्यभार देखने के लिए कह सकता है। इससे संघीय सरकार राज्य शासन पर नियन्त्रण रख सकती है।

पाठगत प्रश्न 17.7

अ) भारतीय संविधान की किन्हीं दो एकात्मक विशेषताओं का उल्लेख कीजिए।

ब) "भारतीय संविधान का ढांचा संघात्मक है परन्तु इसकी आत्मा एकात्मक है" क्या यह कथन सत्य है अथवा असत्य।

17.8 भारतीय संघवाद का आलोचनात्मक विश्लेषण

भारतीय संविधान के निर्माता देश की एकता और अखण्डता को सुनिश्चित करने के प्रति कटिबद्ध थे। वे देश में काम कर रही विध्वंशक और फूट डालने वाली शक्तियों से परिचित थे। स्वतंत्रता के समय यह महसूस किया गया कि इन प्रवृतियों से एक शक्तिशाली केंद्रीय सरकार ही निपट सकती है। इसलिए संविधान निर्माताओं ने केंद्र को प्रमुख भमिका प्रदान की। उसके

साथ ही उन्होंने एक सहकारी संघवाद की स्थापना के लिए भी प्रावधान किए। यह बात भी सत्य है कि विगत साठ सालों में केंद्र और राज्यों के बीच सम्बन्ध सदा मधुर नहीं रहे हैं।

यह याद रखा जाना चाहिए कि एकता और विविधता के बीच संघीय व्यवस्था में अच्छी तरह तालमेल होता है। संघ की इकाईयां अपने आन्तरिक प्रशासन में राजनीतिक और आर्थिक स्वायत्तता का आनन्द लेती हैं। यह सत्य है कि संघवाद विकेंद्रीकरण के सिद्धान्त पर आधारित है। यह इस विचार को लागू करती है कि सरकार लोगों के निकट होनी चाहिए ताकि वे इस तक पहुंच सके। स्थानीय समस्याओं को स्थानीय और क्षेत्रीय सरकारों द्वारा बड़ी आसानी से सुलझाया जा सकता है न कि पहले से ही कार्यभार से लदी केंद्रीय सरकार द्वारा। शक्तियों के विभाजन से कार्य कुशलता बढ़ती है। अत: संघीय व्यवस्था में स्थायित्व को अच्छी तरह बनाये रखा जा सकता है।

दूसरी ओर संघीय सरकार की कुछ कमियां भी हैं। केंद्र और राज्यों में अलग पार्टियों की सरकार से राजनीतिक टकराव की सम्भावना बढ़ जाती है। निसन्देह संघवाद एक खर्चीली व्यवस्था है। फाइनर ने ठीक ही कहा था "यह वित्तीय रूप से खर्चीली है क्योंकि प्रशासनिक मशीनरी और प्रक्रिया का कई बार दोहराव होता है। यह ऊर्जा और समय को भी बर्बाद करता है और कानून की एकरूपता तथा उपयुक्त प्रशासनिक कुशलता अधिकांशत: राजनीतिक और प्रशासनिक वार्तालाप पर निर्भर करता है। भारत में प्रत्येक संकट के बाद केंद्र पहले से अधिक सशक्त हो कर उभरा है जो यह दर्शाता है कि संकटों को शक्तिशाली केंद्रीय सरकार अच्छे ढंग से हल कर सकती है। इससे सघवाद की कमजोरी तथा एकात्मक सरकार की ताकत सिद्ध होती है। हालांकि कुछ कमियों के बाद भी संघीय सरकार एक बेहतर और श्रेष्ठ विकल्प दिखाई पड़ता है।

इसको सारबद्ध करते हुए इस बात पर दुर्गा दास बासु के साथ सहमति दिखाई देती है कि भारत में न तो विशुद्ध रूप से संघवाद है और नहीं एकात्मवाद। बल्कि दोनों का मिश्रण है। यह एक विचित्र प्रकार का संघ है। राजनीतिक विचारकों ने कहा है कि केंद्रीय सरकार के पास इतनी अभूतपूर्व शक्तियां हैं कि भारत एक अर्द्ध संघीय ढांचे से अधिक कुछ नहीं है अथवा यदि यहां किसी तरह से संघवाद है भी इसमें अनेक एकात्मक विशेषताएं हैं। जी.एन. जोशी के शब्दों में "यह भारतीय संघ की कुछ विशिष्ट विशेषताएं हैं। इसमें अन्य संघों के साथ समानता भी है और असमानता भी। इसको ठीक तरह से अर्द्ध संघात्मक कहा जा सकता है जिसमें संघात्मक के साथ एकात्मकता के भी अनेक तत्व विद्यमान हैं।

पाठगत प्रश्न 17.8

अ) भारत न तो विशुद्ध रूप से संघ है और न ही एकात्मक, अपितु यह दोनों का मिश्रण है। (सही/गलत)

ब) ठीक तरह से भारत को अर्द्ध संघात्मक कहा जा सकता है जिसमें एकात्मकता की कई विशेषताएं हैं। (सही/गलत)

आपने क्या सीखा

सविधान किसी देश की स्वतंत्रता और सप्रभुता का प्रतीक है। भारत के संविधान के निर्माण का काम 26 नवम्बर 1949 को पूरा हुआ था जब संविधान सभा ने औपचारिक रूप से नये संविधान को अपनाया। संविधान 26 जनवरी 1950 को लागू हुआ।

संविधान प्रस्तावना के साथ शुरू होता है जो भारत को संप्रभु, समाजवादी, पंथ निरपेक्ष लोकतांत्रिक गणराज्य घोषित करता है। प्रस्तावना अपने सभी नागरिकों के लिए न्याय, स्वतंत्रता और समानता प्राप्त करने तथा लोगों के बीच भाईचारे के आधार पर तथा व्यक्ति की गरिमा का आदर करते हुए राष्ट्रीय एकता और अखण्डता के लक्ष्य को बनाए रखता है।

भारत के संविधान में अनेक विशिष्ट लक्षण हैं। यह विश्व का सबसे लम्बा और लिखित संविधान है और इसमें कठोरता और लचीलेपन का मिश्रण है। संविधान में एक अर्द्ध संघात्मक ढांचे का प्रावधान है जिसमें केंद्र सशक्त होता है। केंद्र और रज्यों के बीच शक्तियों का विभाजन किया गया है। देश में एकीकृत न्याय प्रणाली है। भारत का सर्वोच्च न्यायालय भारत की सबसे बड़ी न्यायालय है।

भारत के संविधान में कुछ एकात्मक विशेषताएं भी हैं जैसे एक ही संविधान, इकहरी नागरिकता, अखिल भारतीय सेवाएं और केंद्र के पक्ष में शक्तियों का विभाजन।

भारत में प्रधानमंत्री के नेतृत्व में एक ससंदीय सरकार है जो संसद के प्रति व्यक्तिगत और सामूहिक रूप से उत्तरदायी है।

पाठांत प्रश्न

1. संविधान की प्रस्तावना का क्या महत्व है?
2. भारतीय संघ में कितने राज्य हैं?
3. भारतीय सन्दर्भ में पंथ निरपेक्षता का अर्थ और इसकी व्यख्या कीजिए।
4. लिखित संविधान के महत्व का स्पष्ट कीजिए।
5. "भारत एक संघात्मक राज्य है" इसकी संक्षेप में व्याख्या कीजिए।
6. निम्नलिखित पर संक्षेप नोट लिखिए।

   अ) न्यापालिका की स्वतंत्रता

   ब) भारत - एक कल्याकारी राज्य

   स) संविधान सभा की भूमिका

पाठगत प्रश्नों के उत्तर

17.1

1. एक कल्याणकारी राज्य का वर्णन ऐसे राज्य के रूप में किया जा सकता है जो अधिक से अधिक लोगों का अधिक से अधिक कल्याण करे।
2. (i) संघात्मक लोकतांत्रिक राज्य

   (ii) प्रजातान्त्रिक गणराज्य
3. पंथ निरपेक्ष राज्य

17.2

1. डा. बी. आर अम्बेडकर
2. डा. राजेंद्र पसाद

17.3

1. सत्य
2. सत्य

17.4

क) उद्देश्य

ख) संप्रभु समाजवादी पंथ निरपेक्ष, लोकतांत्रिक गणराज्य

ग) 42

17.5 तथा 17.5

1. अ) लिखित संविधान

   ब) थोड़ कठोर और थोड़ा लचीला

   स) संविधान की सर्वोच्च्ता

   द) न्यायपालिका की सर्वोच्चता और स्वतंत्रता
2. 395
3. (i) शक्तियों का विभाजन

   (ii) लिखित संविधान

17.7

1. (i) एकल एकीकृत न्यायपालिका व्यवस्था

   (ii) संघ और राज्यों के लिए एक ही संविधान

2. सत्य

17.8

1. सत्य
2. सत्य

18

संविधानवाद एवं प्रस्तावना

संविधान देश के शासन को आधार प्रदान करता है। संविधान उस राज्य के कानूनों तथा नियमों द्वारा शासित करता है। कोई भी सरकार, जो संविधान के द्वारा नियमित एवं नियंत्रित होती है 'संवैधानिक सरकार' कहलाती है। 'संविधानवाद' से अभिप्राय है, संवैधानिक सरकार तथा संवैधानिक सिद्धान्तों में आस्था रखना।

भारत का संविधान 'प्रस्तावना' से प्रारंभ होता है। प्रस्तावना में संविधान के आदर्श, उद्देश्य तथा मौलिक नियम के अन्तर्निहित अथवा समाहित हैं। संविधान की प्रस्तावना ने, देश के भाग्य को निश्चित, समुचित तथा व्यवस्थित आकार देने में अत्यधिक महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। संविधान के प्रावधानों की व्याख्या करने में प्रस्तावना की मार्गदर्शक के रूप में भूमिका महत्वपूर्ण है।

उद्देश्य

इस पाठ को पढ़ने के पश्चात् आप :

- 'संविधानवाद' शब्द का अर्थ समझ जाएंगे;
- संविधान की देश के मौलिक कानून के रूप में महत्व को पहचान सकेंगे;
- संविधान की 'प्रस्तावना', इसके संघटक एवं इसकी की प्रासंगिकता का वर्णन कर सकेंगे;
- प्रस्तावना के मौलिक नियमों तथा संवैधानिक प्रावधानों में इसके प्रभाव की पहचान कर सकेंगे;
- इस तथ्य को जान सकेंगे कि क्या प्रस्तावना संविधान का अंग है या नहीं;
- प्रस्तावना की भूमिका को समझ कर उसका विश्लेषण कर सकेंगे; तथा
- प्रस्तावना के व्याख्यात्मक महत्व की पहचान कर सकेंगे।

18.1 संविधानवाद

जो प्रलेख या दस्तावेज कानूनों तथा नियमों को अंतर्विष्ट या समाहित करते हुए सरकार के स्वरूप को निर्धारित करने के साथ-साथ नागरिकों एवं सरकार के बीच संबंध भी निश्चित करता है, उसे संविधान कहा जाता है। दूसरे शब्दों में, संविधान एक ऐसा दस्तावेज होता है, जिसके दो प्रमुख पहलू होते हैं अर्थात् विभिन्न अंगों के पारस्परिक संबंध तथा सरकार के विभिन्न स्तरों

के साथ सरकार और नागरिकों के बीच संबंध। किसी भी राज्य का संविधान वहां के शासन को आधार प्रदान करता है। दूसरे शब्दों में, संविधान में देश का शासन चलाने का मौलिक आधार अथवा मौलिक कानूनों एवं कानून या विधि का शासन समाहित होते हैं। संक्षेप में, संविधान कानून और नियमों के अनुरूप राज्य शासित होता है। यही नहीं, कोई भी सरकार जो संविधान द्वारा शासित अथवा सीमित होता है, वह संवैधानिक सरकार कहलाती है।

संविधानवाद से अभिप्राय संवैधानिक सरकार अथवा संवैधानिक नियमों में आस्था और विश्वास रखना है। यह कहना उचित है कि संविधानवाद के अंतर्गत एक संवैधानिक सरकार एक लिखित संविधान द्वारा शासित एवं नियंत्रित होती है। न्यायिक व्यवस्था का विकास संविधानवाद की वृद्धि से जुड़ा है।

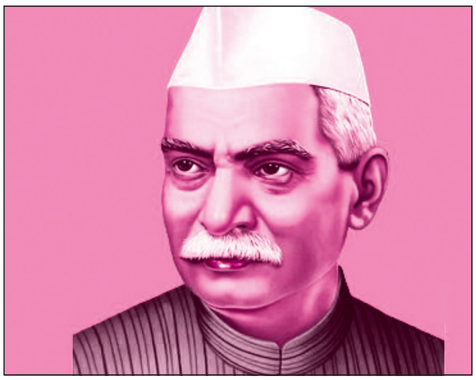

चित्र 18.1: डॉ. राजेंद्र प्रसाद, सभापति, संविधान सभा

चित्र 18.2: डॉ. भीमराव अंबेडकर, अध्यक्ष, प्रारूप समिति

पाठगत प्रश्न 18.1

1. संक्षेप में संविधान के अर्थ का वर्णन कीजिए।
2. 'संविधानवाद' शब्द से क्या अभिप्राय है?

18.2 संविधान की प्रस्तावना

भारत के संविधान का प्रारंभ प्रस्तावना से होता है। प्रस्तावना में संविधान के आदर्शों, उद्देश्यों तथा मौलिक नियमों का उल्लेख किया गया है। प्रस्तावना किसी पुस्तक की भूमिका जैसी है। प्रस्तावना को संविधान की मार्गदर्शिका भी कहा जाता है। भारतीय संविधान की प्रस्तावना इस प्रकार है :

> "हम भारत के लोग, भारत को एक संपूर्ण, प्रभुत्वसंपन्न, समाजवादी, पंथनिरपेक्ष, लोकतांत्रिक गणराज्य बनाने के लिए तथा उसके समस्त नागरिकों को : सामाजिक, आर्थिक तथा राजनीतिक न्याय; विचार अभिव्यक्ति, विश्वास, आस्था व उपासना की स्वतंत्रता, प्रतिष्ठा और अवसर की समता प्राप्त करने के लिए तथा उन सबमें व्यक्ति की गरिमा और राष्ट की एकता एवं अखंडता सुनिश्चित करने वाली बंधुता बढ़ाने के लिए दृढ़ संकल्प होकर अपनी इस संविधान सभा में आज तिथि 26 नवंबर, 1949 ई. को एतद् इस संविधान को अंगीकृत, अधिनियमित और आत्मार्पित करते हैं।

टिप्पणी

'प्रस्तावना' संक्षेप में, संविधान के उद्देश्यों को दो प्रकार से वर्णित करता है; प्रथम, प्रशासन की संरचना से संबंधित तथा दूसरे, स्वतंत्र भारत द्वारा प्राप्त किए जाने वाले आदर्शों से संबंधित हैं। संभवत: इसीलिए प्रस्तावना को संविधान की कुंजी कहकर पुकारा जाता है।

'प्रस्तावना' में दिए गए उद्देश्यों का अंतर्विष्ट संविधान की मौलिक संरचना में संशोधन अथवा सुधार लाना सरल नहीं है, क्योंकि संविधान में अनुच्छेद 368 के अंतर्गत संशोधन प्रक्रिया सरल के साथ ही साथ कठिन भी है।

सर्वोच्च न्यायालय के निम्न न्यायिक-निर्णयों का संबंध संविधान की मौलिक संरचना से सम्बन्धित है।

1. केशवानंद भारती बनाम केरल राज्य, ए.आई.आर. 1973 एस.सी. 1461।

2. इंदिरा गांधी बनाम राजनारायण, ए.आई.आर. 1975 एस.सी. 2299।

3. मिनर्वा मिल्स लिमिटेड बनाम यूनियन ऑफ इंडिया ए.आई.आर एस.सी. 1989।

4. संदर्भ बेरुबारी यूनियन (1), (1960) 3 एस.सी.आर. 250।

भारतीय संविधान की प्रस्तावना में मात्र एक संशोधन, 42वें संविधान संशोधन 1976 में ही हुआ था। यह एक ध्यान देने योग्य तथ्य है कि केशवानंद भारती मुकदमे में सर्वोच्च न्यायालय ने अपने निर्णय में कहा था कि प्रस्तावना भारत के संविधान की मौलिक संरचना का अंग है। यही नहीं, उसी सर्वोच्च न्यायालय ने एक अन्य प्रसिद्ध बेरुबारी मुकदमे में कहा कि प्रस्तावना संविधान की मौलिक संरचना का अंग नहीं है।

'प्रस्तावना के संघटक या घटक : संविधान की प्रस्तावना के निम्न चार घटक हैं:

1. संविधान की सत्ता का स्त्रोत : यह (प्रस्तावना) घोषित करती है कि संविधान की सत्ता का स्त्रोत भारत के लोग हैं।

2. राज्य का स्वरूप : यह (प्रस्तावना) भारत को एक संपूर्ण प्रभुत्व-संपन्न, समाजवादी, पंथनिरपेक्ष, लोकतन्त्रात्मक गणराज्य घोषित करती है।

3. संविधान के उद्देश्य : यह (प्रस्तावना) न्याय, स्वतंत्रता, समानता एवं बंधुता को प्राप्त करने को संविधान के उद्देश्यों के रूप में उल्लेखित करती है।

4. संविधान को अंगीकृत करने की तिथि : यह (प्रस्तावना) 26 नवम्बर, 1949 को संविधान को अंगीकृत करने की तिथि घोषित करती है।

पाठगत प्रश्न 18.2

रिक्त स्थानों को भरिए :

1. 'प्रस्तावना' में संविधान की .... का उल्लेख किया गया है।
2. 'प्रस्तावना' संविधान के .... को वर्णित करती है।
3. 'प्रस्तावना' के किसी एक संघटक या घटक का नाम बताइए।

18.3 प्रस्तावना : क्या यह संविधान का अंग है?

यह एक रुचिकर बात है कि संविधान का आरंभ प्रस्तावना से होता है, जबकि यह सबसे पहले अस्तित्व में नहीं आया। प्रस्तावना संबंधी प्रस्ताव 17 अक्टूबर, 1949 को प्रस्तुत किया गया था। प्रारूप समिति के अध्यक्ष ने प्रस्ताव प्रस्तुत करते हुए कहा कि 'प्रस्तावना संविधान का महत्वूर्ण अंग है।' यह प्रस्ताव 2 नवंबर, 1949 को स्वीकार कर लिया गया तथा संविधान का भाग बन गया।

यह विवादास्पद प्रश्न है कि क्या प्रस्तावना संविधान का अंग है अथवा नहीं, संविधान के दो महत्वपूर्ण मुकदमों में वर्णित किया गया था- (क) बेरुबारी तथा (ख) केशवानंद भारती मुकदमा वाद।

उपरोक्त वर्णित मुख्य प्रश्न, कि क्या प्रस्तावना संविधान का अंग है, इस प्रस्ताव पर निर्भर करेगा कि क्या प्रस्तावना को संशोधित किया जा सकता है?

18.3.1 प्रस्तावना संविधान का अंग नहीं है

भारत के संविधान के अनुच्छेद 143(1) के अंतर्गत बेरुबारी मुकदमे में भारत-पाकिस्तान समझौते के प्रसंग के अंतर्गत आठ न्यायाधीशों की पीठ की अध्यक्षता मुख्य न्यायाधीश बी.पी. सिन्हा ने की, जिसने इस विषय पर विचार किया। न्यायाधीश गजेंद्र गडकर ने सर्व-सम्मति की घोषणा कर दी। न्यायालय ने निर्णय में कहा कि संविधान की प्रस्तावना निःसंदेह संविधान निर्माताओं ने विभिन्न प्रावधानों से परिलक्षित कर दिया कि प्रस्तावना संविधान का अंग नहीं है। बेरुबारी मुकदमें को संक्षिप्त रूप देते हुए न्यायाधीश शीलट तथा न्यायाधीश ग्रोवर ने केशवानंद मुकदमें के अंतर्गत (पैराग्राफ 534 को देखिए) निम्न प्रकार से की :

1. संविधान की प्रस्तावना, संविधान निर्माताओं के दिमाग को खोलने की कुँजी हैं, इससे संविधान में शामिल विभिन्न प्रावधानों को स्पष्ट किया जा सके।
2. प्रस्तावना संविधान का अंग नहीं है।
3. यह संविधान के प्रावधानों के द्वारा सरकार को दी गई शक्तियां का स्रोत नहीं हैं।
4. इस प्रकार की शक्तियां, संविधान में समाविष्ट एवं अंतर्निहित प्रदान कर की गयी हैं।
5. शक्तियों के संबंध में जो सत्य है, वही निषेध, सीमांकन व नियंत्रण के विषय में भी सत्य होता है।
6. संविधान की प्रस्तावना का पहला भाग सम्प्रभुत्ता की अवधारणा को सीमित करता है जब वह सम्प्रभु शक्ति का प्रयोग कर किसी अन्तराष्ट्रीय संधि के द्वारा भारत के किसी भूभाग को सत्तंतरित करने पर रोक लगाता है।

बेरुबारी मामला, गोलकनाथ मुकदमें पर आधारित रहा। न्यायाधीश वॉनचू के अनुसार : हम कई समान तर्कों के आधार पर यह विचार रखते हैं कि प्रस्तावना अनुच्छेद 368 के अंतर्गत संविधान संशोधन को किसी भी प्रकार से निषिद्ध या नियंत्रित नहीं करती है।

न्यायमूर्ति वच्छावत का विचार था कि ''प्रस्तावना संविधान के अनुच्छेदों की अस्पष्ट भाषा को नियंत्रित नहीं कर सकती।

18.3.2 प्रस्तावना संविधान का अंग है-

यह दुख के साथ-साथ रिकार्ड रखने का विषय है कि बेरुबरी वाद में जाने-माने न्यायाधीशों ने संवैधानिक इतिहास को नजरअंदाज किया। संविधान सभा द्वारा अपनाए गए प्रस्ताव में अनेक शब्दों में कहा गया कि प्रस्तावना संविधान का ही अंग है। यह गलती केशवानंद वाद में सुधारी गई, जिसमें स्पष्ट किया गया कि प्रस्तावना संविधान के अन्य प्रावधानों की तरह ही संविधान का हिस्सा है। इस प्रकार केशवानंद भारती वाद ने इतिहास रचा।

केशवानंद भारती वाद में तेरह न्यायाधीशों की बैंच में से कुछ न्यायाधीशों के क्या विचार थे यह जानना बड़ा रुचिकर है कि पहली बार 13 न्यायाधीशों की पीठ प्रारंभिक क्षेत्राधिकार के अंतर्गत एक रिट याचिका की सुनवाई के लिए बैठी। 13 न्यायाधीशों में से 11 ने अलग राय व्यक्त की। केशवानंद भारती वाद में न्यायालय की राय का अनुपात का पता लगाना आसान कार्य नहीं है, लेकिन प्रस्तावना के उद्देश्य से आसानी से यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि केशवानंद भारती वाद पर निर्णय इस पक्ष में था कि (क) संविधान की प्रस्तावना संविधान का अंग है, (ख) प्रस्तावना न तो शक्ति का स्रोत है, न सीमित या निषिद्ध का स्रोत है, (ग) संविधान के ऐसे प्रावधानों की व्याख्या करने में प्रस्तावना का अत्यधिक महत्व है, जिनमें प्रावधान की वृहद् और गहरी पहुंच को समझना हो या किसी प्रावधान में अस्पष्टता हो! ऐसे प्रावधानों में अर्थ के प्रस्तावना पर निर्भर रहा जा सकता है। जिन प्रावधानों का अर्थ व भाषा स्पष्ट है, उनकी व्याख्या के लिए प्रस्तावना पर निर्भर नहीं रहा जा सकता।

केशवानंद भारती वाद न्यायमूर्ति वाई.वी. चंद्रचूड़ द्वारा एक रुचिकर तर्क दिया गया, उनका कहना था कि प्रस्तावना संविधान का अंग है, लेकिन यह संविधान का प्रावधान नहीं है, इसलिए प्रस्तावना को बदलने के लिए आप संविधान में संशोधन नहीं कर सकते। न्यायमूर्ति चंद्रचूड़ ने माना कि यह विचार स्वीकार नहीं किया जा सकता कि प्रस्तावना संविधान का भाग नहीं है। यह संविधान का हिस्सा है तथा यह अनुच्छेद 368 के अंतर्गत संविधान संशोधन की परिधि से बाहर नहीं है। संविधान सभा के अभिलेख इस तरह के विवाद के लिए कोई जगह नहीं छोड़ते। यह संविधान सभा की कार्यवाही से सर्वविदित है कि प्रस्तावना को मतदान के पश्चात् संविधान के अंग के रूप में स्वीकार किया गया था।

प्रस्तावना प्रकाश पुंज की भांति इतिहास का एक उद्दीप्त विचार व अवधारणा है, इसलिए तर्क दिया जाता है कि वर्तमान और भविष्य में कितना भी शक्तिशाली शासक क्यों न हो, वह ऐतिहासिक तथ्यों में संशोधन नहीं कर सकता। यद्यपि इतिहास के तथ्यों में संशोधन नहीं किया जा सकता, परंतु प्रस्तावना में संशोधन किया जा सकता है।

केशवानंद भारती वाद भारत के संवैधानिक इतिहास में एक मील का पत्थर होने के साथ-साथ एक महत्वपूर्ण मोड़ भी था। महत्वपूर्ण संवैधानिक विषय पर न्यायिक निर्णय में इस वाद से आया बदलाव संवैधानिक कानून के छात्रों के लिए आश्चर्यजनक व अत्यधिक रुचिकर है। प्रत्येक न्यायाधीश द्वारा अपनी राय उत्कृष्ट व मनपसंद शब्दों में व्यक्त की गई, जिनमें हमारे संविधान निर्माताओं की 'हम भारत के लोग' की भावना व्यक्त होती है।

न्यायमूर्ति डी.जी. पालेकर ने कहा कि प्रस्तावना संविधान का अंग है, इसलिए यह अनुच्छेद 368 के अंतर्गत संशोधन योग्य है। उन्होंने कहा कि मौलिक अधिकारों को प्रस्तावना का विस्तार मानना अतिशयोक्ति व आधा सत्य है। न्यायमूर्ति एच.आर. खन्ना की राय में प्रस्तावना संविधान

का अंग है। उन्होंने प्राकृतिक अधिकारों की अवधारणा का विकास कर इसे प्रस्तावना में प्रतिस्थापित स्वतंत्रता, समानता और लोकतंत्र के मूल्य से संबद्ध किया। उन्होंने कहा कि ये अधिकार अहस्तांतरणीय है, इसीलिए इनमें संशोधन नहीं किया जा सकता, क्योंकि इन अधिकारों व मूल्यों को मनुष्य ने युगों के संघर्ष से संजोए रखा है।

न्यायमूर्ति खन्ना ने इस तर्क को अस्वीकार कर दिया, जो कहता था कि प्रस्तावना संविधान का अंग नहीं है। उनके अनुसार, 'प्रस्तावना संविधान से पहले चलती है।' उनकी राय में प्रस्तावना भी अन्य प्रावधानों की तरह ही संविधान का अभिन्न हिस्सा है, इसलिए आधारभूत ढांचे को छोड़कर इसमें संविधान के अन्य प्रावधानों की तरह प्रस्तावना में भी संशोधन किया जा सकता है। आधारभूति या मूलभूत ढांचे को संशोधन की शक्ति पर प्रतिबंधक के रूप में नहीं देखा जाना चाहिए।

न्यायमूर्ति एस.एन. द्विवेदी ने भी न्यायमूर्ति ए.एन. रे के निष्कर्ष व निर्णय के समान ही अपने विचार रखे, जिसने कहा था कि प्रस्तावना संविधान का हिस्सा है। न्यायमूर्ति द्विवेदी ने प्रस्तावना को संविधान का अंग बताने के साथ-साथ इसे संविधान का प्रावधान भी घोषित किया।

निष्कर्ष में न्यायमूर्ति बेग ने कहा कि अनुच्छेद 368 के अंतर्गत संविधान संशोधन की शक्ति पर कोई नियंत्रण नहीं है।

पाठगत प्रश्न 18.3

रिक्त स्थानों की पूर्ति करो-

1. .... वाद में सर्वोच्च न्यायालय ने राय व्यक्त की कि प्रस्तावना संविधान के आधारभूत ढांचे में शामिल है।

2. .... वाद में सर्वोच्च न्यायालय ने राय व्यक्त की कि प्रस्तावना संविधान के आधारभूत ढांचे में शामिल नहीं है।

3. 'प्रस्तावना संविधान का अंग है' क्या आप इस कथन से सहमत है, यदि हां तो अपने उत्तर के पक्ष में प्रासंगिक वाद बताइए।

18.4 प्रस्तावना की भूमिका

संविधान की प्रस्तावना पर निम्न प्रकार से चर्चा की जा सकती है :

1. प्रस्तावना की भूमिका और

2. प्रस्तावना का व्याख्या में महत्व या प्रस्तावना का व्याखिक मूल्य।

प्रस्तावना के व्याखिक मूल्य का तीन आयामों में अध्ययन किया जा सकता है -

(क) प्रस्तावना संविधान के व्याख्या कर्ता के रूप में।

(ख) संविधान के अंतर्गत निर्मित अन्य कानूनों की व्याख्या के स्रोत के रूप में प्रस्तावना।

(ग) अंतर्राष्ट्रीय दस्तावेज/ संधियां/ सम्मेलन/ घोषणाएं प्रस्तावना की व्याख्या में सहायक के रूप में

संविधान की प्रस्तावना ने देश का भाग्य व नियति का परिणाम निधार्रित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। जब भी लोकतंत्र के कदम प्रस्तावना द्वारा तय दिशा में चले, वे उचित दिशा में थे, उससे विचलन विपधगमन था।

भारत के संविधान के मेहराब के गर्भ में प्रस्तावना, भाग-III के अंतर्गत मौलिक अधिकार और भाग-IV में वर्णित राज्य के नीति-निदेशक तत्व है, जिनके माध्यम से प्रत्येक नागरिक के लिए विधि के अंतर्गत समतावादी-समाज व्यवस्था तथा मौलिक स्वतंत्रताएं और सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक स्वतंत्रताएं सुनिश्चित होती है। समाज में उपस्थित असमानताओं को दूर कर विधि के शासन के अंतर्गत सकारात्मक विभेद के साथ जाति, पंथ, लिंग, धर्म और क्षेत्र के संदर्भ में समानता प्रदान करना।

जबकि न्यायमूर्ति शीलट और न्यायमूर्ति ग्रोवर की केशवानंद भारती वाद में राय थी कि प्रस्तावना की ड्रॉफ्टिंग और इसकी स्वीकृति दर्शाती है कि;

1. यह संविधान की अग्रगामी नहीं है, जैसा कि अमेरिकी संविधान की प्रस्तावना के विषय में कहा जाता है।
2. इसे संविधान के अंग के रूप में स्वीकार किया गया।
3. इसमें शामिल ज्यादातर सिद्धांत उद्देश्य संबंधी प्रस्ताव से लिए गए।
4. प्रारूप समिति मानती थी कि उन्हें नए राज्य की सभी महत्वपूर्ण विशेषताएं इसमें शामिल करनी चाहिए।
5. इसमें यह मूल अवधारणा शामिल है कि संप्रभुता का अंतिम स्रोत जनता है।

यहां पर एक रुचिकर प्रश्न उठता है कि क्या प्रस्तावना में संशोधन किया जा सकता है? क्या प्रस्तावना अनुच्छेद 368 के अंतर्गत संविधान संशोधन की शक्ति पर नियंत्रण लगाती है?

प्रस्तावना का महत्व इस बात में है कि इसमें हमारे संविधान के मूल सिद्धांत समाहित है। क्या अनुच्छेद 368 की संविधान संशोधन की शक्ति को पूरी तरह बेअसर कर दिया जाए या फिर जिस आधारभूत सिद्धांत, जिस पर संवैधानिक ढांचा खड़ा किया गया है, उसे कमजोर कर दिया जाए। भारत के लोगों ने अपने देश को संप्रभुता संपन्न लोकतांत्रिक गणराज्य बनाने के लिए प्रतिबंद्धता व्यक्त की।

कोई यह नहीं कह सकता कि ये सिद्धांत अस्पष्ट है, उनका महत्व व संकेत इतनी अच्छी तरह समझ में आता है कि अस्पष्टता का कोई सवाल ही पैदा नहीं होता। प्रश्न यह उठता है कि क्या अनुच्छेद 368 में वर्णित संशोधन और संशोधित शब्द का यह अर्थ लगाया जाना चाहिए कि हम इन तीन मूल सिद्धांतों- संप्रभुता, लोकतंत्र व गणराज्य में से किसी को समाप्त कर सकते हैं! और क्या निर्वाचित सरकार संविधान द्वारा बनाई गई लोकतांत्रिक संस्थाओं को अलोकतांत्रिक बना सकती है। यह किसी राज्य पद में ऐसा बदलाव कर सकती है, जो गणराज्य के सिद्धांत के विरुद्ध हो। क्या भारत राज्य के संबंध में संवैधानिक व्यवस्था, संप्रभुता, लोकतंत्र व गणराज्य सिद्धांतों को समाप्त कर बनाई जा सकती है?

विद्वान् न्यायाधीशों ने इस संबंध में राय व्यक्त की कि विशेष परिस्थितियों में प्रस्तावना में बदलाव, फेर-बदल और संशोधन किया जा सकता है, लेकिन इस बात की संविधान निर्माताओं ने कल्पना भी नहीं की कि प्रस्तावना को निरस्त या समाप्त भी किया जा सकेगा। न्यायमूर्ति ए. एन. रे ने अपनी जो राय दी, वह प्रस्तावना के संबंध में काफी सटीक नजर आती है, जिसने कान बनाया वह सुनेगा नहीं और जिसने आंख लगाई वह देखेगा नहीं'। उन्होंने सहमति व्यक्त की कि प्रस्तावना संविधान का अभिन्न अंग है, जिसमें उन्होंने संविधान सभा द्वारा पारित प्रस्ताव का उल्लेख किया कि ''प्रस्तावना संविधान का हिस्सा है और प्रस्तावना को समाप्त या रद्द भी किया जा सकता है।''

प्रस्तावना में उस स्थिति में अत्यधिक महत्व है, जहां पर संविधान किसी कानूनी भाग में संदेह या अस्पष्टता हो। यदि अधिनियमित शब्द स्पष्ट है तो व्याख्या करने की आवश्यकता नहीं होती। इससे स्पष्ट है कि प्रस्तावना सामान्य निर्वाचित सरकार से ज्यादा शक्तिशाली व असरकारक नहीं हो सकती। प्रस्तावना संविधान द्वारा प्रदान की गई शक्तियों की प्रकृति का प्रतिपादन कर सकती है, लेकिन यह शक्तियों का सृजन नहीं कर सकती।

प्रस्तावना का संविधान निर्माण के समय एक विशिष्ट रूप-रेखा तैयार करने में अत्यधिक महत्व हो सकता है, लेकिन जब संविधान ही लगातार बदलता रहता है तो स्थिति बदल जाती है।

प्रस्तावना अधिनियमित भाग में प्रदान की गई शक्तियों का विस्तार या उन्हें सीमित नहीं कर सकती।

न्यायविदों व न्यायिक निर्णयों की यह राय रही है कि संविधान की प्रस्तावना एक औपचारिक प्रारूप मात्र नहीं है, बल्कि यह एक ऐतिहासिक दस्तावेज है तथा फिर भी यह संविधान का हिस्सा है। यह संविधान की व्याख्या करने का स्रोत तथा विधि के शासन की स्थापना का आधार है। यह राष्ट्र के भाग्य के निर्धारण में मार्गदर्शन करता है। इस प्रकार यह न्यायिक निर्णयों में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। प्रसिद्ध संविधानिक न्यायविद्व दुर्गा दास वसु के अनुसार बोम्बई में न्यायधीशों की पीठ में बहुमत ने प्रस्तावना निम्न नई उपयोगिता स्थापित की।

I. प्रस्तावना संविधान के मूल ढांचे की आरे संकेत करती है।

II. अनुच्छेद 356(1) के अन्तर्गत कोई भी घोषणा संविधान के मूल ढांचे का उल्लंघन करने के आधार पर न्यायिक पुनरावलोकन के लिए खुली है।

III. इसका अभिप्राय है कि अनुच्छेद 356(1) के अन्तर्गत कोई भी घोषणा, जो मूल ढांचे का उल्लंघन करती है, जैसा कि संविधान की प्रस्तावना में संक्षेप में कहा गया है, को असंवैधानिक घोषित किया जा सकता है।

प्रस्तावना की भूमिका पर बहस इन्द्रा साहनी बनाम भारत का संघ केस का सन्दर्भ लिए बिना पूरी नहीं हो सकती। इस केस को आम तौर पर मण्डल कमीशन केस के नाम से जाना जाता है जिसका निर्णय नौ न्यायाधीशों की पीठ ने किया था। इसके कारण न्यायिक विचारों की बहुरंग प्रस्तुति देखी जा सकती है जो प्रस्तावना का महत्व तथा सन्देश दर्शाते हैं। न्यायधीश एस. रातनवेल पाण्डियन का विचार है-

> अवसरों और प्रतिष्ठा की समानता हमारे जीवन्त संविधान में लिखे गए उज्जवल निर्देश है जो हमारे संप्रभु, समाजवादी और पंथ निरपेक्ष लोकतान्त्रिक गणतन्त्र के उद्देश्यों में से एक को दर्शाता है।

प्रस्तावना में कहे गए सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक क्षेत्रों में न्याय के समान वितरण से सम्बन्धित अनेक संवैधानिक प्रावधाानों को त्रिपक्षीय विवेचना की आवश्यकता है जो सामाजिक न्याय, आर्थिक न्याय तथा राजनीतिक न्याय प्राप्त करने के लिए मौलिक अधिकारों में अन्तर्निहित अपेक्षाओं से भरी तीव्रता और सुन्दरता से प्रतिबिम्बित होनी चाहिए। यह बदलती हुई सामाजिक जरूरतों को स्वीकार करना है। किसी को भी संविधान को एक तलवार अथवा एक अपराध अथवा पूर्वभासी रक्षा के लिए कवच के रूप में प्रयोग करने की अनुभूति नहीं दी जा सकती। संविधान की ऐसी कोई भी व्याख्या स्वीकार नहीं की जा सकती जो लोगों के किसी वर्ग के साथ स्थायी अन्याय और असमानता पैदा करती है अथवा संवैधानिक लाभों पर वंशीय एकाधिकार का अनैतिक दावा करने वालों की रक्षा करती है। संवैधानिक आदेश के रूप एक उन्नत सामाजिक नीति को ऊँची मीनारों में बैठ कर, चुप्पी साध कर तथा समाज को प्रभावित करने वाले दबावों और तूफानों को नजरान्दाज तथा अवहेलना करके नहीं अपनाया जा सकता।

न्यायमूर्ति टी. के. थम्मन के न्यायिक निर्णय पर मानवीय संवेदानएं हावी थी। उसने कहा था कि ऊँचे-ऊँचे भवनों से झलकने वाली अमीरी के साथ ही केवल भीख पर जिन्दा रहने वाले और बहुत मामलों में कोढ़ जैसी बीमारियों से प्रभावित और विकृत तथा गरीबी के अभिशाप से घिरे फुटपाथों और शहर की गन्दी बस्तियों में रहने वाले लोग अर्थात असली भारत की दुर्दशा, कष्टों और अपमान में धर्म, जाति और वंश की बाधााएं आड़े नहीं आती। पिछड़ेपन के ये जीवन्त स्मारक, हमारी राष्ट्रीय उदासीनता का शर्मनाक स्मरण संविधान की प्रस्तावना में उद्घोषित आदर्शों के साथ एक क्रूर धोखा है।

न्यायमूर्ति कुलदीप सिंह जाति व्यवस्था पर प्रहार करते हैं जो संविधान निर्माताओं द्वारा दफना दिए जाने के बावजूद विभिन्न रूपों में अपना बदसूरत चेहरा दिखती रहती है और देश की पंथ निरपेक्षता और राष्ट्रीय एकता के लिए गम्भीर खतरा प्रस्तुत करती है। वह इतिहास से सबक न लेने वालों को चेतावनी देता है कि उन्हें दोबारा मुसीवतों का सामना करना पड़ेगा। भातर के लोगों के लिए संविधान के शब्दों और भावना को मानना अति महत्वपूर्ण है जिसने हमारे देश को संप्रभु, समाजवादी, पंथ निरपेष, लोकतान्त्रिक गणराज्य का रूप दिया है जो अपनी प्रस्तावना में सभी नागरिकों को सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक न्याय तथा स्तर और अवसरों की समानता देने का वायदा करता है।

न्यायमूर्ति पी. बी. सांवत अपनी मान्यता दर्ज करते हैं कि जब तक सबके लिए अवसरों की समानता को सुनिश्चित नहीं किया जाता तब तक संविधान की प्रस्तावना में दर्ज किए गए लक्ष्य अर्थात ऐसा भाई चारा जो व्यक्ति की गरिमा और राष्ट्र की एकता और अखण्डता के प्रति आश्वस्त करे, को प्राप्त नहीं किया जा सकता। असमानता भाईचारे के विरूद्ध है और भाईचारे के बिना एकता एक सपना मात्र रह जाएगा। जब तक सब को आर्थिक न्याय प्रत्याभूत नहीं किया जाता तब तक संविधान द्वारा दिए गए सामाजिक और राजनीतिक न्याय केवल एक धोखा ही रहेंगे। प्राईवेट अथवा सार्वजनिक रोजगार को सुरक्षित करना सामाजिक बराबरी का साधन है। ऐसा रोजगार उनके लिए सुरक्षित होना जिन्हें अतीत में इससे वंचित किया गया ताकि इससे वंचितों को प्रस्तावना द्वारा घोषित सामाजिक और आर्थिक न्याय प्राप्त हो सके।

न्यायमूर्ति आर. एम. सहाय के विचार में संविधान की प्रस्तावना इतिहास का एक परिवर्तन बिन्दु है। हमारा संविधान अतीत से नाता तोड़कर एक नई दृष्टि की आवश्यकता के साथ निर्मित किया गया था। संविधान की प्रस्तावना सदियों तक विदेशी शासन से त्रस्त लोगों की भावनाओं को

अभिव्यक्त करता है। उसने कहा था–

"सभी नागरिकों को सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक न्याय, विचार, अभिव्यक्ति, विश्वास आस्था और पूजा की स्वतंत्रता अवसरों और स्तर की समानता तथा व्यक्ति की गरिमा का आश्वासन देते हुए उन सब में भ्रातृभाव को बढ़ाना केवल शब्दों की सुन्दरता नहीं है अपितु संवैधानिक तंत्र के माध्यम से व्यवहार में लाने और अपनाने की आदर्श व्यवस्था है। साम्प्रदायिक भावनाओं का सरकार एवं प्रशासन दोनों द्वारा गैर कानूनी करार दिया गया है।

न्यायमूर्ति पी. बी. सांवत ने संविधान की प्रस्तावना के विषय में कहा–

"संविधान का मूल ढांचा प्रत्येक नागरिक को समान अवसर, समान स्तर और समान गरिमा का वायदा करता है। संविधान को इस कोण से देखने पर कम भाग्यशाली लोगों के लिए किए गए प्रतिपूरक उपाय और उपचार वस्तुत: समान अवसरों के सिद्धान्त का उल्लंघन नहीं करते क्योंकि हमारा समान 'सभी इन्सान एक समान है' के निरपेक्ष सिद्धान्त पर नहीं बना हुआ अपितु यह तो मानवीय तरीकों में निर्मित सामाजिक अन्तरों, अमीर और गरीब की वास्तविकता पर बना हुआ है।

न्यायमूर्ति बी. पी. जीवन रेड्डी ने एम. एच. कानिया, एम. एन. वैंकेटचलैया, ए. एच. अहमदी, और अपनी ओर से कहा था कि सभी नागरिकों को न्याय, स्वतंत्रता, समानता और भ्रातृभाव उपलब्ध करवाले का चौमुखी उद्देश्य उच्चकोटि के राजनेता को दर्शाता है जैसी हमारी देश ने कभी नहीं देखी थी क्योंकि कानून, राजनीति और जन जीवन से सम्बन्ध रखने वालों ने संविधान को परिवर्तन के साधन के रूप में निर्मित किया। संविधान निर्माता केवल संविधान का ढांचा निर्मित करके संतुष्ट नहीं बैठ गए थे अपितु उन्होंने प्रस्तावना में लक्ष्य को स्पष्ट किया और संविधान के भाग III और IV में उस लक्ष्य को प्राप्त करने का तरीका भी स्पष्ट किया। न्यायमूर्ति जीवन रेड्डी ने संविधान में प्रयुक्त कुछ पदों व शब्दों का उद्गम को भी खोजा। 'स्वतंत्रता, समानता और भाईचारा' शब्द फ्रांसीसी क्रान्ति का मुखर वाक्य था। यह हमारे संविधाान का भी आदर्श वाक्य है जिसमें आधुनिक राजनीतिक सोच के सार 'सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक न्याय' के सिद्धान्त को भी जोड; दिया गया है। समानता सदैव प्रत्येक मनुष्य की सबसे बड़ी मानवीय इच्छा रही है। इसने अनेक विचारकों और दार्शनिकों को प्रेरित किया है। यदि सभी धर्मों और राजनीतिक विचारधाराओं में बाद में जुड़ी विकृतियों और जड़ताओं को छोड़ कर देखा जाए तो विचार, अभिव्यक्ति, विश्वास, आस्था और पूजा की स्वतंत्रा में सभी मनुष्यों और विशेषत: इस देश में सदैव सबकी आस्था रही है और भारतीय सन्दर्भ में विशेषत: भाईचारे में सबकी आस्था रही है। एक गतिशील, बहुमुखी और निरन्तर विकासशील सिद्धान्त के रूप में 'समानता का अधिकार' का उद्देश्य अवसरों और स्थिति की समानता उपलब्ध करवाना है। लोगों की अपेक्षाओं के सार के रूप में सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक न्याय को संविधान के भाग IV में दर्ज किया गया है।

प्रस्तावना में संशोधनों पर चर्चा के दौरान 17 अक्टूबर 1949 को आचार्य जे. बी. कृपलानी ने भावनाओं से ओतप्रोत एक भावुक भाषण दिया। उसने कहा था कि संविधान सभा के अध्यक्ष ने एक अच्छे मेजबान की तरह सबसे अच्छी शराब सबसे अन्त के लिए आरक्षित कर छोड़ी है। संविधान के प्रारम्भ में रखे जाने वाली प्रस्तावना को विचार के लिए सबसे बाद में लिया गया है। उस पावन आवसर पर उसने सभा को स्मरण कराया कि:

"हमने इस प्रस्तावना में जो कुछ कहा है वह केवल कानूनी और राजनीतिक सिद्धान्त नहीं है। यह बहुत ही नैतिक ओर आध्यात्मिक सिद्धान्त है। वास्तव में यह कानूनी और संवैधानिक सिद्धान्त नहीं थे अपितु असल में अध्यात्मिक और नैतिक सिद्धान्त थे"

उसने आगे कहा

"लोकतन्त्र का अर्थ मनुष्यों के बीच समानता है और इसका अभिप्राय भ्रातृभाव और अहिंसा है। हिंसा लोकतन्त्र की शत्रु है।

उसने आगे जोड़ा

"यदि हम लोकतन्त्र को केवल कानूनी, संवैधानिक और औपचारिक शिक्षा की तरह प्रयोग करेंगे तो असफल रहेंगे। पूरे देश को लोकतन्त्र के नैतिक, आध्यात्मिक और चमत्कारिक प्रभाव को समझना चाहिए।

ऐसा प्रतीत होता है कि आचार्य कृपलानी कल ही यह बात कह रहे थे। संविधान की प्रस्तावना केवल कानूनी प्रारूप का कोई अंश अथवा मात्र औपचारिकता नहीं है। यह आचार संहिता है। इसे नैतिकता और व्यवहार में लाना चाहिए। यह गूढ़ता, रहस्यात्मकता व अध्यात्मवाद से भरा हुआ है। इसमें बजती हुई घण्टियों की लय और संदेश है। क्या हमारे पास इस संगीत को सुनने के लिए कान हैं? पढ़ने के लिए आंखें हैं और समझने के लिए दिल हैं?

पाठगत प्रश्न 18.4

1. संविधान की कार्यपद्धति में प्रस्तावना की भूमिका की संक्षेप में व्याख्या कीजिए।
2. संविधान की प्रस्तावना देश के भाग्य निर्माण में एक प्रभावकारी भूमिका निभाती है "क्या यह कथन सही है या गलत? अपने विचार देकर स्पष्ट करें।

18.5 संविधान की व्याख्या करने में प्रस्तावना का महत्व

संविधान की व्याख्या करने में प्रस्तावना के महत्व का तीन पक्षों में अध्ययन किया जा सकता है-

(a) प्रस्तावना - संविधान की व्याखयाता के रूप में

(b) प्रस्तावना - संविधान के अन्तर्गत निर्मित अन्य विधियों (कानूनों की व्याख्या के स्रोत के रूप में)

(c) प्रस्तावना की व्याख्या में सहायक के रूप में अन्तर्राष्ट्रीय प्रपत्र, सम्मेलन और घोषणाएं

(a) संविधान के व्याख्याकार के रूप में - प्रस्तावना

केशवानन्द भारती, चन्द्राभवन और धारवाड़ डिस्ट्रिक्ट पी. डब्ल्यू. डी. लिटरेट डेली वेज एम्पलाईज एसोसिएशन केस में सर्वोच्च न्यायालय की उद्घोषण के साथ यह स्पष्ट हो गया कि

मौलिक अधिकारों और राज्य के नीति निदेशक सिद्धान्तों की परिधि, फैलाव और क्षेत्र को जानने के लिए प्रस्तावना को प्रयुक्त किया जा सकता है।

संविधान की प्रस्तावना हमें संविधान निर्माताओं के मस्तिष्क को खोल कर पढ़ने की चाबी प्रदान करती है क्योंकि संविधान सभा ने इसको बनाने में कड़ी मेहनत की थी ताकि यह संविधान की जरूरी विशेषताओं और आधारभूत उद्देश्यों को प्रतिदर्शित कर सके। प्रस्तावना संविधान का एक अंग है लेकिन प्रस्तावना को न तो किसी मूल शक्ति का स्रोत माना जा सकता है और न ही किसी प्रतिबन्ध अथवा सीमा का स्रोत माना जा सकता है। संविधान की प्रस्तावना को किसी संशोधन का अर्थ समझने के लिए प्रयोग किया जा सकता है। केशवानन्द भारती और मिनर्वा मिल केस में न्यायाधीशों का बहुमत इस निर्णय पर पहुँचने के लिए प्रस्तावना पर निर्भर रहा कि अनुच्छेद 368 द्वारा दी गई संविधान संशोधन की शक्ति सीमित है और संसद को संविधान के मूल ढांचे को बदलने की शक्ति नहीं है।

एम्स स्टुडेन्ट्स यूनियन बनाम एम्स केस में संविधान के सिद्धान्तों द्वारा असमर्थित आरक्षण के भीतर आरक्षण को रद्द करते हुए न्यायालय ने संविधान की प्रस्तावना का उल्लेख किया। न्यायालय का मत था कि संविधान की प्रस्तावना में एक उद्देश्य 'हम भारत के लोगों' के बीच व्यक्ति की गरिमा एवं एकता और अखण्डता को आश्वस्त करते हुए आपसी भाईचारा बनाए रखना है।

संविधान निर्माताओं द्वारा दिया गया तथा भारत के लोगों द्वारा अपनाएं गए आरक्षण के अतिरिक्त-संविधान की रक्षा के बिना दिया गया आरक्षण आपसी भाईचारे, एकता और अखण्डता तथा व्यक्ति की गरिमा को कम करता है।

प्रस्तावना ही स्पष्ट करती है कि संविधान भारत के लोगों से प्राप्त सभी शक्तियों का स्रोत है और इन्हीं में अन्तिम शक्ति और ताकत निहित है। मुख्य न्यायाधीश आर. एस. पाठक ने केहर सिंह बनाम भारतीय संघ केस में संविधान पीठ की ओर से बोलते हुए कहा था कि भारत का संविधान आधुनिक संवैधानिक व्यवहार और देश के शासन को चलाने के मूल तत्वों के अनुरूप एक दस्तावेज है। भारत के लोगों ने कुछ निश्चित अंगों, संस्थाएं और अधिकारियों को संविधान द्वारा प्रदत शक्तियों को प्रयोग करने के एक संवैधानिक नीति प्रदान की है। सारी शक्तियां लोगों में निहित हैं और इन्हें एक संवैधानिक व्यवस्था चलाने बनाए रखने तथा कार्यन्वित करने के लिए सौंपा गया हैं इस बात को संविधान की प्रस्तावना में दर्ज किया गया है।

मुख्य न्यायाधीश एस. एस. सीकरी ने केशवानन्द भारती केस में निर्णय के दौरान संविधान की व्याख्या के बीच कहा था कि संविधान की पृष्ठभूमि में हमारा इतिहास है और इसकी व्याख्या हमें अपनी आशाओं, अपेक्षाओं और अन्य सम्बन्धित हालात के परिपेक्ष्य में करनी होगी। किसी भी अन्य संविधान के अन्तर्गत इतने विधिता पूर्ण लोग नहीं हैं जिनकी संख्या 55 करोड़ से अधिक है और सबकी अलग भाषाएं और धर्म हैं तथा वे आर्थिक विकास के अलग-अलग चरणों में है। सब मिलकर एक राष्ट्र बनाते हैं और किसी अन्य देश के सामने इतनी व्यापक सामाजिक-आर्थिक समस्यसाएं नहीं हैं। हमारे संविधान की व्याख्या किसी सामान्य कानून की तरह नहीं की जा सकती अपितु यह एक ऐसा संविधान है जो सरकार के लिए तंत्र निश्चित

करता है और जिसकी बड़ी व्यापक और महान दृष्टि है। इस दृष्टि को संविधान की प्रस्तावना में शब्दों से व्यक्त किया गया है और लोगों को मौलिक अधिकार प्रदान कर इसको कार्यान्वित किया गया है। इस दृष्टि को और अधिक सुचारू रूप से कार्यान्वित करने के लिए संविधान में दिए गए नीति निदेशक सिद्धान्त लागू किए गए। न्यायमूर्ति वच्छावट वेरूबारी यूनियन ने (Re Berubari Union) तथा न्यायमूर्ति वांचू से असहमति प्रकट करते हुए गोलकनाथ केस में कहा था कि प्रस्तावना संविधान का अंग नहीं है। केशवानन्द भारती केस में मुख्य न्यायधीश सीकरी ने कहा था कि प्रस्तावना संविधान का ही एक अंग है। प्रस्तावना को शक्ति का स्रोत न मानने के निर्णय को प्रतिबन्धों और सीमाओं तक विस्तार नहीं दिया जा सकता कुछ मामलों में सीमाओं को प्रस्तावना से व्युत्पन्न दर्शाने के लिए पर्याप्त अधिकार था। संविधान की प्रस्तवना किसी व्यर्थ के सिद्धान्त को निर्धारित नहीं करती। उसका निष्कर्ष था कि अनुच्छेद 368 में 'इस संविधान का संशोधन' में प्रस्तावना के व्यापक दायरे के अन्तर्गत संशोधन करना तथा प्रस्तावना एवं नीतिनिदेशक तत्वों के उध्श्य को पूरा करना है।

मौलिक अधिकारों के बारे में इसका अर्थ था कि मौलिक अधिकार निरस्त नहीं किया जा सकता तो भी जनहित में इनका संक्षेपन किया जा सकता है। संविधान और प्रस्तावना के व्यापक दायरें में संशोधन की अवधारणा को व्यर्थ एवं असन्तोषजनक नहीं कहा जा सकता जिसे हमारे सांसद और लोग समझ नहीं पाएंगे।

न्यायमूर्ति जे. एम. शील्ट और न्यायमूर्ति ए. एन. ग्रोवर ने केशवानन्द भारती मामले में संयुक्त विचार रखा था। उनके अनुसार संविधान की प्रस्तावना में संप्रभु, लोकतान्त्रिक गणतंत्र के लक्षण लिए अस्तित्व में आने वाले राज्य के कुल चरित्र से अलग महान उद्देश्यों, लक्ष्यों और प्रावधानों के अन्तर्गत नीतियाँ को समाहित किया गया है। भाग III और IV, जिनमें मौलिक अधिकार और नीति निदेशक तत्व शामिल हैं, संविधान की अन्तर्आत्मा है। यदि संशोधन शब्द के एक से अधिक अर्थ निकलते हों तो संविधान की योजना और इसकी ऐतिहासिक पृष्ठभूमि के साथ-साथ प्रस्तावना का सदा प्रयोग किया जाता रहा है और ऐसा करना स्वीकार्य भी रहा है। संविधान निर्माताओं ने प्रस्तावना को गौरवपूर्ण स्थान दिया है। इसमें वो सारे आदर्श और आपेक्षाएं शामिल हैं जिनके लिए देश ने अंग्रेजों के शासन काल में संघर्ष किया और भारतीय लोगों की प्रतिभा के अनुरूप इस संविधान को लागू किया जाना था। यह अन्य देशों के संविधानों से लिए गए विचारों और योजनाओं के योग को परिलक्षित करता है।

लेकिन संविधान के प्रत्येक अनुच्छेद में निरन्तर चलने वाला तनाव प्रस्तावना में दिखाई देता है जिसे पावन और पुनीत बनाया जा सकता है। यह बात महत्वपूर्ण है कि प्रस्तावना को प्रारूप अनुच्छेदों में संविधान सभा द्वारा स्वीकृत सुधारों के साथ पारित किया गया। इसलिए प्रस्तावना में बहुत कम और सुपरिभाषित शब्दों को लिया जाना था जो संविधान को समझने के लिए जरूरी थें।

विद्वान न्याययधीशों ने संविधान सभा के अध्यक्ष द्वारा प्रस्तावना को सबसे अन्त में लिए जाने के स्पष्टीकरण पर ध्यान दिया। ऐसा इस दृष्टि से किया गया कि प्रस्तावना स्वीकृत संविधान के अनुरूप होनी चाहिए। संविधान के प्रारूप पाठ में सुझाए गए अनेक संशोधन अस्वीकार किए गए। अस्वीकार किया गया एक संशोधन था "भागवान के नाम पर" शब्दों को जोड़ना। इस

संशोधन को इस आधार पर अस्वीकार किया गया कि यह आस्था की स्वतंत्रता के साथ मेल नहीं खाता था जिसकी न केवल प्रस्तावना अपितु मौलिक अधिकारों में भी गारंटी दी गई थी। एक संशोधन जिसने सभी सन्देहों से परे यह स्पष्ट किया कि संप्रभुता का इसके अतिरिक्त कोई दूसरा अर्थ नहीं है कि संविधान लोगों से प्रकट हुआ है और इस संविधान को बनाने की संप्रभुता लोगों में ही निहित है।

न्यायमूर्ति खन्ना ने संविधान अथवा कानून की व्याख्या की दृष्टि से प्रस्तावना के दो उपयोग रेखांकित किए। पहला - यदि किसी कानून अथवा संविधान में कहीं कोई शब्द अस्पष्ट हो तो उसका अर्थ स्पष्ट करने के लिए प्रस्तावना का प्रयोग किया जा सकता है। दूसरा - प्रस्तावना को किसी संवैधानिक प्रावधान अथवा कानून की भाषा में किसी अस्पष्टता को दूर करने के लिए भी प्रयोग किया जा सकता है। जब किसी अनुच्छेद अथवा खण्ड की भाषा सरल और स्पष्ट हो तो प्रस्तावना का प्रयोग करके उस अनुच्छेद अथवा खण्ड पर कोई प्रकाश नहीं डाला जा सकता।

न्यायमूर्ति जगमोहन रेड्डी ने संविधान के स्रोत और उसके पीछे की ताकत पर बोलते हुए कहा था कि संविधान स्पष्ट शब्दों में कहता है कि भारत के लोगों ने ही इस संविधान को अंगीकार और लागू किया है और संविधान स्वयं को आत्मर्पित किया है। इसी कारण यह संविधान गत 23 वर्षों से बिना किसी प्रश्न चिन्ह के कार्य कर रहा है। संविधान के अन्तर्गत लोगों की इतनी बड़ी जनसंख्या साधारण चुनावों में संसद और विधान सभाओं के लिए अपने प्रतिनिधि चुनना इस बात को निर्विवाद बनाता है कि संविधान का स्रोत और वाध्यकारी ताकत भारत के लोगों की सप्रंभु इच्छा है। इसे विचार से संविधान संस्थापकों द्वारा प्रस्तावना को संविधान बनने के बाद निश्चित करना प्रस्तावना को इस तंत्र के आदर्शों एवं लोगों की अपेक्षाओं के अनुरूप बनाना था। प्रस्तावना संविधान के उन लक्ष्यों एवं उद्देश्यों की घोषणा करती है जिनको प्राप्त करने के लिए संविधान बनाया गया था।

यद्यपि जगमोहन रेड्डी के विचार में संविधान के व्याख्याकार के रूप में प्रस्तावना की उपयोगिता का विषय एक गम्भीर विषय है परन्तु न्यायविदों के विचारानुसार यह तो स्पष्ट है कि -

(a) प्रस्तावना, निर्माताओं के दिमाग को उन शरारतों के प्रति खोलने की कुंजी है जिनका उपचार किया जाना है।

(b) यदि संविधान के कार्यान्वयन में किसी शब्द के प्रति अस्पष्टता अथवा सन्देह उत्पन्न हो तो प्रस्तावना का सहारा लिया जा सकता है।

(c) कुछ जगह भले ही शब्द स्पष्ट हों तब भी प्रत्यक्ष विसंगति को रोकने के लिए इसका प्रयोग किया जा सकता है।

(d) इस तरह से विश्वास किया जाना चाहिए कि संविधान निर्माताओं के इरादे को संविधान अथवा मूल कानून में अभिव्यक्ति मिली है।

(e) प्रस्तावना का कभी भी संविधान द्वारा प्रदत शक्तियों को बढ़ाने अथवा नयी शक्ति निर्मित करने और संविधान द्वारा ले ली गई शक्ति को वापस देने के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता। इसका वास्तवितक कार्य संविधान द्वारा दी गई शक्तियों की प्रकृति, विस्तार और प्रयोग को स्पष्ट करना है।

अमेरिकी अवधारणा है कि प्रस्तावना का प्रयोग संघीय शक्ति के स्रोत के रूप में नहीं किया जाना चाहिए अपितु प्रस्तावना का प्रयोग और महत्व संविधान में अन्तर्निहित आवश्यक सिद्धान्तों को सुनिश्चित करना है।

ब्रिटिश मामले दर्शाते हैं कि प्रस्तावना का प्रयोग विधायी इरादों को खोजने के माध्यम के रूप में किया जा सकता है। ब्रिटिश विचार का सार है कि -

(a) प्रस्तावना कभी भी क्रियान्वित किए शब्दों से अलग नहीं जा सकती।

(b) प्रस्तावना को क्रियान्वित किए गए शब्दों का अर्थ जानने के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता जब स्वयं प्रस्तावना का अर्थ ही संन्देह के घेरे में हो।

अन्य शक्तियों को दखने के बाद न्यायमूर्ति जगमोहन रेड्डी इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि जहां शब्द स्पष्ट हों अथवा अस्पष्ट ही क्यों न हो वहां इसका (प्रस्तावना) प्रयोग संविधान का ऐसा अर्थ निर्मित करने के लिए किया जा सकता है ताकि अर्थ हीनता अथवा मूर्खता से बचा सके। जब प्रस्तावना एक स्पष्ट और निश्चित अर्थ देती हो तो इसका प्रयोग क्रियान्वित किए गए शब्दों पर भारी पड़ेगा और यदि शब्दों के अर्थ अस्पष्ट अथवा अनेकार्थी हों तो ऐसे अर्थ को स्वीकार करना चाहिए जो प्रस्तावना के अनुकूल हो।

संवैधानिक प्रावधानों के व्याख्याकार के रूप में प्रस्तावना की उपयोगिता पर चर्चा करते हुए न्यायमूर्ति चन्द्रचूड़ ने इस तर्क को निरस्त किया कि प्रस्तावना को संशोधनों पर सीमाएं लागू करने अथवा उन्मुक्ति प्रदान करने के रूप में लिया जाना चाहिए।

उसका निष्कर्ष था कि संविधान का प्रत्येक भाग और प्रावधान संविधान के अनुच्छेद 368 द्वारा दी गई संशोधन की शक्ति के व्यापक क्षेत्र के अन्तर्गत आता है। संशोधन की शक्ति पर कोई अन्तर्निहित पाबन्दी अथवा सीमा लागू नहीं की जा सकती जिससे संविधान की अनिवार्य विशेषताओं अथवा मूल सिद्धान्तों को संशोधन की शक्ति से बाहर रखने का सिद्धान्त निर्मित होता हो।

संविधान के अन्तर्गत बनाए गए अन्य कानूनों के व्याख्या कार के रूप में प्रस्तावना जब कभी संविधान की व्याख्या करनी हो अथवा कानून की वैद्यता पर विचार करना हो तो आधारभूत नियम यह है कि प्रस्तावना को मार्ग दर्शक के रूप में देखा जाना चाहिए और राज्य के नीति निदेशक सिद्धान्तों को संविधान की व्याख्या के लिए प्रयोग करना चाहिए। प्रस्तवावना में लोगों की आशाओं और अपेक्षाओं का समावेश है। नीति निदेशक सिद्धान्त आसन्न लक्ष्य निर्धारित करते हे।। जब हम संविधान बनाम कानूनों का परीक्षण करते हैं तो हमें दूर दृष्टि अथवा निकट दृष्टि के लिए इन साधनों का प्रयोग करना चाहिए। जब संवैधानिक मामले विचारधीन हों तो व्याख्या के संकुचित नियमों को विधायी कार्यों की व्याख्या के लिए प्रासंगिक होते हुए भी प्रयोग नहीं

करना चाहिए। मूल रूप से संविधान की प्रस्तावना भारत के लोगों के भारत को संप्रभु लोकतान्त्रिक गणतन्त्र बनाने के निश्चय की घोषणा करता है और फ्रांस के घोषणा पत्र में उल्लिखित मनुष्य के अधिकारों "न्याय, स्वतंत्रता, समानता और भाईचारे को लोगों की आशाओं और अपेक्षाओं के रूप में सामने रखा। ऐसा 1950 में हुआ जब हम औपनिवेशिक-सामन्ती शासन से मुक्त हुयी थे। समय गुजरा, लोगों की आशाएं और अपेक्षाएं बढ़ीं। 1977 में 42वें संशोधन ने भारत को समाजवादी गणतन्त्र घोषित किया। 'समाजवादी' शब्द हो संविधान की प्रस्तावना में जोड़ा गया था। इस 'समाजवादी' शब्द को जोड़ने का परिणाम यह हुआ कि यह शब्द लोगों की आशाओं और अपेक्षाओं का केन्द्र बन गया, तथा सामन्ती शोषित समाज के स्थान पर सक्रिय समाजवादी कल्याणकारी समाज स्थापित करने के लिए संविधान के सभी अनुच्छेदों के लिए प्रेरक तथा मार्ग दर्शक बन गया। संविधान के किसी भी अनुच्छेद की व्याख्या अथवा किसी भी कानून की वैधता पर प्रश्न उठाने के लिए हमें ऐसी व्याख्या करने का प्रयास करना चहिए जो समाजवादी लोकतान्त्रिक राज्य की दिशा में कदम बढ़ाने वाली हो। उदाहरण के लिए जब हम किसी कानून द्वारा संविधान के अनुच्छेद 14 के उल्लंघन पर विचार करें तो हमे इस बात का अवश्य ध्यान रखन चाहिए कि सम्भवत: विधायिका द्वारा किया गया वर्गीकरण प्रस्तावना में निश्चित किए गए सामाजिक लक्ष्यों और संविधान के भाग IV में दर्ज नीति निदेशक सिद्धान्तों से मेल रखता हो। संविधान से मेल न रखने वाले वर्गीकरण जैसे अनुचित वर्गीकरण की अनुमति नहीं दी जा सकती।

संविधान की प्रस्तावना अन्य कानूनों की व्याख्या के लिए प्रासंगिक एवं महत्वपूर्ा है। केशवानन्द भारती केस से प्रस्तावना अन्य कानूनों की व्याख्या के लिए मार्गदर्शक एवं प्रकाश स्तम्भ के रूप में मान्य है।

केल्सन के अनुसार प्रस्तावना संविधान को अधिक गरिमा और प्रभावकारिता प्रदान करती है। शुरू में न्यायालयय प्रस्तावना का प्रयोग सामाजिक कानूनों की व्याख्या के लिए करते थे और बाद में इसका दायरा विस्तृत हो गया।

कोलुतबरा एक्सपोर्ट्स लि. बनाम केरल राज्य केस में केरल फिशरमैन वेलफेयर फंड 1985 की वैधता को इस आधार पर स्वीकार किया गया कि कानून का उद्देश्य केरल के मछुआरों को सामाजिक सुरक्षा और कल्याण प्रदान करना था तथा यह प्रस्तावना में निहित उद्दश्यों के अनुरूप था।

सर्वोच्च न्यायाल ने प्रस्तावना में निहित समानता के सिद्धान्त को भी टैक्स कानूनों की व्याख्या के लिए प्रयुक्त किया। श्री श्रीनिवास थियेटर बनाम तमिलनाड् सरकार केस में न्यायालय ने कहा कि टैक्स कानूनों में सरकार को व्यापक स्वतंत्रता दी गई है कि वह निर्णय कर सके कि प्रस्तवाना में परिकल्पित समानता के लक्ष्य के अनुरूप असमानता को हटाने के लिए किन्हें अधिक टैक्स देना चाहिए।

सरकार अभी हाल में पी. रामाचन्द्र राव बनाम कर्नाटक सरकार केस में न्यायालय ने तेजी से मुकद्मा चलाने की कार्यवाही को अनुच्छेद 21 के अन्तर्गत मौलिक अधिकार माना और इस अधिकार को मतबूती देने के लिए संविधान की प्रस्तावना में दर्ज 'न्याय' के सिद्धान्त का प्रयोग किया।

श्रम और कम्पनी कानूनों के क्षेत्र में नेशनल टेक्सटाइल वर्कर्स यूनियन बनाम पी. आर. राकृष्णनन् केस में न्यायालय ने अधिकार का प्रयोग करके एक कम्पनी के मजदूरों को किसी याचिका को समेटने की सुनवाई करने का अधिकार दिया।

रणधीर सिंह बनाम भारत संघ मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने प्रस्तावना के प्रकाश में अनुच्छेद 14 और 16 तथा संविधान के अनुच्देद 39(d) को संदर्भ बनाया।

डी. एस. नकडा बनाम भारत संघ केस में न्यायलय की टिप्पणी थी कि संविधान की प्रस्तावना वह प्रकाश पुंज है जो राज्य द्वारा एक संप्रभु, समाजवादी, पंथ निरपेक्ष, लोकतान्त्रिक गणराज्य स्थापित करने के मार्ग को प्रकाशित करती है और केश का फैसला पेन्शनर्स के हक में किया जिन्हें केन्द्र सरकार के एक आदेश में अन्तर्गत पेन्शन के बढ़े हुए लाभ को देने से इन्कार कर दिया था।

संजीव राय बनाम राजस्थान सरकार केस में न्यायालय का कहना था कि जब किसी व्यक्ति से सरकार द्वारा निश्चित न्यूनतम वेतन से कम पर बलात काम करवाया जाए तो वह अनुच्छेद 23 के अन्तर्गत बलात श्रम कहलाता है और आधारभूत रूप से प्रस्तावना में दर्ज सिद्धान्तों के विपरीत है।

संजीव कोक मै. कम्पनी बनाम भारत कोकिंग कोल लि. केस में न्यायालय ने कोकिंग कोल माइन्स (राष्ट्रीकरण) अधिनियम 1972 की वैधता को बरकरार रखने के लिए प्रस्तावना और अनुच्छेद 39(b) का सहारा लिया और टिप्पणी की कि अधिनियम को सबके लिए सामाजिक और अर्थिक न्याय के समतावादी सिद्धान्त को प्राप्त करने के लिए बनाया गया था।

"न्याय के पलड़ो को केवल प्रतिद्वन्द्वी सामाजिक और आर्थिक कारकों को तोलने के लिए ही नहीं बनाया गया। ऐसे मामलों में विधायी विवेक बना रहना चाहिए। और न्याययिक पुनरावलोकन लुप्त हो जाना चाहिए।

(c) प्रस्तावना की व्याख्या के लिए सहायक के रूप अन्तर्राष्ट्रीय प्रपत्र/सन्धियां सम्मेलन/घोषणाएं

भारत के न्यायाधीशों ने किसी मुद्दे पर कानून अथवा शक्ति की अनुपस्थिति में अन्तर्राष्ट्रीय कानूनी प्रपत्रों और संन्धियों का प्रयोग किया है। मधु किशवार बनाम बिहार राज्य मामले में न्यायालय ने कानूनी विवाद के चलते एक कबीलाई महिला के उत्तराधिकार को वैध ठहराने के लिए महिलाओं के विरूद्ध हर प्रकार के भेदभाव को मिटाने के लिए हुई वियना कन्वेशन का प्रयोग किया जिसे 18 दिसम्बर 1979 को संयुक्त राष्ट्र की स्वीकृति मिली थी। प्रस्तावना में व्यक्त न्याय और समानता के सिद्धान्त को सर्वोच्च न्यायालय की इस टिप्पणी ने नया आयाम दिया कि CEDAW (महिमालओं के विरूद्ध हर प्रकार के भेदभाव का पूर्ण उन्मूलन) का अनुच्छेद 2(3) सर्वोच्च न्यायालय के साथ मिलकर संविधान की सूखी हड्डियों में सांस फूंकने का काम करता है। लिंग आधारित भेदभाव को रोकने तथा आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक अधिकारों के सशक्तीकरण सहित जीवन के अधिकार को प्रभावकारी बनाने वाले अन्तर्राष्ट्रीय

सम्मेलनों तथा घोषणाओं का प्रयोग किया। महिलाएं सबसे निम्नतम् का आधा भाग है। महिलाओं की गरिमा को सुनिश्चित करने तथा उन्हें राष्ट्रीय जीवन की मुख्य धारा में लाने के लिए सामाजिक-आर्थिक न्याय देना आवश्यक है। विशाखा बनाम राजस्थान राज्य वाद में सर्वोच्च न्यायालय ने प्रस्तावना में प्रयुक्त न्याय और समानता से उत्प्रेरित लैंगिक न्याय की खोज में CEDAW के आधार पर कार्यस्थलों पर होने वाले यौन उत्पीड़न सम्बन्धित दिशा निर्देश तय किए। किर्लोस्कर ब्रदर्स लि. बनाम ई. एस. आई. कार्पोरेशन मामले में न्यायालय ने मानवधिकार के घोषणा पत्र 1948 और सामाजिक तथा राजनीतिक अधिकारों पर अन्तर्राष्ट्रीय संधि का प्रयोग राज्य की कल्याणकारी भूमिका की पुष्टि हेतु किया।

पाठगत प्रश्न 18.5

1. संविधान के प्रावधानों की व्याख्या करने के रूप में प्रस्तावना की भूमिका का संक्षेप में विश्लेशण कीजिए।
2. "प्रस्तावना अन्य कानूनों की व्याख्या करने में सहायक के रूप में कार्य करती है" यह कथन सही है या गलत? व्याख्या कीजिए।
3. अन्तर्राष्ट्रीय प्रपत्र/सन्धियां/सम्मेलन/घोषणएं प्रस्तावना की व्याख्या करने में सहायक के रूप में कार्य करती हैं। यह कथन सत्य है या असत्य? स्पष्ट कीजिए।

आपने क्या सीखा

कानूनों और नियमों का वह दस्तावेज जो सरकार के रूप तथा नागरिकों और सरकार के बीच सम्बन्धों को निर्धारित एवं वर्णित करता है; संविधान कहलाता है। संक्षेप में संविधान में ऐसे कानून और सिद्धान्त होते हें जिसके अनुसार राज्य का शासन चलाया जाता है।

ऐसी सरकार, जिसे किसी संविधान द्वारा नियन्त्रित, शासित अथवा सीमित किया जाता है, संवैधानिक सरकार कहलाती है।

संविधानवाद का अर्थ है संवैधानिक सरकार अथवा संवैधानिक सिद्धान्तों में विश्वास। संविधानवाद एक संवैधानिक सरकार की स्थापना करता है जो लिखित संविधान द्वारा शासित अथवा नियन्त्रित होती है। संविधान की प्रस्तावना दो तरीकों से संविधान के उद्देश्यों को स्पष्ट करती है। पहला तो शासन के तन्त्र के बारे में और दूसरा भारत द्वारा प्राप्त किए जाने वाले आदर्शों के बारे में। इसी कारण प्रस्तावना में व्यक्त उद्देश्यों में संविधान का आधारभूत ढांचा निहित है।

प्रस्तावना संविधान एवं इसके अन्तर्गत निर्मित अन्य कानूनों के व्याख्याकार के रूप में कार्य करती है। संविधान की प्रस्तावना ने विगत छः दशकों के दौरान देश का भाग्य या तकदीर बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है।

पाठांत प्रश्न

1. संविधान का अर्थ क्या है?
2. किसी संवैधानिक सरकार की विशेषताओं का संक्षेप में परीक्षणा कीजिए।
3. संविधानवाद का संक्षेप में वर्णन कीजिए।
4. संविधान की व्याख्या में प्रस्तावना की भूमिका का परिक्षण कीजिए।
5. संविधान के अन्तर्गत बने अन्य कानूनों की व्याख्या में एक सहायक के रूप में प्रस्तावना की भूमिका पर संक्षेप में चर्चा कीजिए।
6. "प्रस्तावना संविधान का अभिन्न अंग है" कुछ प्रासंगिक वाद (केस) देकर इस कथन का परीक्षण कीजिए।
7. अन्तर्राष्ट्रीय समुदाय में एक राष्ट्र के रूप में हमें गरिमा प्रदान करने वाले, प्रस्तावना में उल्लिखित संवैधानिक मूल्यों की संक्षेप में व्याख्या किजिए।

पाठगत प्रश्न के उत्तर

18.1

1. संविधान में ऐसे कानून और सिद्धान्त होते हैं जिनके अनुसार किसी राज्य का शासन चलाया जाता है। किसी देश का संविधान देश के शासन हेतु आधार प्रदान करता है।
2. संविधानवाद का अर्थ है संवैधानिक सरकार अथवा संवैधानिक सिद्धान्तों में विश्वास होना। संविधानवाद एक ऐसी सरकार की स्थापना करता है जिसको एक लिखित संविधान नियन्त्रित करता है।

18.2

1. आधारभूत ढांचा
2. उद्देश्य
3. संविधान की सत्ता का स्त्रोत।

18.3

1. केशवानन्द भारती वाद (केस)
2. बेरूबारी वाद (केस)
3. केशवानन्द भारती वाद (केस)

18.4

1. 18.4 को देखिये
2. सत्य

18.5

1. 18.5 (a) को देखिये
2. सत्य
3. सत्य

19

मौलिक अधिकार और कर्त्तव्य

अधिकांश लोकतान्त्रिक देशों के आधुनिक संविधानों की भांति, भारत के संविधान में भी नागरिकों के लिए कई मौलिक अधिकार शामिल किये गये हैं। इन मौलिक अधिकारों की भारतीय संविधान केवल गारंटी ही नही देता अपितु यह विश्व के अन्य संविधानों में पाये जाने वाले अधिकारों से अधिक व्यापक और स्पष्ट भी हैं। इस अध्याय में हम भारत के संविधान के भाग तीन में दिए गये मौलिक अधिकारों तथा उनमें निहित विचार या सोच के विषय में अध्ययन करेंगे।

उद्देश्य

इस पाठ को पढ़ने के बाद आप–

- मौलिक अधिकारों के अर्थ और स्वरूप की व्याख्या करने में सक्षम होंगे;
- स्वतंत्रता के अधिकार के अन्तर्गत दी गई विभिन्न स्वतंत्रताओं की सूची बना सकेंगे;
- व्यक्तिगत स्वतंत्रता और जीवन को सुरक्षित बनाने के लिए किए गए प्रावधानों की पहचान कर पाएंगे;
- भारत में पंथ निरपेक्षता के आधार 'धार्मिक स्वतंत्रता के अधिकार' की भूमिका का महत्व समझ पाएंगे;
- बहुल और विविधता पूर्ण समाज में सहअस्तित्व के लिए 'सांस्कृतिक और शैक्षिक अधिकारों' की अनिवार्यता को समझ सकेगें। विशेष रूप से अल्पसंख्यकों के लिए इसके महत्व की समझ विकसित कर सकेंगे;
- मौलिक अधिकारों के विभिन्न प्रकार से उल्लंघन के विरुद्ध रक्षा कवच के रूप में 'सांविधानिक उपचारों के अधिकार' के अन्तर्गत दी गई विभिन्न प्रकार की 'रिट' या लेखों को वर्गीकृत कर सकेंगे;
- मौलिक अधिकारों पर लगी सीमाओं को न्यायोचित ठहरा सकेंगे;
- अधिकारों और कत्तव्यों के बीच सम्बन्धों का परीक्षण कर सकेंगे;
- संविधान में दर्ज मौलिक कर्त्तव्यों की सूची बना सकेंगे; तथा
- मौलिक कर्त्तव्यों के महत्व को समझ सकेंगे।

19.1 आवश्यकता और महत्व

मौलिक अधिकारों के इतिहास पर दृष्टि डालने से हमें ज्ञात होता है कि संयुक्त राज्य अमेरीका, अपने संविधान में मौलिक अधिकारों को दर्ज करने वाला पहला देश था। जर्मनी ने 1919 में व्हीमर संविधान के द्वारा इनको अपनाया तथा इसी प्रकार आयरलैण्ड और रूस ने क्रमश: 1922 और 1936 में इन्हें स्वीकार किया। हमारे स्वतंत्रता संघर्ष के दौरान हमारे राष्ट्रीय नेताओं ने लोगों के लिए इन अधिकारों के महत्व को महसूस किया। इसलिए 1928 में नेहरू कमेटी की मांग पर अधिकारों का प्रस्तावित बिल आया। जब भारत स्वतंत्र हुआ तो संविधान सभा ने कुछ आधारभूत अधिकारों को संविधान में शामिल किया जिनकी विशेष रूप से रक्षा सुनिश्चित की गई और उन्हें मौलिक अधिकार का नाम दिया गया। मौलिक शब्द निम्न बिन्दुओं पर बल देता है:

- भारत के संविधान में उन्हें अलग से दर्ज किया गया है।
- संविधान ने उनकी सुरक्षा के लिए विशेष प्रावधान किए गए है।
- इन अधिकारों को अदालतों द्वारा लागू किया जा सकता है।
- यह अधिकार संविधान द्वारा प्रदत्त है और इन्हें संविधानिक दर्जा प्राप्त है।

आइये हम समझने का प्रयास करें कि मौलिक अधिकार किस प्रकार विधायिका द्वारा निर्मित साधारण अधिकारों से अलग है।

(a) साधारण अधिकार मौलिक अधिकारों की भांति देश के संविधान से रक्षित नहीं है।

(b) मौलिक अधिकारों में परिवर्तन केवल संविधान संशोधन द्वारा ही किया जा सकता है जबकि साधारण कानून, कानून निर्माण की साधारण प्रक्रिया मात्र से बदले जा सकते हैं।

(c) मौलिक अधिकारों का सरकार के किसी भी अंग द्वारा उल्लंघन निषिद्ध है। यद्यपि स्थापित प्रक्रिया द्वारा इनमें संशोधन किया जा सकता है।

(d) मौलिक अधिकारों के उल्लंघन के मामले में न्यायपालिका का यह दायित्व और क्षेत्राधिकार है कि वह उनकी रक्षा करे। साधारण कानूनों के मामले में ऐसी कोई गारंटी नहीं है।

मौलिक अधिकारों के लक्षण

- संविधान द्वारा प्रत्याभूत मौलिक अधिकार साधारण कानूनों से ऊपर हैं
- सर्वोच्च न्यायालय और उच्च न्यायालयों को रिट (लेख), आज्ञा और निर्देश के माध्यम से मौलिक अधिकार लागू करवाने की शक्ति है।
- नागरिकों के लिए कुछ अधिकारों के अतिरिक्त, गैर नागरिकों के लिए भी अधिकार हैं।
- मौलिक अधिकारों के उपयोग पर कई प्रकार के नियंत्रण लगाये गये हैं। इसका अर्थ है कि ये अधिकार असीमित नहीं है।

- अदालतों को यह जांचने का अधिकार है कि मौलिक अधिकारों पर लगाये गये नियंत्रण तर्क संगत है अथवा नहीं
- आपातकाल की स्थिति में मौलिक अधिकारों को सीमित अथवा स्थगित किया जा सकता है।

क्या आप जानते है

संसद की मौलिक अधिकारों में संशोधन करने की शक्ति

- भारत के सर्वोच्च न्यायालय ने घोषित किया है कि भारत के संविधान के अनुच्छेद 368 के अन्तर्गत मौलिक अधिकार उसकी संशोधन करने की शक्ति से बाहर हैं। यह निर्णय गोलकनाथवाद (केस) में दिया गया था।
- संविधान के 24वें और 25वें संशोधन के द्वारा संसद को मौलिक अधिकारों में संशोधन करने का अधिकार पुन: दिया गया था।
- सर्वोच्च न्यायालय ने केशवानन्द भारतीवाद (केस) में भी संसद की मौलिक अधिकारों में संशोधन करने की शक्ति को स्वीकार किया।
- 42वें संशोधन ने मौलिक अधिकारों में संशोधन करने के संसद के अधिकार पर और अधिक बल दिया।
- 1980 में मिनर्वा मिलवाद (केस) का निर्णय देते हुए सर्वोच्च न्यायालय ने स्पष्ट कहा कि संविधान के भाग III और भाग IV का सन्तुलन बिगाड़ने वाली हर बात को संविधान के मूल ढांचे को नष्ट करने वाला और असंवैधानिक माना जाएगा।

पाठगत प्रश्न 19.1

(A) नीचे लिए प्रत्येक कथन के समक्ष 'सत्य' अथवा 'असत्य' लिखिएं

(क) संसद, संविधान के मूल ढांचे में परिवर्तन नहीं कर सकती। (सत्य/असत्य)

(ख) साधारण अधिकारों और मौलिक अधिकारों के बीच कोई अन्तर नहीं है। (सत्य/असत्य)

(ग) नेहरू कमेटी ने 1928 में मौलिक अधिकारों की मांग की थी। (सत्य/असत्य)

19.2 मौलिक अधिकार

मूल रूप में भारत के संविधान के भाग III में सात मौलिक अधिकारों को शामिल किया गया था। इनमें सम्पति का अधिकार शामिल था। जिसे 44वें संविधान संशोधन द्वारा हटा दिया गया था। अब केवल छ: मौलिक अधिकार हैं; जो इस प्रकार है।

(क) समानता का अधिकार

(ख) स्वतंत्रता का अधिकार

(ग) शोषण के विरूद्ध अधिकार

(घ) धार्मिक स्वतंत्रता का अधिकार

(ङ) सांस्कृति और शिक्षा का अधिकार

(च) संवैधानिक उपचारों का अधिकार

(A) समानता का अधिकार (अनुच्छेद 14–18)

(i) सभी लोगों, नागरिकों और बाहरी लोगों को कानून (विधि) के समक्ष समानता का अर्थ है कि राज्य किसी भी व्यक्ति को कानून के समक्ष समानता और भारत की सीमा क्षेत्र के भीतर कानून की समान सुरक्षा से इन्कार नहीं करेगा। यह अधिकार संविधान के अनुछेद-14 में निहित है तथा राज्य द्वारा किसी प्रकार के भेद-भाव करने पर रोक लगाता है।

(ii) अनुच्छेद-15 के अन्तर्गत भेदभाव पर प्रतिबन्ध, किसी नागरिक के विरूद्ध वंश, धर्म, जाति, लिंग अथवा जन्म स्थान के आधार पर कोई भेदभाव नहीं करना शामिल है। इसका अर्थ है कि प्रत्येक नागरिक को सभी दुकानों, सार्वजनिक स्थानों तथा कुओं, तालाबों और सड़कों का प्रयोग करने का अधिकार है। सामाजिक समानता लाने के लिए यह अधिकार जरूरी है।

(iii) अनुच्छेद-16 के अन्तर्गत अवसरों की समानता का अर्थ है कि सभी नागरिकों को राज्य के आधीन किसी भी रोजगार अथवा किसी कार्यालय में नियुक्ति के मामले में समान अवसर प्राप्त हैं। इसका अर्थ है कि रोजगार केवल योग्यता और पात्रता के आधार पर दिया जाएगा।

अपवाद

(a) जब राज्य सरकारों के आधीन कुछ नौकरियों में निवास की योग्यता को शामिल किया जाता है।

(b) जब कुछ पदों को अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जन जातियों अथवा अन्य पिछड़े वर्गों के लिए आरक्षित कर दिया जाता है।

(c) जब किसी धार्मिक अथवा अल्पसंख्यक समुदाय के संस्थानों में किसी पद पर नौकरी के लिए उसी समुदाय के किसी व्यक्ति को नियुक्त किया जाना हो।

(iv) अस्पृर्श्यता को समाप्त कर दिया गया है और किसी भी रूप में इसके व्यवहार पर प्रतिबन्ध है। अनुच्छेद-17 के अन्तर्गत इसको दण्डनीय उपराध बना दिया गया है। लाखों भारतीय जिन्होंने समाज में भेदभाव, हेय दृष्टि से देखा जाना और दुर्व्यवहार को झेला, वह अब अछूत नहीं हैं। उनके सामाजिक स्तर को उन्नत करने के निरन्तर प्रयास किए जाते हैं। महात्मा गाँधी की यह अतीव इच्छा थी कि अस्पृर्श्यता की बुराई को जड़ से उखाड़ फेंका जाए, लेकिन दुर्भाग्य से अभी भी यह बुराई देश के कुछ भागों में देखने को मिल जाती है।

(v) अनुच्छेद-18 राज्य को सैन्य अथवा शैक्षिक सम्मान देने के अतिरिक्त कोई भी पदवी अथवा उपाधि देने पर प्रतिबन्ध लगता है। स्वतंत्रता प्राप्ति से पूर्व अंग्रेज अपने प्रति वफादार एवं उनके हित में काम करने वालों को उपाधियां बांटा करते थे। राय बहादुर, राय साहब, खान बहादुर, सर इत्यादि जैसी उपाधियां न केवल सामाजिक भेद पैदा करती थीं अपितु समाज को विभाजित भी करती थीं। इसलिए उन्हें समाप्त कर दिया गया है। उसके स्थान पर भारत का राष्ट्रपति सार्वजनिक, समाजिक, शैक्षिक और खेल के क्षेत्रों से सम्बन्धित गणमान्य नागरिकों को भारत रत्न, पदम विभूषण, पदम भूषण और पदम श्री जैसी उपाधियाँ प्रदान कर सकता है। इसी प्रकार सेना अथवा अर्द्ध सैनिक बलों में सेवा अथवा बलिदान के लिए सैनिक अथवा वीरता पुरस्कार प्रदान किये जा सकते हैं।

पाठगत प्रश्न 19.2

नीचे लिखे प्रत्येक कथन के समक्ष 'सत्य' अथवा 'असत्य' लिखिए।

1. मौलिक अधिकार संविधान के तीसरे भाग में दिए गए हैं। (सत्य/असत्य)
2. समानता का अधिकार कानून के सम्मुख समानता स्थापित करना है। (सत्य/असत्य)
3. संविधान के अनुच्छेद-15 के अन्तर्गत किसी नागरिक के विरूद्ध वंश, धर्म, जाति, लिंग अथवा जन्म-स्थान के आधार पर कोई भेद-भाव करने पर प्रतिबन्ध है। (सत्य/असत्य)

(B) स्वतंत्रता का अधिकार (अनुच्छेद 19-22)

स्वतंत्रता का अधिकार सामाजिक स्वतंत्रता का केन्द्र है और व्यक्ति को कार्यपालिका के दमनपूर्ण कार्यों से बचाता है।

अनुच्छेद 19 छ: स्वतत्रताओं की गारंटी देता है जो किसी के व्यक्तित्व के विकास तथा लोकतंत्र के सफल संचालन हेतु अनिवार्य हैं।

ये स्वतंत्रताएं हैं-

(i) विचार अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता [अनुच्छेद 19(a)]

(ii) बिना हथियारों के शान्तिपूर्ण सभा करने की स्वतंत्रता [अनुच्छेद 19(b)]

(iii) संगठन और संघ बनाने की स्वतंत्रता [अनुच्छेद 19(c)]

(iv) भारत के पूरे क्षेत्र में स्वतंत्र रूप से घूमने (भ्रमण) की स्वतंत्रता [अनुच्छेद 19(d)]

(v) भारत के किसी भाग में स्थायी रूप से रहने और बसने की स्वतंत्रता [अनुच्छेद 19(e)]

(vi) किसी पेशे को अपनाने अथवा किसी व्यवसाय, कारोबार अथवा व्यापार को करने की स्वतंत्रता [अनुच्छेद 19(g)]

स्वतंत्रतायें लोकतन्त्र के लिए आवश्यक है। यद्यपि भारतीय संविधान निर्माता अनेक प्रकार की मौलिक स्वतंत्रताओं के प्रति प्रतिबद्ध थे तदापि उनका विश्वास था कि ऐसी सभी स्वतंत्रताएं निरपेक्ष अथवा अनियन्त्रित नहीं होनी चाहिए। इसलिए स्वतंत्रताओं पर कुछ तर्कसंगत पाबन्दियां लगाई गई ताकि ये अराजकता, अव्यवस्था और देश को विघटन की ओर न ले जा सकें।

- राज्य को अपने अथवा मित्र देशों के साथ मैत्रीपूर्ण सम्बन्धों अथवा सार्वजनिक व्यवस्था, नैतिकता अथवा सार्वजनिक हित में तथा अदालत की अवमानना के सम्बन्ध में, बदनामी अथवा किसी अपराध को भड़काने से बचाने तथा देश की संप्रभुता, एकता और अखण्डता के हित में तर्क संगत पाबन्दियां लगाने का अधिकार है।
- अनुच्छेद 19(b) के अन्तर्गत स्वतंत्रता के लिए दो तर्कसंगत पाबन्दियां हैं–
  - (i) सभाएं, रैलियां तथा जुलूस शान्तिपूर्ण होने चाहिए
  - (ii) भाग लेने वालों के पास कोई हथियार नहीं होना चाहिए
- अनुच्छेद 19(c) के अन्तर्गत संगठन और संघ बनाने की स्वतंत्रता लोकतन्त्र के सफल कार्यप्रणाली के लिए तथा राजनीतिक दलों की भूमिका के लिए अनिवार्य है। लेकिन जब कुछ गैरकानूनी, अनैतिक और षडयन्त्रकारी संगठन बनाए जाते हैं तो देश की एकता और संप्रभुता खतरे में पड़ जाती है। इसलिए राज्य इस प्रकार के संगठनों को अनुमति नहीं दे सकता।
- अनुच्छेद 19 (d, e, f) के अन्तर्गत दी गई स्वतंत्रताओं पर भी राज्य के प्राधिकार द्वारा कुछ तर्क संगत पाबन्दियां लगाई जा सकती हैं
  - (i) साधारण जनता के हित में
  - (ii) अनुसूचित जनजातियों की रक्षा के लिए
  - (iii) संक्रामक रोगों को फैलने से रोकने के लिए
- अनुच्छेद 19(g) के अन्तर्गत किसी व्यवसाय को अपनाने अथवा किसी व्यवसाय, कारोबार और व्यापार को चलाने की स्वतंत्रता का अर्थ नौकरियों को प्राप्त करने की स्वतंत्रता और ऐसा व्यापार करने की स्वतंत्रता नहीं है जो समाज के लिए घातक हों। जुआ खेलना, वैश्यावृति, मादक द्रव्यों का व्यापार इत्यादि की अनुमति नहीं है। इसी प्रकार अनिवार्य योग्यता के बिना डाक्टर का कार्य करने की भी अनुमति नहीं है।

जीवन और निजी स्वतंत्रता का अधिकार

भारत का संविधान अनुच्छेद 20–22 के अन्तर्गत व्यक्ति को राज्य के स्वेच्छाचारी कार्यवाही के विरुद्ध सुरक्षा प्रदान करता है। इसलिए जीवन और निजी स्वतंत्रता का अधिकार अन्य सभी अधिकारों का सुख भोगने के लिए अति अनिवार्य है।

- **अनुच्छेद 20** अपराधों के लिए दोषी पाए जाने पर सुरक्षा प्रदान करता है।

  (1) किसी भी व्यक्ति को अपराध करते समय प्रभारी कानून के उल्लघंन के अतिरिक्त किसी अन्य अपराध में आरोपित नहीं किया जा सकता और न ही इस अपराध के लिए निश्चित दण्ड से अधिक दण्डित किया जा सकता है।

  (2) किसी भी व्यक्ति को एक ही अपराध के लिए एक से अधिक बार दण्डित नहीं किया जा सकता।

  (3) किसी भी व्यक्ति को अपने विरुद्ध लगे आरोपों के पक्ष में गवाही देने के लिए बाध्य नहीं किया जा सकता।

- प्राय: प्राकृतिक न्याय के रूप में वर्णित अनुच्छेद 20 किसी आरोपित व्यक्ति को मनमानी गिरफ्तारी और अधिकाधिक दण्ड देने से सुरक्षा प्रदान करता है।

- **अनुच्छेद 21** यह निर्धारित करता है कि किसी भी व्यक्ति को उसके जीवन और व्यक्तिगत स्वतंत्रता से कानून द्वारा स्थापित प्रक्रिया के बिना वंचित नहीं किया जाएगा। यह अनुच्छेद प्रत्येक भारतीय नागरिक को राज्य के स्वेच्छाचारी व्यवहार के विरुद्ध स्वतंत्रता की गारंटी देता है। 1975–77 के आपातकाल के दौरान राज्य ने लोगों की स्वतंत्रता सीमित करने की अभूतपूर्व शक्तियां प्राप्त कर ली थीं। इस प्रकार की स्थिति की पुनरावृति से बचने के लिए 44वां संशोधन पारित किया गया। इस अधिनियम के अनुसार जीवन और निजी स्वतंत्रता का अधिकार आपातकाल के दौरान भी निर्बाध चलता रहेगा?

? क्या आप जानते हैं

शिक्षा का अधिकार

शिक्षा को मौलिक अधिकार बनाने की मांग को 2002 में भारत के संविधान में 86वां संशोधन करके तथा 2009 में शिक्षा का अधिकार अधिनियम लागू करके पूरा किया गया। अनुच्छेद 21A कहता है कि राज्य अपने कानून द्वारा निर्धारित तरीके से 6 से 14 वर्ष की आयु के सभी बच्चों के लिए नि:शुल्क और अनिवार्य शिक्षा प्रदान करेगा। इसका अर्थ यह हुआ कि उक्त आयु वर्ग के सभी बच्चे मौलिक अधिकार के रूप में नि:शुल्क और अनिवार्य शिक्षा प्राप्त कर सकेगे।

अनुच्छेद 22 मनमानी गिरफ्तारी और नजरबंदी के विरूद्ध दो प्रकार से सुरक्षा प्रदान करता है।

(a) (i) किसी को गिरफ्तारी का आधार या कारण बताए बिना गिरफ्तार नहीं किया जा सकता

(ii) गिरफ्तार व्यक्ति को गिरफ्तारी के 24 घण्टे के भीतर निकटतम न्यायाधीश के समक्ष प्रस्तुत करना होता है।

(iii) गिरफ्तार व्यक्ति को अपनी पसन्द के वकील द्वारा अपना बचाव करने का अधिकार है।

विदेशियों अथवा निवारक नजरबन्दी के अन्तर्गत गिरफ्तार लोगों को यह अधिकार प्राप्त नहीं है।

(b) निवाकरक नजरवंदी – निवारक निरोध का अर्थ है किसी व्यक्ति को अपराध करने से रोकने के लिए गिरफ्तार करना। यदि ऐसी सम्भावना है कि कोई व्यक्ति किसी गलत कार्य अथवा कोई अपराध कर सकता है तो उसे एक सीमित समय, जो तीन महीने से अधिक नहीं होगा, के लिए नजरबंद किया जा सकता है। ऐसे मामलों पर तीन महीने बाद एक परामर्श मण्डल पुनर्विचार करता है।

निवारक निरोध अधिनियम की बहुत से प्रख्यात लोगों ने इसके व्यापक दुरुपयोग; जैसे राजनीतिक विरोधियों की गिरफ्तारी के कारण आलोचना की है। इसलिए इस कानून को 1969 के अन्त में अपने आप समाप्त होने दिया गया। दिसम्बर 1971 में बंगलादेश के युद्ध के समय संसद द्वारा राष्ट्र विरोधी तत्वों से निबटने के लिए एक नया कानून पारित किया गया। इसको मीसा (MISA) के नाम से जाना जाता था जिसका विस्तृत अर्थ था आन्तरिक सुरक्षा अनुरक्षण अधिनियम। मीसा को राजनीतिक विरोधियों के विरूद्ध प्रयोग न करने के आश्वसन के बावजूद जून 1975 में आपातकाल की घोषणा के साथ नेताओं, कार्यकर्ताओं और उनके समर्थकों को इस कानून के तहत बड़ी संख्या में गिरफ्तार किया गया। यहाँ तक कि लोगों को अदालत का दरवाजा खटखटाने या अपील का अधिकार भी नहीं दिया गया।

इसके परिणाम स्वरूप निवारक नजरबंदी कानून को 1978 में जनता सरकार ने 44वें संशोधन द्वारा संशोधित किया और राज्य की शक्ति को सीमित किया गया।

निवारक नजरबन्दी के सन्दर्भ में वर्तमान स्थिति यह है कि किसी भी व्यक्ति को परामर्श बोर्ड की सलाह के बिना साधारणतया दो मास के लिए नजरबन्द किया जा सकता है।

पाठगत प्रश्न 19.3

निम्नलिखित स्वतंत्रताओं का सम्बन्धित अनुच्छेदों के साथ मिलान कीजिए।

(i) संगठन बनाने की स्वतंत्रता	(a) 19(a)
(ii) सभा करने की स्वतंत्रता	(b) 19(g)
(iii) अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता	(c) 19(d)
(iv) आन्दोलन की स्वतंत्रता	(d) 19(c)
(v) व्यवसाय की स्वतंत्रता	(e) 19(b)

(C) शोषण के विरूद्ध अधिकार (अनुच्छेद 23-24)

भारतीय संविधान के अनुच्छेद 23 और 24 शोषण के विरुद्ध अधिकार से सम्बन्धित हैं। इस अधिकार का उद्देश्य समाज के कमजोर, वंचित और अल्प सुविधा सम्पन्न वर्गों को

टिप्पणी

शोषण से बचाना है। यह अधिकार नीचे उल्लिखित भारतीय संविधान के दो अनुच्छेदों के अनुरूप व्यक्ति की गरिमा को बनाए रखता है।

(i) **अनुच्छेद 23** मानव व्यापार, बेगार और इसी प्रकार के बलात श्रम पर प्रतिबन्ध लगाता है। किसी भी व्यक्ति को वेतन के बिना काम करने के लिए बाध्य नहीं किया जा सकता। परन्तु यह अनुच्छेद राज्य को बिना किसी भेदभाव के सार्वजनिक उद्देश्यों के लिए अनिवार्य सेवा प्राप्त करने से नहीं रोकता।

(ii) **अनुच्छेद 24,** चौदह वर्ष से कम आयु के बच्चों को फैक्ट्रियों, खदानों अथवा अन्य जोखिम भरे कामों के लिए नौकरी देने पर प्रतिबन्ध लगाता है। इस प्रावधान का उल्लंघन करना कानून के अनुसार दण्डनीय अपराध है। दुर्भाग्य का विषय है कि भारत में छोटे बच्चों को घरेलू नौकर रखना सामान्य बात है। अमीरों द्वारा किए जाने वाला शोषण इस अनुच्छेद के अन्तर्गत नहीं आता क्योंकि घरेलू काम को फैक्ट्री में काम करना नहीं माना जाता। इसी प्रकार संगठित और असंगठित क्षेत्रों में फैक्ट्रियों, दुकानों, छोटे होटलों अथवा ढाबों इत्यादि पर छोटी आयु की बच्चों को नौकरी पर रखना एक प्रचलन सा बन गया है।

(D) धार्मिक स्वतंत्रता का अधिकार (अनुच्छेद 25–28)

भारतीय संविधान के अनुच्छेद 25 से 28, भारत के नागरिकों को धार्मिक स्वतंत्रता की गारंटी देते हैं। पंथ निरपेक्ष देश होने के नाते यह अपने सभी नागरिकों को किसी भी धर्म में आस्था रखने तथा दूसरों की भावनाओं एवं अस्थाओं में दखल दिए बिना अपनी इच्छा अनुसार पूजा करने की स्वतंत्रता देता है।

(i) **अनुच्छेद 25,** के अन्तर्गत सभी लोगों को **अन्तरात्मा** की स्वतंत्रता तथा सार्वजनिक व्यवस्था, नैतिकता और स्वास्थ्य के नियमों की शर्त पर किसी भी धर्म को मानने और प्रचार करने की स्वतंत्रता है। सरकार को किसी आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक अथवा धार्मिक व्यवहार से जुड़ी किसी अन्य गतिविधि पर पाबन्दी लगाने का विशेषाधिकार है।

(ii) **अनुच्छेद 26,** प्रत्येक धार्मिक संस्था को अपने सभी कार्यों का प्रबन्धन करने तथा धार्मिक उद्देश्यों के लिए सम्पति ग्रहण करने और उसका प्रशासन सम्भालने के अधिकार को मान्यता देता है।

(iii) **अनुच्छेद 27** निर्धारित करता है कि किसी भी व्यक्ति को कोई ऐसा कर देने के लिए बाध्य नहीं किया जा सकता यदि इस प्रकार संग्रहित धन का प्रयोग किसी विशेष धर्म को चलाने अथवा धार्मिक कार्यों के लिए किए गए खर्च की आदयगी के लिए प्रयोग किया जाना हो।

(iv) **अनुच्छेद 28** कुछ धार्मिक संस्थानों में धार्मिक शिक्षा या निर्देश और धार्मिक पूजा की स्वतंत्रता के विषय से सम्बन्धित है। इस अनुच्छेद के अनुसार:

(1) राजकीय कोष से संचालित किसी भी शैक्षणिक संस्थान में कोई धार्मिक शिक्षा नहीं दी जाएगी।

(2) खण्ड 1 में लगाई गई उपरोक्त पाबन्दी ऐसे शिक्षण संस्थाओं पर लागू नहीं होगी जिसका प्रशासन तो राज्य के पास है परन्तु उसे ऐसे धार्मिक ट्रस्ट अथवा संगठनों ने स्थापित किया है जो ऐसे संस्थानों में धार्मिक शिक्षा देना चाहते हैं।

(3) उन संस्थाओं में धार्मिक शिक्षा दी जा सकती है जिनकी देख रेख पूरी तरह से राजकीय कोष में नहीं की जाती। लेकिन इन संस्थानों में भी किसी बच्चे को धार्मिक शिक्षा लेने के लिए विवश नहीं किया जा सकता।

भारत के संविधान में उल्लिखित उपरोक्त सभी प्रावधानों का उद्देश्य राज्य अथवा किसी अन्य समुदाय के दखल के बिना पूरी धार्मिक स्वतंत्रता प्रदान करना है। इसीलिये भारत एक पंथ निरपेक्ष राज्य है।

पाठगत प्रश्न 19.4

निम्नलिखित कथनों के समक्ष 'सत्य' अथवा असत्य लिखिए।

(i) 14 वर्ष से कम आयु के बच्चों को फैक्ट्रियों में काम करने पर प्रतिबन्ध लगाता है। (सत्य/असत्य)

(ii) भारत का संविधान अपने सभी नागरिकों को धार्मिक स्वतंत्रता प्रदान नहीं करता।

(iii) प्रत्येक भारतीय नागरिक यदि चाहे तो अपनी इच्छा से अपना धर्म परिवर्तित कर सकता है। (सत्य/असत्य)

(iv) सती, मानव बलि अथवा बहु-विवाह जैसे कुरीतियों पर प्रतिबन्ध लगाने का 'धार्मिक स्वतन्त्रता के अधिकार' के नाम पर विरोध नहीं किया जा सकता। (सत्य/असत्य)

(v) धार्मिक स्वतन्त्रता का अधिकार केवल भारत के नागरिकों के लिए उपलब्ध है और विदेशियों के लिए नहीं है। (सत्य/असत्य)

(E) सांस्कृतिक और शैक्षिक अधिकार (अनुच्छेद 29 और 30)

भारतीय संविधान के अनुच्छेद 29 और 30 भारत के प्रत्येक नागरिक को, विशेषतया अल्पसंख्यकों को, उनकी संस्कृति, भाषा और लिपि को संरक्षित रखने का विश्वास दिलाता है।

क्या आप जानते हैं

अनुच्छेद 29 और 30 शिक्षा के अधिकार का वायदा नहीं करते जिसको अलग से संविधान के 86वें संशोधन द्वारा प्रदान किया गया है। ये दो अनुच्छेद धार्मिक और भाषायी अल्पसंख्यकों के सांस्कृतिक और शैक्षिक हितों की रक्षा करते हैं।

(i) अनुच्छेद 29 निर्धारित करता है कि भारत के क्षेत्र में रहने वाले किसी भी वर्ग, जिसकी अपनी अलग भाषा, लिपि अथवा संस्कृति है, को अपनी भाषा, लिपि और संस्कृति को बचाए रखने का अधिकार होगा।

टिप्पणी

किसी भी नागरिक को राज्य अथवा राज्य के कोष से संचलित किसी शैक्षिक संस्थान में केवल धर्म, वंश, जाति, भाषा अथवा इनमें से किसी एक के आधार पर प्रवेश देने से इन्कार नहीं किया जाएगा।

(ii) अनुच्छेद 30 अल्पसंख्यकों को अपने शैक्षिक संस्थान स्थापित एवं संचालित करने की गारंटी देता है। शैक्षिक संस्थाओं को सहायता प्रदान करते समय राज्य किसी भी शिक्षण संस्थान के साथ इस आधार पर भेदभाव नहीं करेगा कि उस संस्थान का प्रबन्धन, किसी धर्म एवं भाषा पर आधारित अल्पसंख्यक समुदाय के हाथ में है।

(F) संवैधानिक उपचारों का अधिकार (अनुच्छेद 32)

इस अधिकार को प्रारूप समिति के अध्यक्ष डा. भीम राव अम्बेडकर ने भारत के संविधान का 'हृदय और आत्मा' माना था। प्रभावकारी होने के लिए मौलिक अधिकारों को अपने पीछे न्यायिक शक्ति की जरूरत थी। मौलिक अधिकारों को सूचीबद्ध करने के अतिरिक्त संविधान निर्माताओं ने इन अधिकारों के उल्लघन के विरुद्ध उपचार भी प्रस्तुत किए। अनुच्छेद 32 के अन्तर्गत संविधान लोगों को मौलिक अधिकारों को लागू करवाने के लिए उच्च न्यायालयों तथा सर्वोच्च न्यायालय में जाने की गारंटी देता है। ये न्यायालय सरकार को मौलिक अधिकारों को लागू करने के लिए आज्ञा अथवा निर्देश दे सकते हैं। ऐसे निर्देशों अथवा विशेष आदेशों को 'रिट' या लेख कहा जाता है। 'रिट' (लेख) पाँच प्रकार की हैं:

(i) **बंदी प्रत्यक्षीकरण:** बंदी प्रत्यक्षीकरण रिट का अर्थ है कि गिरफ्तार व्यक्ति को न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत किया जाए ताकि न्यायालय यह परीक्षण कर सके कि गिरफ्तारी कानूनी दृष्टि से ठीक है अथवा नहीं। गिरफ्तारी गैर कानूनी होने की स्थिति में न्यायालय गिरफ्तार व्यक्ति को मुक्त करने की आज्ञा दे सकता है। यह लेख निजी स्वतंत्रता के रक्षार्थ सबसे महत्वपूर्ण अधिकार माना जाता है।

(ii) **परमादेश:** यह आदेश तब जारी किया जाता है जब न्यायालय को ज्ञात होता है कि कोई विशेष अधिकारी अपने कानूनी कर्त्तव्य की अवहेलना कर रहा है और इस कारण किसी अन्य व्यक्ति अथवा व्यक्तियों के अधिकारों का अतिक्रमण कर रहा है।

(iii) **प्रतिषेध:** यह एक वरिष्ठ या उच्चतर न्यायालय द्वारा अपने अधीनस्थ न्यायालय को जारी किया आदेश है जो उसको अपने क्षेत्राधिकार से बाहर केस की सुनवाई न करने का आदेश देता है।

(iv) **अधिकार पृच्छा:** यदि न्यायालय को ज्ञात होता है कि कोई व्यक्ति ऐसे पद पर आसीन है अथवा ऐसे कार्य कर रहा जिनके लिए वह कानूनी रूप से अधिकृत नहीं है तो न्यायालय उसे वह पद छोड़ने एवं कार्य न करने की आज्ञा दे सकता है।

(v) **उत्प्रेषण:** यह रिट किसी अधीनस्थ न्यायालय को अपने यहां लम्बित पड़े किसी केस को उच्चतर न्यायालय में प्रेषित करने की आज्ञा है ताकि वहां केस की प्रभावशाली ढंग से सुनवाई की जा सके।

टिप्पणी

क्या आप जानते हैं

प्रतिषेध और उत्प्रेषण रिट (लेख) में अन्तर यह है कि प्रतिषेध में अधीनस्थ न्यायालय को सुनवाई करने से रोकने का आदेश दिया जाता है जबकि उत्प्रेषण में वरिष्ठ न्यायालय अधीनस्थ न्यायालय से आगे सुनवाई करने के लिए कोई सूचना, रिकार्ड अथवा पूरी कार्यवाही स्थानान्तरित करने का आदेश देता है।

यद्यपि हमारे मौलिक अधिकार न्यायसंगत हैं तदापि आपातकाल की स्थिति में उन्हें स्थगित किया जा सकता है। अनुच्छेद 352 के अन्तर्गत (युद्ध अथवा आन्तरिक सशस्त्र विद्रोह) आपातकाल घोषित होते ही अनुच्छेद 19 के अन्तर्गत दी गई सभी स्वतंत्रताएं स्वत: ही स्थगित हो जाती हैं।

इसके साथ ही अनुच्छेद 359 संसद को आपातकाल के दौरान संवैधानिक उपचारों के अधिकार तक को स्थगित करने हेतु एक अलग आदेश जारी करने के लिए प्राधिकृत करता है। इसका अभिप्राय है कि उल्लंघन की स्थिति में उपचार के लिए कोई भी अदालत नहीं जा सकता और इस प्रकार सभी मौलिक अधिकार जीवन और व्यक्तिगत स्वतंत्रता के अधिकार के अलावा, स्थगित रहते हैं।

पाठगत प्रश्न 19.5

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लिखिए

(a) कौन सी रिट (आज्ञा पत्र या लेख) किसी व्यक्ति को गैर कानूनी गिरफ्तारी से बचा सकती है।

(b) कौन सी रिट के द्वारा उच्चतर न्यायालय अपने किसी अधीनस्थ न्यायालय को किसी केस की कार्यवाही जारी रखने से रोक सकता है?

(c) किसी अधीनस्थ न्यायालय से किसी वरिष्ठ न्यायालय में केस स्थानात्तरित करने की आज्ञा किस रिट (लेख) द्वारा दी जाती है?

(d) उस रिट का नाम लिखिए जो किसी उतीर्ण घोषित विद्यार्थी को विश्वविद्यालय द्वारा इस आशय का प्रमाण-पत्र देने से इन्कार करने पर, उसकी सहायता कर सकती है।

(e) श्रीमान् A को पदोन्नत करके श्रीमान् B का स्थान लेने के लिए स्थानान्तरित भी कर दिया गया। लेकिन B देरी करने के तरीके अपनाता है और किसी अन्य जगह जाने के लिए अपना पद खाली नहीं करता। उस रिट की पहचान कीजिए जो श्रीमान् A को अपना नया पद ग्रहण करने में सहायता कर सकती है।

मौलिक कर्त्तव्य

यदि अधिकारों के साथ कर्त्तव्य न जुड़े हों तो अधिकार निरर्थक हो जाते हैं। यदि हम एक नागरिक के रूप में अपने कर्त्तव्यों का निर्वाह नहीं करते तो अन्य लोग अपने अधिकारों

का आनन्द नहीं ले सकते। इतना ही नहीं बल्कि राज्य भी हमारी रक्षा करने तथा हमारी आवश्यकताओं जैसे शिक्षा, स्वास्थ्य, मकान, पानी इत्यादि को पूरा करने के अपने दायित्व का ठीक ढंग से पालन नहीं कर सकेगा। इसलिए महसूस किया गया कि भारत के संविधान में मौलिक कर्त्तव्यों को शामिल किया जाना चाहिए।

1976 में स्वीकृत 42वें संविधान संशोधन में ग्यारह महत्वपूर्ण मूल या मौलिक कर्त्तव्यों का प्रावधान है। उन्हें संविधान के अनुच्छेद 51A के अन्तर्गत भाग IVA में सूचीबद्ध किया गया है। मौलिक अधिकारों के विपरीत ये कर्त्तव्य न्याय संगत नहीं है। इसके बावजूद वे कई प्रकार से महत्वपूर्ण हैं।

संविधान के अनुच्छेद 51(A) Aमें निम्नलिखित मौलिक कर्त्तव्यों को सूचीबद्ध किया गया है:

मौलिक या मूल कर्त्तव्य – भारत के प्रत्येक नागरिक का कर्त्तव्य है कि वह –

(a) संविधान का पालन करे और इसके आदर्शों, प्रतीकों व संस्थाओं जैसे राष्ट्रध्वज और राष्ट्रगान का आदर करे

(b) ऐसे आदर्शों का अनुसरण करे जिन्होनें स्वतंत्रता के लिए हमारे राष्ट्रीय संघर्ष को प्रेरित किया।

(c) भारत की एकता और अखण्डता की रक्षा करे

(d) आवश्यकता पड़ने पर देश की रक्षा और राष्ट्रीय सेवा के स्वयं को समर्पित करे।

(e) भारत के सभी लोगों में, धार्मिक, भाषायी और क्षेत्रीय अथवा वर्ग विविधता को पार कर, भ्रातृत्व और समरसता की भावना बढ़ाए तथा स्त्रियों की गरिमा के प्रति अनादर व्यक्त करने वाली प्रथाओं का त्याग करे।

(f) अपनी सामूहिक संस्कृति और गौरवशाली विरासत की रक्षा और उसका सम्मान करे।

(g) प्राकृतिक पर्यावरण, जिसमें वन, झीलें, नदियां और वन्य जीव सम्मिलित है, कि रक्षा एवं सुधार करे तथा जीव-जन्तुओं के प्रति दया भाव रखे।

(h) वैज्ञनिक दृष्टिकोण, मानववाद, जिज्ञाशु प्रवृति तथा सुधार की भावना को विकसित करे।

(i) सार्वजनिक सम्पति की रक्षा करे तथा हिंसा का परित्याग करे

(j) व्यक्तिगत और सामूहिक कार्यकलाप के हर क्षेत्र में उत्कृष्टता के लिए प्रयास करना ताकि देश उपलब्धियों एवं उद्यम के उच्चतर स्तरों की ओर निरन्तर बढ़ सके।

(k) प्रत्येक माता-पिता अथवा अभिभावक को अपने 6 से 14 वर्ष के बच्चों को शिक्षा का अवसर प्रदान करना चाहिये।

प्रारम्भ में 1976 में निश्चित किए गए 10 मौलिक कर्त्तव्य थे लेकिन अब ग्यारह हैं। अन्तिम कर्त्तव्य 2002 में 86वें संशोधान तथा अनुच्छेद 21A के अन्तर्गत शिक्षा के अधिकार के परिणामस्वरूप इस सूची में जोड़ा गया। इस प्रकार ग्यारहवें स्थान पर उल्लिखित कर्त्तव्य

टिप्पणी

शिक्षा के अधिकार का पूरक है। इसलिए अब माता-पिता का यह कर्त्तव्य है कि शिक्षा के अधिकार का अधिकतम लाभ उठाएं।

पाठगत प्रश्न 19.6

1. भारतीय संविधान के अनुच्छेद-51(क) के अन्तर्गत कितने मौलिक या मूल कर्तव्यों का उल्लेख हैं?
2. संविधान में वर्णित किन्हीं तीन मौलिक कर्तव्यों का उल्लेख कीजिए।

आपने क्या सीखा

भारतीय संविधान का भाग तीन कुछ मौलिक अधिकारों की बात करता है जो व्यक्ति के व्यक्तित्व के विकास तथा जीवन को जीने योग्य बनाने के लिए भी आवश्यक है। क्योंकि इन अधिकारों की संविधान गारंटी देता है इसलिए इन्हें मौलिक अधिकार अथवा मूल अधिकार कहा जाता है। रक्षा के लिए विशेष प्रावधान, तथा साधारण अधिकारों से श्रेष्ठतर समझे जाने वाले इन अधिकारों को न्यायालयों द्वारा लागू एंव रक्षित किया जाता है।

भारतीय संविधान में सम्मिलित मौलिक अधिकार इस प्रकार हैं

(i) समानता का अधिकार,

(ii) स्वतंत्रता का अधिकार,

(iii) शोषण का अधिकार,

(iv) धार्मिक स्वतंत्रता का अधिकार,

(v) सांस्कृतिक एवं शैक्षिक अधिकार,

(vi) संवैधानिक उपचारों का अधिकार।

मौलिक अधिकार न्याय संगत है परन्तु असीमित नहीं है। इन अधिकारों पर सुरक्षा, स्वास्थ्य और सार्वजनिक व्यवस्था के हित में कई तर्क संगत पाबन्दियां लगाई जा सकती हैं। लेकिन कभी कभी राजनीतिक कारणों से सरकार इन पाबन्दियों का दुरुपयोग करती है। ऐसे हालात में सर्वोच्च न्यायालय और उच्च न्यायालयों को राज्य अथवा व्यक्ति द्वारा मौलिक अधिकारों के उल्लंघन को रोकने की शक्ति है। संवैधानिक उपचारों के अधिकार के अन्तर्गत न्यायालय व्यक्ति के मौलिक अधिकारों की रक्षा कर सकते हैं।

कर्त्तव्यों के बिना अधिकारों का कोई अर्थ नहीं है। इसलिए संविधान के भाग IVA में अनुच्छेद 51A के अन्तर्गत कुछ मौलिक कर्त्तव्यों को निर्धारित किया गया है। वह संख्या में ग्यारह हैं। ग्यारहवें कर्त्तव्य को बाद में 2002 में शिक्षा के अधिकार के पूरक के

शामिल किया गया था। इसलिए यह माता-पिता अथवा आभिभावकों का कर्त्तव्य है कि वे अपने 6 से 14 साल के बच्चों के लिए शिक्षा के अवसर प्रदान करें।

पाठांत प्रश्न

1. भारतीय संविधान के भाग तीन में सम्मिलित मौलिक अधिकारों की सूची बनाईये।
2. स्वतंत्रता के अधिकार के अन्तर्गत दी गई किन्हीं चार स्वतंत्रताओं पर पर लगाई गई एक-एक पाबन्दी का उल्लेख कीजिए।
3. मौलिक अधिकारों का क्या अर्थ तथा महत्व है?
4. समानता का अधिकार स्पष्ट कीजिए। यह देश में किस हद तक समानता व एकता लाने में सफल रहा है?
5. किन परिस्थितियों में मौलिक अधिकारों को स्थगित किया जा सकता है? मौलिक अधिकारों को स्थगित किया जाना कहाँ तक न्याय संगत है।
6. 'रिट (लेख)' क्या है?
7. मौलिक अधिकार न्याय संगत है परन्तु असीमित नहीं। इस कथन की व्याख्या कीजिए।
8. न्यायपालिका किस प्रकार हमारे मौलिक अधिकारों की रक्षा करती है।

पाठगत प्रश्नों के उत्तर

19.1

(क) सत्य

(ख) असत्य

(ग) असत्य

19.2

1. सत्य
2. सत्य
3. सत्य

19.3

(i) 19(c)

(ii) 19(b)

(iii) 19(a)

(iv) 19(d)

19(g)

19.4

(i) सत्य

(ii) असत्य

(iii) सत्य

19.5

(a) बंदी प्रत्यक्षीकरण

(b) प्रतिषेध (मनाही)

(c) उत्प्रेषण

(d) परमादेश

(e) अधिकार पृच्छा

19.6

1. ग्यारह (11)

2. (i) भारत की प्रभूता, एकता और अखंडता की रक्षा को और अक्षुण्ण रखें;
   (ii) देश की रक्षा करे और आह्वान किए जाने पर राष्ट्र की सेवा करें;
   (iii) सार्वजनिक संपति को सुरक्षित रखे और हिंसा से दूर रहे।

टिप्पणी

20

राज्य के नीति निदेशक सिद्धान्त

भारत के संविधान के भाग IV में अनुच्छेद 36 से 51 तक राज्य के नीति निदेशक सिद्धान्तों का वर्णन मिलता हैं। इन सिद्धान्तों का उद्देश्य लोगों को सामाजिक आर्थिक न्याय सुनिश्चित करना तथा भारत को एक कल्याणकारी राज्य के रूप में स्थापित करना है। भारतीय संविधान के संस्थापक जानते थे कि स्वतंत्र भारत को कई चुनौतियों का सामना करना होगा। लगभग 200 वर्षों के औपनिवेशिक शासन के बाद देश और समाज में गरीबी, और भुखमरी गहरी जड़े जमा चुकी थीं तथा सामाजिक आर्थिक असमानता व्याप्त थी। संविधान निर्माताओं को महसूस हुआ कि इन समस्याओं से जूझने के लिए देश का शासन चलाने हेतु कुछ विशेष नीति-निर्देशों, दिशा निर्देशों और अनुदेशों की आवश्यकता होगी। स्वतंत्र भारत की विधायिका, कार्यपालिका और प्रशासन से अपेक्षा की गई थी कि वह संविधान के इस भाग में दिए गए दिशा निर्देशों और अनुदेशों के अनुसार अपनी शक्तियों का प्रयोग कर देश का शासन प्रशासन चलायेगें।

उद्देश्य

इस पाठ को पढ़ने के बाद आप-

- राज्य के नीति निदेशक सिद्धान्तों का अर्थ एवं स्वरूप समझ सकेंगे;
- नीति निदेशक सिद्धान्तों के दार्शनिक आधार की व्याख्या कर सकेंगे;
- राज्य के नीति निदेशक सिद्धान्तों का वर्गीकरण कर सकेंगे;
- भारत को कल्याणकारी राज्य बनाने में नीति निदेशक सिद्धान्तों की भूमिका के महत्व को समझ पाएंगे;
- सामाजिक आर्थिक समानता को बढ़ावा देने में नीति निदेशक सिद्धान्तों के महत्व को समझ सकेंगे;
- मौलिक अधिकारों तथा नीति निदेशक सिद्धान्तों में अन्तर कर पाएंगे; तथा
- नीति निदेशक सिद्धान्तों को लागू करने में सरकार की भूमिका का आंकलन कर सकेंगे।

20.1 राज्य के नीति निदेशक सिद्धान्त: अर्थ और प्रकृति

नीति निदेशक सिद्धान्त ऐसे आदर्श हैं जो विशेष रूप से सामाजिक आर्थिक न्याय का उद्देश्य रखते हैं और संविधान निर्माताओं के अनुसार भारत राज्य को इन उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए प्रयास करना चाहिए।

डा. भीम राव अम्बेडकर ने नीति निदेशक सिद्धान्तों को संविधान की एक अनूठी विशेषता बताया। वे राज्य के लिए साधारण दिशा निर्देश, अनुदेश अथवा मार्ग दर्शक सिद्धान्त हैं। नीति निदेशक सिद्धान्त लोगों की आकांक्षाओं को दर्शाते हैं तथा केन्द्र व राज्य की सरकारों को कानून और नीतियाँ निर्मित करते समय इनको ध्यान में रखना चाहिए।

लक्ष्मीमल सिंघवी के अनुसार नीति निदेशक सिद्धान्त संविधान के जीवनदायी प्रावधान हैं। वे भारत के संविधान में शामिल सामाजिक न्याय के दर्शन को दर्शाते हैं। यद्यपि नीति निदेशक सिद्धान्त न्याय संगत नहीं है अर्थात वे अदालत द्वारा कानूनी रूप से बाध्यकारी नहीं हैं परन्तु फिर भी वे देश के शासन के लिए मौलिक हैं। वे विधायिका, कार्यपालिका और भारत के प्रशासकों के लिए इन आदर्शों के अनुरूप अपने दायित्वों का निर्वाह करने के लिए एक आचार संहिता निर्धारित करते हैं।

20.2 नीति निदेशक सिद्धान्तों का दार्शनिक आधार

भारतीय संविधान में नीति निदेशक सिद्धान्तों को आयरलैण्ड के संविधान से लिया गया है। इन सिद्धान्तों के विचार और दर्शन को आप फ्रांस की मानव अधिकारो, अमेरिकी स्वतंत्रता की उद्घोषणा, 19वीं सदी के उदारवादी तथा सामाजिक दर्शन तथा अपने गांधीवादी सर्वोदय के सिद्धान्तों में भी खोज सकते हैं।

आइवर जेन्निंग का कहना है कि अधिकांश नीति निदेशक सिद्धान्तों में अन्तर्निहित दर्शन फैबियन समाजवाद है। हमारे अनेक संविधान निर्माता समाजवाद और गांधीवाद के प्रभाव में थे। अत: इन प्रावधानों एवं सिद्धान्तों के माध्यम से उन्होंने समाजवादी ढांचे तथा गांधीवादी आदर्श राज्य के सिद्धान्त की नींव रखी जिसको पाने के लिए भारतीय राज्य को प्रयास करना चाहिए। संविधान का अनुच्छेद 37 इन नीति निदेशक सिद्धान्तों को लागू करने की बात करता है, जिसके अनुसार भाग IV में शामिल प्रावधान किसी भी अदालत द्वारा लागू नहीं करवाए जा सकेंगे परन्तु वे किसी भी रूप में देश के शासन के लिए मौलिक या आधारभूत सिद्धान्तों से कम नहीं हैं तथा राज्य का यह कर्त्तव्य है कि कानून बनाते समय इन सिद्धान्तों को लागू करे।

क्या आप जानते हैं

- भारत के संविधान के भाग IV (अनुच्छेद 36 से 51) में राज्य के नीति निदेशक सिद्धान्त सम्मिलित हैं

- भारत के संविधान में निहित नीति निदेशक सिद्धान्त आयरलैण्ड संविधान से लिए गए हैं। आयरलैण्ड ने स्वयं ये सिद्धान्त स्पेन के संविधान से लिए थे।
- ऐसे ही दिशा निर्देश भारत सरकार अधिनियम 1935 में अनुदेशों के रूप में दिए गए थे।
- राज्य के नीति निदेशक सिद्धान्तों का उद्देश्य भारत को कल्याणकारी राज्य बनाना तथा उदार व्यक्तिवादी एवं समाजवादी विचारधारा के बीच संतुलन स्थापित करना है।

पाठगत प्रश्न 20.1

रिक्त स्थानों की पूर्ति करें।

(i) नीति निदेशक सिद्धान्त भारत को .... राज्य बनाते हैं। (कल्याणकारी/समाजवादी)

(ii) नीति निदेशक सिद्धान्त .... हैं। (न्याय संगत नहीं/न्याय संगत)

(iii) .... के विचारों और चिन्तन को भारत के संविधान में नीति निदेशक सिद्धान्तों के रूप में शामिल किया गया है। (सी राजगोपालाचारी/महात्मा गाँधी)

(iv) समाज का समाजवादी ढांचा संसाधनों के............ वितरण से प्राप्त किया जा सकता है। (असमान/न्यायपूर्ण)

(v) भारत से .... व्यवस्था को पूरी तरह से हटा दिया गया है। (जाति/पूंजीवादी/जमींदारी)

20.3 राज्य के नीति निदेशक सिद्धान्तों का वर्गीकरण

नीति निदेशक सिद्धान्तों को उनके वैचारिक स्रोत और उद्देश्यों के आधार पर वर्गीकृत किया जाता है। उनके अध्ययन को सुविधाजनक बनाने हेतु हम मोटे तौर पर उन्हें चार वर्गों में बांट सकते हैं। ये हैं-

1. आर्थिक और सामाजिक सिद्धान्त
2. गांधी जी के विचारों पर आधारित सिद्धान्त
3. अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति से सम्बन्धित सिद्धान्त
4. अन्य विविध सिद्धान्त

1. आर्थिक और सामाजिक सिद्धान्त

नीति निदेशक सिद्धान्तों में बड़ी संख्या में समाजवादी प्रकृति के सिद्धान्त हैं जो भारत को एक कल्याणकारी राज्य के रूप में स्थापित करने के उद्देश्य से लोगों के सामाजिक

और आर्थिक विकास के लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए समर्पित हैं। इनमें से कुछ सिद्धान्त निम्नलिखित हैं:-

(i) राज्य ऐसी सामाजिक व्यवस्था की स्थापना करेगा जिसमें न्याय, सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक राष्ट्रीय जीवन की सभी संस्थाओं में परिलक्षित हो।

(ii) अनुच्छेद-39 में प्रावधान है कि राज्य, विशेष रूप से, अपनी नीतियों को निम्नलिखित को प्राप्त करने की दिशा में प्रेरित करेगा:

(क) सभी नागरिकों को आजीविका के पर्याप्त साधन उपलब्ध कराना।

(ख) भौतिक संसाधनों के स्वामित्व एवं नियन्त्रण को सबकी भलाई के लिए व्यवस्थित करना।

(ग) आर्थिक व्यवस्था का प्रबंधन इस प्रकार करे कि सम्पति कुछ हाथों में संकेन्द्रित न हो जाए।

(घ) पुरूष और स्त्रियों, दोनों के लिए समान कार्य हेतु समान वेतन निश्चित करना।

(ङ) सभी कामगारों के स्वास्थ्य एवं शक्ति की रक्षा करना।

(च) बचपन और युवाशक्ति को शोषण से बचाना।

(iii) अनुच्छेद-42 उद्घोषित करता है कि राज्य कार्य के लिए स्वच्छ वातावरण और प्रसूति सेवा की व्यवस्था करेगा।

(iv) अनुच्छेद-43 के अनुसार राज्य सभी श्रमिकों के लिए आजीविका एवं रहने का अच्छा स्तर प्रदान करने का प्रयास करेगा जबकि अनुच्छेद 43A कहता है कि राज्य ऐसे कदम उठाएगा जिससे श्रमिकों की उद्योगों के प्रबन्धन में भागीदारी सुनिश्चित हो सके।

2. गांधीवादी सिद्धान्तों पर आधारित नीति निदेशक सिद्धान्त

हमारे स्वतंत्रता आन्दोलन में राष्ट्रपिता महात्मा गांधी एक नेता और मार्गदशक के रूप में मुख्य शक्ति थे। उनका जन साधारण तथा संविधान निर्माताओं पर बहुत गहरा प्रभाव था। संविधान में कुछ नीति निदेशक सिद्धान्त गांधी जी के दर्शन व विचारों से प्रेरित होकर शामिल किये गये। जोकि निम्न प्रकार से हैं।

(i) राज्य, स्थानीय शासन की इकाई के रूप में पंचायतों के गठन के लिए कदम उठाएंगे। (अनुच्छेद-40)

(ii) राज्य ग्रामीण क्षेत्रों में व्यक्तिगत एवं सहकारी स्तर पर कुटीर उद्योगों को बढ़ावा देने के प्रयास करेंगे (अनुच्छेद-43)

(iii) अनुच्छेद 45 चौदह वर्ष की आयु तक के सभी बच्चों के लिए अनिवार्य एवं नि:शुल्क शिक्षा का प्रावधान करता है। इस प्रावधान को 86वें संविधान संशोधन द्वारा 2002 में संशोधित किया गया और अब यह कहता है कि राज्य शिशु की देखभाल तथा 14 वर्ष की आयु तक शिक्षा प्रदान करने का प्रयास करेगा। (अनुच्छेद-21-क)

(iv) अनुच्छेद 46 निश्चित करता है कि राज्य कमजोर वर्ग के लोगों के शैक्षिक और आर्थिक हितों को बढ़ावा देगा; विशेष रूप से अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति के लोगों के हितों की रक्षा करेगा।

(v) अनुच्छेद 47 में व्यवस्था है की गयी है कि राज्य जन स्वास्थ्य को सुधारने तथा मादक द्रव्यों और स्वास्थ्य के लिए हानिकारक ड्रग्स के प्रयोग पर प्रतिबन्ध लगाने के लिए कदम उठाएगा।

(vi) अनुच्छेद 48 के अनुसार राज्य गायों और बछड़ों तथा अन्य दुधारू पशुओं के वध पर प्रतिबन्ध लगाने के लिए कदम उठाएगा।

3. अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति और सुरक्षा से सम्बन्धित नीति निदेशक सिद्धान्त

विश्व युद्ध की समाप्ति के एक वर्ष बाद भारत में संविधान बनाने की प्रक्रिया शुरू हुई थी। यह स्पष्ट है कि हमारी संविधान सभा के सदस्य अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति और सुरक्षा के प्रति चिन्तित थे। राज्य के नीति निदेशक सिद्धान्तों के माध्यम से उन्होंने यह सुनिश्चित करने का प्रयास किया कि स्वतंत्र भारत की सरकार विश्व शान्ति और सुरक्षा के लिए सक्रिय योगदान देगी। अनुच्छेद 51 उद्घोषित करता है कि अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति और सुरक्षा स्थापित करने के लिए राज्य-

(i) अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति और सुरक्षा को बढ़ावा देगा,

(ii) अन्य देशों के साथ न्यायपूर्ण एवं सम्मानजनक सम्बन्ध बनाएगा,

(iii) अन्तर्राष्ट्रीय कानूनों तथा सन्धि के दायित्वों का आदर करेगा,

(iv) अन्तर्राष्ट्रीय विवादों को आपसी बातचीत से सुलझाने को प्रोत्साहन देगा।

4. विविध नीति निदेशक सिद्धान्त

नीति निदेशक सिद्धान्तों के चौथे वर्ग में कुछ सामान्य विषय हैं जिन्हें कभी-कभी उदारवादी विचारधारा से प्रेरित सिद्धान्त भी कहते हैं। ये सिद्धान्त इस प्रकार से हैं-

(i) अनुच्छेद 44: राज्य पूरे भारत क्षेत्र में समान नागरिक संहिता लागू करने का प्रयास करेगा।

(ii) अनुच्छेद 48A: राज्य को पर्यावरण सुधारने तथा देश के वनों एवं वन्यजीवों की सुरक्षा के लिए निर्देश देता है।

(iii) अनुच्छेद 49: राज्य प्रत्येक स्मारक एवं ऐतिहासिक या कलात्मक स्थान की रक्षा करेगा।

(iv) अनुच्छेद 50: राज्य न्यायपालिका को कार्यपालिका से अगल रखने हेतु कदम उठाएगा।

क्या आप जानते हैं

- 1976 के 42वें संविधान संशोधन ने भारतीय संविधान के भाग IV में कुछ नए सिद्धान्त जोड़ कर नीति निदेशक सिद्धान्त में परिवर्तन किए हैं। जैसे:
  - (i) अनुच्छेद-39A – राज्य गरीबों को नि:शुल्क कानूनी सहायता प्रदान करेगा
  - (ii) अनुच्छेद-43A – उद्योगों के प्रबन्धन में श्रमिकों की सहभागिता
  - (iii) अनुच्छेद-48A – राज्य को पर्यावरण की रक्षा एवं सुधार करने के निर्देश देता है।

- 1978 में किए गए 44वें संविधान संशोधन द्वारा अनुच्छेद 38 के खण्ड 2 में जोड़ा गया कि "राज्य आय में असमानता को कम करने के लिए विशेष रूप से प्रयास करेगा तथा हैसियत, सुविधाओं और अवसरों में असमानता को न केवल व्यक्तियों अपितु समूहों के बीच भी समाप्त करने के प्रयास करेगा।
- 1978 में 44वें संविधान संशोधन द्वारा सम्पति के अधिकार को मौलिक अधिकारों की सूची से हटा दिया गया। इस अधिकार को नीति निदेशक सिद्धान्तों को लागू करने की राह में बाधा समझा जाता था।

पाठगत प्रश्न 20.2

प्रत्येक बहुविकल्पीय प्रश्न के लिए सही उत्तर चुनिये।

1. भारत में राज्य के नीति निदेशक सिद्धान्तों को किस देश के संविधान से लिया गया?
   (i) ब्रिटेन
   (ii) जर्मनी
   (iii) फ्रांस
   (iv) आयरलैण्ड
2. निम्नलिखित में से कौन 'पंचायती राज' व्यवस्था का सबसे बड़ा पक्षधर था?
   (i) पं. जवाहर लाल नेहरू
   (ii) महात्मा गांधी
   (iii) सरदार पटेल
   (iv) डा. बी. आर. अम्बेडकर
3. राज्य के नीति निदेशक सिद्धान्त भारत को निम्नलिखित में क्या बनाने का प्रयास करते हैं?
   (i) कल्याणकारी राज्य
   (ii) पूंजीवादी राज्य
   (iii) वामपंथी राज्य
   (iv) सर्वसत्तात्मक राज्य
4. निम्नलिखित में से किस में पुरूषों और स्त्रियों दोनों के लिए समान कार्य के लिए समान वेतन का प्रावधान है?
   (i) मौलिक अधिकार
   (ii) संविधान की प्रस्तावना

(iii) राज्य के नीति निदेशक सिद्धान्त

(iv) मौलिक कर्त्तव्य

5. संविधान का कौन सा अनुच्छेद राज्य को ग्रामीण क्षेत्रों में पंचायती राज संस्थाएं स्थापित करने का निर्देश देता है?

(i) अनुच्छेद 40

(ii) अनुच्छेद 45

(iii) अनुच्छेद 37

(iv) अनुच्छेद 36.

20.5 मौलिक अधिकार तथा राज्य के नीति निदेशक सिद्धान्तों में अन्तर

मौलिक अधिकार तथा राज्य के नीति निदेशक सिद्धान्त दोनों ही संविधान की अनिवार्य विशेषताएं हैं। लेकिन लम्बे समय तक दोनों के बीच विवाद बना रहा। राज्य के नीति निदेशक सिद्धान्तों को लागू करने के लिए मौलिक अधिकारों पर कई प्रतिबन्ध लगाने पड़े। उनके अलग और कभी-कभी परस्पर विरोधी उद्देश्य होते थे और विवाद का यही मुख्य कारण था। नीति निदेशक सिद्धान्त निम्नलिखित प्रकार से मौलिक अधिकारों से भिन्न हैं।

(i) मौलिक अधिकार न्याय संगत हैं जबकि नीति निदेशक सिद्धान्त न्याय संगत नहीं है। इसका अर्थ यह है कि यदि किसी व्यक्ति के मौलिक अधिकारों का उल्लंघन होता तो वह न्यायालय में अपील कर सकता है परन्तु नीति निदेशक सिद्धान्तों के उल्लंघन या सरकार उन्हें लागू न करे तो भी न्यायालय में अपील नहीं की जा सकती।

(ii) मौलिक अधिकारों की प्रकृति नकारात्मक है क्योंकि वे राज्य पर पाबन्दियां लगाते हैं। इसके विपरीत नीति निदेशक सिद्धान्त सकारात्मक हैं। वे कुछ निश्चित सामाजिक और आर्थिक उद्देश्यों को प्राप्त करना राज्य का कर्त्तव्य घोषित करते हैं तथा राज्य को उस दिशा में कार्य करने के लिय प्रेरित करते हैं।

(iii) मौलिक अधिकार व्यक्ति के हितों की रक्षा करते हैं जबकि राज्य के नीति निदेशक सिद्धान्त सामाजिक-आर्थिक समानता को बढ़ावा देना चाहते हैं और विशेष रूप से समाज के कमजोर और वंचित वर्गों को सुरक्षा प्रदान करते हैं।

20.6 नीति निदेशक सिद्धान्तों और मौलिक अधिकारों में सम्बन्ध

संविधान के लागू होने के बाद से तीन दशकों तक एक लम्बा विवाद चलता रहा कि मौलिक अधिकारों और नीति निदेशक सिद्धान्तों के बीच टकराव होने की स्थिति में दोनों संवैधानिक प्रावधानों में से किस को प्राथमिकता दी जाएगी? भूमि सुधार, बैंक राष्ट्रीयकरण और सरकार के अनेक ऐसे कदमों को अदालतों में इस आधार पर चुनौती दी गई कि वे व्यक्ति के मौलिक अधिकारों का अतिक्रमण करते थे। सबसे बड़ी अड़चन अनुच्छेद

31, सम्पति का अधिकार था, जो नीति निदेशक सिद्धान्तों को लागू करने की प्रक्रिया में सबसे बड़ी बाधा बन रहा था। कुछ समय तक न्यायालय के विराधाभासी निर्णयों तथा सत्ताधारी वर्ग की मजबूरियों ने मामले को उलझा दिया। 1976 में गोलकनाथ वाद में सर्वोच्च न्यायालय ने घोषित किया कि नीति निदेशक सिद्धान्तों को कार्यान्वित करने के लिए संसद द्वारा मौलिक अधिकारों में संशोधन नहीं किया जा सकता। शंकरी प्रसाद वाद के मामले में सर्वोच्च न्यायालय का निर्णय अपने ही निर्णय के विरूद्ध था। 1973 में केशवानन्द भारती वाद में इसने 1967 के गोलक नाथ केस के निर्णय को पलट दिया और घोषित किया कि संसद संविधान के किसी भाग में संशोधन कर सकती है परन्तु यह इसके बुनियादी या मूल ढांचे को नहीं बदल सकती। 1978 में 44वें संशोधन के द्वारा अनुच्छेद 31 में वर्णित सम्पति के अधिकार को हटा दिया गया और इस कदम से संसद ने नीति निदेशक सिद्धान्तों को लागू करने की राह की मुख्य बाधा को दूर कर दिया। 1980 में मिनर्वा केस के मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने पुनः इस बात पर बल दिया कि संसद संविधान के किसी भी भाग में संशोधन कर सकती है परन्तु संविधान के मूल ढांचे को नहीं बदल सकती या उसमें संशोधन नहीं कर सकती। यद्यपि संविधान में नीति निदेशक सिद्धान्त और मौलिक अधिकार परस्पर विरोधी नहीं है परन्तु वे अलग दिखाई देते हैं लेकिन फिर भी उनके बीच टकराव हो सकता है; विशेष रूप से जब नीति निदेशक सिद्धान्तों को लागू करने के लिए कानून बनाए जाते हैं तो इन प्रयासों से व्यक्ति के मौलिक अधिकारों का हनन होता है या उन्हें सीमित किया जाता है।

लेकिन इन अन्तरों के बावजूद मौलिक अधिकारों और राज्य के नीति निदेशक सिद्धान्तों के बीच एक निकट सम्बन्ध है। वे एक दूसरे के पूरक और सम्पूरक हैं और संविधान की प्रस्तावना में घोषित लक्ष्यों और आदर्शों को मूर्तरूप देने के लिए दोनों की जरूरत है। मौलिक अधिकार भारत को राजनीतिक लोकतन्त्र बनाते हैं लेकिन इस राजनीतिक स्वतंत्रता को बनाए रखने के लिए नीति निदेशक सिद्धान्तों को लागू करना अनिवार्य है जिनके कारण सामाजिक और आर्थक लोकतन्त्र का उदय होगा अर्थात कल्याणकारी राज्य की स्थापना होती है। मौलिक अधिकारों के पीछे कानूनी शक्ति है लेकिन नीति सिद्धान्तों के साथ जनमत की स्वीकृति और सहमति है। वे देश के शासन के लिए मौलिक हैं और इसलिए कोई लोकतान्त्रिक सरकार उनकी अवहेलना नहीं कर सकती।

पाठ्गत प्रश्न 20.3

निम्नलिखित कथनों के सामने 'सत्य' अथवा 'असत्य' लिखिए

(i) मौलिक अधिकार न्यायसंगत हैं।

(ii) लोग, नीति निदेशक सिद्धान्तों को लागू न किए जाने पर न्यायालय में अपील कर सकते हैं।

(iii) नीति निदेशक सिद्धान्तों का उद्देश्य सामाजिक आर्थिक न्याय है।

(iv) सम्पति का अधिकार मौलिक अधिकार है।

(v) संसद संविधान संशोधन के माध्यम से संविधान के आधारभूत ढांचे में परिवर्तन नहीं कर सकती।

20.7 राज्य के नीति निदेशक सिद्धान्तों का क्रियान्वयन

कभी-कभी नीति निदेशक सिद्धान्तों की इसलिए आलोचना की जाती है कि वे न्याय संगत नहीं है, बेकार तथा नैतिक धारणाएं है, जिनको क्रियान्वित करना पूरी तरह से सरकार के विवेक पर छोड़ दिया गया है। लेकिन गत 60 वर्षों से संविधान की कार्य प्रणाली दर्शाती है कि भारत में बारी-बारी से आने वाली सभी सरकारों ने इनको लागू करने के लिए कई कदम उठाए हैं। इस दिशा में सरकार द्वारा किये गये प्रयास इस प्रकार हैं-

(i) अनुच्छेद 39 को प्रभावशाली बनाने के लिए सरकार द्वारा आम आदमी की भलाई के उद्देश्य से भौतिक संसाधनों के स्वामित्व एवं नियन्त्रण हेतु विभिन्न कानून बनाए गए। उनमें से कुछ इस प्रकार हैं-

(a) भूमि सुधार: भारत जैसे कृषि प्रधान देश में भूमि सबसे अनिवार्य भौतिक संसाधन है। भूमि सुधारों के माध्यम से जमींदारी व्यवस्था को समाप्त किया गया, भूमि रखने की सीमा तय की गई तथा अतिरिक्त भूमि को भूमिहीन मजदूरों में वितरित किया गया।

(b) न्यूनतम वेतन अधिनियम: ऊंची आय वाले समूह से आयकर एवं अन्य करों के माध्यम से टैक्स वसूलने तथा कमजोर वर्गों को टैक्स माफी एवं राहत देने के उपाय किए गए।

(ii) 1992 के 73वें संविधान संशोधन द्वारा सरकार ने अनुच्छेद 40 में उल्लिखित संवैधानिक दायित्व को पूरा किया और लगभग देश के सभी भागों में गांव, ब्लाक और जिला स्तर पर त्रिस्तरीय पंचायती राज व्यवस्था लागू की गई।

चित्र 20.1: ग्राम पंचायत सभा

(iii) अनुच्छेद 43 के अनुसार कुटीर उद्योग को बढ़ावा देने के लिए सरकार ने कई बोर्ड स्थापित किए हैं जैसे ग्रामीण उद्योग बोर्ड, आल इन्डिया हैन्डीक्राफ्ट बोर्ड (अखिल भारतीय हस्तशिल्प बोर्ड); सिल्क बोर्ड, कोयर बोर्ड इत्यादि जो कुटीर उद्योगों की वित्तीय एवं विपणन में आवश्यक सहायता करते हैं।

(iv) सरकार ने अनुच्छेद 45 में उल्लिखित नि:शुल्क और अनिवार्य शिक्षा से सम्बन्धित प्रावधानों को लागू किया है। 86वें संविधान संशोधन और उसके बाद शिक्षा का अधिकार अधिनियम 2009 के पास होने से प्राथमिक शिक्षा को 6 से 14 वर्ष के बीच के प्रत्येक बच्चे का मौलिक अधिकार बना दिया गया है।

चित्र 20.2: विद्यालय जाते बच्चे

(v) सरकार ने विभिन्न विकास कार्यक्रम शुरू किए हैं जैसे सामुदायिक विकास कार्यक्रम 1952, एकीकृत ग्रामीण विकास कार्यक्रम (1978–79) और गत वर्षों में महात्मा गाँधी ग्रामीण रोजगार गारंटी अधिनियम 2006 को संविधान के अनुच्छेद 47 की भावना के अनुरूप विशेष रूप से ग्रामीण क्षेत्र में रहने वालों के जीवन स्तर को उठाने के लिए लागू किया गया।

(vi) सरकार ने महिलाओं और बच्चों को स्वास्थ्य और पोषण में सहयोग देने के लिए अनेक कार्यक्रम शुरू किए हैं जैसे प्रसूति सेवा और स्कूली बच्चों के लिए दोपहर का भोजन (मिड डे मील) योजना।

(viii) केन्द्रीय सरकार ने प्रधानमन्त्री ग्राम स्वास्थ्य योजना तथा राष्ट्रीय ग्रामीण स्वास्थ्य मिशन जैसी योजनाओं को प्रायोजित किया तथा स्वास्थ्य और कल्याण से सम्बन्धित अन्य अनेक कार्यक्रमों को भारत राज्य के सामाजिक क्षेत्र के प्रति उत्तरदायित्व को पूरा करने के लिए लागू किया जा रहा है। नि:सन्देह इन सभी कल्याणकारी उपायों के पीछे मुख्य मार्गदर्शक ताकत नीति निदेशक सिद्धान्त ही हैं।

संविधान की कार्यप्रणाली तथा भारत सरकार द्वारा अपनाई गई विकास रणनीति का अध्ययन करने के बाद हम निश्चित रूप से यह कह सकते हैं कि कानून और नीतियां बनाते समय नीति निदेशक सिद्धान्तों को हमेशा उपयुक्त महत्व और प्राथमिकता दी गई है। कुछ

सिद्धान्तों को अक्षरशः लागू किया गया है और कुछ में कर बदलाव उन्हे लागू किया गया है। हालांकि अभी भी विकसित और विकासशील देशों की तुलना में भारत में स्वास्थ्य और शिक्षा के क्षेत्र में काफी कमियां है। एक लोकतान्त्रिक देश होने के नाते भारत इसे नजरंदाज नहीं कर सकता। अतः आधारभूत स्वास्थ्य और शिक्षा का तीव्र आधुनिकीकरण और विस्तार सरकार का तुरन्त ध्यान आकर्षित करता है। संविधान अपेक्षा करता है कि समाज के सभी वर्गों को काम का अधिकार, आजीविका के पर्याप्त साधन तथा सामाजिक आर्थिक न्याय मिले। इसलिए भारतीय संविधान के संस्थापकों द्वारा निश्चित किए आदर्शों को अनुभूत करने या मूर्त रूप देने के लिए इस दिशा में सरकार को अभी बहुत कुछ करना है।

पाठगत प्रश्न 20.4

रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए।

(i) 73वें संविधान संशोधन द्वारा ग्रामीण क्षेत्रों में .... पंचायती राज व्यवस्था लागू की गई। (द्विस्तरीय/त्रिस्तरीय)

(ii) संसद ने शिक्षा का अधिकार अधिनियम वर्ष .... में पारित किया। (2006/2009)

(iii) शिक्षा का अधिकार अधिनियम .... से .... वर्ष तक के बच्चों के लिए है। (0 से 6/6 से 14)

(iv) संविधान का 86वां संशोधान वर्ष .... में किया गया। (2009/2002)

आपने क्या सीखा

भारत के संविधान के भाग IV के अनुच्छेद 36 से 51 तक में राज्य के नीति निदेशक सिद्धान्त दर्ज हैं। ये सिद्धान्त सरकार के लिए सूचनाओं और मार्गदर्शक निर्देशों के रूप में हैं जिनका उद्देश्य सामाजिक आर्थिक समानता तथा कल्याणकारी राज्य की स्थापना करना है। भारत में राज्य से अपेक्षा की जाती है कि वह कानून और नीतियां बनाते समय इन सिद्धान्तों से मार्ग दर्शन प्राप्त करे। ये सिद्धान्त न्याय संगत नहीं है अर्थात इन्हें किसी न्यायालय के माध्यम से लागू नहीं करवाया जा सकता लेकिन इनके पीछे जनमत और नैतिक ताकत है।

वैचारिक स्त्रोतों और उद्देश्यों के आधार पर इनको निम्नलिखित चार वर्गों में बांटा जा सकता है।

1. आर्थिक और सामाजिक सिद्धान्त,
2. गांधीवादी विचार व दर्शन पर आधारित सिद्धान्त,

3. अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति से सम्बन्धित सिद्धान्त,
4. विविध सिद्धान्त।

नीति निदेशक सिद्धान्तों को आयरलैण्ड के संविधान से लिया गया है। ये सिद्धान्त समाज में समाजवादी व्यवस्था स्थापित करने का उद्देश्य रखते हैं जो कि संविधान की प्रस्तावना में घोषित उद्देश्यों में से एक है तथा भारत के कल्याणकारी राज्य के रूप में उदय से सम्बन्धित है।

लोकतान्त्रिक संविधान होने के नाते भारतीय संविधान देश के सभी नागरिकों को मौलिक अधिकार प्रदान करता है। मौलिक अधिकारों और राज्य के नीति निदेशक सिद्धान्तों में कुछ आधारभूत अन्तर हैं। मौलिक अधिकार राज्य की शक्ति पर पाबन्दी लगाते हैं इसलिए नकारात्मक प्रकृति के हैं जबकि नीति निदेशक सिद्धान्त सकारात्मक प्रकृति के हैं। नीति निदेशक सिद्धान्त राज्य को एक विशेष रूप में कार्य करने में मार्गदर्शन करते हैं। मौलिक अधिकार न्याय संगत हैं परन्तु नीति निदेशक सिद्धान्त न्याय संगत नहीं है। मौलिक अधिकार संविधान की उदारवादी व्यक्तिवादी विशेषता को दर्शाते हैं जबकि नीति निदेशक सिद्धान्त संविधान की समाजवादी विशेषता को दर्शाते हैं। इन अन्तरों के बावजूद हम कह सकते हैं कि मौलिक अधिकार एवं नीति निदेशक सिद्धान्त दोनों ही हमारे संविधान की अनिवार्य विशेषताएं हैं। यह सुपरिचित तथ्य है कि मौलिक अधिकारों द्वारा स्थापित राजनीतिक लोकतन्त्र को जीवित रखने के लिए सामाजिक आर्थिक समानता तथा कल्याणकारी राज्य अनिवार्य है।

पाठांत प्रश्न

1. राज्य के नीति निदेशक सिद्धान्तों का वर्णन कीजिए। क्या वे न्याय संगत हैं?
2. राज्य के नीति निदेशक सिद्धान्तों का वर्गीकरण कीजिए।
3. सामाजिक आर्थिक समानता के लक्ष्य वाले किन्हीं चार नीति निदेशक सिद्धान्तों का उल्लेख कीजिए।
4. गांधीवादी विचारधारा और सिद्धान्तों पर आधारित किन्हीं चार नीति निदेशक सिद्धान्तों का वर्णन कीजिए।
5. मौलिक अधिकारों तथा राज्य के नीति निदेशक सिद्धान्तों के बीच अन्तर लिखिए।
6. "भारत में एक के बाद एक आने वाली सरकारों ने राज्य के नीति निदेशक सिद्धान्तों को काफी प्राथमिकता दी"। क्या आप इस कथन से सहमत हैं? अपने उत्तर के पक्ष में उपयुक्त तर्क दीजिए।
7. राज्य के नीति निदेशक सिद्धान्तों को क्रियान्वित करने में सरकार ने अब तक क्या कदम उठाए हैं? वर्णन कीजिए।
8. "भारत जैसे गरीब देश में सामाजिक आर्थिक न्याय को व्यक्तिगत स्वतंत्रता के मुकाबले वरीयता या प्राथमिकता मिलनी चाहिए" क्या आप इस कथन से सहमत हैं? अपने उत्तर की उपयुक्त तर्कों द्वारा पुष्टि कीजिए।

पाठगत प्रश्नों के उत्तर

20.1

(i) कल्याणकारी

(ii) न्याय संगत नहीं

(iii) महात्मा गांधी

(iv) न्यायपूर्ण

(v) जमींदारी

20.2

1. (iv) आयरलैण्ड
2. (ii) महात्मा गांधी
3. (i) कल्याणकारी राज्य
4. (iii) राज्य के नीति निदेशक सिद्धान्त
5. (i) अनुच्छेद 40

20.3

(i) सत्य

(ii) असत्य

(iii) सत्य

(iv) असत्य

(v) सत्य

20.4

(i) त्रिस्तरीय

(ii) 2009

(iii) 6 से 14

(iv) 2002

मॉड्यूल 6

भारत का संविधान-II

अध्याय 21 कार्यपालिका

अध्याय 22 वधायिका

अध्याय 23 न्यायपालिका

21

कार्यपालिका

भारत एक लोकतांत्रिक गणराज्य है। यह अट्ठाईस (28) राज्यों एवं 7 संघीय क्षेत्रों का संघ है। राज्यों का संघ होने के कारण शासन के दो स्तर हैं। केन्द्र में सरकार को केन्द्रीय सरकार और राज्य स्तर पर सरकार को राज्य सरकार कहते हैं। संघीय (केन्द्रीय) सरकार के तीन अंग हैं- विधायिका (संसद) कार्यपालिका (राष्ट्रपति, प्रधानमंत्री और मंत्री परिषद) और न्यायपालिका (सर्वोच्च न्यायालय)। इस पाठ में हम केन्द्र तथा राज्यों में सरकार के एक अंग कार्यपालिका अंग के बारे में पढ़ेंगे।

उद्देश्य

इस पाठ को पढ़ने के बाद आप:

- संघीय सरकार की नाममात्र की कार्यपालिका और वास्तविक कार्यपालिका में अन्तर समझ सकेंगे;
- कार्यपालिका के कार्यों का वर्णन कर सकेंगे;
- भारत के राष्ट्रपति की स्थिति को समझ सकेंगे;
- राष्ट्रपति की विधायी, कार्यपालिका सम्बन्धी और न्यायिक शक्तियों को जान पाएंगे;
- मन्त्रिपरिषद के कार्यों और शक्तियों को रेखांकित कर सकेंगे;
- प्रधानमंत्री के कार्यों, शक्तियों और स्थिति की व्याख्या कर पाएंग;
- राज्य की कार्यपालिका के मुखिया के रूप में राज्यपाल की भूमिका का आकलन कर सकेंगे; तथा
- राज्यपाल की स्थिति, शक्तियों और कार्यो का समझ सकेंगे।

21.1 संघीय कार्यपालिका

भारत सरकार की संघीय कार्यपालिका में राष्ट्रपति, प्रधानमंत्री और उसकी मंत्रिपरिषद सम्मिलित होती है। कार्यपालिका का यह भाग अस्थायी और राजनीतिक कार्यपालिका कहलाता है क्योंकि प्रत्येक साधारण चुनाव के बाद सरकार में परिवर्तन के साथ इसमें भी परिवर्तन हो जाता है। कार्यपालिका का दूसरा भाग सरकारी अफसर और कर्मचारी अथवा अफसरशाही

है जो स्थायी रूप से एक निश्चित आयु तक निरन्तर काम करते हैं। राष्ट्रपति कार्यपालिका के दोनों भागों का मुखिया है और संविधान के प्रावधानों के अन्तर्गत कार्यपालिका की सभी शक्तियां राष्ट्रपति में निहित हैं। इस शक्ति का प्रयोग राष्ट्रपति के आधीन कार्यालयों द्वारा उसके नाम से किया जाता है। राष्ट्रपति संघीय कार्यपालिका में सर्वोपरि है। कार्यपालिका की सभी कार्रवाईयां औपचारिक रूप से उसके नाम से की जाती हैं। राष्ट्रपति, भारत के रक्षा बलों का सर्वोच्च सेनापति होता है।

जैसा कि आप जानते हैं कि भारत एक गणराज्य है, इसलिए यहां राज्याध्यक्ष अर्थात राष्ट्रपति का निर्वाचन होता है। भारत के संवधिान में राष्ट्रपति को चुनने की एक प्रणाली निश्चित की गई है।

21.1.1 राष्ट्रपति का चुनाव

राष्ट्रपति का चुनाव अप्रत्यक्ष रूप से लोकसभा और राज्यसभा अर्थात संसद के दोनों सदनों के निर्वाचित सदस्यों तथा 28 राज्यों की विधानसभाओं के साथ-साथ राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र दिल्ली और संघीय क्षेत्र पुद्दुचेरी की विधानसभाओं के निर्वाचित सदस्यों द्वारा निर्मित निर्वाचक मंडल द्वारा किया जाता है। लोकसभा, राज्यसभा तथा विधानसभाओं के मनोनीत सदस्य राष्ट्रपति के चुनाव में वोट देने का अधिकार नहीं रखते। भारत के राष्ट्रपति पद के लिए संविधान में कुछ योग्यताएं निश्चित की गई हैं।

21.1.2 योग्यताएँ

राष्ट्रपति पद के लिए आवश्यक योग्यताएं निम्नलिखित हैं:-

1. भारत का नागरिक होना चाहिए।
2. 35 वर्ष की आयु पूरी कर चुका हो।
3. लोकसभा का सदस्य चुने जाने की योग्यताएं रखता हो।
4. संघीय सरकार अथवा किसी राज्य सरकार के अन्तर्गत लाभ के किसी पद पर आसीन नहीं होना चाहिए। हालांकि राष्ट्रपति, उपराष्ट्रपति, राज्यपाल अथवा केन्द्रीय या राज्य के मंत्री पद को 'लाभ का पद' नहीं माना जाता।

21.1.3 चुनाव प्रक्रिया

राष्ट्रपति का चुनाव अनुपातिक प्रतिनिधित्व प्रणाली के अनुसार एकल हस्तातंरणीय मत के माध्यम से किया जाता है। यह चुनाव गुप्त मतदान द्वारा किया जाता है। जहां तक सम्भव हो राष्ट्रपति के चुनाव में विभिन्न राज्यों के प्रतिनिधित्व में समानता होनी चाहिए। अतः राज्यों के बीच समानता तथा सभी राज्यों को मिलाकर संघ के साथ बराबरी प्राप्त करने के उद्देश्य से प्रत्येक मतदाता द्वारा डाले गए मत का मूल्य निम्नलिखित तरीके से निर्धारित किया जाता है।

$$\text{किसी राज्य की विधानसभा के} = \frac{\text{राज्य की कुल जनसंख्या}}{\text{राज्य विधान सभा के निर्वाचित सदस्यों की कुल संख्या}} \times \frac{1}{1000}$$

प्रत्येक सदस्य के मत का मूल्य

उदाहरण के लिए यदि किसी राज्य की जनसंख्या 2, 45, 48,000 है और निर्वाचित सदस्यों की संख्या 120 है तो प्रत्येक सदस्य के मत का मूल्य होगा–

$$\frac{24548000 \times 1}{120 \times 100} = 204.54 = 205$$

यहां जनसंख्या का अर्थ उस जनसंख्या से है जो पिछली जनगणना में थी तथा जिस संख्या को प्रकाशित किया जा चुका है। इसी प्रकार एक तरफ संसद के निर्वाचित सदस्यों के मतों तथा दूसरी तरफ सभी राज्यों की विधानसभाओं के निर्वाचित सदस्यों के मतों में बराबरी लाने के लिए संसद के प्रत्येक सदस्य के मत का मूल्य निम्नलिखित ढंग से निर्धारित किया जाता है।

$$\text{संसद के प्रत्येक सदस्य के मत का मूल्य} = \frac{\text{सभी विधान सभाओं के सदस्यों के मतों का कुल मूल्य}}{\text{संसद के दोनों सदनों के कुल निर्वाचित सदस्य संख्या}}$$

उदाहरण के लिए मान लीजिये कि सभी राज्यों की विधानसभाओं के सदस्यों के मतों का कुल मूल्य 8,44,613 है और संसद के कुल निर्वाचित सदस्य 776 हैं तो संसद के प्रत्येक सदस्य के मत का मूल्य होगा–

$$\frac{844613}{776} = 1088.41 = 1088$$

चुनाव प्रक्रिया के अन्तर्गत सभी उम्मीदवारों के नाम मतपत्र पर दर्ज होते हैं और प्रत्येक मतदाता को उम्मीदवार के नाम के सामने अपनी पसन्द चिन्हित करनी होती है। राज्य विधानसभाओं के सदस्य अपने राज्य की राजधानी में मतदान कर सकते हैं और संसद के सदस्य नई दिल्ली अथवा अपने राज्य की राजधानी में मतदान कर सकते हैं। मतों की गिनती नई दिल्ली में होती है और भारत का चुनाव आयोग चुनाव का प्रबन्ध करता है। सबसे पहले सभी उम्मीदवारों को प्राप्त पहली पसन्द वाले मतों की गिनती की जाती है। विजयी उम्मीदवार को डाले गए कुल वैध मतों के 50% से अधिक प्राप्त होने चाहिए। इस संख्या को 'निर्वाचकीय कोटा' कहा जाता है।

$$\text{निर्वाचकीय कोटा} = \frac{\text{कुल डाले गए वैध मत}}{1 + 1 = (2)} + 1$$

यदि पहली पसन्द की गिनती के बाद कोई उम्मीदवार कोटा प्राप्त नहीं कर पाता तब पहली पसन्द के सबसे कम मत प्राप्त करने वाले उम्मीदवार के दूसरी पसन्द के मतों को अन्य उम्मीदवारों को स्थानान्तरित कर दिया जाता है और उस उम्मीदवार को मुकाबले से हटा दिया जाता है। पसन्द आधारित मतों के इस प्रकार से स्थानान्तरण की प्रक्रिया को तब तक दोहराया जाता है जब तक किसी एक उम्मीदवार को निश्चित कोटा प्राप्त नहीं हो जाता।

21.1.4 कार्यकाल

अनुच्छेद 56 राष्ट्रपति के कार्यकाल की व्याख्या करता है–

(i) राष्ट्रपति अपना पद सम्भालने की तिथि से पांच वर्ष तक अपने पद पर रहेगा।

(ii) कोई व्यक्ति जो राष्ट्रपति पद पर आसीन है अथवा जो इस पद पर पहले रह चुका हो वह संविधान की अन्य शर्तों को पूरा करने के बाद दोबारा चुनाव लड़ सकता है। हमारे प्रथम राष्ट्रपति डा. राजेंद्र प्रसाद दो बार निर्वाचित हुए थ। अन्य कोई राष्ट्रपति दो बार नहीं चुना गया।

21.1.5 राष्ट्रपति को अपदस्थ करना

संविधान का अनुच्छेद 61 राष्ट्रपति को अपदस्थ (महाभियोग) करने की शर्तें निर्धारित करता है। यद्यपि राष्ट्रपति का पद सम्मान और गरिमा का पद है तथापि उसको संविधान का उल्लंघन करने पर पद से हटाया जा सकता है। राष्ट्रपति पर महाभियोग चलाने का प्रस्ताव संसद के दोनों सदनों में से किसी एक सदन में प्रस्तुत किया जा सकता है। प्रस्ताव को सदन के कुल सदस्यो के एक चौथाई का समर्थन प्राप्त होना चाहिए तथा सदन के दो तिहाई सदस्यों के बहुमत से पारित होना चाहिए। एक सदन में पारित होने के बाद यह प्रस्ताव दूसरे सदन में आरोपों की जांच के लिए भेजा जाता है।

राष्ट्रपति पर लगाए गए आरोपों की जांच दूसरा सदन करता है। राष्ट्रपति स्वयं अथवा अपने वकील के माध्यम से अपना बचाव कर सकता है। यदि दूसरा सदन भी प्रस्ताव को दो तिहाई बहुमत से स्वीकार कर लेता है तो महाभियोग की प्रक्रिया सफल मानी जाती है और राष्ट्रपति उस तिथि से अपदस्थ माना जाता है जिस तिथि को दूसरा सदन उस प्रस्ताव को पारित करता है। ऐसा प्रस्ताव दोनों सदनों से पारित होना चाहिए। राष्ट्रपति को अपदस्थ करने की प्रक्रिया को महाभियोग कहते हैं।

21.1.6 राष्ट्रपति पद का रिक्त होना

राष्ट्रपति का पद मृत्यु अथवा त्यागपत्र अथवा महाभियोग के कारण रिक्त हो सकता है। ऐसी स्थिति में भारत का उपराष्ट्रपति स्वत: ही राष्ट्रपति का कार्यभार सम्भाल लेता है। राष्ट्रपति पद के लिए चुनाव 6 महीने के अन्दर करवा लेना चाहिए क्योंकि उपराष्ट्रपति 6 महीने से अधिक कार्यभार नहीं सम्भाल सकता है। राष्ट्रपति अपना त्यागपत्र उपराष्ट्रपति को भेज कर त्यागपत्र दे सकता है। उपराष्ट्रपति राष्ट्रपति के त्यागपत्र की सूचना लोकसभा के अध्यक्ष को देता है।

पाठ्गत प्रश्न 21.1

1. भारत के राष्ट्रपति के निर्वाचन हेतु निर्वाचक मण्डल के संगठन का वर्णन कीजिए।
2. संघीय कार्यपालिका का अध्यक्ष किसको कहा जाता है?
3. भारत के राष्ट्रपति पद के लिए आवश्यक योग्यताओं का उल्लेख कीजिए।
4. भारत के राष्ट्रपति पद के चुनाव हेतु विधानसभा के प्रत्येक सदस्य के 'मत के मूल्य' की गणना किस प्रकार की जाती है?
5. भारत के राष्ट्रपति पद के चुनाव हेतु संसद के प्रत्येक सदस्य के 'मत के मूल्य' की गणना किस प्रकार की जाती है?

6. निर्वाचकीय कोटा से क्या अभिप्राय है और भारत के राष्ट्रपति के चुनाव के लिए इसकी गणना किस प्रकार की जाती है।
7. राष्ट्रपति को अपने पद से अपदस्थ करने की प्रक्रिया का नाम लिखिए।
8. उन परिस्थितियों का उल्लेख कीजिए जिनमें राष्ट्रपति का पद रिक्त हो सकता है।
9. राष्ट्रपति की अनुपस्थिति में उसका कार्यभार कौन सम्भालता है?

21.2 राष्ट्रपति की शक्तियां

जैसा कि आप जानते हैं कि राष्ट्रपति राज्य का अध्यक्ष तथा संघीय कार्यपालिका का भी अध्यक्ष होता हैं। वह देश का प्रथम नागरिक तथा भारत की सेनाओं का मुख्य सेनापति होता है। राष्ट्रपति पद में निहित शक्तियों का वास्तविक प्रयोग उसके नाम पर मंत्रिपरिषद करती है। संविधान का अनुच्छेद 74 कहता है कि राष्ट्रपति को सलाह देने के लिए प्रधानमंत्री के नेतृत्व में एक मंत्रिपरिषद होगी जिसकी सलाह (परामर्श) के अनुसार राष्ट्रपति अपनी शक्तियों का प्रयोग करेगा। 44वें संविधान संशोधन के अनुसार राष्ट्रपति मंत्रिपरिषद को अपने परामर्श पर पुनर्विचार करने के लिए कह सकता है परन्तु पुनर्विचार के बाद दिए गए परामर्श अनुसार कार्रवाई करने को बाध्य है। अत: राष्ट्रपति कार्यपालिका का नाममात्र का अध्यक्ष है जबकि प्रधानमंत्री कार्यपालिका का वास्तविक मुखिया है जो मंत्रीपरिषद का अध्यक्ष होता है। डा. बी. आर. अम्बेडकर ने ठीक ही कहा है कि भारत में राष्ट्रपति की वही स्थिति है जो ब्रिटिश संविधान में राजा या रानी की है। राष्ट्रपति की शक्तियों को निम्नलिखित ढंग से वर्गीकृत किया जा सकता है।

अ) कार्यपालिका सम्बन्धी शक्तियां

अनुच्छेद 53 के अनुसार संघ की कार्यपालिका सम्बन्धी शक्तियां राष्ट्रपति में निहित होंगी जिनका वह प्रत्यक्ष अथवा अपने अधीनस्थ अधिकारियों के माध्यम से संवधान के अनुसार प्रयोग कर सकेगा/सकेगी। राष्ट्रपति प्रधानमंत्री को नियुक्त करता है और उसके परामर्श से अन्य मंत्रियों को नियुक्त करता है। राष्ट्रपति द्वारा की गई यह नियुक्ति अति महत्वपूर्ण है क्योंकि वास्तव में प्रधानमंत्री अपनी मंत्रीपरिषद के साथ राष्ट्रपति की सभी शक्तियों का प्रयोग करता है। राष्ट्रपति सर्वोच्च न्यायालय और उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश तथा अन्य न्यायाधीशों को नियुक्त करता है। इस प्रकार की सभी नियुक्तियों के लिए सर्वोच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश की सलाह ली जाती है। वर्तमान में सर्वोच्च न्यायालय के 1993 के निर्णय के अनुसार, जिसकी 1999 में पुनर्व्याख्या की गई राष्ट्रपति सर्वोच्च न्यायालय के वरिष्ठतम न्यायाधीशों के पेनल की सिफारिशें मानने को बाध्य है। वरिष्ठ सदस्यों के इस पेनल को सर्वोच्च न्यायालय को 'कोलेजियम' कहते हैं। राष्ट्रपति महान्यायवादी (एटार्नी जनरल), नियन्त्रक एवं महालेखा परीक्षक (कैग), मुख्य चुनाव आयुक्त, संघ लोक सेवा आयोग के चेयरमैन तथा अन्य सदस्यों, संघीय क्षेत्रों के उप-राज्यपालों, दूसरे देशों में भारत के राजदूतों तथा उच्चायोगों को नियुक्त करता है। वह थल, जल और वायु सेना के अध्यक्षों की नियुक्ति करता है। अत: राष्ट्रपति के पास अधिकांश महत्वपूर्ण नियुक्तियां करने की शक्ति है। सभी कूटनीतिक कार्य, अन्तर्राष्ट्रीय संन्धियां और समझौते उसके नाम से किए जाते हैं।

ब) विधायी शक्तियां

राष्ट्रपति संसद का अभिन्न अंग है और उसे अनेक विधायी शक्तियां प्राप्त हैं। राष्ट्रपति एक वर्ष में कम से कम दो बार संसद का अधिवेशन बुला सकता है और ऐसे दो अधिवेशनों के बीच 6 महीने से अधिक का अन्तराल नहीं होना चाहिए। राष्ट्रपति प्रत्येक साधारण चुनावों के बाद दोनों सदनों के पहले संयुक्त अधिवेशन को सम्बोधित करता है तथा प्रत्येक वर्ष के पहले अधिवेशन को भी सम्बोधित करता है। राष्ट्रपति प्रधानमंत्री की सलाह पर लोकसभा को भंग कर सकता है। राष्ट्रपति के पास राज्यसभा में 12 सदस्यों और लोकसभा में दो एंग्लो इंन्डियन सदस्यों को मनोनीत करने की शक्ति है।

ससंद द्वारा पारित प्रत्येक विधेयक को कानून बनाने के लिए राष्ट्रपति के पास उसकी स्वीकृति के लिए भेजा जाता है। उसकी स्वीकृति के बिना कोई विधेयक कानून नहीं बन सकता। जब संसद का अधिवेशन नहीं चल रहा हो तो राष्ट्रपति अध्यादेश जारी कर सकता है। यह अध्यादेश कानून की शक्ति रखता है और इसको संसद के दोनों सदनों द्वारा अधिवेशन शुरु होने के 6 सप्ताह के अन्दर स्वीकार करना होता है अन्यथा यह अपने आप ही समाप्त हो जाता है।

स) वित्तीय शक्तियां

भारत का राष्ट्रपति भारत की आकस्मिक निधि का संरक्षक होता है। यह निधि संघीय सरकार द्वारा किसी अप्रत्याशित खर्चे के लिए रखी जाती है। राष्ट्रपति का इस निधि पर पूरा अधिकार होता है। सभी धन विधेयक राष्ट्रपति की पूर्व स्वीकृति से लोकसभा में प्रस्तावित किए जाते हैं। वार्षिक बजट और रेलवे बजट राष्ट्रपति की सिफारिश पर प्रस्तुत किए जाते हैं। राष्ट्रपति प्रत्येक पांच वर्ष बाद एक वित्त आयोग को नियुक्त करता है। भारत के *महालेखा परीक्षक और नियंत्रक* की रिपोर्ट आवश्यक कार्यवाही हेतु राष्ट्रपति के समक्ष प्रस्तुत की जाती है।

द) न्यायिक शक्तियां

राष्ट्रपति सर्वोच्च न्यायालय और उच्च न्यायालयों के मुख्य न्यायाधीश एवं अन्य न्यायाधीशों को नियुक्त करता है। राष्ट्रपति को कुछ विशेषाधिकार तथा स्वतंत्रताएं प्राप्त हैं। वह राष्ट्रपति के रूप में अपने कार्यों के लिए किसी भी अदालत के समक्ष जवाबदेह नहीं है। उसके कार्यकाल के दौरान उस पर किसी प्रकार का आपराधिक मुकदमा नहीं चलाया जा सकता। उसको न तो गिरफ्तार किया जा सकता है और न ही किसी अदालत में उपस्थित होने के लिए कहा जा सकता है। किसी दीवानी मुकदमे के लिए भी दो महीने की पूर्व सूचना आवश्यक है।

राष्ट्रपति सर्वोच्च न्यायालय अथवा उच्च न्यायालय द्वारा दण्डित किसी अपराधी को माफ कर सकता है या उसकी सजा/दण्ड को कम अथवा स्थगित कर सकता है। वह कोर्ट मार्शल द्वारा दण्डित व्यक्ति को भी माफ कर सकता है। उसकी माफ करने की शक्ति में मृत्युदण्ड माफ करना भी शामिल है।, लेकिन राष्ट्रपति इस शक्ति का प्रयोग गृह मंत्रालय की सलाह पर करता है।

ई) आपातकालीन शक्तियां

भारत के संविधान में कुछ आपातकालीन प्रावधान हैं जो राष्ट्रपति को उस स्थिति में आपातकाल घोषित करने की शक्ति देते हैं जब कोई असामान्य स्थिति पैदा हो जाए जिसमें संविधान का

सामान्य कार्य कर पाना सम्भव न हो। संविधान के अनुच्छे 352, 356 और 360 में ऐसी असामान्य और अभूतपूर्व स्थितियों से निपटने के प्रावधान हैं जिन्हें आपातकालीन शक्तियां कहते हैं। संविधान निर्माताओं ने तीन प्रकार की अभूतपूर्व स्थितियों की कल्पना की है; पहली जब युद्ध अथवा बाहरी आक्रमण से देश की सुरक्षा को खतरा हो। दूसरे जब किसी राज्य में संवैधानिक ढांचा टूटने के कारण राज्य सरकार के लिए संविधान के अनुसार काम करना कठिन अथवा सम्भव न हो। तीसरे जब देश के वित्तीय स्थायित्व को खतरा हो। आइये हम इन प्रावधानों और राष्ट्रपति की शक्तियों की भिन्न-भिन्न शीर्षकों के अन्तर्गत चर्चा करें।

1. राष्ट्रीय आपातकाल की घोषणा (अनुच्छेद 352)

यदि संघीय मंत्रीमण्डल, जिसमें प्रधानमंत्री और केबिनेट स्तर के मंत्री लिखित रूप में राष्ट्रपति को इस प्रकार की घोषणा करने के लिए सिफारिश करें तो अनुच्छेद 352 के अन्तर्गत राष्ट्रपति आपातकाल घोषित कर सकता है। राष्ट्रपति केवल केबिनेट की लिखित सिफारिश पर ही आपातकाल घोषित कर सकता है जिसे युद्ध, बाहरी आक्रमण अथवा आन्तरिक सशस्त्र विद्रोह के कारण सुरक्षा को खतरे के आधार पर किया जाता है। राष्ट्रीय आपातकाल की घोषणा को एक महीने के भीतर संसद की स्वीकृति के लिए संसद के समक्ष रखा जाता है। ऐसी घोषणा संसद द्वारा 6 महीने बाद स्वत: ही प्रभावहीन हो जाएगी यदि इसे 6 महीने का समय पूरा होने से पहले दोबारा स्वीकार नहीं कर लिया जाता। ऐसी घोषणा का सदन की कुल संख्या के बहुमत तथा उपस्थित एवं मतदान करने वाले सदस्यों के दो तिहाई बहुमत से पारित होना अनिवार्य है। इस प्रकार की घोषणा हमारे देश में तीन बार की गई है। पहली बार यह घोषणा 26 अक्तूबर 1962 को की गई थी जब चीन ने हमारी सीमाओं पर आक्रमण किया था। दूसरी बार यह घोषणा 3 दिसम्बर 1971 को की गई थी जब पाकिस्तान ने आक्रमण किया था और तीसरी बार 25 जून 1975 को आन्तरिक गड़बड़ी के आधार पर की गई। इस प्रकार के आपातकाल की घोषणा से व्यक्ति के अधिकार और राज्यों की स्वायतता प्रभावित होती है। देश का संघीय ढांचा एकात्मक हो जाता है और संघीय सरकार की शक्ति बढ़ जाती है और यह ऐसे विषयों पर कानून बना सकती है जो राज्य सूची में दर्ज हैं। राष्ट्रपति राज्यों को आवश्यक निर्देश भी जारी कर सकता है।

आपातकाल की अवधि के दौरान भारत का राष्ट्रपति केंद्र और राज्यों के बीच राजस्व का बंटवारा करने वाले प्रावधानों में परिवर्तन कर सकता है। युद्ध अथवा बाहरी आक्रमण के आधार पर घोषित आपातकाल के कारण अनुच्छेद 19 के अन्तर्गत स्वतंत्रताएं स्थागित हो जाती हैं और संसद अपना कार्यकाल एक वर्ष के लिए बढ़ा सकती है। अत: इससे स्पष्ट होता है कि आपातकाल की घोषणा से विभिन्न प्रभाव होते हैं और केन्द्र की शक्तियां बढ़ जाती हैं।

2. राज्य में राष्ट्रपति शासन (अनुच्छेद 356)

अनुच्छेद 356 के अन्तर्गत भारत का राष्ट्रपति किसी राज्य के राज्यपाल से यह रिपोर्ट प्राप्त करता है कि उस विशेष राज्य में ऐसी स्थिति उत्पन्न हो गई है कि वहां संविधान के अनुसार कार्य नहीं किया जा सकता, अथवा संवैधानिक मशीनरी असफल हो गई है– तब राष्ट्रपति आपातकाल

लागू कर सकता है। इसको राज्य में राष्ट्रपति शासन लागू करना भी कहते हैं। इस प्रकार के आपातकाल को संसद के दोनों सदनों द्वारा 2 महीने के अन्दर स्वीकार करना होता है अन्यथा यह स्वत: निष्प्रभावी हो जाएगा। यह छ: महीने तक वैध रहता है और इसको संसद की पुनर्समीक्षा पर प्राप्त स्वीकृति के आधार पर पुन: 6 मास के लिए बढ़ाया जा सकता है। इस प्रकार के आपातकाल में राष्ट्रपति राज्य सरकार के सभी कार्यों को अपने ऊपर ले सकता है अथवा कुछ या सारे कार्य राज्यपाल को या किसी अन्य अधिकारी को करने के लिए कह सकता है। राष्ट्रपति राज्य विधानसभा को स्थगित अथवा भंग कर सकता है। वह संसद को उस राज्य विशेष के लिए कानून बनाने के लिए भी कह सकता है।

3. वित्तीय आपातकाल (अनुच्छेद 360)

यदि राष्ट्रपति इस बात से सन्तुष्ट हो कि देश के वित्तीय स्थायित्व अथवा इसके किसी भाग को खतरा है तीसरे प्रकार के आपातकाल की घोषणा अनुच्छेद 360 के अन्तर्गत राष्ट्रपति द्वारा की जा सकती है। इस प्रकार के आपातकाल की घोषणा को दो महीनों के अन्दर संसद के दोनों सदनों की स्वीकृति की जरूरत होती है।

इस आपातकाल के अन्तर्गत राष्ट्रपति राज्यों को अपने कर्मचारियों के वेतन और भत्ते कम करने के लिए कह सकता है तथा राज्य के सभी धन विधेयकों को संसद के विचारार्थ रोक सकता है तथा सर्वोच्च न्यायालय और उच्च न्यायालयों के न्यायाधीशों के वेतन और भत्ते कम करने के निर्देश दे सकता है। राष्ट्रपति, भारत के संवधिान के अन्तर्गत ऐसी अधिसूचना केवल मंत्रिपरिषद के लिखित अनुरोध पर ही जारी कर सकता है। जिस प्रकार राष्ट्रपति संघीय कार्यपालिका का अध्यक्ष है, उसी प्रकार राज्यपाल राज्य कार्यपालिका का अध्यक्ष होता है। राज्य सरकार में राज्यपाल की स्थिति बिल्कुल वही है जैसे केंद्रीय सरकार में राष्ट्रपपति की है। राज्यपाल राज्य की कार्यपालिका का अध्यक्ष होता है। राज्य विधानसभा द्वारा पारित सारे विधेयक राज्यपाल की स्वीकृति प्राप्त होने के बाद ही कानून बनते हैं।

पाठ्गत प्रश्न 21.2

1. भारत के राष्ट्रपति की तीन कार्यपालिका सम्बन्धी शक्तियों का उल्लेख कीजिए।
2. भारत के राष्ट्रपति की तीन विधायी शक्तियां लिखिए।
3. सर्वोच्च न्यायालय के कोलिजियम का क्या अर्थ है?
4. **रिक्त स्थान भरिये:**
   (i) राष्ट्रीय आपातकाल की घोषणा अनुच्छेद .... के अन्तर्गत की जाती है।
   (ii) किसी भी राज्य में अनुच्छेद .... के अन्तर्गत राष्ट्रपति शासन लगाया जा सकता है।
   (iii) वित्तीय आपातकाल की घोषणा .... द्वारा अनुच्छेद .... के अन्तर्गत की जाती है।

(iv) भारत के राष्ट्रपति का त्यागपत्र........... को सम्बोधित होना चाहिए।

(v) राष्ट्रपति का पद रिक्त होने पर................. स्वतः ही कार्यभार सम्भाल लेता है।

21.3 उप-राष्ट्रपति

भारत के संविधान में उपराष्ट्रपति पद का प्रावधान है। उपराष्ट्रपति को लोकसभा और राज्यसभा के सदस्य गुप्त मतदान द्वारा अनुपातिक प्रतिनिधित्व के माध्यम से एकल संक्रमणीय मत द्वारा निर्वाचित करते हैं। उपराष्ट्रपति पद के लिए कुछ योग्यताएं निर्धारित की गई हैं। भारत का नागरिक जिसकी आयु 35 वर्ष हो चुकी हो, वह इस पद का उम्मीदवार बन सकता है बशर्ते उसके पास कोई लाभ का पद नहीं होना चाहिए।

उपराष्ट्रपति पांच वर्ष के लिए अपने पद पर बना रहता है। वह अपने पद से त्यागपत्र दे सकता है और अपना कार्यकाल पूरा होने से पहले अपना पद छोड़ सकता है तथा उसे पांच वर्ष पूरा होने से पहले भी अपने पद से हटाया जा सकता है, यदि इस आशय का प्रस्ताव लोकसभा और राज्यसभा के सदस्यों के बहुमत से पारित किया गया हो।

21.3.1 उपराष्ट्रपति के कार्य और शक्तियां

उपराष्ट्रपति राज्यसभा का पदेन अध्यक्ष (सभापति) होता है और सभापति होने के नाते उसके कार्य लोकसभा के अध्यक्ष जैसे ही हैं। वह सदन में व्यवस्था बनाए रखता है, सदस्यों को बोलने व प्रश्न पूछने के लिए समय देता है। अनिर्णय की स्थिति में वह निर्णय पर पहुंचने के लिए मतदान भी कर सकता है।

राष्ट्रपति का पद रिक्त होने की स्थिति में उपराष्ट्रपति स्वतः राष्ट्रपति के रूप में कार्य करने लगता है परन्तु यह अवधि 6 मास से अधिक नहीं हो सकती। इस अवधि में उसे राष्ट्रपति के सारे अधिकार व शक्तियां प्राप्त होती हैं। यदि किसी अन्य अस्थायी कारणवश राष्ट्रपति अपने कर्त्तव्य का निर्वहण नहीं कर सकता तो दायित्व सौंपे जाने पर वह राष्ट्रपति के सारे कार्य करता है।

क्रियाकलाप 21.1

कालक्रमानुसार भारत से सभी उप-राष्ट्रपतियों की एक सूची बनाईये।

पाठ्गत प्रश्न 21.3

1. उपराष्ट्रपति को अपने पद से कैसे हटाया जा सकता है?
2. उपराष्ट्रपति पद का कार्यकाल कितना है?
3. उपराष्ट्रपति के किन्हीं दो कार्यों का वर्णन कीजिए।

21.4 प्रधानमंत्री और उसकी मंत्री-परिषद

जैसा कि पहले चर्चा की गई है कि कार्यपालिका के अस्थायी और राजनीतिक भाग में प्रधानमंत्री और उसकी मंत्रीपरिषद होती है। राष्ट्रपति की कार्यपालिका सम्बन्धी शक्तियों का वास्तविक प्रयोग प्रधानमंत्री के नेतृत्व में मंत्री परिषद ही करती है। राष्ट्रपति राज्य का संवैधानिक अध्यक्ष तथा सरकार का नाममात्र का अध्यक्ष होता है लेकिन प्रधानमंत्री और उसकी मंत्रीपरिषद सरकार की वास्तविक मुखिया होती है। संविधान के अनुसार भारत के प्रधानमंत्री को राष्ट्रपति नियुक्त करता है परन्तु ऐसे नियुक्त व्यक्ति को लोकसभा के बहुमत का समर्थन प्राप्त होना चाहिए।

21.4.1 प्रधानमंत्री की नियुक्ति

साधारण चुनावों के बाद यदि किसी एक पार्टी को स्पष्ट बहुमत प्राप्त हो जाता है (निर्वाचित सदस्यों के आधे से अधिक) तब राष्ट्रपति उस पार्टी के नेता को सरकार बनाने के लिए आमंत्रित करता है और उसको प्रधानमंत्री नियुक्त करता है। यदि ऐसी पार्टी का नेता संसद का सदस्य न हो तो उसको संसद/लोकसभा अथवा राज्यसभा का छः महीने के अन्दर निर्वाचित सदस्य बनना होता है। ऐसा सम्भव है कि किसी भी पार्टी को बहुमत प्राप्त न हो तो उस स्थिति में राष्ट्रपति ऐसे व्यक्ति को आमंत्रित करता है जिसे लोकसभा के सदस्यों के बहुमत को जीतने की योग्यता तथासम्भावना होती है। एक बार नियुक्त किए जाने के बाद प्रधानमंत्री तब तक अपने पद पर रहता है जब तक उसे लोकसभा के सदस्यों के बहुमत का समर्थन प्राप्त रहता है। प्रायः प्रधानमंत्री लोकसभा का निर्वाचित सदस्य तथा लोकसभा में बहुमत प्राप्त पार्टी का नेता होता है, लेकिन ऐसा अनिवार्य नहीं है। प्रधानमंत्री; लोकसभा का सदस्य न होते हुए भी पद पर रह सकता है। श्रीमती इन्दिरा गांधी 1966 में जब प्रधानमंत्री नियुक्त हुई थीं तब वह लोकसभा की सदस्य नहीं थी। 1997 में इन्द्र कुमार गुजराल भी लोकसभा के नहीं अपितु राज्यसभा के सदस्य थे। हमारे वर्तमान प्रधानमंत्री डा. मनमोहन सिंह भी राज्यसभा के सदस्य हैं अतः यह बिल्कुल स्पष्ट है कि प्रधानमंत्री किसी भी सदन का निर्वाचित सदस्य होना चाहिए।

मंत्रिपरिषद के सदस्यों को राष्ट्रपति प्रधानमंत्री की सलाह पर नियुक्त करता है। प्रधानमंत्री अपनी मंत्रिपरिषद में किसी को भी चुनने एवं रखने के लिए स्वतंत्र है। वह अपने मंत्रियों को विभाग बांटता है और जब चाहे उनके विभाग को बदल भी सकता है। यदि किसी ऐसे व्यक्ति को मंत्री नियुक्त किया जाता है जो संसद का सदस्य नहीं है तो उसे अपनी नियुक्ति के 6 मास के अन्दर संसद के किसी एक सदन का सदस्य निर्वाचित होना पड़ता है।

आजकल मंत्रियों की तीन श्रेणियां हैं– केबिनेट मंत्री, राज्य मंत्री (स्वतंत्र प्रभार) और राज्य मंत्री। केबिनेट मंत्री प्रायः अधिक महत्वपूर्ण होते हैं और केबिनेट की बैठकों में उपस्थित रहते हैं। राज्य मंत्री केबिनेट मंत्री के बाद आते हैं और प्रायः केबिनेट मंत्री की सहायता करते हैं। कुछ राज्य मंत्रियों के पास स्वतंत्र प्रभार होता है और उनका कोई केबिनेट मंत्री नहीं होता। सभी मंत्री सामूहिक रूप से और व्यक्तिगत रूप से लोकसभा के प्रति उत्तरदायी एवं जवाबदेह हैं।

21.4.2 प्रधानमंत्री के कार्य और शक्तियां

भारत का प्रधानमंत्री कार्यपालिका और सरकार का वास्तविक अध्यक्ष होता है। उसकी स्थिति बहुत महतवपूर्ण है और वह भारत के राष्ट्रपति का मुख्य सलाहकार होता है। प्रधानमंत्री

मंत्रीपरिषद का गठन करता है और प्रत्येक मंत्री तब तक अपने पद पर बना रहता है जब तक उसे प्रधानमंत्री का विश्वास प्राप्त होता है। प्रधानमंत्री मंत्रिपरिषद का मुखिया होता है और किसी भी मंत्री का विभाग बदल सकता है अथवा जब चाहे किसी भी मंत्री को अपने पद से हटाने की सिफारिश भी कर सकता है।

प्रधानमंत्री केबिनेट तथा मंत्री परिषद की मीटिंग की अध्यक्षता करता है और उसका संचालन करता है वह सरकार का मुख्य प्रवक्ता होता है। वह सरकार की नीतियों के लिए उत्तरदायी है। वह विदेश नीति का मुख्य निर्माता होता है तथा सभी अन्तर्राष्ट्रीय समझौते और सन्धियां प्रधानमंत्री की सहमति से होती हैं। प्रधानमंत्री, राष्ट्रपति और केबिनेट के बीच की कड़ी होता है। वह राष्ट्रपति को केबिनेट/सरकार की नीतियों से सम्बन्धित निर्णयों तथा अन्तर्राष्ट्रीय मंचों पर हुई बातचीत से सूचित रखता है। वह सत्ताधारी पार्टी का नेता होता है।

21.4.3 मंत्रीपरिषद और केबिनेट

मंत्रिपरिषद में सभी श्रेणी के मंत्री होते हैं परन्तु केबिनेट में केवल केबिनेट मंत्री ही होते हैं। विभिन्न प्रकार के निर्णय लेने के लिए केबिनेट के बैठकें नियमित होती हैं परन्तु मंत्रिपरिषद की बैठक कदाचित ही होती हैं। प्राय: सरकार की नीतियां और कार्यक्रम केबिनेट में ही तय होते हैं न कि मंत्री परिषद में। एक संविधान संशोधन द्वारा मंत्रियों की अधिकतम संख्या पर सीमा लगा दी गई है और यह लोकसभा की कुल सदस्य संख्या के 15% से अधिक नहीं हो सकती।

21.4.4 केबिनेट और मंत्री परिषद के कार्य और शक्तियां

राष्ट्रपति की कार्यपालिका सम्बन्धी सभी शक्तियों का प्रयोग प्रधानमंत्री के नेतृत्व में केबिनेट अथवा मंत्रिपरिषद द्वारा किया जाता है। यह सभी आन्तरिक और बाह्य नीतियां तैयार करती है। केबिनेट/मंत्रीपरिषद संसद के अधिवेशन के लिए विषय (एजेन्डा) तैयार करती है। यह राष्ट्रपति के अभिभाषण का मसौदा भी तैयार करती है। जब संसद का अधिवेशन नहीं चल रहा होता तो यह अध्यादेश जारी करने के लिए उत्तरदायी होती है। संसद के अधिवेशन भी केबिनेट/मंत्रीपरिषद की सलाह पर बुलाए जाते हैं।

पाठ्गत प्रश्न 21.4

अ) रिक्त स्थान भरिये।

1. प्रधानमंत्री सरकार का .... मुखिया होता है।
2. प्रधानमंत्री .... और .... के बीच कड़ी होता है।
3. राष्ट्रपति मंत्रियों को .... की .... पर नियुक्त करता है

ब) निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर दीजिए।

1. मंत्रीपरिषद का अध्यक्ष कौन होता है?

2. मंत्रियों की किन्हीं दो श्रेणियों को उल्लेख कीजिए।

21.5. राज्यों में कार्यपालिका

21.5.1 राज्यपाल

भारत के संविधान के अनुसार राष्ट्रपति प्रत्येक राज्य के लिए एक राज्यपाल नियुक्त करता है। दो या अधिक राज्यों का एक ही राज्यपाल हो सकता है। आईये हम राज्य कार्यपालिका के अध्यक्ष के रूप में राज्यपाल की योग्यताओं, शक्तियों, कार्यों और स्थिति का अध्ययन करें।

अ) नियुक्ति के लिए योग्यताएं

किसी राज्य के राज्यपाल की नियुक्ति राष्ट्रपति करता है। राज्यपाल नियुक्त होने के लिए अनुच्छेद 157-158 के अनुसार निम्नलिखित योग्यताएं होनी चाहिए।

(i) वह भारत का नागरिक होना चाहिए।

(ii) वह 35 वर्ष की आयु पूरी कर चुका हो/चुकी हो।

(iii) उसके पास लाभ का कोई पद नहीं होना चाहिए।

ब) राज्यपाल का कार्यकाल (अनुच्छेद 156 के अनुसार)

(i) राज्यपाल राष्ट्रपति के प्रसाद पर्यन्त अर्थात जब तक राष्ट्रपति की इच्छा हो, अपने पद पर बना रहता है।

(ii) राज्यपाल अपने पद से त्यागपत्र दे सकता हे अन्यथा वह अपना पद ग्रहण करने की तिथि से लेकर पांच वर्ष तक अपने पद पर रह सकता है।

21.5.2 राज्यपाल की शक्त्यिां

राज्यपाल की कार्यपालिका, विधायी, वित्तीय और कुछ अन्य महत्वपूर्ण विविध शक्तियां होती हैं।

(i) कार्यपालिका सम्बन्धी शक्तियां

राज्यपाल राज्य कार्यपालिका का अध्यक्ष होता है। राज्य में कार्यपालिका सम्बन्धी सभी कार्य राज्यपाल के नाम से होते हैं। वह अनेक महत्वपूर्ण नियुक्तियां करता है। वह मुख्यमंत्री को नियुक्त करता है और उसकी सिफारिश पर अन्य मंत्रियों को नियुक्त करता है। राज्य के महान्यायवादी (एटार्नी जनरल) तथा राज्य लोक सेवा संघ के अध्यक्ष एवं अन्य सदस्यों को राज्यपाल नियुक्त करता है। राज्यपाल ये सारे कार्य मुख्यमंत्री के नेतृत्व में मंत्रिपरिषद की सहायता और सलाह से करता है।

(ii) विधायी शक्तियां

राज्यपाल राज्य विधायिका का अभिन्न अंग होता हे। वह राज्य विधायिका का अधिवेशन बुला सकता है और स्थगित भी कर सकता है। वह राज्य विधानसभा के अधिवेशन को संबोधित कर सकता है अथवा दोनों सदनों के संयुक्त अधिवेशन को भी संबोधित कर सकता है– (यदि किसी राज्य में दो सदन हों)। यदि किसी राज्य में विधान परिषद हो तो राज्यपाल उसकी कुल सदस्य संख्या के 1/6 सदस्यों को मनोनीत कर सकता है।

विधानसभा द्वारा पारित कोई भी विधेयक राज्यपाल की स्वीकृति के बाद कानून बन जाता है। जब विधानसभा का अधिवेशन न चल रहा हो तो उसे अध्यादेश जारी करने की शक्ति प्राप्त है। ये अध्यादेश कानून की शक्ति रखते हैं।

(iii) वित्तीय शक्तियां

(I) कोई भी धन विधेयक राज्यपाल की पूर्व अनुमति के बिना विधानसभा में प्रस्तुत नहीं किया जा सकता।

(II) वार्षिक बजट अथवा अनुपूरक बजट राज्यपाल के नाम पर प्रस्तुत किया जाता है।

(III) राज्यपाल का राज्य की आकस्मिक निधि पर पूरा नियंत्रण होता है।

(iv) विविध शक्तियां

(अ) राज्यपाल के पास किसी को भी माफ करने, राहत देने, सजा माफ करने अथवा स्थगित करने, माफ करने अथवा रूपान्तरित करने की शक्ति वहां तक है जहां तक राज्य की कार्यपालिका शक्तियों का विस्तार है।

(ब) राज्यपाल, राज्य के अध्यक्ष तथा केंद्रीय सरकार के प्रतिनिधि के रूप में कार्य करता है और उसे कुछ विवकाधीन शक्तियां प्राप्त हैं–

- (क) यदि किसी समय राज्यपाल को ऐसा अनुभव हो कि राज्य सरकार भारत के संविधान के अनुसार कार्य नहीं कर रही है अथवा उसके अनुसार कार्य करने में सक्षम नहीं है तो वह भारत के राष्ट्रपति को राज्य में राष्ट्रपति शासन लागू करने की भी सिफारिश कर सकता है।
- (ख) यदि किसी भी पार्टी को बहुमत प्राप्त नहीं हो तो राज्यपाल अपने विवेक से किसी को मुख्यमंत्री नियुक्त कर सकता है।
- (ग) कुछ विशेष परिस्थितियों में राज्यपाल किसी भी विधेयक को राष्ट्रपति के विचारार्थ रोक सकता है।

21.5.3 मुख्यमंत्री

प्रत्येक राज्य में राज्यपाल को सहायता एवं परामर्श देने के लिए एक मंत्री परिषद होती है। राज्य में मुख्यमंत्री राज्य का वास्तविक अध्यक्ष (मुखिया) होता है। राज्य स्तर पर मुख्यमंत्री के नेतृत्व में मंत्रिपरिषद वास्तविक सत्ता होती है।

मुख्यमंत्री को राज्यपाल नियुक्त करता है। राज्य विधानसभा में जिस व्यक्ति को बहुमत का समर्थन प्राप्त हो, राज्यपाल उसको मुख्यमंत्री नियुक्त करता है। अन्य मंत्रियों को राज्यपाल मुख्यमंत्री की सलाह पर नियुक्त करता है। मंत्रिपरिषद में सम्मिलित मंत्रियों को किसी एक सदन का सदस्य अवश्य होना चाहिए। यदि कोई व्यक्ति किसी भी सदन का सदस्य नहीं है और उसे मंत्री नियुक्त कर दिया जाता है तो वह अपने पद पर तभी रह सकता जब वह अपनी नियुक्ति के 6 मास के अन्दर किसी एक सदन के लिए निर्वाचित कर लिया जाता है। मंत्रिपरिषद के सदस्यों को राज्यपाल द्वारा मुख्यमंत्री की सलाह पर विभाग दिए जाते हैं।

21.5.4 मुख्यमंत्री के कार्य और शक्तियां

मुख्यमंत्री अपने राज्य की मंत्रिपरिषद का अध्यक्ष होता है। मुख्यमंत्री की स्थिति न्यूनाधिक प्रधानमंत्री की स्थिति की तरह ही होती है। मुख्यमंत्री राज्य के प्रशासन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। हम उसके कार्यों और शक्तियों पर निम्नलिखित प्रकार से चर्चा कर सकते हैं।

1. मुख्यमंत्री राज्य सरकार का वास्तविक मुखिया होता है। मंत्री, मुख्यमंत्री की सलाह पर राज्यपाल द्वारा नियुक्त किए जाते हैं। मंत्रियों को राज्यपाल द्वारा मुख्यमंत्री की सलाह पर विभाग वितरित किए जाते हैं।
2. मुख्यमंत्री मंत्री परिषद की बैठकों की अध्यक्षता करता है। वह विभिन्न मंत्रालयों के बीच तालमेल का काम करता है। वह केबिनेट/मंत्री परिषद की कार्यप्रणाली को मार्ग दर्शन देता है/देती है।
3. मुख्यमंत्री, राज्य सरकार की नीतियों और कानून निर्माण में केंद्रीय भूमिका निभाता है। मंत्री; उसकी स्वीकृति से ही विधेयक प्रस्तुत करते हैं। वह विधानसभा के अन्दर और बाहर अपनी सरकार की नीतियों का मुख्य प्रवक्ता होता/होती है।
4. संविधान में प्रावधान है कि मुख्यमंत्री मंत्री परिषद के प्रशासन सम्बन्धी निर्णयों, राज्य के कार्यों तथा प्रस्तावित विधेयकों की पूरी जानकारी राज्यपाल को देता है।
5. यदि राज्यपाल चाहे तो मुख्यमंत्री किसी मंत्री द्वारा लिए गए निर्णय को मंत्री परिषद के विचारार्थ प्रस्तुत कर सकता है, जिस पर केबिनेट ने कोई निर्णय न लिया हो।
6. मुख्यमंत्री, राज्यपाल और मंत्री परिषद के बीच एकमात्र कड़ी है। उसके पास केबिनेट अथवा मंत्री परिषद द्वारा लिए गए निर्णयों को राज्यपाल को सूचित किए जाने का अधिकार है।

अत: यह स्पष्ट है कि वास्तविक अधिकार मुख्यमंत्री के नेतृत्व में मंत्रिपरिषद में निहित है। राज्य की वास्तविक कार्यपालिका मुख्यमंत्री के नेतृत्व में मंत्रिपरिषद ही है।

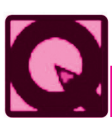

पाठ्गत प्रश्न 21.5

रिक्त स्थन भरिये।

1. किसी राज्य के राज्यपाल को .... नियुक्त करता है।
2. राज्यपाल अपनी नियुक्ति की तिथि से .... वर्ष की अवधि तक अपने पद पर रहता है।

3. राज्यपाल को उसका कार्यकाल .... होने से पहले .... द्वारा पद से हटाया जा सकता है।
4. मुख्यमंत्री राज्य सरकार का .... मुखिया होता है।
5. मुख्यमंत्री को .... द्वारा नियुक्त किया जाता है।

आपने क्या सीखा

केंद्रीय सरकार के तीन अंग होते हैं- विधायिका, कार्यपालिका और न्यायपालिका। कार्यपालिका दो भागों में बंटी होती है। अस्थायी कार्यपालिका में राष्ट्रपति और मंत्रिपरिषद होती है तथा स्थायी कार्यपालिका में सरकारी अधिकारी और कर्मचारी आते हैं। भारत का राष्ट्रपति कार्यपालिका का मुखिया तथा राज्य का अध्यक्ष होता है। राष्ट्रपति की कार्यपालिका सम्बन्धी सभी शक्तियों का प्रयोग प्रधानमंत्री के नेतृत्व में मंत्रिपरिषद ही करती है। राष्ट्रपति का चुनाव एक निर्वाचक मंडल द्वारा किया जाता है जिसमें संसद के सभी निर्वाचित सदस्य, सभी राज्यों की विधानसभाओं तथा संघीय क्षेत्र दिल्ली और पांद्दुचेरी की विधानसभाओं के निर्वाचित सदस्य शामिल होते हैं। राष्ट्रपति का चुनाव गुप्त मतपत्रों द्वारा अनुपातिक प्रतिनिधित्व के आधार पर एकल संक्रमणीय मत प्रणाली द्वारा किया जाता है। राष्ट्रपति का कार्यकाल 5 वर्ष होता है। भारत के राष्ट्रपति का महाभियोग द्वारा अपने पद से अपदस्थ किया जा सकता है। राष्ट्रपति के पास विधायी, कार्यपालका और न्यायिक शक्तियां होती हैं। वह अधिकांश महत्वपूर्ण नियुक्तियां करता है जैसे संघ लोक सेवा आयोग के सदस्यों एवं अध्यक्ष, भारत के महान्यायवादी, महालेखाकार एवं नियंत्रक, मुख्य चुनाव अधिकारी एवं अन्य अधिकारी। वह संसद का अभिन्न अंग है और संसद का अधिवेशन बुला सकता है और स्थगित कर सकता है।

वह प्रतिवर्ष संसद के दोनों सदनों के प्रथम संयुक्त अधिवेशन को सम्बोधित करता है। राष्ट्रपति भारत की आकस्मिक निधि का संरक्षक होता हे। वह अपनी शक्तियों के प्रयोग के लिए किसी भी न्यायालय में जवाबदेह नहीं है। राष्ट्रपति किसी अपराधी को माफ कर सकता है और किसी दोषी पाए गए व्यक्ति की सजा कम कर सकता है। भारत के राष्ट्रपति के पास विस्तृत आपतकालीन शक्तिया भी हैं।

भारत का संविधान उप राष्ट्रपति पद का प्रावधान करता है। उपराष्ट्रपति राज्यसभा का पदेन अध्यक्ष होता है और सदन की व्यवस्था के सुचारू रूप से संचालन के लिए उत्तरदायी होता है। राष्ट्रपति का पद रिक्त होने की अवस्था में वह राष्ट्रपति के रूप में तब तक कार्य करता है जबतक कि राष्ट्रपति का चुनव नहीं हो जाता; जो कि पद रिक्त होने के 6 मास के भीतर कर लिया जाता है।

प्रधानमंत्री और मंत्रिपरिषद राष्ट्रपति की कार्यपालिका सम्बन्धी शक्तियों का प्रयोग करते हैं। प्रधानमंत्री राष्ट्रपति का मुख्य सलाहकार होता है। वह राष्ट्रपति और संसद के बीच कड़ी होता है। भारत का प्रधानमंत्री कार्यपालिका और सरकार का वास्तविक मुखिया होता है। उसकी नियुक्ति राष्ट्रपति करता है और वह बहुमत प्राप्त दल अथवा गठबन्धन का नेता होता हे। वह सरकार का मुख्य प्रवक्ता तथा सरकार की नीतियों और कार्यक्रमों का मुख्य निर्माता होता है।

प्रधानमंत्री मंत्रियों को नियुक्त कर सकता है, उनके विभाग बदल सकता है और मंत्री भी बदल सकता है। प्रधानमंत्री राष्ट्रपति को मंत्री परिषद के सभी निर्णयों तथा सरकार और राज्य में होने वाली घटनाओं से सूचित रखता है।

मंत्रिपरिषद में तीन श्रेणियों के मंत्री होते हैं- केबिनेट मंत्री, राज्य मंत्री (स्वतंत्र प्रभार) तथा राज्य मंत्री। केबिनेट मंत्री प्राय: बहुमत प्राप्त पार्टी के वरिष्ठ नेता होते हैं। मंत्री परिषद के अधिकांश निर्णय केबिनेट द्वारा लिए जाते हैं।

राजयपाल राज्य का संवैधानिक अध्यक्ष होता है। राज्य की वास्तविक कार्यपालिका मुख्यमंत्री के नेतृत्व में मंत्री परिषद होती है।

पाठान्त प्रश्न

1. भारत के राष्ट्रपति पद के लिए आवश्यक योग्यताए लिखिए।
2. भारत के राष्ट्रपति का चुनाव कैसे होता है? उसके चुनाव की विधि लिखिए।
3. राष्ट्रपति की कार्यपालिका सम्बन्धी शक्तियों का वर्णन कीजिए।
4. भारत के राष्ट्रपति की विधायी और वित्तीय शक्तियों की व्याख्या कीजिए।
5. देश की कार्यपालिका के अध्यक्ष के रूप में राज्यपाल की भूमिका पर चर्चा कीजिए।
6. देश की कार्यपालिका के अध्यक्ष के रूप में राज्यपाल की भूमिका पर चर्चा कीजिए।
7. राज्यपाल और मुख्यमंत्री के बीच सम्बन्धों का वर्णन कीजिए।

$$\frac{\text{सभी निर्वाचित विधायकों के सदस्यों के मतों का कुल मूल्य}}{\text{संसद के कुल निर्वाचित सदस्यों की संख्या}}$$

पाठ्यगत प्रश्नों के उत्तर

21.1

1. लोकसभा, राज्यसभा और सभी राज्यों की विधानसभाओं के निर्वाचित सदस्य
2. भारत का राष्ट्रपति।
3. भारत का नागरिक होना चाहिए, 35 वर्ष से कम आयु का नहीं होना चाहिए और उसके पास लाभ का कोई पद नहीं होना चाहिए।
4. एक विधायक के मत का मूल्य $= \frac{\text{राज्य की कुल जनसंख्या}}{\text{निर्वाचित सदस्यों की कुल संख्या}} \times \frac{1}{1000}$
5.

6. कोटा- =

7. महाभियोग

8. त्यागपत्र, मृत्यु अथवा महाभियोग द्वारा अपदस्थ करना।

9. उपराष्ट्रपति

21.2

1. (i) प्रधानमंत्री, राज्यपालों और सर्वोच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश की नियुक्ति

   (ii) सशस्त्र सेना के मुख्य सेनापति के रूप में युद्ध अथवा शांति की घोषणा करता है।

   (iii) संघीय संसद द्वारा लागू किए गए सभी कानून उसके नाम से लागू किए जाते हैं।

2. (i) राष्ट्रपति संसद का अधिवेशन बुला अथवा स्थगित कर सकता है।

   (ii) वह राज्यसभा के 12 सदस्यों को मनोनीत कर सकता है।

   (iii) मतभेद की स्थिति में वह दोनों सदनों का संयुक्त अधिवेशन बुला सकता है।

3. सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीशों को नियुक्त करने की शक्ति सर्वोच्च न्यायालय के वरिष्ठ न्यायाधीशों के बने पेनल को दे दी गई है जिसे कोलेजियम कहा जाता है।

कुल डाले गए वैध मत
1 + 1 = (2)

4. (i) 352; (ii) 356; (iii) राष्ट्रपति, 360; (iv) उपराष्ट्रपति; (v) उपराष्ट्रपति

21.3

1. राज्य सभा और लोक सभा के सदस्यों के बहुमत से अलग-अलग पारित प्रस्तावों द्वारा

2. 5 वर्ष

3. (i) वह राज्य सभा का पदेन अध्यक्ष होता है

   (ii) वह राष्ट्रपति का पद रिक्त होने परे कार्यभार सम्भालता है।

21.4

A. 1. वास्तविक

2. प्रधानमंत्री

3. मंत्रिपरिषद और राष्ट्रपति

4. राष्ट्रपति की सलाह पर

B. 1. प्रधानमंत्री

2. (i) केबिनेट मंत्री,

(ii) राज्यमंत्री

21.5

1. राष्ट्रपति
2. पांच
3. राष्ट्रपति, कार्यकाल समाप्त होने पर
4. वास्तविक
5. राज्यपाल

22

विधायिका

आपने पिछले पाठ में संघीय कार्यपालिका और राज्य कार्यपालिका के बारे में पढ़ा जो विधायिका क्रमश: संसद और राज्य विधान मण्डल के प्रति उत्तरदायी हैं। संघीय विधायिका अर्थात संसद में राष्ट्रपति एवं संसद के दोनों सदन; लोक सभा और राज्य सभा सम्मिलित होते हैं। लोक सभा; जिसे निम्न सदन भी कहते हैं, लोगों का सदन होता है जिसके सदस्यों का चुनाव सीधे जनता (लोगों) द्वारा किया जाता है। राज्य सभा उच्च सदन है जो भारतीय संघ के राज्यों का प्रतिनिधित्व करता है और जिसके सदस्यों का चुनाव विधान सभाओं तथा संघीय क्षेत्रों के निर्वाचित सदस्यों द्वारा किया जाता है। भारत का राष्ट्रपति भी भारतीय संसद का अभिन्न अंग है यद्यपि वह किसी भी सदन का सदस्य नहीं होता। इसी प्रकार राज्यपाल भी राज्य विधायिका का अभिन्न अंग होता है। राज्य विधान मण्डल द्विसदनीय व एक सदनीय दोनों ही तरह के हैं। जहां द्विसदनीय विधानपालिका है वहां निम्न सदन को विधान सभा और उच्च सदन को विधान परिषद कहते हैं। इस पाठ में हम केन्द्र तथा राज्यों की विधायी इकाइयों के बारे में अध्ययन करेंगे।

उद्देश्य

इस पाठ को पढ़ने के बाद आप:

- समझ सकेगें कि, भारत का राष्ट्रपति भारतीय संसद का अभिन्न अंग है;
- संघीय तथा राज्य विधायिका के संगठन का वर्णन कर पायेगें;
- भारतीय संसद तथा राज्य विधायिका की विभिन्न शक्तियों तथा कार्यों की व्याख्या कर सकेगे;
- समझ सकेगें कि लोक सभा किस प्रकार राज्यसभा से अधिक शक्तिशाली है;
- साधारण और धन विधेयक में अन्तर कर पाएगे;
- संसद की विधि निर्माण की प्रक्रिया समझ सकेगें; तथा
- संसद की कार्य और शक्तियों की राज्य विधान मण्डलों की कार्य और शक्तियों से तुलना कर सकेगें।

22.1 संसद का संगठन

भारतीय संसद में भारत का राष्ट्रपति तथा दोनों सदन; लोक सभा और राज्य सभा सम्मिलित होते हैं। लोक सभा के सदस्यों का चुनाव सीधे लोगों द्वारा किया जाता है और राज्य सभा के सदस्यों का चुनाव अप्रत्यक्ष रूप से होता है।

चित्र 22.1: संसद भवन, नई दिल्ली

22.1.1 राज्य सभा: सदस्यता और निर्वाचन

भारत की संविधान सभा संघवाद के सिद्धान्तों को मस्तिष्क में रख कर राज्यों के अधिकारों एवं विशेषाधिकारों की सुरक्षा के लिए राज्य सभा की आवश्यकता पर एकमत थी। राज्य सभा के सदस्यों की कुल संख्या 250 से अधिक नहीं हो सकती। उनमें से 12 सदस्यों को राष्ट्रपति साहित्य, विज्ञान, कला, समाज सेवा और खेलों के क्षेत्र में उत्कृष्टता के आधार पर मनोनीत करता है। शेष सदस्यों को राज्य विधान सभाओं के निर्वाचित सदस्य अनुपातिक प्रतिनिधित्व के आधार पर एकल संक्रमणीय मत प्रणाली द्वारा निर्वाचित करते हैं। अमेरीकी सीनेट के विपरीत जहां 50 राज्यों से एक समान दो सदस्य आते हैं वहां भारत के राज्यों की परिषद अर्थात राज्य सभा में राज्यों का प्रतिनिधित्व एक समान नहीं होता। विभिन्न राज्यों से सदस्यों की संख्या उस राज्य की जनसंख्या के अनुपात में होती है।

22.1.2 योग्यता, कार्यकाल, वेतन और भत्ते

- राज्य सभा का सदस्य बनने के लिए आवश्यक योग्याताएं नीचे दी गई है:
  1. भारत का नागरिक होना चाहिए
  2. उसकी आयु 30 वर्ष से कम नहीं होनी चाहिए
  3. समय-समय पर संसद द्वारा निर्धारित योग्यातएं पूरी करता हो।
  4. मानसिक रूप से अस्वस्थ, दीवालिया अथवा केन्द्र या राज्य सरकार में लाभ के किसी पद पर नहीं होना चाहिए।

22.1.3 कार्यकाल

राज्य सभा स्थायी सदन है जो कभी भी भंग नहीं किया जाता। इसके सदस्य 6 वर्ष के लिए निर्वाचित होते हैं। प्रत्येक दो वर्ष में इसके एक तिहाई सदस्य सेवा निवृत हो जाते हैं। वे सदस्यता के लिए पुनः चुनाव लड़ सकते हैं लेकिन रिक्त स्थान पर लड़ा गया उपचुनाव केवल इसके बाकी बचे समय के लिए होता है। यह प्रणाली राज्य सभा की कार्यप्रणाली में निरन्तरता को सुनिश्चित करती है।

22.1.4 वेतन और भत्ते

राज्य सभा के प्रत्येक सदस्य को मासिक वेतन तथा चुनाव क्षेत्र भत्ता मिलता है। इसके साथ ही उन्हें अनेक अन्य लाभ जैसे निशुल्क आवास, पानी, बिजली, टेलिफोन और यात्रा सुविधाएं मिलती हैं। सेवा निवृत होने पर राज्य सभा के सदस्य मासिक पेंशन पाने के अधिकारी होते हैं।

22.1.5 राज्य सभा के पदाधिकारी

भारत का उपराष्ट्रपति राज्य सभा का पदेन अध्यक्ष है जिसे सभापति कहा जाता है। सदन अपने सदस्यों में से किसी एक को उप सभापति निर्वाचित करता है। उपराष्ट्रपति राज्य सभा का सदस्य नहीं होता इसलिए वह केवल अनिर्णय की स्थिति में मतदान कर सकता है। सभापति के कार्य लगभग लोकसभा के स्पीकर (अध्यक्ष) के समान ही हैं।

पाठगत प्रश्न 22.1

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर दीजिये।

(i) राज्य सभा को स्थायी सदन क्यों कहा जाता है?

(ii) अमेरीकी सीनेट और राज्य सभा में आधारभूत अन्तर क्या है?

(iii) राज्य सभा के सदस्यों को कौन चुनता है?

22.1.6 लोकसभा, सदस्यता और चुनाव

लोकसभा, जिसे निम्न सदन भी कहा जाता है, के सदस्यों की संख्या 550 से अधिक नहीं होनी चाहिए। इनमें से अधिकतम 530 सदस्यों को राज्यों से निर्वाचित किया जाएगा और अधिकतम 20 को केन्द्र शासित प्रदेशों से निर्वाचित किया जा सकता है। लोकसभा की वर्तमान निर्वाचित सदस्य संख्या 543 है। यदि एंग्लो इन्डियन समुदाय के सदस्यों को उपयुक्त प्रतिनिधित्व प्राप्त नहीं होता तो राष्ट्रपति इस समुदाय के दो भारतीय सदस्यों को लोकसभा के लिये मनोनीत कर सकता है। लोकसभा में अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति के सदस्यों के लिए स्थान आरक्षित होते हैं। इन चुनाव क्षेत्रों से उम्मीदवार अनुसूचित जातियां अनुसूचित जनजाति का ही होना चाहिए जिस भी वर्ग के लिये सीट आरक्षित है, लेकिन मतदाताओं का संयुक्त निर्वाचन क्षेत्र होता है अर्थात सभी पात्र मतदाना जाति, वंश अथवा समुदाय के भेदभाव के बिना चुनावों में भाग लेते हैं।

लोकसभा के लिए चुनाव सार्वभौमिक व्यस्क मताधिकार के आधार पर किया जाता है। इस के लिए मतदान करने की आयु 18 वर्ष अथवा उससे अधिक निश्चित की गई है। चुनाव गुप्त मतदान द्वारा इलेक्ट्रानिक वोटिंग मशीन (ई. वी. एम.) के माध्यम से साधारण बहुमत पर आधारित होता है अर्थात सबसे अधिक मत प्राप्त करने वाले को निर्वाचित घोषित किया जाता है।

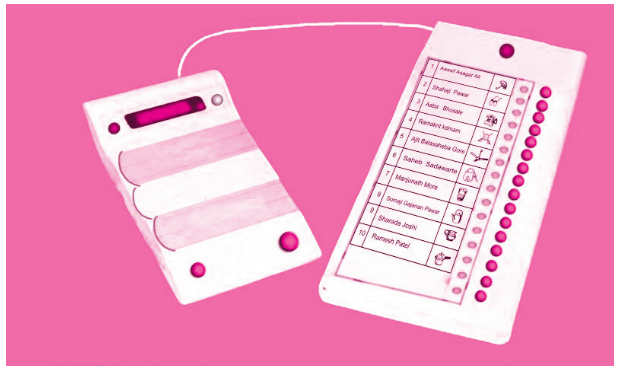

चित्र 22.2: इलेक्ट्रानिक वोटिंग मशीन

22.1.7 योग्यता, कार्यकाल और भत्ते

- **योग्यता**

लोकसभा का सदस्य बनने के लिए व्यक्ति को

1. भारत का नागरिक होना चाहिए जिसकी आयु 25 वर्ष या उससे अधिक हो
2. भारत के किसी निर्वाचन क्षेत्र से मतदाता के रूप में पंजीकृत होना चाहिए।
3. यदि किसी आरक्षित चुनाव क्षेत्र से चुनाव लड़ता है तो वह अनुसूचित जाति अथवा अनुसूचित जनजाति जिस वर्ग के लिये सीट आरक्षित है, से सम्बद्ध हो।
4. ऐसी अन्य योग्यताएं पूरी करता हो जो समय-समय पर कानून द्वारा संसद निर्धारित करे।

22.1.8 कार्यकाल

लोकसभा का कार्यकाल पांच वर्ष है। राष्ट्रपति कार्यकाल पूरा होने से पहले भी इसे भंग कर सकता है। आपातकाल के दौरान कार्यकाल एक बार में एक वर्ष के लिए बढ़ाया जा सकता है परन्तु आपातकाल समाप्त होने के बाद 6 मास से अधिक नहीं बढ़ाया जा सकता।

22.1.9 लोकसभा के पदाधिकारी

लोकसभा के सभापति को अध्यक्ष कहा जाता है। सदन में एक उपाध्यक्ष का प्रावधान भी है। दोनों का निर्वाचन लोक सभा के सदस्य अपने में से ही करते हैं। अध्यक्ष और उपाध्यक्ष को सदन द्वारा पारित प्रस्ताव के आधार पर अपने पद से हटाया जा सकता है। अध्यक्ष अनिर्णय अर्थात पक्ष विपक्ष में समान मतों की स्थिति में ही मतदान कर सकता है।

लोकसभा के अध्यक्ष और उपाध्यक्ष के कार्य और शक्तियां राज्य सभा के सभापति और उपसभापति के सामन ही हैं उनमें से कुछ निम्नलिखित हैं:

(i) सदन की बैठकों की अध्यक्षता करना, अनुशासन और व्यवस्था बनाए रखना, प्रश्न पूछने तथा अपनी बात सदन के समक्ष रखने लिए समय देना।

(ii) अध्यक्ष की अनुमति के बिना सदन में कोई प्रस्ताव, प्रतिवेदन अथवा विधेयक प्रस्तुत नहीं किया जा सकता।

(iii) यदि कोई सदस्य दुर्व्यवहार करता है तो अध्यक्ष उसको चेतावनी दे सकता है और सदस्य को सदन से बाहर जाने को कह सकता है और बलपूर्वक भी बाहर करवा सकता है

(iv) अव्यवस्था, अनुशासनहीनता और गणपूर्ति न होने पर सदन को स्थगित करना

(v) लोक सभा का अध्यक्ष वित्त (धन) विधेयक के विषय में निर्णय लेने वाला एकमात्र अधिकारी है अर्थात कोई विधेयक वित्त विधेयक है कि नहीं इस पर उसका निर्णय अन्तिम होता है।

(vi) सदस्यों के अधिकारों को सभी प्रकार के अतिक्रमणों से बचाना तथा उनके विशेषाधिकारों की रक्षा करना।

(vii) दोनों सदनों के बीच असहमति की स्थिति में जब कभी दोनों सदनों का संयुक्त अधिवेशन होता है तो लोकसभा का अध्यक्ष ही उस अधिवेशन की अध्यक्षता करता है।

(viii) सदन में दर्शकों के प्रवेश को नियमित करना।

पाठगत प्रश्न 22.2

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर दीजिये:

(क) किस समुदाय को अपर्याप्त प्रतिनिधित्व मिलने पर राष्ट्रपति उस समुदाय के सदस्यों को लोक सभा में मनोनीत कर सकता है?

(ख) संसद के संयुक्त अधिवेशन की अध्यक्षता कौन करता है?

(ग) भारत के ऐसे तीन राज्यों के नाम लिखिए जिनके लोक सभा में सबसे कम सदस्य होते हैं?

(घ) अध्यक्ष की अनुपस्थिति में लोकसभा की कार्यवाही कौन चलाता है?

22.2 संसद के कार्य

भारतीय संसद विधायी, कार्यपालिका सम्बन्धी, वित्तीय, चुनावी तथा अन्य अनेक कार्य करती है। आइये हम इन कार्यों को विस्तारपूर्वक जानें।

A. विधायी कार्य एवं शक्तियां

संसद का मुख्य कार्य पूरे देश के लिए संघ सूची, समवर्ती सूची तथा विशेष परिस्थितियों में राज्य सूची के विषयों पर भी कानून बनाना है। संसद को संघ सूची में उल्लिखित 97 विषयों पर कानून बनाने का अधिकार है। इसके पास समवर्ती सूची में दर्ज 47 विषयों पर भी राज्यों के साथ कानून बनाने का अधिकार हैं यदि समवर्ती सूची के एक ही विषय पर संसद और राज्य विधान मण्डल; दोनों ही कानून बनाते हैं तो विवाद की स्थिति में केन्द्र द्वारा बनाया गया कानून ही मान्य होगा। ऐसे विषय, जिनका जिक्र तीन में से किसी भी में नहीं है, को अवशिष्ट शक्तियां कहा जाता है। केवल संसद को ही इन पर कानून बनाने का अधिकार प्राप्त है।

संसद में प्रस्तुत किए गए सभी विधेयकों को दोनों सदनों द्वारा पारित करने के पश्चात राष्ट्रपति की सहमति के लिए भेजा जाता है। राष्ट्रपति की सहमति के बाद ही विधेयक कानून बनता है।

B. कार्यपालिका सम्बन्धी कार्य एवं शक्तियां

संसदीय प्रणाली में शासन प्रशासन चलाने वाली कार्यपालिका को संसद का विश्वास अवश्य प्राप्त होना चाहिए विशेषत: लोकसभा में जहां लोगों के प्रतिनिधि होते हैं। प्रधानमंत्री तथा मंत्री परिषद व्यक्तिगत तथा सामूहिक रूप से संसद के निम्न सदन के प्रति उत्तरदायी हैं। संसद कार्यपालिका पर नियन्त्रण रखती है और यह सुनिश्चित करती है कि कार्यपालिका अपने क्षेत्राधिकार का उल्लंघन न करे और संसद के प्रति उत्तरदायी बनी रहे। संसद निम्न प्रकार से कार्यपालिका पर नियंत्रण रखती है।

(i) दोनों सदनों के प्रत्येक कार्य दिवस का पहला एक घण्टा प्रश्न और पूरक प्रश्न पूछने के लिये प्रयोग किया जाता है। इससे सदस्य किसी भी मुद्दे से सम्बन्धित जानकारी प्राप्त कर सकते हैं। सम्बन्धित मन्त्री को पहले से भेजे गए प्रश्नों के उत्तर देने होते हैं। इस निश्चित घण्टे को प्रश्न काल कहते हैं।

(ii) संसद अपने सदस्यों को किसी भी विषय पर चर्चा करने के लिए पर्याप्त अवसर प्रदान करती है। इससे विपक्षी सदस्यों को सरकार की आलोचना करने तथा सत्ताधारी दल के सदस्यों को समर्थन व बचाव करने का अवसर मिलता है।

(iii) संसद विभिन्न प्रस्तावों के माध्यम से कार्यपालिका पर नियन्त्रण रखती है जैसे–

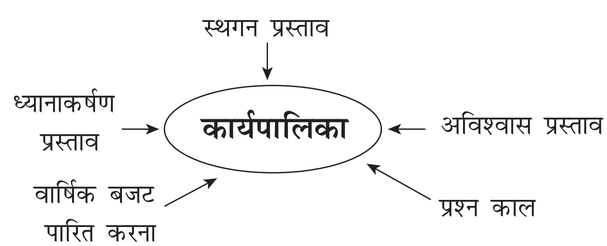

(a) **स्थगन प्रस्ताव:** संसद का कोई भी सदस्य किसी आवश्यक मुद्दे पर चर्चा के लिए संसद में स्थगन प्रस्ताव ला सकता है। यदि लोकसभा अथवा राज्य सभा का अध्यक्ष प्रस्ताव को स्वीकार कर ले उस मुद्दे पर पूरी बहस की अनुमति होती है।

(b) **ध्यानाकर्षण प्रस्तावः** जब कभी जनहित से सम्बन्धित कोई आवश्यक मुद्दा सामने आता है तो संसद में सरकार का ध्यान आकर्षित करने के लिए ध्यानाकर्षण प्रस्ताव प्रस्तुत किया जाता है।

(c) **आधे घण्टे की चर्चाः** यह सदस्यों को किसी विषय पर सरकार को घेरने का एक अन्य अवसर प्रदान करती है।

(d) **वार्षिक बजट पारित करनाः** इसमें ऐसी चर्चा शामिल होती है जहां विपक्ष को पूरी सरकार की आलोचना करने का सबसे अच्छा मौका मिलता है। बजट को स्वीकार न करना सरकार में अविश्वास की अभिव्यक्ति है।

(e) **अविश्वास प्रस्तावः** यह प्रस्ताव केवल लोक सभा के सदस्यों द्वारा ही लाया जा सकता है। लोक सभा का कोई भी सदस्य आवश्यक औपचारिकताएं पूरी करने के बाद मन्त्रिपरिषद् के विरुद्ध अविश्वास प्रस्ताव प्रस्तुत कर सकता है। इस अवसर पर अधिकांश विपक्षी सदस्य सरकार की कमियों और त्रुटियों को प्रस्तुत कर सरकार पर नियन्त्रण बनाने अथवा जनता की नजरों में गिराने की कोशिश करते हैं। सत्ता दल उठाए गए प्रश्नों का उत्तर देता है और अपने को बचाता है। जब तक सत्ता पार्टी के पास बहुमत होता है जब तक उसे हार का खतरा नहीं होता। वास्तव में यह शक्ति परीक्षण होता है विशेष रूप से गठबन्धन की सरकारों के लिए।

C. वित्तीय कार्य एवं शक्तियां

संसद जनता के पैसों की संरक्षक है। संसद की स्वीकृति के बिना कोई टैक्स नहीं लगाया जा सकता और न ही कोई पैसा खर्च किया जा सकता है। इसलिए संसद द्वारा वार्षिक बजट स्वीकार किया जाता है। लेकिन वास्तविक वित्तीय शक्ति लोक सभा के पास है। संविधान के अनुसार धन विधेयक को केवल लोकसभा में ही प्रस्तुत किया जा सकता है। लोकसभा से पारित होने के बाद इसको राज्य सभा में विचारार्थ भेजा जाता है। राज्य सभा को 14 दिनों के भीतर अपनी सिफारिश अथवा बिना सिफारिश के धन विधेयक को वापस भेजना होता है। लोक सभा, राज्य सभा की सिफारिशों को मानने के लिए बाध्य नहीं है और इस प्रकार राज्य सभा की असहमति के बावजूद धन विधेयक को पारित समझा जाता है।

D. चुनावी कार्य एवं शक्तियां

संसद के दोनों सदनों के निर्वाचित सदस्य भारत के राष्ट्रपति व उपराष्ट्रपति के चुनाव के लिए निर्वाचक मण्डल के सदस्य होते हैं। इसके अतिरिक्त लोक सभा के सदस्य अपना अध्यक्ष और उपाध्यक्ष चुनते हैं जबकि राज्य सभा के सदस्य केवल अपना उपसभापति चुनते हैं।

E. संविधान संशोधन सम्बन्धी कार्य एवं शक्तियां

भारत की संसद संविधान के प्रावधानों में संशोधन करने का अधिकार रखती है; यद्यपि भारत के संघीय ढांचे के कारण अनुच्छेद 368 में निर्धारित विधि के अनुसार ही इस

शक्ति का सीमित ढंग से प्रयोग किया जा सकता है। किसी संशोधन विधेयक को संसद के किसी भी सदन में प्रस्तुत किया जा सकता है। प्रत्येक सदन में विशेष बहुमत से पारित होने के बाद इस प्रस्ताव को राष्ट्रपति की स्वीकृति के लिए भेजा जाता है। भारतीय संविधान के अधिकांश भागों को विशेष बहुमत से संशोधित किया जाता है। लेकिन कुछ ऐसे प्रावधान भी हैं जिनमें संशोधन साधारण बहुमत द्वारा भी किया जा सकता है। लेकिन कुछ ऐसे प्रावधान भी हैं जिनमें संशोधन के लिए संसद में विशेष बहुमत से पारित होने के बाद आधे से अधिक राज्यों का अनुमोदन भी आवश्यक होता है।

सर्वोचच न्यायालय ने यह निर्णय दिया है कि संसद भारत के संविधान के मूल या आधारभूत ढांचे में परिवर्तन नहीं कर सकती। सर्वोच्च न्यायालय का यह निर्णय संसद की संविधान संशोधन की शक्ति को सीमित करता है।

F. न्यायिक कार्य एवं शक्तियां

भारत के राष्ट्रपति एवं उपराष्ट्रपति तथा सर्वोचच न्यायालय और उच्च न्यायालयों के न्यायाधीशों को संसद द्वारा महाभियोग की प्रक्रिया से उनके पद से हटाया जा सकता है। इस प्रक्रिया में संसद का एक सदन आरोप तय करता है तथा दूसरा न्यायालय की भाँति उन पर सुनवाई करता है।

G. विविध कार्य एवं शक्तियां

संसद द्वारा उपरोक्त कार्यों के अतिरिक्त कुछ अन्य कार्य भी किये जाते हैं:-

(क) भारत के राष्ट्रपति द्वारा घोषित संकटकालीन घोषणा को संसद के दोनों सदनों द्वारा स्वीकार किया जाना अनिवार्य है।

(ख) किसी राज्य को विभाजित कर नया राज्य बनाने, दो राज्यों का विलय अथवा किसी राज्य की सीमा अथवा नाम बदलने के लिए संसद की स्वीकृति आवश्यक होती है।

(ग) यह राज्य की इच्छा है कि वह विधान परिषद रखे अथवा नहीं। यदि सम्बन्धित राज्य विधान परिषद गठित करने अथवा समाप्त करने के लिए संसद को निवेदन भेजता है तो इस प्रक्रिया को संसद के दोनों सदनों की स्वीकृति की आवश्यकता होती है।

पाठगत प्रश्न 22.3

निम्न कथनों के समझ सत्य/असत्य लिखिए।

(i) राज्य सभा के कार्यकाल की अवधि छः वर्ष होती है। (सत्य/असत्य)

(ii) केवल लोक सभा में ही धन विधेयक प्रस्तुत किया जा सकता है। (सत्य/असत्य)

(iii) संसद को भारतीय संविधान के मूल ढांचे में परिवर्तन करने का अधिकार है। (सत्य/असत्य)

टिप्पणी

22.3 संसद में विधायी प्रक्रिया

संसद का आधारभूत कार्य कानून बनाना है जिसके लिए एक विशेष प्रक्रिया अपनाई जाती है। विधेयक किसी प्रस्तावित कानून का प्रारूप होता है। किसी मन्त्री द्वारा प्रस्तावित विधेयक को सरकारी विधेयक कहते हैं तथा संसद के किसी सदस्य द्वारा प्रस्तावित विधेयक को निजी (प्रइवेट) विधेयक कहते हैं। यद्यपि संसद के प्रत्येक सदस्य को साधारण विधेयक प्रस्तुत करने का अधिकार है, फिर भी ऐसा बहुत कम किया जाता है जिसका कारण बहुदलीय व्यवस्था में किसी एक व्यक्ति के पास पर्याप्त समर्थन की कमी होती है। विधेयकों को धन विधेयक और साधारण विधेयक के रूप में वर्गीकृत किया जा सकता है। ऐसे विधेयक जिनका सम्बन्ध धन के मामलों, वित्तीय दायित्व, राजस्व और खर्च इत्यादि से होता है; उन्हें धन विधेयक कहा जाता है। ऐसे विधेयक केवल किसी मन्त्री द्वारा प्रस्तावित किए जाते हैं। गैर धन विधेयकों को साधारण विधेयक कहा जाता है। कुछ गैर धन विधेयक संविधान संशोधन विधेयक भी बन जाते हैं यदि उनका उद्देश्य संविधान के किसी प्रावधान में संशोधन करना हो। आईये अब हम यह समझने का प्रयास करें कि ये विधेयक कानून या विधि बनने से पहले किन अवस्थाओं से गुजरते हैं।

22.3.1 साधारण विधेयक

(i) **प्रथम वाचन**–विधेयक का प्रथन वाचन संसद के किसी भी सदन में विधेयक प्रस्तावित करते ही शुरू हो जाता है। बिल प्रस्तावित करने के लिए निवेदन विधेयक के उद्देश्यों के साथ अध्यक्ष के पास भेजा जाता है। सदन में प्रस्तावित प्रत्येक विधेयक को गजट में प्रकाशित किया जाता है। निश्चित तिथि को सदस्य विधेयक को प्रस्तावित करने की अनुमति प्राप्त करने के लिए प्रस्ताव लाता है। यदि सदन इसकी अनुमति दे देता है तो विधेयक औपचारिक रूप से प्रस्तावित माना जाता है।

(ii) **द्वितीय वाचन**–विधेयक का द्वितीय वाचन कानून बनाने में महत्वपूर्ण अवस्था है। इस वाचन के समय विधेयक के प्रत्येक अनुच्छेद पर संशोधन अथवा संशोधन रहित चर्चा होती है। इसके बाद सदन के पास चार विकल्प होते हैं।

(क) विधेयक पर सदन तुरन्त धारावार चर्चा करे

(ख) विधेयक को सदन की प्रवर समिति को भेज दें

(ग) दोनों सदनों की संयुक्त समिति को भेज दे

(घ) जनमत जानने के लिए जनता के बीच सार्वजनिक कर दे।

यदि सदन विधेयक को धारावार विचार विमर्श के लिए तुरन्त स्वीकार कर लेता है तो इस पर बहस होती है, संशोधन प्रस्तावित किए जाते हैं जिन पर स्वीकृति अथवा अस्वीकृति के लिए मतदान करवाया जाता है। यदि बिल पारित हो जाता है तो इसे दूसरे सदन में भेज दिया जाता है जहां यही प्रक्रिया दोहराई जाती है।

यदि विधेयक प्रवर समिति अथवा दोनों सदनों की संयुक्त समिति को भेजा जाता है तो इस का धारावार परीक्षण किया जाता है, विषय विशेषज्ञों अथवा विभिन्न वर्गो के प्रतिनिधियों के विचार सुने जाते हैं, संशोधन प्रस्तावित किए जाते हैं और निश्चित तिथि पर सदन को रिपोर्ट भेज दी जाती है। इसके बाद विधेयक पर धारावार विचार होता है और संशोधानों पर मतदान करवाया जाता है। यदि उपस्थित और मतदान करने वाले सदस्यों के बहुमत से इसे स्वीकार किया जाता है तो संशोधन किए जाते हैं अन्यथा नहीं। इस प्रकार विधेयक का द्वितीय वाचन पूरा होता है।

(iii) **तृतीय वाचन:** इस अवस्था में विधेयक का प्रभारी मन्त्री सदन से बिल स्वीकार करने के लिए निवेदन करता है। बिल (विधेयक) पर मतदान होता है। यदि उपस्थित और मतदान करने वाले सदस्य बहुमत से इसे स्वीकार करते हैं तो विधेयक पारित हो जाता है और इसको दूसरे सदन में भेज दिया जाता है जहां विधेयक को इसी प्रक्रिया और अवस्थाओं से गुजरना होता है। यदि दूसरे सदन में विधेयक पारित हो जाता है तो इसे पहले सदन में भेजा जाता है ताकि इसको भारत के राष्ट्रपति की स्वीकृति के लिये भेजा जा सके। विधेयक पर राष्ट्रपति के हस्ताक्षर के पश्चात् यह कानून या अधिनियम बन जाता है। राष्ट्रपति भी विधेयक पर फैसला लेने से पहले बिल को कुछ समय के लिए रोक सकता है। यदि राष्ट्रपति विधेयक को पुनर्विचार के लिए वापस भेज देता है तो इसको दोनों सदनों द्वारा संशोधन अथवा बिना संशोधन के पुन: पारित करना होता है। इस बार राष्ट्रपति को इस पर स्वीकृति देनी ही होती है।

दोनों सदनों के बीच असहमति के मामले में दोनों सदनों की संयुक्त बैठक का प्रावधान है। ऐसा संयुक्त अधिवेशन राष्ट्रपति द्वारा बुलाया जाता है जिसकी लोक सभा का अध्यक्ष अध्यक्षता करता है। यदि बहुमत इसे स्वीकार कर लेता है तो विधेयक पारित माना जाता है और उसे राष्ट्रपति की स्वीकृति के लिए भेज दिया जाता है।

? क्या आप जानते है

- संसद का पहला संयुक्त अधिवेशन 1961 में दहेज प्रतिबन्ध विधेयक को पारित करने के लिए बुलाया गया था।
- संसद का दूसरा संयुक्त अधिवेशन 1978 में बैकिंग सेवा आयोग समापन विधेयक को पारित करने के लिए हुआ था।
- एक अन्य अधिवेशन 2002 में आतंकवाद विरोधी अध्यादेश (पोटो) को अधिनियम को रूप देने के लिए बुलाया गया था।

22.3.2 धन विधेयक

धन विधेयक को केवल लोकसभा में राष्ट्रपति की पूर्व अनुमति से प्रस्तावित किया जा सकता है इसको भी उन्हीं तीन अवस्थाओं प्रथम, द्वितीय और तृतीया वाचन से गुजरना होता है। जब यह लोक सभा में पारित हो जाता है तो इसको विचार विमर्श के लिए राज्य सभा में भेजा जाता है। राज्य सभा इसको एक साधारण विधेयक की भांति अस्वीकार नहीं कर सकती। इसलिए राज्य सभा के पास निम्नलिखित विकल्प होते हैं-

(i) राष्ट्रपति के पास स्वीकृति के लिए भेजने से पूर्व विधेयक को ज्यों का त्यों पारित करना।

(ii) विधेयक को कुछ सिफारिशों के साथ वापिस लौटा देना। लोकसभा सभी सिफारिशों या उनमें से किसी एक को अस्वीकार कर सकती है जिसके बाद विधेयक को दोनों सदनों से पारित माना जाता है।

(iii) धन विधेयक को अधिकतम 14 दिन तक रोक सकती है लेकिन उसको कुछ सिफारिशें या बिना सिफारिश के विधेयक को लौटाना होता है। दोनों ही स्थितियों में इसको दोनों सदनों द्वारा पारित माना जाता है और सीधे राष्ट्रपति के पास उसकी स्वीकृति के लिए भेज दिया जाता है। अब राष्ट्रपति के पास इस पर हस्ताक्षर करने के अतिरिक्त कोई विकल्प नहीं होता क्योंकि विधेयक प्रस्तावित करने से पूर्व ही राष्ट्रपति की अनुमति प्राप्त कर ली गई थी।

22.3.3 बजट

बजट सार्वजनिक धन का वार्षिक अनुमानित आय और व्यय का वित्तीय ब्यौरा होता है। यह विधेयक नहीं कहलाता। इसको संसद में दो भागों - सामान्य बजट और रेल बजट के रूप में प्रस्तुत किया जाता है। रेल मन्त्री रेल बजट प्रस्तुत करता है जबकि सामान्य बजट प्रस्तुत करने का दायित्व वित्तमन्त्री का है। सामान्य चर्चा के बाद, सदस्य प्रश्न पूछ सकते हैं जिनका उत्तर मन्त्री देता है। अब प्रत्येक मन्त्रालय की मांगों पर चर्चा की जाती है और उस पर मतदान करवाया जाता है। इस कार्य के लिए 1993–94 से विभागीय प्रवर समितियों की नई प्रणाली शुरू की गई है। लोकसभा संघीय सरकार के सभी प्रमुख मन्त्रालयों और विभागों के लिए समितियों का गठन करती है। यह समितियां अनुदान मांगों पर चर्चा, उनकी जाँच और सिफरिशें करती हैं जिन पर सदन में मतदान होता है और वे बिना अधिक बहस के स्वीकार कर ली जाती है।

पाठगत प्रश्न 22.4

निम्न प्रश्नों के उत्तर दीजिए।

(क) सरकारी विधेयक और निजी (प्राईवेट) विधेयक में अन्तर कीजिए।

(ख) संसद में प्रस्तावित होने के सन्दर्भ में सामान्य विधेयक और धन विधेयक के बीच अन्तर कीजिए।

(ग) संसद के दोनों सदनों का संयुक्त अधिवेशन कब बुलाया जाता है?

टिप्पणी

22.4 राज्य विधायिका

22.4.1 राज्य विधायिका का संगठन

भारत में अधिकांश राज्य विधायिकाएं या विधानमंडल एक सदनीय हैं जिसमें राज्य विधान सभा और राज्यपाल शामिल होता है। केवल पांच राज्यों में द्विसदनीय विधायिकाएं हैं। वहां विधान सभा के अतिरिक्त विधान परिषद भी होती है। ये राज्य हैं; बिहार, महाराष्ट्र, कर्नाटक, उत्तर प्रदेश और जम्मू-काश्मीर।

22.4.2 विधान सभा

लोक सभा की भांति राज्य विधान सभा के सदस्यों को सीधे लोगों द्वारा सार्वभौमिक व्यस्क मताधिकार के आधार पर पांच वर्ष के लिए चुना जाता है। विधान सभा का सदस्य बनने की योग्यताएं वहीं हैं जो लोकसभा का सदस्य बनने के लिए हैं। विधान सभा के सदस्यों की संख्या राज्य की जनसंख्या के आधार पर प्रत्येक राज्य में अलग अलग है। किसी भी स्थिति में यह संख्या 500 से अधिक तथा 60 से कम नहीं हो सकती हालांकि गोवा और मिजोरम जैसे छोटे राज्यों को 40 सदस्यों की विधान सभा रखने की अनुमति है। उत्तर प्रदेश की विधान सभा 403 सदस्यों के साथ सबसे बड़ी विधान सभा है। विधान सभा में कुछ स्थान अनुसूचित जातियों और जन जातियों के लिए आरक्षित होते हैं। यदि एंग्लो इन्डियन समुदाय का प्रतिनिधित्व पर्याप्त न हो तो उस राज्य का राज्यपाल उस समुदाय के एक सदस्य को मनोनीत कर सकता है।

जैसा कि पहले उल्लेख किया गया है कि विधान सभा का सामान्य कार्यकाल पांच वर्ष है। परन्तु राज्यपाल मुख्यमन्त्री की सिफारिश पर इसको पहले भी भंग कर सकता है। यदि राज्यपाल अनुच्छेद 356 के संवैधानिक आपातकाल घोषित करने की सिफारिश करता है तो भी विधान सभा भंग की जा सकती है।

प्रत्येक विधान सभा अपने सदस्यों में से एक अध्यक्ष और एक उपाध्यक्ष चुनती है जो सदन की कार्यवाही चलाते हैं। लोक सभा और विधान सभा के अध्यक्षों का कार्य लगभग एक जैसा होता है। अनिर्णय या पक्ष विपक्ष में समान मत की स्थिति में दोनों निर्णायक मत दे सकते हैं।

पाठगत प्रश्न 22.5

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर दीजिये।

(क) भारत के कौन से पांच राज्यों में द्विसदनीय विधायिकाएं हैं?

(ख) सबसे अधिक सदस्यों वाली विधान सभा का नाम लिखिए।

(ग) राज्य की विधान सभा में न्यूनतम कितने सदस्यों की प्रावधान है?

(घ) राज्य विधान सभा में अनिर्णय की स्थिति में कौन अपना निर्णयक मत दे सकता है?

(ड़) विधान सभा को भंग करने की शक्ति किसे प्राप्त है और कब वह इसका प्रयोग करता है?

22.4.3 विधान परिषद

संघीय विधायिका में राज्य सभा की तरह राज्य विधायिका या विधानमंडल में विधान परिषद उच्च सदन है। जैसा कि पहले उल्लेख किया गया है कि भारत में केवल पांच राज्यों में विधान परिषद हैं। यह राज्य सरकार की इच्छा है कि वह विधान परिषद रखे अथवा नहीं। यदि कोई विधान सभा विधान परिषद को बनाने या समाप्त करने का प्रस्ताव अपनी विधान सभा के आधे से अधिक सदस्यों के बहुमत से एवं उपस्थित तथा मतदान करने वाले सदस्यों के दो तिहाई बहुमत से पारित करके संसद को भेजती है तो संसद उस पर अन्तिम निर्णय ले सकती है।

विधान परिषद के सदस्यों की संख्या विधान सभा के कुल सदस्यों के एक तिहाई से अधिक नहीं हो सकती लेकिन यह संख्या 40 से कम नहीं हो सकती। जम्मू और काश्मीर की विधान परिषद एक अपवाद है और वहां केवल 36 सदस्य हैं। विधान परिषद का सदस्य बनने के लिए वही योग्याताएं आवश्यक है जो राज्य सभा का सदस्य बनने के लिए आवश्यक है। लेकिन इसका संगठन थोड़ा अलग है। इसके सदस्यों में कुछ को निवार्चित है और कुछ को मनोनीत किया जाता है। सदस्यों का चुनाव करने की प्रक्रिया वैसी ही है जैसी की राज्य सभा के सदस्यों को चुनने की, अर्थात अनुपातिक प्रतिनिधित्व के सिद्धान्त के आधार पर एकल संक्रमणीय मत प्रणाली द्वारा किया जाता है।

विधान परिषद का संगठन

(i) विधान परिषद के एक तिहाई सदस्यों को विधान सभा के निर्वाचित सदस्यों द्वारा चुना जाता है।

(ii) एक तिहाई सदस्यों को स्थानीय निकायों जैसे नगरपालिका इत्यादि के सदस्यों द्वारा चुना जाता है।

(iii) सदस्यों का बारहवां भाग तीन साल पूर्व के पंजीकृत स्नाताकों द्वारा चुना जाता है।

(iv) सदस्यों का बारहवां भाग राज्य के माध्यमिक अथवा उच्चतर स्तर के स्कूली शिक्षकों द्वारा निर्वाचित किया जाता है।

(v) शेष 1/6 सदस्यों को राज्यपाल द्वारा विभिन्न क्षेत्रों में उत्कृष्टता के आधार मनोनीत (नामांकित) किया जाता है।

राज्य सभा की भांति राज्य विधान परिषद को कभी भंग नहीं किया जा सकता और यह एक स्थायी सदन है। इसके तिहाई सदस्य छः वर्ष का कार्यकाल पूरा करने के बाद प्रत्येक दो वर्ष में सेवानिवृत हो जाते हैं। परिषद के अध्यक्ष एवं उपाध्यक्ष का चुनाव सदस्य अपने बीच में से ही करते हैं।

टिप्पणी

पाठगत प्रश्न 22.6

उपयुक्त शब्दों द्वारा रिक्त स्थान भरिये:

(i) द्विसदनीय राज्य विधायिका के उच्च सदन को ________ कहते हैं।
(विधान सभा, विधान परिषद, संसद)

(ii) किसी राज्य में विधान परिषद बनाने अथवा समाप्त करने का अन्तिम अधिकार ______ के पास है। (विधानसभा, संसद, राज्यपाल)

(iii) जम्मू-काश्मीर की विधान परिषद में _________ सदस्य हैं। (36, 40, 56)

(iv) बिहार की विधान परिषद में कुल 96 सदस्य हैं। इनमें से _______ सदस्य राज्यपाल द्वारा नामांकित किए जाते हैं। (12, 16, 20)

22.6 राज्य विधायिका की शक्तियां और कार्य

एक सदनीय और द्विसदनीय राज्य विधायिका की शक्तियां और कार्य लगभग संघीय संसद की तरह ही है तथा संघ और राज्य के बीच शक्तियों के विभाजन पर आधारित है। भारतीय संविधान के संघीय ढांचे के कारण राज्य विधायिका की शक्तियां असीमित नहीं हैं। जैसा कि आप पहले पढ़ चुके हैं कि संघ और राज्यों के बीच शक्तियों का विभाजन संघ सूची, राज्य सूची और समवर्ती सूची के आधार पर किया गया है। आइये हम राज्य विधायिका की शक्तियों का अध्ययन निम्नलिखित शीर्षकों के अन्तर्गत करें।

क) विधायी शक्तियां

कानून निर्माण राज्य विधायिका का प्राथमिक कार्य है। यह राज्य सूची में सम्मिलित 66 विषयों पर कानून बनाती हैं। इसके पास समावर्ती सूची में सम्मिलित 47 विषयों पर भी कानून बनाने का अधिकार है परन्तु यह कानून उसी विषय पर संसद द्वारा बनाए गए कानून के विरूद्ध नहीं होना चाहिए। विरोध या विरोधाभास की स्थिति में केन्द्र सरकार द्वारा बनाया गया कानून प्रभावी होगा।

कानून बनाने की प्रक्रिया वही है जो साधारण विधेयकों तथा धन विधेयकों के मामले में संसद में अपनाई जाती है। राज्य विधायिका द्वारा पारित प्रत्येक विधेयक को स्वीकृति के लिए राज्य के राज्यपाल के पास भेजा जाता है जिसके बाद वह कानून बन जाता है।

ख) वित्तीय शक्तियां

राज्य का सारा वित्त राज्य विधायिका के पूर्ण नियन्त्रण में होता है क्योंकि विधायिका की अनुमति के बिना राज्य निधि से कोई खर्च नहीं किया जा सकता।

जैसा कि संघीय संसद के मामले में स्पष्ट किया गया था कि धन विधेयक को केवल निम्न सदन में प्रस्तावित किया जा सकता है अर्थात विधान सभा में और वह राज्यपाल की पूर्व अनुमति से ही प्रस्तुत किया जा सकता है। क्योंकि 23 राज्यों में केवल विधान सभाएं हैं विधान परिषद् नहीं है अतः यहां पारित होने के बाद इसको स्वीकृति के लिए राज्यपाल के पास भेजा जाता है और राज्यपाल के पास स्वीकृति देने के अतिरिक्त कोई विकल्प नहीं होता। यदि विधायिका द्विसदनीय हो और विधान परिषद भी हो तो विधान सभा द्वारा पारित विधेयक को विधान परिषद को भेजा जाता है। केन्द्र में राज्य सभा की भांति राज्य विधान परिषद की शक्तियां भी इस मामले में बहुत सीमित हैं और विधेयक को 14 दिनों के अन्दर निम्न सदन को लौटाना होता है। विधान परिषद धन विधेयक में कोई बदलाव नहीं कर सकती वह सिर्फ निम्न सदन अर्थात विधान सभा से बदलाव या संशोधन की सिफारिश कर सकती है। विधान परिषद द्वारा की गई सिफारिशें विधान सभा पर बाध्यकारी नहीं है। दोनों ही मामलों में विधेयक को पारित माना जाता है और इसे राज्यपाल के पास हस्ताक्षर के लिए भेज दिया जाता है।

ग) कार्यपालिका पर नियन्त्रण

संसदीय प्रणाली की सरकार की विशिष्ट विशेषता है कि राज्य विधायिका मुख्य मंत्री के नेतृत्व वाली मन्त्री परिषद पर पूरा नियन्त्रण रखती है।

प्रश्न पूछना, स्थगन प्रस्ताव, ध्यानाकर्षण प्रस्ताव, अविश्वास प्रस्ताव जैसे कुछ कार्यपालिका पर नियन्त्रण रखने के तरीके हैं। यदि कोई गंभीर स्थिति उत्पन्न होती है तो राज्य विधान सभा किसी एक मंत्री अथवा पूरी मंत्री परिषद के विरूद्ध अविश्वास प्रस्ताव स्वीकार कर उसे हटा सकती है।

घ) निर्वाचन सम्बन्धी कार्य

विधान सभा के निर्वाचित सदस्य राष्ट्रपति के चुनाव में भाग लेते हैं।

ङ) संविधान संशोधन सम्बन्धी कार्य

आप भारतीय संविधान में संशोधन करने की प्रक्रिया के बारे में पहले पढ़ चुके हैं। संविधान के कुछ भागों में संशोधन को संसद के विशेष बहुमत से पारित होने के बाद कम से कम आधे राज्यों की विधायिकाओं द्वारा पुष्टि की आवश्यकता होती है। हालांकि कोई भी संविधान संशोधन की प्रक्रिया राज्य विधायिका से प्रारम्भ नहीं की जा सकती।

पाठगत प्रश्न 22.7

निम्न कथनों के समझ सत्य/असत्य लिखिए।

(i) राज्य विधायिका की संविधान संशोधन में एक सीमित भूमिका नहीं है। (सत्य/असत्य)

(ii) राज्य विधान परिषद के एक तिहाई सदस्यों को राज्य विधान सभा के निर्वाचित सदस्य चुनते हैं। (सत्य/असत्य)

(iii) समवर्ती सूची के विषयों पर केन्द्र और राज्य दोनों कानून बना सकते हैं। (सत्य/असत्य)

टिप्पणी

राज्य विधायिका की शक्तियों की सीमा

राज्य विधायिका की शक्तियों पर निम्नलिखित सीमायें हैं।

- यदि समवर्ती सूची के किसी विषय पर राज्य द्वारा बनाया गया उसी विषय पर बने केन्द्रीय कानून से विरोधाभास हो या टकराता है तो संसद द्वारा बनाया गया कानून प्रभावी होगा।
- कुछ विधेयक भारत के राष्ट्रपति की पूर्व अनुमति के बिना राज्य विधान सभा में प्रस्तुत नहीं किए जा सकते हैं। उदाहरण के लिए राज्य के भीतर अथवा अन्य राज्यों के साथ व्यापार और वाणिज्य पर पाबन्दी लगाने से सम्बन्धित विधेयक।
- स्वीकृति देने से पूर्व, राज्यपाल विधायिका द्वारा पारित किसी विधेयक को राष्ट्रपति के विचारार्थ भेज सकता है। ऐसा विधेयक तभी कानून बनाता है जब राष्ट्रपति उस पर अपनी स्वीकृति प्रदान कर देता है।
- भले ही राष्ट्रीय आपातकाल हो अथवा राष्ट्रपति शासन, उस दौरान संसद राज्य सूची के विषयों पर कानून बना सकती है।
- संसद राज्य सूची के विषयों पर कानून बना सकती है यदि–

  (क) दो या दो से अधिक राज्य विधायिकाएं या विधानमंडल इस सम्बन्ध में आवेदन करती हैं।

  (ख) राज्य सभा दो तिहाई बहुमत से ऐसा करने के आशय का प्रस्ताव पारित करती है।

  (ग) यदि कोई नियम अथवा कानून किसी अन्तर्राष्ट्रीय दायित्व को निभाने के लिए अनिवार्य बन जाता है।

  राज्य विधायिका ऐसा कोई कानून नहीं बना सकती जो मौलिक अधिकारों का उल्लंघन करता हो। राज्य विधायिका द्वारा पारित किसी कानून को अवैध घोषित किया जा सकता है यदि सर्वोचच न्यायालय अथवा उच्च न्यायालय उस कानून को असंवैधनिक पाते हैं या वह कानून संविधान के अनुरूप न हो।

आपने क्या सीखा

संघीय विधायिका को संसद कहते हैं जिसमें निम्न सदन के रूप में लोकसभा, उच्च सदन के रूप में राज्य सभा तथा भारत का राष्ट्रपति सम्मिलित हैं। लोक सभा लोगों

द्वारा प्रत्यक्ष रूप से निर्वाचित सदन होता है जबकि राज्य सभा, जो भारतीय संघ में सम्मिलित राज्यों का प्रतिनिधित्व करती है, उसके सदस्यों को विधान सभा के निर्वाचित सदस्य ही चुनते हैं। यद्यपि लोक सभा का कार्यकाल पांच वर्ष निश्चित है, फिर भी राष्ट्रपति इसको पांच वर्ष का कार्यकाल पूरा होने से पूर्व भी भंग कर सकता है। दूसरी तरफ राज्य सभा एक स्थायी सदन है जिसके सदस्यों का कार्यकाल 6 वर्ष निश्चित किया गया है। दोनों ही सदनों के अपने अध्यक्ष या सभापति होते हैं जो सदन की कार्रवाई चलाते हैं। संसद कई प्रकार के कार्य जैसे विधायी, कार्यपालिका सम्बन्धी, वित्तीय, चुनावी आदि कार्य करती है। इन कार्यों को इस अध्याय में को पढ़ने के बाद आप अवश्य महसूस कर रहे होंगे कि लोक सभा राज्य सभा से तुलनात्मक दृष्टि से अधिक शक्तिशाली है।

राज्य विधायिका में राज्य विधान सभा, राज्य विधान परिषद (जो केवल पांच राज्यों में है) और राज्यपाल शामिल होता है। भारत में अधिकांश राज्यों में एकल सदनीय विधान मंडल या विधायिकाएं हैं जिसमें केवल विधान सभा और राज्यपाल ही शामिल होते हैं।

विधान सभा के सदस्य सार्वभौमिक व्यस्क मताधिकार के आधार पर प्रत्यक्ष रूप से लोगों द्वारा चुने जाते हैं जबकि विधान परिषद के सदस्यों में से कुछ को अप्रत्यक्ष रूप से निर्वाचित और कुछ को राज्यपाल द्वारा 6 वर्ष के लिए मनोनीत किया जाता है।

केन्द्र में राज्य सभा की भांति राज्य विधान परिषदें भी स्थायी सदन हैं जिनके एक तिहाई सदस्य प्रत्येक 2 वर्ष बाद सेवा निवृत हो जाते है। राज्य सूची और समवर्ती सूची में दर्ज विषयों पर कानून बनाने के साथ राज्य विधायिका वित्तीय और चुनावी कार्य भी करती है और राज्य में मन्त्रिपरिषद पर नियन्त्रण रखती है। संवैधानिक ढांचा टूटने पर राज्य में राज्यपाल की सिफारिश पर राष्ट्रपति शासन लागू किया जा सकता है।

पाठांत प्रश्न

1. लोकसभा और राज्यसभा की रचना व संगठन का वर्णन कीजिए।
2. कानून बनने से पूर्व विधेयक को जिन विभिन्न अवस्थाओं से गुजरना पड़ता है, उनका उल्लेख कीजिए।
3. राज्य सभा को स्थायी सदन क्यों कहा जाता है?
4. संसद के दोनां सदनों की संयुक्त बैठक कब होती है? ऐसे संयुक्त अधिवेशन की अध्यक्षता कौन करता है?
5. यह कहना कहां तक ठीक है कि राज्य सभा का देश के वित्तीय मामलों पर लगभग कोई नियन्त्रण नहीं है? स्पष्ट कीजिए।

पाठगत प्रश्नों के उत्तर

22.1

(क) राज्य सभा को स्थायी सदन इसलिए कहते हैं कि यह कभी भंग नहीं होता।

(ख) अमरीकी सीनेट में सभी राज्यों का एक समान प्रतिनिधित्व होता है जब कि राज्य सभा में राज्यों का प्रतिनिधित्व वहां की जनसंख्या के अनुपात में होता है।

(ग) राज्य विधान सभाओं के निर्वाचित सदस्य

(घ) सचिन रमेश तेदुंलकर

22.2

(क) एंग्लो इन्डियन समुदाय

(ख) लोक सभा अध्यक्ष

(ग) दो

(घ) गोवा, नागालैण्ड, त्रिपुरा, मेघालय, सिक्किम, मिजोरम, अरूणाचल प्रदेश (कोई तीन)

(ङ.) उपाध्यक्ष

22.3

(i) सत्य

(ii) सत्य

(iii) असत्य

22.4

(क) कोई बिल जिसे मन्त्री द्वारा प्रस्तावित किया जाता है वह सरकारी बिल कहलाता है और निजी (प्राइवेट) बिल को संसद का कोई भी सदस्य व्यक्तिगत रूप से प्रस्तावित करता है। आम तौर पर धन विधेयक को प्रस्तावित करने की अनुमति किसी एक सदस्य को नहीं दी जाती अर्थात धन विधेयक हमेशा सरकारी विधेयक होगा।

(ख) एक साधारण विधेयक को लोक सभा अथवा राज्य सभा में प्रस्तुत किया जा सकता है परन्तु धन विधेयक को केवल लोकसभा में राष्ट्रपति की पूर्व अनुमति से प्रस्तावित किया जा सकता है।

(ग) एक धन विधेयक किसी टैक्स को लगाने, हटाने या बदलने अथवा किसी वित्तीय मामले से सम्बन्धित होता है।

(घ) किसी साधारण विधेयक पर संसद के दोनों सदनों के बीच असहमति की स्थिति में।

22.5

(क) बिहार, महाराष्ट्र, कर्नाटक, उत्तर प्रदेश और जम्मू काश्मीर

(ख) उत्तर प्रदेश (403 सदस्य)

(ग) 60, मिजोरम और गोवा अपवाद है। उन्हें 40 सदस्यों की विधान सभाएं रखने की अनुमति है।

(घ) विधान सभा का अध्यक्ष

(ड.) राज्य का राज्यपाल मुख्यमन्त्री की सिफारिश पर ऐसा कर सकता है।

22.6

(i) विधान परिषद

(ii) संसद

(iii) 36

(iv) 16

22.7

(i) सत्य

(ii) सत्य

(iii) सत्य

23

न्यायपालिका

जब आप भारत का संविधान पढ़ेंगे तो पाएंगे कि यह एक संघात्मक संविधान है। संघात्मक संविधान से हमारा अभिप्राय एक लिखित संविधान से है, जो केंद्रीय और राज्य सरकारों के बीच शक्तियों का विभाजन करता है। यह देश का सर्वोच्च कानून है, लेकिन संविधान की भाषा इतनी जटिल है कि इसकी अलग-अलग ढंग से व्याख्या कर सकते हैं। इसलिए केंद्र और इसके अंगों (राज्यों) के बीच उनकी शक्तियों के विषय में विवाद उठना स्वाभाविक है।

अत: संविधान की सर्वोच्चता को बनाए रखने के लिए एक स्वतंत्र और निष्पक्ष शक्ति का होना अनिवार्य है, जो केंद्र और राज्यों के बीच विवादों पर कोई निर्णय ले सके। यह कार्य भारत के सर्वोच्च न्यायालय को सौंपा गया है।

भारत का संविधान पूरे देश के लिए एकल, एकीकृत और संगठित न्याय व्यवस्था प्रदान करता है। इसका अर्थ है कि पूरे देश के लिए एक एकीकृत न्यायिक व्यवस्था है, जिसमें सबसे ऊपर सर्वोच्च न्यायालय है, जिसके अंतर्गत न्यायालयों का एक निश्चित पदसोपान है। यह देश के संविधान तथा कानून की व्याख्या करने वाली सर्वोच्च एवं अंतिम संस्था है।

उद्देश्य

इस पाठ को पढ़ने के बाद आप:

- सर्वोच्च न्यायालय एवं उच्च न्यायालयों के न्यायाधीशों को नियुक्त करने की प्रणाली जान पाएंगे;
- सर्वोच्च न्यायालय और उच्च न्यायालयों के क्षेत्राधिकार की व्याख्या कर पाएंगे;
- 'न्यायिक सक्रियता' के महत्व को जान सकेगें;
- कमजोर एवं दलित वर्ग को न्याय दिलवाने में जनहित याचिका की भूमिका का महत्व समझ सकेंगे;

टिप्पणी

- देश के राष्ट्रपति एवं राज्यों के राज्यपालों की न्यायालयों के न्यायाधीशों को नियुक्त करने में भूमिका को समझ सकेंगे; तथा
- देश के मौलिक कानून के रूप में संविधान के महत्व समझ सकेंगे।

23.1 सर्वोच्च न्यायालय का संगठन एवं रचना

सर्वोच्च न्यायालय में एक मुख्य न्यायाधीश एवं 30 अन्य न्यायाधीश हैं। संसद न्यायाधीशों की संख्या में वृद्धि कर सकती है। मूल रूप से न्यायाधीशों की कुल संख्या 7 थी, लेकिन 1977 में इसे बढ़ाकर 17 कर दिया गया और फिर 1986 में 25 किया गया। बाद में, 2009 में मुख्य न्यायाधीश को मिलाकर यह संख्या 31 निश्चित की गई।

अनुच्छेद 124(2) के अंतर्गत सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीश की नियुक्ति राष्ट्रपति द्वारा सर्वोच्च न्यायालय तथा उच्च न्यायालयों के ऐसे न्यायाधीशों की सलाह (परामर्श) के बाद की जाती है, जिनसे परामर्श करना वह अनिवार्य समझता हो। इस अनुच्छेद में यह प्रावधान है कि मुख्य न्यायाधीश के अतिरिक्त अन्य न्यायाधीशों की नियुक्ति हेतु सर्वोच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश से परामर्श करना अनिवार्य है।

उल्लेखनीय है कि नियुक्ति सलाह से नहीं, अपितु केवल सलाह के बाद की जाती है। यह परामर्श (विचार) लिखित होना चाहिए। वास्तव में मुख्य न्यायाधीश से राय लेने के बाद केबिनेट इस विषय पर विचार-विमर्श करती है और राष्ट्रपति को नियुक्ति हेतु अपनी राय देती है। राष्ट्रपति केबिनेट के परामर्श के अनुसार कार्य करता है। मुख्य न्यायाधीश को सर्वोच्च न्यायालय के चार वरिष्ठ न्यायाधीशों से सलाह-मशविरा करना होता है और यदि चार में से दो न्यायाधीश किसी नाम पर असहमत हों तो उस नाम की सिफारिश नहीं की जा सकती। वस्तुत: निर्णय सर्वसम्मति से लिए जाते हैं, जिसमें मुख्य न्यायाधीश तथा चार में से कम-से-कम तीन न्यायाधीशों को एकमत होना पड़ता है।

चित्र 23.1: सर्वोच्च न्यायालय, दिल्ली

मुख्य न्यायाधीश के मामले में प्रायः सबसे वरिष्ठ न्यायाधीश को ही मुख्यन्यायाधीश नियुक्त किया जाता है। इस व्यवहार को अब एक परंपरा के रूप में बदल दिया गया है और कार्यपालिका बिना किसी अपवाद के इसका पालन करती है, लेकिन 25 अप्रैल, 1973 को इस परंपरा को तोड़ा गया और सरकार ने तीन वरिष्ठ न्यायाधीशों की वरीयता का अतिक्रमण कर न्यायाधीश ए.एन. रे को मुख्य न्यायाधीश नियुक्त किया था। सरकार के इस कदम की आलोचना न्यायपालिका की स्वतंत्रता और निष्पक्षता को कम करने के प्रयास के रूप में की गई। इस प्रकार के विवादों से बचने के लिए नेशनल फ्रंट की सरकार द्वारा 1990 में तत्कालीन कानून मंत्री दिनेश गोस्वामी ने लोकसभा में राष्ट्रीय न्यायिक आयोग के गठन हेतु एक विधेयक प्रस्तुत किया था, जिसमें राष्ट्रपति को सर्वोच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश को छोड़कर अन्य न्यायाधीशों एवं उच्च न्यायालयों के न्यायाधीशों की नियुक्ति करने तथा एक राज्य से दूसरे राज्यों में उनके स्थानांतरण हेतु सिफारिश करने के लिए उच्च स्तरीय न्यायिक आयोग गठित करने की शक्ति दी गई थी, लेकिन यह संविधान संशोधन बिल लोकसभा भंग होने के साथ ही समाप्त हो गया।

सर्वोच्च न्यायालय का न्यायाधीश होने के लिए निम्नलिखित योग्यताएं आवश्यक हैं-

- भारत का नागरिक होना चाहिए।
- कम-से-कम पांच वर्षों तक किसी उच्च न्यायालय का न्यायाधीश रहा हो,
- किसी उच्च न्यायालय का कम-से-कम दस वर्षों तक अधिवक्ता रहा हो,
- राष्ट्रपति की दृष्टि में एक प्रख्यात न्यायविद् हो।

रोचक तथ्य यह है कि प्रैक्टिस न करने वाले अथवा किसी शैक्षणिक विधिवेता को भी सर्वोच्च न्यायालय का न्यायाधीश नियुक्त किया जा सकता है, यदि वह राष्ट्रपति की दृष्टि में एक प्रख्यात न्यायविद् हो। लेकिन भारत में आज तक प्रैक्टिस न करने वाले किसी वकील को सर्वोच्च न्यायालय का न्यायाधीश नियुक्त नहीं किया गया है।

सर्वोच्च न्यायालय में नियुक्त किए गए प्रत्येक न्यायाधीश को अपना पद ग्रहण करने से पूर्व राष्ट्रपति अथवा राष्ट्रपति द्वारा नियुक्त किसी अन्य व्यक्ति के समक्ष संविधान की तीसरी अनुसूची में निश्चित किए गए प्रारूप में एक शपथ लेनी होती है।

सर्वोच्च न्यायालय का प्रत्येक न्यायाधीश 65 वर्ष की आयु तक अपने पद पर बना रहता है। किसी भी न्यायाधीश को दुराचार अथवा अक्षमता के आधार पर संसद के प्रत्येक सदन के बहुमत से पारित प्रस्ताव, जो कि उपस्थित मतदान करने वाले सदस्यों के दो-तिहाई से कम नहीं होना चाहिए, द्वारा अपदस्थ किया जा सकता है। किसी न्यायाधीश के दुराचार अथवा अक्षमता के आरोप को सिद्ध करने के लिए संसद अनुच्छेद 124(5) के अंतर्गत प्रस्ताव लाने की विधि निश्चित करेगी। सर्वोच्च न्यायालय निर्णय दे चुका है कि सर्वोच्च न्यायालय अथवा उच्च न्यायालय के किसी भी न्यायाधीश को आपराधिक दुराचार के लिए आरोपित एवं दंडित किया जा सकता है। अनुच्छेद 124(5) के अंतर्गत दुराचार शब्द में भ्रष्टाचार विरोधी अधिनियम में परिभाषित आपराधिक दुराचार शामिल है।

भारतीय संविधान सर्वोच्च न्यायालय में न्यायाधीश रह चुके व्यक्ति पर अनुच्छेद 124(6) और (7) के अंतर्गत भारत के किसी भी न्यायालय में वकालत करने पर प्रतिबंध लगाता है, लेकिन अनुच्छेद 128 के अंतर्गत मुख्य न्यायाधीश सेवानिवृत न्यायाधीशों को सर्वोच्च न्यायालय के तदर्ध न्यायाधीश के रूप में कार्य करने हेतु नियुक्त कर सकता है।

यदि भारत के मुख्य न्यायाधीश का पद रिक्त हो अथवा जब अनुपस्थिति के कारण मुख्य न्यायाधीश अथवा कार्य करने में असमर्थ हो, तब अनुच्छेद 126 के अंतर्गत राष्ट्रपति सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीशों में से एक को कार्यवाह मुख्य न्यायाधीश नियुक्त कर सकता है।

यदि किसी समय सर्वोच्च न्यायालय में किसी सत्र को चलाने के लिए न्यायाधीशों का कोरम न हो तो सर्वोच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश को यह शक्ति प्राप्त है कि उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों में से सर्वोच्च न्यायालय का न्यायाधीश नियुक्त होने की योग्यता रखने वाले किसी न्यायाधीश को सर्वोच्च न्यायालय का तदर्थ न्यायाधीश उतने समय के लिए नियुक्त कर सकता है, जितना समय वह जरूरी समझता है। वह राष्ट्रपति एवं नियुक्त किए जाने वाले व्यक्ति की पूर्व सहमति से ही ऐसा कर सकता है। इस प्रकार से नियुक्त न्यायाधीश सर्वोच्च न्यायालय के कार्यों को प्राथमिकता देने के लिए बाध्य होता है।

भारत का मुख्य न्यायाधीश सर्वोच्च न्यायालय अथवा उच्च न्यायालय के किसी सेवा निवृत न्यायाधीश को भी, जिसमें सर्वोच्च न्यायालय का न्यायाधीश नियुक्त होने की योग्यता हो, उतने समय के लिए कार्यवाह न्यायाधीश के रूप में कार्य करने के लिए आमंत्रित कर सकता है। ऐसा करने से पूर्व उसको राष्ट्रपति तथा नियुक्त किए जाने वाले व्यक्ति की पूर्व सहमति चाहिए होती है (अनुच्छेद 127 और 128)

सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीशों को संसद के कानून द्वारा निर्धारित तथा अनुच्छेद 125 के अंतर्गत संविधान की दूसरी सूची में दर्ज वेतन दिया जाता है। इसके अतिरिक्त उन्हें सम्चुअरी भत्ते, बिना किराए का सुसज्जित आवास, टेलीफोन, पानी, बिजली, चिकित्सा तथा अन्य कई सुविधाएं नि:शुल्क प्रदान की जाती है।

संविधान में प्रावधान है कि सर्वोच्च न्यायालय दिल्ली में होगा। हालांकि भारत का मुख्य न्यायाधीश राष्ट्रपति की पूर्व सहमति से अन्य किसी भी ऐसे स्थान पर बैठकर कार्य कर सकता है, जहां से वह कार्य करने का फैसला कर ले। वर्तमान में सर्वोच्च न्यायालय दिल्ली से कार्य कर रहा है।

पाठगत प्रश्न 23.1

1. भारत के सर्वोच्च न्यायालय में वर्तमान में मुख्य न्यायाधीश सहित कुल कितने न्यायाधीश हैं?
2. भारत का राष्ट्रपति मुख्य न्यायाधीश के अलावा सर्वोच्च न्यायालय के अन्य न्यायाधीशों को कैसे नियुक्त करता है?

3. भारत का मुख्य न्यायाधीश कैसे नियुक्त किया जाता है? किसी एक मामले का उल्लेख कीजिए, जो परंपरा का अपवाद रहा हो।
4. राष्ट्रीय न्यायिक आयोग को गठित करने का विधेयक कब और क्यों प्रस्तावित किया गया?
5. सर्वोच्च न्यायालय के किसी न्यायाधीश को किन आधारों पर अपदस्थ किया जा सकता है?

23.2 सर्वोच्च न्यायालय की शक्तियां और क्षेत्राधिकार

अनुच्छेद 129 में प्रावधान है कि सर्वोच्च न्यायालय एक अभिलेख न्यायालय होगा और इसके पास इस प्रकार के न्यायालय की सभी शक्तियां होंगी। देश का उच्चतम न्यायालय होने के नाते इसकी कार्यवाइयां, अधिनियम और निर्णयों को सतत याद रखने के लिए और कानून के पक्ष में साक्ष्य के रूप में प्रस्तुत करने के लिए रिकॉर्ड के तौर पर रखा जाता है। अभिलेख न्यायालय होने का अभिप्राय है कि इसके रिकॉर्ड को साक्ष्य के रूप में प्रयोग किया जा सकता है और किसी अदालत में इनकी प्रामाणिकता पर प्रश्न नहीं उठाया जा सकता। अभिलेख न्यायालय का यह भी अर्थ है कि यह अपनी अवमानना के लिए दंड भी दे सकता है, लेकिन यह ऐसी शक्ति है, जिसका बहुत ही दबावपूर्ण स्थिति में यदा कदा प्रयोग किया जाता है। यह न्यायालय और इसकी कार्यप्रणाली की सच्ची तथा सुविचारित आलोचना करने पर पाबंदी नहीं लगाता। जनहित में न्यायिक कार्यों की निष्पक्ष और तर्क युक्त आलोचना को न्यायालय की अवमानना नहीं माना जाता। सर्वोच्च न्यायालय का प्रारम्भिक, अपीलीय और परामर्शक क्षेत्राधिकार है।

23.2.1 क्षेत्राधिकार

A. प्रारम्भिक क्षेत्राधिकार

प्रारम्भिक क्षेत्राधिकार का अर्थ है कि किसी विवाद पर सबसे पहले सुनवाई और निर्धारण करने की शक्ति। सर्वोच्च न्यायालय का निम्नलिखित मामलों में अनन्य प्रारम्भिक क्षेत्राधिकार है, जो निम्नलिखित विवादों पर लागू होता है–

- भारत सरकार बनाम एक अथवा अधिक राज्य,
- भारत सरकार और एक या अधिक राज्य एक तरफ तथा एक या अधिक राज्य दूसरी ओर,
- दो या अधिक राज्यों के बीच विवाद।

सर्वोच्च न्यायालय अपने प्रारम्भिक क्षेत्राधिकार के अंतर्गत ऐसे मुकदमे नहीं ले सकता, जिसमें कोई एक व्यक्ति भारत सरकार के विरुद्ध मुकदमा करता है। न्यायालय के मूल क्षेत्राधिकार से संबंधित विवाद में किसी कानून अथवा तथ्य से संबंधित कोई प्रश्न शामिल होना चाहिए, जिस पर कानूनी अधिकार का अस्तित्व निर्भर करता है। इसका अर्थ है कि न्यायालय को राजनीतिक मामलों में कोई क्षेत्राधिकार प्राप्त नहीं है।

हालांकि इस क्षेत्राधिकार में किसी संधि अथवा समझौते से उत्पन्न विवाद शामिल नहीं होगा, जो वर्तमान में लागू है तथा इसके क्षेत्राधिकार से बाहर है (अनुच्छेद 131)

सर्वोच्च न्यायालय के क्षेत्राधिकार में अंतर्राज्यीय जल विवाद (अनुच्छेद 262); वित्त आयोग को भेजे गए मामले (अनुच्छेद 280) तथा संघ और राज्यों के बीच कुछ खर्चों और पेंशन का समायोजन (अनुच्छेद 290) के मामले शामिल होते हैं।

यदि किसी विवाद को सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष लाना है तो इसमें कानून का कोई प्रश्न अवश्य शामिल होना चाहिए, जिस पर कानूनी अधिकार निर्भर करता हो। अनुच्छेद 139A के अंतर्गत सर्वोच्च न्यायालय अपने पास किसी एक उच्च न्यायालय अथवा कई उच्च न्यायालयों से मुकदमे मंगवा सकता है, जिनमें कानून का अति महत्वपूर्ण प्रश्न निहित हों। न्याय के हित में सर्वोच्च न्यायालय एक उच्च न्यायालय से मुकदमों को दूसरे उच्च न्यायालय में स्थानांतरित भी कर सकता है।

सर्वोच्च न्यायालय का प्रारम्भिक क्षेत्राधिकार व्यक्ति के मौलिक अधिकारों के उल्लंघन तक फैला हुआ है और सर्वोच्च न्यायालय इन अधिकारों को लागू करवाने के लिए अनेक लेख (रिट्स) जारी कर सकता है। यह हमारे संविधान की अद्वितीय विशेषता है कि कोई भी व्यक्ति अपने मौलिक अधिकारों के उल्लंघन के मामले में सिद्धांत रूप से सीधे सर्वोच्च न्यायालय का सहारा ले सकता है।

B. अपीलीय क्षेत्राधिकार

सर्वोच्च न्यायालय का अपीलीय क्षेत्राधिकार दीवानी, आपराधिक और सांविधानिक मामलों तक फैला हुआ है। किसी दीवानी मामले में सर्वोच्च न्यायालय में उच्च न्यायालय के निर्णय, डिक्री अथवा अंतिम आदेश के विरुद्ध अपील की जा सकती है, यदि उच्च न्यायालय अनुच्छेद 134A के अंतर्गत यह प्रमाणित कर दे कि मामले में कानून का कोई महत्वपूर्ण प्रश्न शामिल है और मामले पर सर्वोच्च न्यायालय का निर्णय आवश्यक है। उच्च न्यायालय केवल तभी प्रमाण- पत्र जारी करता है, जब स्थिति असाधारण रही हों तथा गंभीर अन्याय किया गया हो। अत: उच्च न्यायालय द्वारा केवल तथ्यों के प्रश्न पर प्रमाण-पत्र जारी नहीं किया जा सकता, जब तक कि कानून से संबंधित कोई गंभीर प्रश्न निहित न हो।

आपराधिक मामलों में सर्वोच्च न्यायालय में अपील की जा सकती है, यदि उच्च न्यायालय ने-

- किसी व्यक्ति की दोष मुक्ति को पलटकर उसको मृत्यु दंड दे दिया हो।
- किसी अधीनस्थ न्यायालय से कोई मुकदमा अपने यहां स्थानांतरित करवा के मुकदमे में दोषी व्यक्ति को अपराधी घोषित करके उसे मृत्युदंड दे दिया हो (अनुच्छेद 134)

यह नोट किया जाना चाहिए कि संविधान लागू होने से पहले भारत में एक संघात्मक न्यायालय था। इसका गठन भारत सरकार अधिनियम 1935 के अंतर्गत किया गया था और स्वतंत्र भारत के संविधान ने इसको समाप्त किया था। संविधान में अनुच्छेद 135 शामिल किया गया, ताकि सर्वोच्च न्यायालय उन मामलों में क्षेत्राधिकार बनाए रख सके, जिन पर संघात्मक न्यायालय (फेडरेल कोर्ट) अपना क्षेत्राधिकार रखता था।

अनुच्छेद 136 के अंतर्गत सर्वोच्च न्यायालय भारत भूक्षेत्र में किसी ट्रिब्यूनल अथवा न्यायालय द्वारा दिए गए किसी निर्णय, डिक्री, निर्धारण, सजा अथवा आदेश के विरुद्ध अपील करने की इजाजत दे सकता है।

सर्वोच्च न्यायालय की 'अपील करने की इजाजत' देने संबंधी शक्ति उच्च न्यायालय से काफी अधिक है।

सर्वोच्च न्यायालय सैनिक अदालतों के अतिरिक्त देश में स्थित किसी भी न्यायालय अथवा ट्रिब्यूनल के किसी भी प्रकार के मामलों, आपराधिक अथवा राजस्व मामलों के फैसलों के विरुद्ध अपील करने की इजाजत दे सकता है, लेकिन सर्वोच्च न्यायालय ने स्वयं कहा है कि यह केवल उन मामलों में अपील करने की अनुमति देगा, जिनमें न्याय गलत ढंग से किया गया हो अथवा जहां उच्च न्यायालय या ट्रिब्यूनल कानूनी तौर पर गलती पर हों। अतः इसको आमतौर के व्यवहार के रूप में नहीं लिया जाता।

क्या आप जानते है

ट्रिब्यूनल न्यायालय न होते हुए भी प्राधिकार का ऐसा निकाय होता है, जिसमें न्यायालय के सभी लक्षण होते हैं तथा जिसके पास कानून अथवा किसी न्यायिक मामले में नागरिकों के अधिकारों को प्रभावित करने वाले तथ्य के प्रश्नों पर निर्णय लेने की न्यायिक शक्तियां होती हैं।

अनुच्छेद 137 सर्वोच्च न्यायालय को अपने ही निर्णयों तथा आदेशों के पुनरावलोकन की शक्ति प्रदान करता है। सर्वोच्च न्यायालय का निर्णय है कि देश के सर्वोच्च न्यायालय का निर्णय अंतिम है। कुछ निर्णयों का पुनरावलोकन एक असाधारण घटना है, जिसकी अनुमति केवल ऐसे मामलों में होती है, जहां कोई बड़ी गलती हो गई हो।

C. परामर्श संबंधी क्षेत्राधिकार

संविधान का अनुच्छेद 143 सर्वोच्च न्यायालय को परामर्श क्षेत्राधिकार प्रदान करता है। राष्ट्रपति, कानून के किसी प्रश्न पर अथवा जनहित संबंधी किसी तथ्य पर यदि राय प्राप्त करना जरूरी समझे तो सर्वोच्च न्यायालय से सलाह (राय) मांग सकता है।

राष्ट्रपति से प्राप्त ऐसे संदर्भों पर सर्वोच्च न्यायालय अपनी राय दे सकता है। यह राय केवल परामर्श (सलाह) के रूप में होती है, जिसको मानने अथवा न मानने के लिए राष्ट्रपति स्वतंत्र होता है। इसी प्रकार यह सर्वोच्च न्यायालय पर भी निर्भर करता है कि वह किसी मामले के आधार पर अपनी राय दे अथवा नहीं।

अनुच्छेद 139 निर्धारित करता है कि संसद सर्वोच्च न्यायालय को ऐसे मामलों पर दिशा-निर्देश जारी करने का आदेश अथवा आदेश जारी करने की शक्ति प्रदान कर सकती है, जिन पर अनुच्छेद 32 के अंतर्गत पहले से अधिकार नहीं दिया गया है। अनुच्छेद 140 के अंतर्गत संसद, सर्वोच्च न्यायालय को संविधान द्वारा सौंपे गए कार्यों को प्रभावकारी ढंग से पूरा करने के लिए, उसकी शक्तियों को बढ़ा सकती है। अनुच्छेद 141 के अंतर्गत सर्वोच्च न्यायालय द्वारा घोषित निर्णय भारत के सभी न्यायालय को यह शक्ति प्रदान करता है कि वह अपने क्षेत्राधिकार में पूरा न्याय करने के लिए आवश्यक डिक्री अथवा आदेश जारी कर सकता है। न्यायालय द्वारा दिए

गए आदेश अथवा डिक्री संसद द्वारा निर्धारित विधि से देश के पूरे क्षेत्र में लागू रहते हैं। जब तक संसद द्वारा कोई नया प्रावधान नहीं किया जाता, तब तक राष्ट्रपति द्वारा निर्धारित तरीके से न्यायालय के आदेश लागू रहते हैं।

अनुच्छेद 144 के अंतर्गत सर्वोच्च न्यायालय के दिशा-निर्देशों और निर्णयों को प्रभावकारी बनाने हेतु भारत के सभी लोक सेवकों तथा न्यायिक अधिकारियों को सर्वोच्च न्यायालय के अधिकार के अधीन रखा गया है। सर्वोच्च न्यायालय समय-समय पर राष्ट्रपति की स्वीकृति से न्यायालयों की कार्यवाहियों व प्रक्रियाओं को नियंत्रित करने के लिये नियम बनाता है।

पाठगत प्रश्न 23.2

1. 'कानूनी अधिकार' का अर्थ स्पष्ट कीजिए।
2. सर्वोच्च न्यायालय के पास किन स्थितियों में एक अथवा अधिक उच्च न्यायालयों से मामलों (मुकदमों) को अपने पास स्थानांतरित करने की शक्ति है?
3. सर्वोच्च न्यायालय को मौलिक अधिकारों की रक्षा के लिए किस अनुच्छेद के अंतर्गत लेख (रिट्स) जारी करने का अधिकार है?
4. सर्वोच्च न्यायालय की अपीलीय क्षेत्राधिकार किन मामलों तक फैला हुआ है?
5. 'ट्रिब्यूनल' को परिभाषित कीजिए।

23.3 न्यायपालिका : संविधन की संरक्षक और मौलिक अध्किारों की रक्षक

जब कभी आपके मस्तिष्क में 'अदालत' शब्द आता है तो आपको तुरंत किस चीज का ध्यान आता है? न्याय का ध्यान आता है। ऐसा इसलिए है कि अदालतों अथवा न्यायपालिका को प्रत्येक को तथा सब जगह न्याय प्रदान करने का कार्य सौंपा गया है। भारत में जब कभी किसी व्यक्ति, अधिकारी अथवा राज्य द्वारा संविधान के भाग III में दिए गए मौलिक अधिकारों का उल्लंघन होता है तो न्यायपालिका हस्तक्षेप करती है।

न्यायपालिका अनुच्छेद 32 के अनुरूप काम करती है, जो मौलिक अधिकारों और न्याय को लागू करने के लिए कार्यविधि निर्धारित करता है। डॉ. बी.आर. अंबेडकर ने अनुच्छेद 32 के महत्व के बारे में कहा था कि ''यदि कोई मुझसे किसी एक अनुच्छेद के बारे में पूछे कि जिसके बिना संविधान शून्य है तो मैं इस अनुच्छेद के अतिरिक्त किसी अन्य का जिक्र नहीं कर सकूंगा, यह संविधान की आत्मा और हृदय है।'' अत: संविधान का अनुच्छेद 32 मौलिक अधिकारों को लागू करने का एक प्रभावकारी उपचार प्रदान करता है।

अनुच्छेद 32(1) संविधान के भाग III द्वारा प्रदत्त मौलिक अधिकारों को लागू करवाने हेतु उपयुक्त कार्यवाही द्वारा सर्वोच्च न्यायालय तक जाने का अधिकार सुनिश्चित करता है। अनुच्छेद

32 की खण्ड (2) सर्वोच्च न्यायालय को दिशा-निर्देश, आदेश अथवा लेख जारी करने का अधिकार देती है, जिनमें बंदी प्रत्यक्षीकरण, परमादेश, प्रतिषेध, अधिकार पृच्छा और उत्प्रेषण जैसे लेख सम्मिलित हैं। अनुच्छेद 32 की खण्ड (3) के अंतर्गत संसद किसी अन्य न्यायालय को वह सब शक्तियां प्रदान कर सकती है, जो खण्ड (2) के अंतर्गत सर्वोच्च न्यायालय प्रयोग कर सकता है। खण्ड (4) कहता है कि इस अनुच्छेद के अंतर्गत प्रत्याभूत अधिकार संविधान के ही किसी अन्य प्रावधान के अतिरिक्त किसी अन्य कारण से स्थगित नहीं किए जा सकते। इस प्रकार यह मौलिक अधिकारों को विधायिका और कार्यपालिका के हस्तक्षेप से रक्षा करने का उपचार प्रदान करता है। अत: यह स्पष्ट है कि जब कभी मौलिक अधिकारों का उल्लंघन हो तो कोई भी व्यक्ति उपयुक्त उपचार के लिए न्यायालय जा सकता है।

हमारे देश द्वारा अपनाई गई न्यायिक व्यवस्था न्यायालयों की एक शृंखला (पदसोपन) पर आधारित है। अधीनस्थ न्यायालयों से लेकर सर्वोच्च न्यायालय तक न्यायालयों की एक शृंखला है, जो प्रत्येक स्तर पर न्याय देने के लिए कार्य करते हैं। इसलिए ऐसी आशा की जाती है कि साधारण व्यक्ति पहले निचली अदालतों से न्याय पाना चाहता है और यदि केस में जटिलता हो, तब लोग उच्च अदालतों में जाने के लिए स्वतंत्र हैं। इस तरीके से सर्वोच्च न्यायालय पर बोझ को कम करने के लिए अलग-अलग स्तरों पर अदालतों की एक शृंखला है।

सर्वोच्च न्यायालय और उच्च न्यायालयों को अनुच्छेद 32 और अनुच्छेद 226 के अंतर्गत लेख (रिट) जारी करने की शक्तियां प्राप्त हैं। संसद किसी भी अन्य अदालत को सर्वोच्च न्यायालय और राज्य उच्च न्यायालयों जैसे किसी भी न्यायालय को अभिलेख जारी करने की शक्ति प्रदान कर सकती है। रोचक बात यह है कि उच्च न्यायालय की लेख जारी करने की शक्ति सर्वोच्च न्यायालय को प्राप्त शक्ति से कहीं अधिक है। उच्च न्यायालयों के पास न केवल मौलिक अधिकारों को लागू करवाने के लिए लेख जारी करने का अधिकार है, अपितु मौलिक अधिकारों के अतिरिक्त अन्य कानूनी अधिकारों के लिए भी यह अधिकार है (अनुच्छेद 226)। संविधान में पांच लेखों (रिट) का उल्लेख किया गया है, जिनके बारे में आपने मौलिक अधिकारों के अध्याय में पढ़ा होगा।

लेख के अतिरिक्त सर्वोच्च न्यायालय और उच्च न्यायालय के लोगों के हित में न्याय हेतु दिशा-निर्देश और आदेश जारी कर सकते हैं। न्यायपालिका इन प्रादेशों तथा अन्य तरीकों के माध्यम से व्यक्ति के मौलिक अधिकारों तथा स्वतंत्रताओं की रक्षा के लिए बहुत कुछ करती है। इसलिए इसको संविधान का संरक्षक तथा मौलिक अधिकारों का रक्षक कहा जाता है।

पाठगत प्रश्न 23.3

1. मौलिक अधिकारों के संदर्भ में किस न्यायालय को लेख (रिट) जारी करने की शक्तियां हैं?
2. न्यायपालिका को मौलिक अधिकारों का रक्षक क्यों कहा जाता है?
3. भारत की न्यायिक व्यवस्था किस प्रकार न्यायालयों के पदसोपान पर आधारित है?

23.4 जनहित याचिका और न्यायिक सक्रियता

जनहित याचिका कानूनी सहायता आंदोलन का एक रणनीतिक हथियार है, जिसका उद्देश्य न्याय को गरीब जनता की पहुंच तक लाना है। यह ऐसे लोगों को न्याय दिलाने का एक तरीका है, जो व्यक्तिगत तौर पर न्यायालयों तक पहुंच पाने की स्थिति में नहीं हैं। इसको लोगों के उस वर्ग के लाभ के लिए शुरू किया गया था, जिन्हें अपनी सामाजिक और आर्थिक अक्षमताओं के कारण संवैधानिक और कानूनी अधिकारों से वंचित रखा गया था। जनहित याचिका का उद्देश्य इस देश के जनसाधारण की अदालतों तक पहुंच बनाना तथा उन्हें कानूनी निवारण प्राप्त करवाना है।

'लोकस स्टैंडाइ' के पारंपरिक एंग्लो सैक्सोन सिद्धांत के अनुसार केवल वही लोग न्यायिक निवारण की तलाश कर सकते थे, जिनके अधिकारों का उल्लंघन हुआ हो। यह सिद्धांत उस युग में विकसित हुआ, जब न्यायालयों की मुख्य चिंता लोगों के अधिकार थे। इसलिए यह अनुभव किया गया कि 'लोकस स्टैंडाइ' सिद्धांत की पारंपरिक व्याख्या को बदला जाए, ताकि न्याय गरीब लोगों की पहुंच तक आ सके। इस सिद्धांत की नई व्याख्या के अनुसार जब किसी व्यक्ति अथवा लोगों के किसी वर्ग के अधिकारों का उल्लंघन होता है और वे अपनी गरीबी अथवा अक्षमता के कारण न्यायालय तक नहीं पहुंच सकते तो कोई अच्छी नीयत से काम कर रही जन भावना से प्रेरित व्यक्ति अथवा संस्था न्यायिक निवारण हेतु अदालत (न्यायालय) तक जा सकता है।

'एस.पी. गुप्ता बनाम भारतीय संघ' के ऐतिहासिक केस जिसे प्रायः न्यायाधीशो का वाद केस कहा जाता है, में न्यायाधीश पी.एन. भगवती ने कहा था कि अल्पाधिकार प्राप्त या वंचित लोगों की समस्याओं को न्यायालयों के समक्ष लाने में मुख्य बाधा 'लोकस स्टैंडाइ' का पारंपरिक सिद्धांत है। 'लोकस स्टैंडाइ' की धारणा को अस्वीकार करते हुए उसने निर्णय किया कि कोई भी जन भावना से प्रेरित व्यक्ति अदालत में जा सकता है, बशर्त है कि ऐसा व्यक्ति जनहित में काम कर रहा हो और न कि वे अपने व्यक्तिगत लाभ, राजनीतिक प्रेरणा अथवा अन्य किसी सोच से काम कर रहा हो। इस प्रकार न्यायालय ने रूढ़िवादी 'लोकस स्टैंडाइ' के सिद्धांत को परे कर दिया है और अब यह एक पत्र के माध्यम से भी किया जा सकता है, जिसे न्यायालय याचिका के रूप में स्वीकार करेगा।

जनहित याचिका का पहला प्रतिवेदित केस 1979 में हुआ था, जिसने जेलों में बंद और विचाराधीन कैदियों की अमानवीय स्थिति पर ध्यान केंद्रित किया। 'हुसैनारा खातून बनाम बिहार राज्य' मामले में एक एडवोकेट द्वारा विभिन्न जेलों में सड़ रहे हजारों विचाराधीन कैदियों की स्थिति पर हिंदुस्तान टाइम्स में छपी खबर रिपोर्ट के आधार पर जनयाचिका दायर की थी। इससे कार्यवाहियों की एक श्रृंखला शुरू हुई और 40 हजार से अधिक कैदियों को रिहाई मिली। इस केस के बाद सर्वोच्च न्यायालय ने तीव्र न्याय के अधिकार को एक मूलभूत अधिकार बताया, जो कैदियों को नहीं दिया जाता था।

लेकिन फिर भी अनेक लोग कानूनी और न्यायिक अधिकारियों की सनक का शिकार थे, जिन्होंने निर्धारित सजा से कहीं अधिक सजा पूरी की थी। सर्वोच्च न्यायालय ने न्याय देने वाले

अधिकारियों से पीड़ित लोगों को प्रतिपूरक न्याय प्रक्रिया द्वारा माफी देने की प्रक्रिया विकसित की। प्रतिपूरक न्याय व्यवस्था को 1993 में 'नीलाबती बनाम उड़ीसा राज्य' केस में एक जनहित याचिका के प्रत्युत्तर में स्पष्ट रूप से व्यक्त किया, जिसमें 22 वर्ष के एक लड़के की पुलिस हिरासत में मौत का आरोप था। न्यायालय ने अधिकारों के उल्लंघन पर क्षतिपूर्ति के सिद्धांत को सार्वजनिक कानून सिद्धांत के रूप में विकसित किया। इस सिद्धांत के अनुसार अधिकारों के उल्लंघन की पूरी देनदारी राज्य की है। इस केस में लड़के की हिरासत में हुई मौत के कारण उसकी मां को क्षतिपूर्ति के रूप में 1 लाख 50 हजार रुपये दिलवाए।

इसी प्रकार बंधुआ मुक्ति मोर्चा बनाम भारतीय संघ केस में बंधुआ मजदूरों को छुड़ाने के लिए समर्पित एक संस्था ने सर्वोच्च न्यायालय को एक पत्र के माध्यम से सूचित किया कि उन्होंने हरियाणा राज्य में स्थित फरीदाबाद जिले में पत्थर की खानों में काम करने वाले खदान मजदूरों पर एक सर्वे कराया और पाया कि पत्थर की इन खदानों में बहुत बड़ी संख्या में मजदूर अमानवीय और असहनीय परिस्थितियों में काम कर रहे हैं और उनमें से अधिकांश बंधुआ मजदूर हैं। इस याचिका ने न्यायपालिका से इन मजदूरों की तकलीफों, कष्टों और असहाय स्थिति को समाप्त करने के लिए लेख (रिट) जारी करने का निवेदन किया था। सर्वोच्च न्यायालय ने उस पत्र को याचिका के रूप में स्वीकार किया और एक जांच आयोग का गठन किया और सभी बंधुआ मजदूरों को मुक्त करने तथा पुनर्वासित करने का आदेश दिया। जनहित याचिका सामाजिक क्रांति का एकमात्र हथियार बन चुकी है।

न्यायिक सक्रियता

सर्वोच्च न्यायालय ने अब एक कल्याणकारी राज्य में अपनी सही भूमिका को महसूस किया है और इस रणनीति का प्रयोग वह न केवल गरीबों को अपने अधिकार दिलाने में सहायता करने के लिए कर रहा है, अपितु पूरे समाज को अपराधमुक्त व व्यवस्थित कर रहीं है।

सर्वोच्च न्यायालय की विधायिका और कार्यपालिका की कमियों को पूरा करने की भूमिका सराहनीय है। इससे उच्चतर न्यायालयों में न्यायिक सक्रियता विकसित हो रही है।

'न्यायिक सक्रियता' न्याय प्रदान करने के लिए न्यायपालिका द्वारा नीतियां शुरू करने की भूमिका को एक साधारण व्यक्ति द्वारा दिया गया नाम है। यह प्रायः जनहित याचिका के माध्यम से होता है, परंतु सर्वोच्च न्यायालय ने समय-समय पर था तो निवेदन पर या स्वयं अपने आप अन्याय के निवारण हेतु दिशा- निर्देश, लेख अथवा आदेश दिए हैं।

'न्यायिक सक्रियता' सरकार के अन्य दो अंगों अर्थात् विधायिका और कार्यपालिका की आलोचना की निरंतर शिकार रही है। यद्यपि यह सक्रियता उनके द्वारा न्याय प्रदान करने में असफलता अथवा कमजोर प्रयासों के कारण उभरी है, परंतु इस पर भी वे न्यायपालिका की आलोचना उसके द्वारा अपना क्षेत्र बढ़ाने के कानूनी आधार पर करते हैं। इस आलोचना से परे लोग ही यह निर्णय करते हैं कि क्या अच्छा है क्या बुरा। और जब न्याय प्रदान करने का प्रश्न हो तो न्याय प्रदान करने की राह में तकनीकियां बाधक नहीं होनी चाहिएं। यदि अन्य संस्थाएं अपनी भूमिका निभाने में असफल हो जाएं तो न्यायपालिका को सक्रिय होना ही पड़ता है।

पाठगत प्रश्न 23.4

1. जनहित याचिका का प्राथमिक उद्देश्य क्या है?
2. 'लोकस स्टैंडाइ' (Locuos Standi) के पारंपरिक एंग्लो सैक्सन सिद्धांत का क्या अर्थ है?
3. जनहित याचिका को सामाजिक क्रांति का एकमात्र हथियार क्यों कहा जाता है?
4. न्यायपालिका की कौन-सी दो त्रुटियों के कारण न्यायिक सक्रियता का उद्भव हुआ?
5. किस केस (वाद) में न्यायालय ने एक पत्र को ही याचिका के रूप में स्वीकार किया था।

23.5 उच्च न्यायालय एवं अधीनस्थ न्यायालय

भारत का संविधान प्रत्येक राज्य के लिए एक उच्च न्यायालय का प्रावधान करता है। संसद दो या अधिक राज्यों के लिए और किसी संघीय क्षेत्र के लिए एक सांझा (संयुक्त) उच्च न्यायालय स्थापित कर सकती है। (अनुच्छेद 214 और 231) सर्वोच्च न्यायालय की भांति प्रत्येक उच्च न्यायालय भी एक अभिलेख न्यायालय है और इसके पास पूरा प्रारम्भिक और अपीलीय क्षेत्राधिकार है तथा इसके पास अवमानना के लिए दंड देने की भी शक्ति है (अनुच्छेद 215)।

उच्च न्यायालय का मुख्य न्यायाधीश राष्ट्रपति द्वारा भारत के मुख्य न्यायाधीश एवं राज्य के राज्यपाल से परामर्श के बाद नियुक्त किया जाता है और न्यायाधीशों की नियुक्ति के मामले में उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश से भी परामर्श किया जाता है।

उच्च न्यायालय का न्यायाधीश होने के लिए किसी व्यक्ति में निम्नलिखित योग्यताएं होनी चाहिए-

- भारत का नागरिक होना चाहिए,
- न्यायिक पद पर कम-से-कम दस वर्ष का सेवाकाल होना चाहिए,
- किसी उच्च न्यायालय के वकील के रूप में दस वर्ष का अनुभव होना चाहिए।

चित्र 23.2: उच्च न्यायालय (कोलकत्ता)

उच्च न्यायालय के प्रत्येक न्यायाधीश को अपना पद ग्रहण करते समय शपथ लेनी होती है। वह 62 वर्ष की आयु तक अपने पद पर रहता है। उसे अपने पद से उसी विधि से अपदस्थ किया जा सकता है, जैसे कि सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीश के लिए निश्चित है। सेवा निवृति के बाद उसे उस उच्च न्यायालय में वकालत करने की पाबंदी है, जहां से वह सेवा निवृत हुआ है तथा अधीनस्थ न्यायालयों में भी पाबंदी है, परंतु वह किसी अन्य उच्च न्यायालय अथवा सर्वोच्च न्यायालय में वकालत कर सकता है। उच्च न्यायालय का प्रत्येक न्यायाधीश संसद द्वारा निर्धारित वेतन तथा भत्ते प्राप्त करने अथवा संविधान की दूसरी सूची में निश्चित वेतन तथा भत्ते पाने का अधिकारी है।

उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश से परामर्श के बाद राष्ट्रपति न्यायाधीशों को एक न्यायालय से दूसरे न्यायालय में स्थानांतरित कर सकता है (अनुच्छेद 222)। यदि आवश्यकता हो तो वह उच्च न्यायालय का कार्यवाह मुख्य न्यायाधीश, अतिरिक्त न्यायाधीश एवं अन्य कार्यवाह न्यायाधीशों को दो वर्ष के सीमित कार्यकाल के लिए नियुक्त कर सकता है। उच्च न्यायालय का मुख्य न्यायाधीश भी राष्ट्रपति की सहमति से किसी सेवा निवृत न्यायाधीश को एक न्यायाधीश के रूप में कार्य करने के लिए नियुक्त कर सकता है।

प्रत्येक उच्च न्यायालय में एक मुख्य न्यायाधीश तथा राष्ट्रपति द्वारा समय-समय पर नियुक्त किए गए अन्य न्यायाधीश होंगे (अनुच्छेद 216)। प्रत्येक उच्च न्यायालय के पास सैनिक ट्रिब्यूनलों के अतिरिक्त अन्य सभी न्यायालयों तथा ट्रिब्यूनल अधीक्षण की शक्ति होती है (अनुच्छेद 227)। जब उच्च न्यायालय को ज्ञात होता है कि किसी निचली अदालत में कोई केस विचाराधीन पड़ा है, जिसमें कानून का सारभूत प्रश्न जुड़ा हुआ है, तब वह इस केस को स्वयं लेकर प्रश्न पर निर्णय लेकर केस को पुन: उसी न्यायालय में निर्धारण के लिए भेज सकती है (अनुच्छेद 228)।

अनुच्छेद 226 यह प्रावधान करता है कि प्रत्येक उच्च न्यायालय मौलिक अधिकारों को लागू करने तथा अन्य किसी उद्देश्य के लिए लेख (रिट्स) जारी करने का क्षेत्राधिकार है। 'किसी अन्य उद्देश्य' शब्द डालकर उच्च न्यायालय को सर्वोच्च न्यायालय से अधिक व्यापक शक्ति प्रदान की गई है। उच्च न्यायालय किसी भी अधिकार के उल्लंघन पर लेख (रिट) जारी कर सकता है, जबकि सर्वोच्च न्यायालय केवल मौलिक अधिकारों के उल्लंघन पर ही लेख जारी कर सकता है। परंतु यह याद रखना चाहिए कि मौलिक अधिकारों के उल्लंघन के अतिरिक्त जारी किए लेख सामान्य लेख नहीं होते। यह एक असाधारण उपचार है, जिसकी केवल विशेष परिस्थितियों में ही अपेक्षा की जा सकती है।

सर्वोच्च न्यायालय की भांति प्रत्येक न्यायालय का अपने स्टॉफ पर नियंत्रण होता है। उच्च न्यायालयों के न्यायाधीशों तथा अन्य कर्मचारियों का वेतन एवं भत्ते राज्य की संचित विधि (Consolidated Fund) से दिए जाते हैं। उच्च न्यायालयों के अधिकारियों एवं कर्मचारियों को मुख्य न्यायाधीश अथवा उसके द्वारा अधिकृत किसी अन्य न्यायाधीश या अधिकारी द्वारा नियुक्त किया जाता है। न्यायालय के अधिकारियों एवं कर्मचारियों की सेवा शर्तें मुख्य न्यायाधीश द्वारा बनाए नियमों एवं राष्ट्रपति की स्वीकृति से निश्चित की जाती हैं (अनुच्छेद 229)। किसी न्यायालय का क्षेत्राधिकार किसी संघीय क्षेत्र तक बढ़ाया जा सकता है अथवा उससे बाहर किया जा सकता है।

जैसे कि सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय भारत के सभी न्यायालयों पर बाध्यकारी हैं, वैसे ही उच्च न्यायालय के निर्णय राज्य के भीतर और इसके क्षेत्राधिकार में आने वाले सभी क्षेत्रों के अधीनस्थ न्यायालयों पर बाध्यकारी होते हैं। राज्यपाल उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश हो परामर्श करके जिला न्यायाधीश नियुक्त करता है। 'बार' में सात वर्ष का अनुभव रखने वाला व्यक्ति जिला न्यायाधीश पद के लिए योग्य होता है।

जिला न्यायाधीशों के अतिरिक्त राज्य की न्यायिक सेवा में नियुक्तियां राज्यपाल द्वारा राज्य लोक सेवा आयोग तथा उच्च न्यायालय के परामर्श से की जाती है। (अनुच्छेद 234)

उच्च न्यायालय का जिला न्यायालयों तथा अन्य निचले न्यायालयों पर नियुक्तियों, पदोन्नतियों तथा अवकाश देने संबंधी पूरा प्रशासनिक नियंत्रण है तथा ऐसा ही नियंत्रण न्यायिक सेवा से संबंध रखने वाले किसी व्यक्ति तथा न्यायाधीश से नीचे के पद पर तैनात किसी व्यक्ति पर भी होता है। (अनुच्छेद 235)।

अनुच्छेद 236 प्रयुक्त किए गए विभिन्न पदों की व्याख्या करता है, जबकि अनुच्छेद 237 राज्यपाल को अधीनस्थ न्यायालयों के किसी भी वर्ग के मजिस्ट्रेट के संबंध में प्रावधानों को लागू करने की शक्ति प्रदान करता है।

महत्वपूर्ण बात यह है कि न्यायपालिका लोकतंत्र का स्तंभ है और मानव-जाति के लिए न्याय देने हेतु दृढ़ता से खड़ी रहेगी। न्यायपालिका को निष्पक्ष एवं जिम्मेवार रखने के लिए इसको कार्यपालका एवं विधायिका के प्रभाव से स्वतंत्र रखा गया है। न्यायिक सक्रियता के विकास एवं जनहित याचिका जैसे उपकरणों के जुड़ने से इसकी जिम्मेवारियां और बढ़ गई हैं। व्यावहारिक रूप से यदि विधायिका और कार्यपालिका अपने कर्तव्यों के प्रति उत्तरदायी एवं सजग हो जाएं तो न्यायपालिका को अपना क्षेत्राधिकार बढ़ाने की कोई आवश्यकता नहीं है।

पाठगत प्रश्न 23.5

1. भारत का राष्ट्रपति उच्च न्यायालयों के न्यायाधीशों को कैसे नियुक्त करता है?
2. उच्च न्यायालय के कोई दो कार्य लिखिए।
3. न्यायपालिका को लोकतंत्र का स्तंभ क्यों कहा जाता है?

आपने क्या सीखा

हमारे देश में न्यायालयों की एक पदसोपानिक श्रृंखला है, जो सर्वोच्च न्यायालय से शुरू होकर उच्च न्यायालयों और निचले स्तर पर अधीनस्थ न्यायालयों तक फैली हुई है। न्यायपालिका प्रत्येक प्रकार के पक्षपात एवं प्रभाव से मुक्त होनी चाहिए। इसलिए न्यायपालिका को विधायिका और कार्यपालिका के हस्तक्षेप से स्वतंत्र रखा गया है।

न्यायपालिका को लोगों के मौलिक अधिकारों की रक्षा हेतु लेख जारी करने का क्षेत्राधिकार दिया गया है। न्यायपालिका को विभिन्न शक्तियां प्रदान की गई हैं, इसको संविधान का संरक्षक बनने में सहायता करती हैं।

जनहित याचिका सामाजिक क्रांति के एक उपकरण (हथियार) के रूप में उभरी है, जिसने वंचित और दलितों को न्याय प्रदान करने में सहायता की है।

विधायिका और कार्यपालिका का अपने स्तर पर असफल होने के कारण न्यायिक सक्रियता का उद्भव हुआ है।

सर्वोच्च न्यायालय और उच्च न्यायालयों की शक्तियां और न्याय क्षेत्र लगभग समरूपता हैं।

अधीनस्थ न्यायालयों तथा निम्न न्यायालयों को उच्चतर न्यायालयों के नियमों और निर्णयों का अनुसरण करना होता है, जिसमें उनकी सहायता करने वाला स्टॉफ भी शामिल होता है।

पाठांत प्रश्न

1. सर्वोच्च न्यायालय रचना की रचना का उसके न्यायाधीशों की नियुक्ति के संदर्भ में वर्णन कीजिए।
2. सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीशों को अपदस्थ करने के कौन-से आधार हैं? अपदस्थ करने की प्रक्रिया की व्याख्या कीजिए।
3. सर्वोच्च न्यायालय के क्षेत्राधिकार की व्याख्या कीजिए।
4. न्यायिक सक्रियता का क्या अर्थ है और यह किस प्रकार न्यायिक निवारण में सहायक है?
5. लोगों के अधिकारों की रक्षा करने में जनहित याचिका की भूमिका को उदाहरण सहित लिखिए।
6. उच्च न्यायालय के कार्यों एवं शक्तियों की व्याख्या कीजिए।

पाठगत प्रश्नों के उत्तर

23.1

1. इकतीस
2. राष्ट्रपति द्वारा सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीशों की नियुक्ति सर्वोच्च न्यायालय के अन्य न्यायाधीशों से परामर्श के बाद की जाती है, जिनसे परामर्श करना राष्ट्रपति आवश्यक समझता है। इसके अतिरिक्त मुख्य न्यायाधीश से परामर्श सदैव किया जाता है।
3. भारत के मुख्य न्यायाधीश की नियुक्ति भी राष्ट्रपति करता है। प्राय: सर्वोच्च न्यायालय के वरिष्ठतम न्यायाधीश को मुख्य न्यायाधीश नियुक्त किया जाता है। इसमें अपवाद केवल ए.एन. रे की नियुक्ति थी, जब तीन वरिष्ठ न्यायाधीशों की वरिष्ठता को नजरंदाज कर उन्हें मुख्य न्यायाधीश नियुक्त किया गया था।

4. 1990 में नेशनल फ्रंट सरकार के कानून मंत्री दिनेश गोस्वामी ने राष्ट्रीय न्यायिक आयोग गठित करने के लिए विधेयक प्रस्तावित किया था। इसका गठन सर्वोच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश को छोड़कर अन्य न्यायाधीशों को नियुक्त करने के लिए किया जाता था।
5. दुराचार सिद्ध होने अथवा अक्षमता के आधार पर।

23.2

1. कानूनी अधिकार का अभिप्राय कानून द्वारा मान्य तथा राज्य द्वारा लागू अधिकार से है।
2. सर्वोच्च न्यायालय केवल ऐसे मामलों में अपील की स्वीकृति दे सकता है, जहां गंभीर अन्याय किया गया हो अथवा उच्च न्यायालय या ट्रिब्यूनल कानूनी तौर पर गलत है।
3. अनुच्छेद 32
4. दीवानी, फौजदारी (आपराधिक) और संवैधानिक मामले (मुकदमे)
5. ट्रिब्यूनल न्यायालय न होते हुए भी प्राधिकार का ऐसा निकाय है, जिसमें न्यायालय के सभी लक्षण होते हैं तथा जिसके पास कानून अथवा किसी न्यायिक मामले में नागरिकों के अधिकारों को प्रभावित करने वाले तथ्य के प्रश्नों पर निर्णय लेने की न्यायिक शक्तियां होती है।

23.3

1. उच्च न्यायालय
2. न्यायपालिका मौलिक अधिकारों की रक्षा हेतु लेख (रिट्स) जारी करने के अतिरिक्त दिशा-निर्देश तथा आदेश जारी कर सकती है तथा अन्य प्रकार के उपलब्ध तंत्र का प्रयोग कर सकती है।
3. हमारे यहां अधीनस्थ न्यायालयों से लेकर सर्वोच्च न्यायालय तक न्यायालयों की एक पदसोपानिक श्रृंखला है। जन-साधारण सबसे पहले अधीनस्थ न्यायालय से न्याय पाना चाहता है। जटिलता होने पर वे उच्चतर न्यायालयों में जाने को स्वतंत्र है। इससे न्यायालयों की पदानुक्रम श्रृंखला बनती है।

23.4

1. जनहित याचिका का प्राथमिक उद्देश्य न्याय को गरीब लोगों की पहुंच में लाना तथा कानूनी राहत पाने के लिए न्यायालयों तक उनकी पहुंच बनाना है।
2. इसका अर्थ है कि केवल वही लोग न्यायिक निवारण (राहत) प्राप्त कर सकते हैं, जो पीड़ित है या जिनके अधिकारों का उल्लंघन हुआ हो।

3. • यह न्याय को गरीब लोगों की पहुंच में लाती है।
   • इससे न्याय शीघ्र मिलता है।
   • इसने हजारों विचाराधीन कैदियों की स्थिति में परिवर्तन किया है।
   • कोई भी व्यक्ति निरक्षर, गरीब और दलितों की ओर से न्याय की मांग कर सकता है।
4. (i) शीघ्र न्याय प्रदान करने में विफलता और ढीला-ढाला प्रयास।
   (ii) अत्यधिक तकनीकियों के कारण न्याय में देरी होना।
5. हरियाणा में बंधुआ मजदूरों की दुर्दशा, कष्ट और असहाय होने से संबंधित बंधुआ मुक्ति मोर्चा बनाम भारतीय मंच केस में इसको स्वीकार किया गया था।

23.5

1. उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों को राष्ट्रपति द्वारा भारत के मुख्य न्यायाधीश, राज्य उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश तथा राज्यपाल से परामर्श करने के बाद नियुक्त किया जाता है।
2. (i) उच्च न्यायालय मौलिक अधिकारों की रक्षा के लिए लेख अथवा आदेश जारी करता है।
   (ii) यह अधीनस्थ न्यायालयों में हुए निर्णयों के विरुद्ध अपील सुनता है।
3. यह लोकतंत्र का स्तंभ है, क्योंकि-
   (i) यह न्याय देने में दृढ़ रहती है,
   (ii) यह संवैधानिक मामलों की सही व्याख्या करती है,
   (iii) यह जनहित को सुनिश्चित करती है और कल्याणकारी राज्य को बढ़ावा देती है।

24

पर्यावरणिक कानून

पर्यावरण को समझना हमारे लिए अत्यंत महत्वपूर्ण है क्योंकि यह हमारे वातावरण का निर्माण करता है और यह पृथ्वी पर हमारे जीने की कुशलता को प्रभावित करता है, वायु जिसमें हम सांस लेते हैं, जल जो पृथ्वी के अधिकांश भाग में विद्यमान है, हमारे आसपास पौधों और पशुओं तथा और ऐसे ही अनेकों को प्रभावित करता है। हाल के वर्षों में, वैज्ञानिक उन तरीकों का ध्यानपूर्वक अध्ययन कर रहे हैं जिनका प्रयोग करके लोग पर्यावरण को प्रभावित कर रहे हैं। उन्होंने पाया कि हम वायु प्रदूषण को जन्म दे रहे हैं, वनों को काट रहे हैं, अम्लय वर्षा तथा अन्य अनेक समस्याओं को उत्पन्न कर रहे हैं जो पृथ्वी और स्वयं हमारे लिए हानिकारक हैं। आपने ऊपर उल्लिखित स्थितियों से निपटने के लिए कानूनों, नियमों तथा विनियमों के विषय में अवश्य सुना होगा। पिछले कुछ दशकों में सरकार ने पर्यावरण के संरक्षण तथा संवर्धन के लिए व्यापक रूचि दर्शायी है और इसके परिणामस्वरूप सरकार ने अने पर्यावरणिक कानूनों को पारित किया है। इस पाठ में मुख्य रूप से पर्यावरणिक प्रदूषण का मुख्य संदर्भ लेते हुए पर्यावरण और उसके विनाश पर विस्तार से चर्चा प्रस्तुत की गई है। इसी पाठ में आगे पर्यावरण को प्रदूषण से संरक्षित रखने संबंधी कानूनों और अन्य पर्यावरणिक मुद्दों पर भी ध्यान केन्द्रित किया गया है।

उद्देश्य

इस पाठ का अध्ययन करने के पश्चात आप :

- पर्यावरण तथा हमारे जीवन में इसके महत्व का वर्णन कर पाएंगे;
- जान पाएंगे कि पर्यावरणिक प्रदूषण क्या है और विभिन्न प्रकार के प्रदूषण क्या हैं;
- पर्यावरण की संरक्षण की आवश्यकता को समझ पाएगें;
- पर्यावरणिक प्रदूषण के लिए उत्तरदायी कारकों को जान पाएंगे;
- पर्यावरण के संरक्षण और संवर्धन से संबंधित विभिन्न कानूनों को जान पाएंगे; एवं
- केन्द्रीय प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड तथा राज्य प्रदूषण नियंत्रण बोर्डों को कार्यों को जान पाएगें।

24.1 पर्यावरण का अर्थ

Environment (पर्यावरण) शब्द की उत्पत्ति फ्रेंच शब्द environner (इंवायरोन्नर) शब्द से हुई है, जिसका अर्थ है घेरे में लेना या आसपास को एकत्र करना। पर्यावरण की सर्वाधिक उपयुक्त परिभाषा निम्न है :

यह जल, वायु और भूमि तथा इनमें विद्यमान मनुष्य, अन्य जीव-जंतु तथा पदार्थों के बीच विद्यमान अंतर-संबंध का कुल योग है।

पर्यावरण का भौगोलिक अर्थ है :

यह सजीव तथा निर्जीव वस्तुओं और उनके बीच आपसी संव्यवहार का संयोजन है जिसके परिणामस्वरूप पारितंत्र (ecosystem) की उत्पत्ति होती है।

पर्यावरण में वे सभी सजीव व निर्जीव वस्तुऐं समाहित हैं जो पृथ्वी पर प्राकृतिक रूप से विद्यमान हैं। उच्चतम न्यायालय ने के.एम.चिन्नप्पा बनाम भारत सरकार (एआईआर 2003 एससी 724) में पर्यावरण को निम्नानुसार परिभाषित किया है:

"पर्यावरण" शब्द को परिभाषित करना कठिन है। इसका सामान्य अर्थ अपने परिवेश से संबंधित है, किन्तु निसंदेह, यह वह अवधारणा है जो उसके परिवेश में आने वाले किसी भी वस्तु के सापेक्ष है। पर्यावरण एक बहुकेन्द्रित तथा बहुआयामी समस्या है जो मानव अस्तित्व को प्रभावित कर रही है।

आज पर्यावरण की संरक्षण एक वैश्विक समस्या बन गई है क्योंकि यह सभी देशों को प्रभावित कर रही है चाहे वे किसी भी आकार, स्तर या विकास या विचारधारा वाले देश क्यों न हों। आज, समाज और प्रकृति के बीच का संव्यवहार इतना व्यापक हो गया है कि पर्यावरण के प्रश्न का क्षेत्र काफी व्यापक हो गया है जो बड़े स्तर पर मानवता का प्रभावित कर रहा है।

पाठगत प्रश्न 24.1

1. पर्यावरण शब्द की व्याख्या कीजिए।
2. उच्चतम न्यायालय द्वारा दी गई व्याख्या के अनुसार 'पर्यावरण' की परिभाषा दीजिए।

24.2 पर्यावरणिक प्रदूषण

"प्रदूषण" शब्द से तात्पर्य हमारे आसपास के परिवेश में अवांछित रूप से परिवर्तन है, पूर्णत : या व्यापक स्तर पर उर्जा प्रारूप में परिवर्तन, रासायनिक तथा भौतिक निर्माण तथा जीवाणुओं की बहुतायता के प्रत्यक्षतथा अप्रत्यक्ष प्रभावों के माधयम से मानव क्रिया के उत्पादों के रूप में। इस प्रकार, यह जल, वायु तथा मृदा में किसी बाहरी सामग्री को मिश्रित करना है, जो तत्काल या कुछ समय पश्चात इन मौलिक घटकों के प्राकृतिक गुणों में परिवर्तन उत्पन्न करते हैं और आगे उन्हें अनुपयुक्त तथा हानिकारक बनाकर उनमें प्रतिकूल परिवर्तन उत्पन्न करते हैं। औद्योगिकरण, गरीबी, जनसंख्या विस्फोट, शहरीकरण, संसाधनों को क्षमता से अधिक दोहन आदि कुछ ऐसे कारक हैं जिन्होंने पर्यावरण के ह्रास में योगदान दिया है।

24.2.1 जल प्रदूषण

जल प्रदूषण से तात्पर्य जल निकायों (जैसे नदियां, सागर, जलदायी स्तर तथा भूजल) का संदूषण है। जल प्रदूषण उस समय होता है जब हानिकारण घटकों को निकालने के लिए पर्याप्त उपचार किए बिना प्रदूषकों को प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से इन जल निकायों प्रवाहित किया जाता है।

चित्र 1 : जल प्रदूषण के विभिन्न स्रोत

24.2.2 वायु प्रदूषण

वायु में ऑक्सिजन, नाइट्रोजन, कार्बनडाइऑक्साइड, एरगॉन आदि विभिन्न गैसों का मिश्रण होता है। वायु प्रदूषण तब होता है जब वातावरण में रसायनों, कणों, या जैविक पदार्थ शामिल हो जाते हैं जिनके कारण मनुष्य को बेचौनी, रोग, या मृत्यु होती है, अन्य सजीव जीवाणुओं जैसे खाद्य फसलों, प्राकृतिक पर्यावरण या निर्मित पर्यावरण को खतरा उत्पन्न होता है।

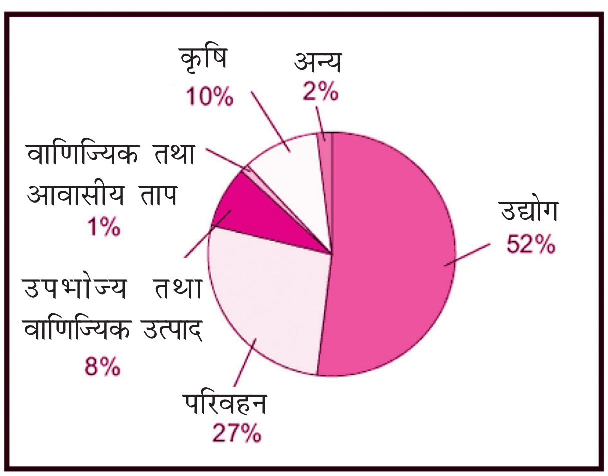

चित्र 2 : प्रदूषण का प्रतिशत अंशदान

वायु प्रदूषण के मुख्य स्रोत हैं :

- औद्योगिक उत्सर्जन
- वाहनों का उत्सर्जन
- घरेलू उत्सर्जन

शहरी क्षेत्रों में पाए जाने वालपे सर्वाधिक सामान्य प्रदूषक हैं - सल्फर डाईऑक्साईड(SO_2), नाईट्रोजन ऑक्साइड (NO & NO_2), कार्बनमोनोक्साइड (CO) आदि। इसके अतिरिक्त, रेफ्रिजरेटरों, एयर कंडीशनरों आदि से उत्सर्जित होने वाले गैसें (क्लोरोफ्लोरोकार्बन) (CFC's) ओजोन परत की क्षणता के लिए उत्तरदायी हैं।

चित्र 3: चिमनियों से निकलने वाला धुआं

24.2.3 ध्वनि-प्रदूषण

ध्वनि (Noise) शब्द की उत्पत्ति लेटिन शब्द 'Nausea' (नौसिया) से हुई है जिसका अर्थ है समुद्री मतली (Sea-Sickness)। ध्वनि कोई अवांछित आवाज है जो पर्यावरणिक संतुलन को प्रभावित करता है। ध्वनि को डैसिबल (decibles) में मापा जाता है। मोटर वाहन, विमान, पटाखे, सायरन, लाउडस्पीकर तथा मशीनें ध्वनि प्रदूषण के मुख्य स्रोत हैं।

राष्ट्रीय भौतिक प्रयोगशाला द्वारा किए गए सर्वेक्षण के अनुसार दिल्ली, मुम्बई और कोलकता विश्व में सर्वाधिक ध्वनि करने वाले शहर हैं। पर्यावरण, मनुष्य तथा पशुओं पर ध्वनि प्रदूषण के हानिकारक प्रभाव होते हैं। मानव स्वास्थ्य पर होने वाले कुछ प्रतिकूल प्रभाव हैं :

- सुनाई न देना या कम सुनाई देना
- रक्तचाप में वृद्धि
- हृदयवाहिनी स्वास्थ्य प्रभाव
- तनाव स्तर में वृद्धि
- कुशलता तथा एकाग्रता में कमी

ध्वनि-प्रदूषण मनुष्य तथा पशुओं के लिए अत्यधिक परेशान करने वाली है या हम कह सकते हैं कि मशीनों द्वारा उत्पन्न पर्यावरणिक ध्वनि मानव तथा पशु जीवन की गतिविधियों या संतुलन को अवरूद्ध करता है। विश्व भर में अधिकरत बाहरी ध्वनि के मुख्य स्रोत निर्माण तथा परिवहन प्रणालियां होती हैं जिनमें मोटर वाहनों से ध्वनियां, विमानों से ध्वनियां, रेलगाड़ियों और इंजनों से ध्वनियां शामिल हैं। खराब शहरी नियोजन से भी ध्वनि प्रदूषण उत्पन्न होता है, क्योंकि औद्योगिक तथा आवासीय भवनों के साथ-साथ निर्मित होने के कारण आवासीय क्षेत्र में ध्वनि प्रदूषण हो सकता है।

24.2.4 भूमि प्रदूषण

निर्वनीकरण या वनों को काटने, भूमि में विषैले तत्वों को छोड़ने, भूमि में अस्वच्छ अपशिष्ट, कूड़ेकचरे, जैव-चिकित्सा अपशिष्टों आदि को फैंकने के कारण भूमि प्रदूषण होता है। कीटनाशकों के अत्यधिक प्रयोग भी भूमि प्रदूषण का स्रोत है क्योंकि यह जल की पेयता का प्रभावित करता है।

24.2.5 स्थूल जल प्रदूषण

अपशिष्ट (Wastes) वे पदार्थ हैं जो उपयोगी नहीं होती है या जिनकी आवश्यकता नहीं होती है और भावी प्रसंस्करण के बिना वे आर्थिक रूप से प्रयोग योग्य नहीं होते हैं। स्थूल अपशिष्ट में कृषि अपशिष्ट, राख, जैव-चिकित्सा अपशिष्ट, मृत पशुओं के शारीर के भाग, घरेलू गतिविधियों से निकला शुष्ट या द्रव्य अपशिष्ट जिसमें प्लास्टिक, धातु, लकड़ी, ग्लास, कागज, डिटर्जेंट, औद्योगिक अपशिष्ट, खनन अपशिष्ट आदि शामिल हैं।

24.2.6 खाद्य-प्रदूषण (भोजन में मिलावट)

सभी जीवों को उर्जा प्राप्त करने के लिए भोजन की आवश्यकता होता है जिससे वे अपनी दैनिक गतिविधियों को करते हैं। यदि खाया जाने वाला भोजन प्रदूषित या मिलावटी होगा तो इससे भोजन करने वाले व्यक्ति के स्वास्थ पर हानिकारक प्रभाव हो सकते हैं। खाद्य प्रदूषण पौधों के विकास के विभिन्न स्तरों पर रासायनिक उर्वरक तथा विभिन्न कीटनाशकों के प्रयोग से ही उत्पन्न हो जाता है। ये रसायन प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से भोजन की गुणवत्ता तथा उपभोक्ता के स्वास्थ्य को प्रतिकूल रूप से प्रभावित करते हैं। खाद्य पदार्थ प्रसंस्करण, भंडारण, पैकेजिंग तथा परिवहन के दौरान भी प्रदूषित होते हैं।

24.2.7 ताप प्रदूषण

तापमान उन परिस्थितियों के निर्धारण में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है जिनमें सजीव जीवाणु जीवित रह सकते हैं। प्राकृतिक तापमान में किसी प्रकार के अवांछित , हानिकारक परिवर्तन, जिसके कारण वातावरण के प्राकृतिक ताप संतुलनमें व्यवधान उत्पन्न होता है, उसे ताप प्रदूषण कहते हैं।

24.2.8 परमाणु (रेडियोधर्मी)-प्रदूषण

सर्वाधिक महत्वपूर्ण तथा हानिकारक प्रकार के प्रदूषणों में से एक परमाणु प्रदूषण है। परमाणु प्रदूषण परमाण विस्फोट से उत्पन्न होता है जिसे परमाणु परीक्षण के लिए किया जाता है और

जिसका प्रयोग आगे परमाणु हथियारों के निर्माण के लिए किया जाता है। इस प्रकार के विस्फोट के कारण 15 से 20 प्रतिशत रेडियोधर्मी कण वातावरण में प्रवेश कर जाते हैं। एक बार जब ये कण वातावरण में प्रवेश करते हैं तो अनेक वर्षों तक ये पृथ्वी पर गिरते रहते हैं। इसका एक उदाहरण हीरोशीमा परमाणु बम्ब विस्फोट है।

क्रियाकलाप 24.1

वायु-प्रदूषण, जल प्रदूषण तथा ध्वनि प्रदूषण के स्रोतों की सूची तैयार करें।

क्र.सं	वायु प्रदूषण	जल प्रदूषण	ध्वनि प्रदूषण
1.			
2.			
3.			
4.			
5.			

पाठगत प्रश्न 24.2

1. निम्न शब्दों को परिभाषित कीजिए
   (क) जल प्रदूषण
   (ख) वायु प्रदूषण
   (ग) ध्वनि प्रदूषण
2. ध्वनि-प्रदूषण के मुख्य स्त्रोतों को चिन्हित कीजिए।
3. मनुष्य के स्वास्थ्य पर प्रदूषण के कुछ प्रतिकूल प्रभावों का उल्लेख कीजिए।

24.3 पर्यावरण संरक्षण

पर्यावरण संरक्षण वह विधि है जिसके द्वारा प्राकृतिक पर्यावरण और मनुष्य को लाभ पहुंचाने के लिए व्यक्तिगत, संगठनात्मक तथा सरकारी स्तर पर प्राकृतिक पर्यावरण को सुरक्षा प्रदान की जाती है। जनसंख्या और प्रौद्योगिकी के दबावों के कारण जैव-भौतिक पर्यावरण का अवक्रमण (degradation) होता है और कई बार तो यह स्थायी रूप से हो जाता है। इस स्थिति को पहचाना गया है और सरकार ने उन गतिविधियों पर प्रतिबंध लगाना आरंभ कर दिया है जिनके कारण पर्यावरण का अवक्रमण हो रहा है। साठ के दशक से पर्यावरण संरक्षण के अभियानों ने पर्यावरण संबधी विभिन्न मुद्दों के प्रति जागरूकता का सृजन किया है। मानव गतिविधियों पर पर्यावरण के प्रभाव के स्तर के संबंध में कोई सहमति नहीं है और संरक्षण उपायों की भी कई बार आलोचना की जाती है।

शैक्षिक संस्थान पर्यावरणिक कानून, पर्यावरणिक ज्ञान, पर्यावरणिक प्रबंधन तथा पर्यावरणिक इंजीनियरिंग जैसे पाठ्यक्रम उपलब्ध करा रहे हैं, जो पर्यावरणिक संरक्षण के इतिहास तथा

विधियों का अध्ययन कराते हैं। विभिन्न मानव गतिविधियों के कारण पर्यावरण के संरक्षण की आवश्यकता उत्पन्न हुई है। अपशिष्ट उत्पादन, वायु प्रदूषण, तथा जैव-विविधता की हानि (तेजी से विकसित होने वाली प्रजातियों और प्रजाति उन्मूलन) पर्यावरणिक संरक्षण के संबंधित कुछ मुद्दे हैं।

पर्यावरणिक संरक्षण तीन अंतर-संबंधित कारकों से प्रभावित होते हैं : पर्यावरणिक विधान, नैतिकता और शिक्षा। इनमें से प्रत्येक कारक राष्ट्रीय स्तर पर पर्यावरणिक निर्णयों और व्यक्तिगत स्तर पर पर्यावरणिक मूल्यों और व्यवहार को प्रभावित करने में अपनी भूमिका अदा करते हैं। पर्यावरणिक संरक्षण को वास्तविकता बनाने के लिए, समाज के लिए यह अत्यंत आवश्यक है कि वे इनमें से प्रत्येक कारक को विकसित करे।

पाठगत प्रश्न 24.3

1. 'पर्यावरण संरक्षण' की परिभाषा दीजिए।
2. पर्यावरणिक संरक्षण को प्रभावित करने वाले कारकों का सूचिवद्ध कीजिए।

24.4 पर्यावरण की संरक्षण की आवश्यकता

- विश्व में एक बिलियन लोगों के पास साफ पानी नहीं है।
- विश्व में दो बिलियन लोगों को सेनिटेशन की सुविधाएं उपलब्ध नहीं हैं।
- डेढ बिलियन लोग (नए औद्योगिक देशों के बड़े शहरों में रहने वाले) खतरनाक तथा दूषित वायु में सांस ले रहे हैं।

मनुष्य और पशु दोनों को स्वच्छ भोजन तथा साफ पानी की आवश्यकता होती है और स्वच्छ भोजन तथा साफ पानी को प्राप्त करने के लिए पारितंत्र (ecosystem) को संरक्षित रखना आवश्यकत है ताकि जीवन को संभव बनाया जा सके। यदि हम प्रदूषण को नहीं रोकेंगे तो यह निश्चित है कि शीघ्र ही पृथ्वी का अंत हो जाएगा।

क्रियाकलाप 24.2

सही विकल्प के साथ निम्नलिखित का मिलान करें :

(i)	ताप प्रदूषण	(क)	हीरोशिमा एटॉमिक बोमबिंग
(ii)	खाद्य प्रदूषण	(ख)	विमान
(iii)	रेडियोधर्मी प्रदूषण	(ग)	तापमान
(iv)	ध्वनि प्रदूषण	(घ)	सिगरेट का धुआं
(v)	वायु प्रदूषण	(ङ)	उर्वरक तथा कीटनाशी

टिप्पणी

पाठगत प्रश्न 24.4

रिक्त स्थानों को भरिए

1. मनुष्य को ________ रहने के लिए स्वच्छ भोजन एवं साफ पानी की आवश्यकता होती है।
2. यदि हमने प्रदूषण की नियंत्रित नहीं किया तो संसार का ________ हो सकता है।

24.5 पर्यावरणिक संरक्षण से संबंधित विधिक तंत्र

पर्यावरणिक कानून पर्यावरण को संरक्षित रखने तथा उसमें सुधार करने और पर्यावरण को प्रदूषित करने वाले या संभावित किसी कृत्य या चूक को रोकने का माध्यम है। पर्यावरणिक विधिक प्रणाली अनिवार्य रूप से कानूनों और प्रशासनिक नियमों का समूह है जो पर्यावरण से संबंधित सभी लोगों के बीच के संबंधों और विरोधों को विनियमित करता है, और साथ ही साथ लोगों और स्वयं पर्यावरण के बीच के संबंधों को भी परिभाषित करता है।

उच्चतम न्यायालय ने 'के.एम.चिन्नप्पा बनाम भारत संघ' (एआईआर 2003 एससी 724) में ''पर्यावरणिक कानून'' को ''पर्यावरण के संरक्षण और सुधार तथा पर्यावरण का प्रदूषित करने वाले या संभावित किसी कृत्य या चूक को रोकने के माध्यम के रूप में'' परिभाषित किया है।

भारत के संविधान में, यह स्पष्ट उल्लेख किया गया है कि राष्ट्र का यह दायित्व है कि वह ''पर्यावरण को संरक्षित रखे व उसमें सुधार करे और देश में वनों और वन्यजीवन को सुरक्षित रखे।'' यह राष्ट्र के सभी नागरिकों को यह दायित्व सौपता है कि वे ''वनों, तालों, नदियों तथा वन्य जीवन सहित प्राकृतिक पर्यावरण को सुरक्षित रखें और उसमें सुधार करें।'' राज्य नीति के निदेशक सिद्धांतों (भाग IV) तथा मौलिक अधिकारों (III) में भी पर्यावरण का संदर्भ दिया गया है। देश में स्वस्थ पर्यावरण को सुनिश्चित करने के लिए वर्ष 1980 में भारत में पर्यावरण विभाग की स्थापना की गई थी। बाद में वर्ष 1985 में इसे पर्यावरण एवं वन मंत्रालय बना दिया गया।

24.5.1 पर्यावरण एवं वन मंत्रालय

पर्यावरण एवं वन मंत्रालय भारत की पर्यावरणिक तथा वन संबंधी नीतियों और कार्यक्रमों के क्रियान्वयन के नियोजन, संवर्धन, समन्वयन तथा निगरानी के लिए केन्द्रीय सरकार की प्रशासनिक संरचना में एक नोडल एजेंसी है। मंत्रालय का प्रमुख कार्य तालों, नादियों, जैव-विविध ता, वनों तथा वन्यजीवन सहित देश के प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण संबंधी नीतियों और कार्यक्रमों को क्रियान्वित करना, पशुओं के कल्याण को सुनिश्चित करना तथा प्रदूषण का निवारण तथा अपशमन करना है।

मंत्रालय के प्रमुख उद्देश्य हैं :

- प्रदूषण का निवारण तथा नियंत्रण
- पर्यावरण का संरक्षणय और
- पौधों और पशुओं के कल्याण को सुनिश्चित करना।

24.5.2 भारत का संविधान

भारत के संविधान के अनुच्छेद 21 में समाविष्ट 'जीवन के अधिकार' में साफ तथा मानाव पर्यावरण का अधिकार शामिल है। इसका अर्थ यह है कि आपको स्वच्छ तथा स्वस्थ वातावरण में जीने का अधिकार है।

हमारे संविधान के अनुच्छेद 38 राज्य से यह अपेक्षित है कि वह लोगों के कल्याण के लिए सामाजिक व्यवस्थि सुनिश्चित करे और इसे केवल अप्रदूषित और स्वच्छ पर्यावरण द्वारा ही सुनिश्चित किया जा सकता है।

> संविधान के अनुच्छेद 48क में राज्य के लिए यह अपेक्षित है कि वह संरक्षात्मक नीति तथा सुधारात्मक नीति का अनुसरण करे। संरक्षात्मक नीति उन वस्तुओं पर प्रतिबंध लगाती है जिनके कारण पर्यावरणिक अवक्रमण होता है उदाहरण के लिए लैडयुक्त पेट्रोल के प्रयोग पर प्रतिबंध, प्लास्टिक बैगों के प्रयोग पर प्रतिबंध आदि। सुधारात्मक नीति से तात्पर्य वैकल्पिक व्यवस्था से है जिसका प्रयोग पर्यावरण में सुधार करने के लिए किया जा सकता है उदाहरण के लिए सी.एन.जी. या निम्न सल्फर ईंधन का प्रयोग, औद्योगिक क्षेत्रों में वृक्षरोपण आदि।

संविधान का अनुच्छेद 48क घोषित करता है कि ''राज्य पर्यावरण की संरक्षा और सुधार तथा देश के वनों और वन्य जीवन को सुरक्षित रखने का प्रयास करेगी।''

भारतीय संविधान के अनुच्छेद 51क(छ) में कहा गया है कि ''वनों, तालों, नदियों तथा वन्य जीवन सहित प्राकृतिक पर्यावरण को संरक्षित रखना व उसमें सुधार करना तथा सजीव प्राणियों के प्रति संवेदना रखना भारत के प्रत्येक नागरिक का कर्तव्य है।''

24.5.3 जल (प्रदूषण निवारण तथा नियंत्रण) अधिनियम, 1974

जल प्रदूषण के निवारण तथा नियंत्रण हेतु तथा देश में जल की प्रचुरता को बनाए रखने तथा बहाली हेतु प्रावधान के लिए जल (प्रदूषण निवारण तथा नियंत्रण) अधिनियम, 1974 बनाया गया है।

भारत में पारित यह पहला कानून था जिसका उद्देश्य यह सुनिश्चित करना था कि घरेलू तथा औद्योगिक प्रदूषकों को पर्याप्त उपचार के बिना नदियों और तालाबों में प्रवाहित न किया जाए। इसका कारण यह है कि इस प्रकार दूषित मिश्रण जल को पेय जल के स्रोत के रूप में तथा सिंचाई और अन्य जलीय-जीवन के उद्देश्यों के लिए अनुपयुक्त बना देता है।

अपने उद्देश्यों को प्राप्त करने की दृष्टि से, जल निकायों में प्रदूषकों को प्रवाहित करने वाली फैक्टरियों के लिए मानकों को स्थापित करने व लागू करने के लिए केन्द्र तथा राज्य स्तरों पर प्रदूषण नियंत्रण बोर्डों की स्थापना की गई।

24.5.4 वायु (प्रदूषण निवारण तथा नियंत्रण) अधिनियम, 1981

भारत में वायु-प्रदूषण के निवारण, नियंत्रण तथा उपशमन के प्रावधानों के लिए वायु (प्रदूषण निवारण तथा नियंत्रण) अधिनियम, 1981 बनाया गया है। यह विधान का एक विशिष्ट भाग है जिसे पृथ्वी के प्राकृतिक संसाधनों के निवारण के लिए उपयुक्त कदम उठाने के लिए बनाया गया था जिसमें अन्य बातों के साथ साथ वायु की गुणवत्ता का निवारण तथा वायु प्रदूषण का नियंत्रण भी शामिल है।

इस अधिनियम के मुख्य उद्देश्य निम्नानुसार हैं :

- वायु प्रदूषण को निवारण, नियंत्रण और उपशमनय;
- उपर्युक्त उद्देश्यों के क्रियान्वयन के लिए केन्द्रीय तथा राज्य प्रदूषण नियंत्रण बोर्डों की स्थापनाय; एवं
- वायु की गुणवत्ता को बनाए रखना।

24.5.5 पर्यावरण संरक्षण अधिनियम, 1986

भोपाल गैस त्रासदी ने भारत सरकार के लिए यह आवश्यक बना दिया कि वह खतरनाक अपशिष्ट के भंडारण, देख-भाल या रख-रखाव तथा प्रयोग संबंधी नियमों सहित एक वृहत पर्यावरणिक विधान बनाए। इन नियमों के आधार पर भारतीय संसद ने पर्यावरणिक संरक्षण अधिनियम, 1986 बनाया। यह एक अम्ब्रेला विधान है जो जल (प्रदूषण निवारण तथा नियंत्रण) अधिनियम, 1974 तथा वायु (प्रदूषण निवारण तथा नियंत्रण) अधिनियम, 1981 के प्रावधानों को समेकित करता है। विधानों के इस ढांचे के भीतर, सरकार ने पर्यावरणिक प्रदूषण के निवारण, नियंत्रण और उपशमन के लिए प्रदूषण नियंत्रण बोर्डों की स्थापना की है।

पर्यावरणिक संरक्षण अधिनियम का उद्देश्य देश में पर्यावरण की संरक्षा तथा सुधार है।

भोपाल-त्रासदी

भोपाल आपदा, जिसे भोपाल गैस त्रासदी भी कहते हैं, भारत में गैस रिसाव की एक दुर्घटना थी, जिसे विश्व की सबसे घातक औद्योगिक आपदा माना जाता है। यह घटना भोपाल, मध्य प्रदेश में स्थिति कीटनाशी संयंत्र यूनियन कार्बाइड इंडिया लिमिटेड (यूसीआईएल) में 2तथा 3 दिसंबर, 1984 के मध्य रात्री में हुई थी। लगभग 500,000 लोग मिथइल आइसोसिनेट गैस तथा अन्य रसायनों के प्रभाव में आए थे। इसके विशैले तत्व संयंत्र के आसपास स्थित गरीब बस्तियों में फैल गए। इस दुर्घटना में मृतकों के आंकड़ों में भिन्नता है। आधिकारिक रूप से इस दुर्घटना में तत्काल मृतकों की संख्या 2,250 थी। मध्य प्रदेश सरकार ने गैस रिसाव के कारण कुल 3,787 लोगों की मृत्यु की पुष्टि की थी। अन्य अनुमानों के

अनुसार, इस घटना के दो सप्ताह के भीतर 8,000 लोगों की मृत्यु हुई और तत्पश्चात, गैस रिसाव रोगों के कारण अब तक 8,000 और लोगों की मृत्यु हो चुकी है। वर्ष 2006 में सरकारी दस्तवेज बताते हैं कि गैस रिसाव के कारण 558,125 लोग पीडित हुए जिनमें से 38,478 लोग आंशिक रूप से अपंग हो गए और लगभग 3,900 लोग गंभीर तथा स्थायी रूप से अपंग हुए।

24.5.6 ध्वनि प्रदूषण (विनियम एवं नियंत्रण) अधिनियम, 2000

पर्यावरण संरक्षण अधिनियम, 1986 या किसी अन्य विधान में ध्वनि प्रदूषण के लिए कोई प्रत्यक्ष प्रावधान नहीं है। औद्योगिक गतिविधि, जनरेटर सेट, लाउड स्पीकरों, वाहनों के हार्नो आदि जैसे विभिन्न स्रोतों से सर्वाजनिक स्थलों में बढते हुए परिवेशीय ध्वनि स्तर ने मानव स्वास्थ्य को प्रतिकूल रूप से प्रभावित किया है। ध्वनि के संबंध में परिवेशी वायु गुणवत्ता के मानकों के अनुरक्षण के उद्देश्य से आज यह आवश्यकता बन गई है कि ध्वनि उत्पन्न करने वाली आवाजों को नियमित तथा नियंत्रित करने के लिए कानून बनाया जाए। इसलिए, केन्द्र सरकार ने ध्वनि प्रदूषण (विनियम एवं नियंत्रण) नियम, 2000 बनाएं।

सरकार ने पर्यावरणिक ध्वनि प्रदूषण को कम करने के लिए यह नियम तैयार किए हैं। सरकार द्वारा कुछ मानक निर्धारित किए गए हैं जैसे परिवेशी वायु गुणवत्ता मानक। विभिन्न क्षेत्रों के लिए ध्वनि के अनुमेय स्तर भिन्न-भिन्न हैं जैसे औद्योगिक, वाणिज्यिक, आवासीय क्षेत्र तथा ध्वनि मुक्त क्षेत्र (Silence zone) (अस्पताल, शैक्षिक संस्थानों तथा न्यायालय के परिसरों के क्षेत्र आदि)।

24.5.7 जन-दायित्व बीमा अधिनियम, 1981

इस अधिनियम का उद्देश्य उन व्यक्तियों को तत्काल राहत उपलब्ध कराना है जो किसी खतरनाक पदार्थ की देखभाल या रख-रखाव के दौरान हुई दुर्घटना से प्रभावित हुए हैं। इसमें प्रावधान है कि किसी जोखिपूर्ण पदार्थ से संबंधित कार्य आरंभ करने से पूर्व उसका स्वामी बीमा की संविदाओं का प्रावधान करने के लिए एक या अधिक बीमा पॉलिसियां लेगा। बीमा लेने का उद्देश्य संभावित भावी दुर्घटना के परिणामों से क्षतिपूर्ति की गारंटी को निर्धारित करना है।

एक क्षेत्र के कलैक्टर को अपने अधिकार क्षेत्र में किसी भी स्थान में किसी दुर्घटना की आवृत्ति के सत्यापन का अधिकार प्राप्त होता है और वह किसी प्रकार की क्षतिपूर्ति के लिए पीडितों से आवेदन आमंत्रित करने के लिए प्रचार भी कर सकता है।

बीमा संविदा के अतिरिक्त, क्षतिपूर्ति के उद्देश्य के लिए वित्तपोषण की व्यवस्था केन्द्र सरकार द्वारा ''पर्यावरण राहत निधि'' द्वारा भी की जाती है। कलॉक्टर द्वारा इस निधि का प्रयोग क्षतिपूर्ति के भुगतान के लिए किया जा सकता है।

24.5.8 राष्ट्रीय पर्यावरण अधिकरण अधिनियम, 1995

इस अधिनियम का उद्देश्य किसी जोखिमपूर्ण वस्तु की देखभाल या रख-रखाव के दौरान होने वाली किसी दुर्घटना के हुई क्षतियों के लिए कड़े दायित्वों हेतु तथा व्यक्तियों, सम्पत्ति और पर्यावरण को हुई क्षतियों के लिए राहत और क्षतिपूर्ति प्रदान करने के दृष्टिगत ऐसी दुर्घटनाओं

से उत्पन्न मामलों के प्रभावपूर्ण और तीव्र निपटान के लिए एक राष्ट्रीय पर्यावरण अधिकरण की स्थापना हेतु और इससे संबंधित मामलों के लिए प्रावधान बनाना है।

इस अधिनियम की विशेषता इस तथ्य में है कि दुर्घटना के मामले में तथा उसके परिणामस्वरूप जनसाधारण को लगी चोटों के लिए जोखिमपुर्ण पदार्थ के स्वामी के दायित्वों को कड़ाई से निधरित किया गया है। यहां क्षतिपूर्ति के किसी मामले में दावाकर्ता को यह अपील दायर करने या निर्धारित करने की आवश्यकता नहीं होती है कि मृत्यु, चोट या क्षति जिसके लिए दावा किया जा रहा है, वह किसी व्यक्ति द्वारा गलत कृत्य, लापरवाही या चूक के कारण हुई थी। इस प्रकार, साक्ष्य का बोझ क्षतिपूर्ति का दावा करने वाले व्यक्ति पर नहीं पड़ता है जो कि पीडितों के लिए बड़ी राहत है।

24.5.9 राष्ट्रीय पर्यावरण अपील प्राधिकरण (एनईएए) अधिनियम, 1997

राष्ट्रीय पर्यावरण अपील प्राधिकरण (एनईएए) अधिनियम, 1997 की स्थापना पर्यावरण तथा वन मंत्रालय द्वारा उन मामलों के समाधान के लिए की गई थी जिनमें कतिपय प्रतिबंधित क्षेत्रों में पर्यावरणि क्लियरेंस की आवश्यकता होती है। राष्ट्रीय पर्यावरण अपील प्राधिकरण (एनईएए) अधिनियम, 1997 द्वारा यह निर्धारित किया गया था उन प्रतिबंधित क्षेत्रों के संबंध में अपीलों को सुना जाए जहां पर्यावरण संरक्षण अधिनियम, 1986 के अंतर्गत कतिपय सावधानियों के मद्देनजर किसी औद्योगिक, प्रचालनिक, प्रसंस्करण या उद्योगों, प्रचालनों या प्रसंस्करणा की श्रेणी को किया जा सकता है या नहीं।

24.5.10 ओजोन अवक्षय पदार्थ (विनियमन और नियंत्रण) अधिनियम, 2000

ओजोन अवक्षय पदार्थ (विनियमन और नियंत्रण) नियम, 2000 का निर्धारण ओजोन अवक्षय पदार्थों के उत्पादन तथा उपभोग को विनियमित करने के लिए किया गया है। इस नियम का मुख्य उद्देश्य ओजोन परत को संरक्षित रखना है। यह नियम ओजोन अवक्षय पदार्थों की अप्राधिकृत बिक्री, खरीद, आयात, निर्यात तथा प्रयोग को प्रतिबंधित करता है।

> ओजोन अवक्षय पदार्थ वे उत्पाद है जिसके कारण ओजोन परत का अवक्षय होता है। सीएफसी (क्लोरोफ्लोरोकार्बन) ओजोनअवक्षय पदार्थो का एक उदाहरण है।

पाठगत प्रश्न 24.5

सही/गलत बताइए

1. पर्यावरण एवं वन मन्त्रालय भारत पर्यावरिणिक तथा वन संबंधी नीतियों और कार्यक्रमों के क्रियान्वयन के नियोजन संवर्धन, समन्वय तथा निगरानी के लिए केन्द्रीय सरकार की संरचना में एक नोडल एजेंसी है। (सही/गलत)
2. जल प्रदूषण के निवारण तथा नियंत्रण हेतु तथा देश में जल की प्रचुरता बनाए रखने तथा बहाली हेतु प्रावधान के लिए जल (प्रदूषण निवारण तथा नियंत्रण) अधिनियम, 1974 बनाया गया है। (सही/गलत)

3. भारत में वायु-प्रदूषण के निवारण, नियंत्रण तथा उपशमन के प्रावधानों के लिए वायु (प्रदूषण निवारण तथा नियंत्रण) अधिनियम, 1981 बनाया गया है। (सही/गलत)
4. पर्यावरणिक संरक्षण अधिनियम, 1986 का उद्देश्य देश में पर्यावरण की संरक्षा तथा सुधार है। (सही/गलत)
5. ध्वनि प्रदूषण (विनियम एवं नियंत्रण), अधिनियम, 2000 ने पर्यावरणिक ध्वनि प्रदूषण को कम करने के लिए नियम बनाए है। (सही/गलत)
6. जन-दायित्व बीमा अधिनियम, 1981 का उद्देश्य उन व्यक्तियों को तत्काल राहत उपलब्ध कराना है जो किसी खतरनाक पदार्थ की देखभाल या रख-रखाव के दौरान हुई घटना से प्रभावित हुए हैं। (सही/गलत)
7. ओजोन अवक्षय पदार्थ (विनियमन और नियंत्रण) अधिनियम, 2000 का मुख्य उद्देश्य ओजोन परत को संरक्षित रखना है। (सही/गलत)

24.6 प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड

प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड संविधिक निकाय हैं जिन की स्थापना प्रदूषण को नियंत्रित करने और स्वच्छ वातावरण को बढ़ावा देने उद्देश्य से की गई है।

24.6.1 केन्द्रीय प्रदूषण बोर्ड

प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड की स्थापना एक सांविधिक निकाय के रूप में बढ़ते हुए प्रदूषण से निपटने के लिए जल (प्रदूषण निवारण एवं नियंत्रण) अधिनियम, 1974 के अंतर्गत सितंबर, 1974 में की गई थी। इसके अतिरिक्त, केन्द्रीय प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड को वायु (प्रदूषणनिवारण और नियंत्रण) अधिनियम, 1981के अंतर्गत शक्तियां और कार्य प्रदान किए गए है।

केन्द्रीय प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड के प्रमुख कार्य :

(i) जल प्रदूषण के निवारण, नियंत्रण तथा उपशमन द्वारा राज्यों के विभिन्न क्षेत्रों में नदीओं और कुओं की साफ-सफाई को संवर्धित करना।

(ii) वायु की गुणवत्ता में सुधार करना और देश में वायु प्रदूषण का निवारण, नियंत्रण तथा उपशमन करना।

केन्द्रीय बोर्ड के अन्य कार्य

- जल और वायु प्रदूषणके निवारण, और नियंत्रण तथा वायु की गुणवत्ता में सुधार से संबंधित किसी मुद्दे पर केन्द्र सरकार को सलाह प्रदान करना।
- जल तथा वायु प्रदूषण के निवारण, नियंत्रण तथा अपशमन के लिए राष्ट्रव्यापी कार्यक्रमों की योजना बनाना तथा उन्हें निष्पादित करना।
- राज्य बोर्डो को तकनीकी सहायता तथा मार्गदर्शन उपलब्ध कराना तथा जल तथा वायु प्रदूषण से संबंधित समस्याओं और इनके निवारण, नियंत्रण तथा अपशमन से संबंधि त जांचों तथा अनुसंधानों को निष्पादित तथा प्रायोजित करना।

- सेवेज तथा व्यापार अपशिष्टों तथा चिमनी गैस सफाई उपकरणों, चिमनियों और डक्टों के उपचार और निपटान से संबंधित नियमावली, कोड तथा दिशा निर्देश तैयार करना।
- नालों और कूओं के लिए मानक निर्धारित करना तथा आशोधित करना (राज्य सरकारों के परामर्श से) तथा वायु की गुणवत्ता के लिए मानक निर्धारित करना।

24.6.2 राज्य प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड

राज्य सरकारों के अपने प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड भी हैं, उदाहरण के लिए उत्तर प्रदेश प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड (यूपीपीसीबी), दिल्ली प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड (डीपीपीसीबी), हरियाणा राज्य प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड (एचपीसीबी), राजस्थान प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड (यूपीपीसीबी), आदि।

राज्य बोर्डों के कार्य

- प्रदूषण तथा उद्योगों को स्थापित करने संबंधी मुद्दों पर राज्य सरकार को सलाह देना।
- प्रदूषण नियंत्रण के लिए योजनाएं तैयार करना।
- सूचनाएं एकत्र तथा संवितरित करना।
- प्रदूषणकर्ता उद्योगों तथा क्षेत्रों का निरीक्षण करना।
- उत्प्रवाही और उत्सर्जन मानकों को निर्धारित करना।
- निर्धारित उत्सर्जन तथा उत्प्रवाही मानकों का अनुपालन सुनिश्चित करने के लिए उद्योगों और अन्य गतिविधियों को सहमति जारी करना।

पाठगत प्रश्न 24.6

1. केन्द्रीय प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड के कोई दो कार्य बताइए।
2. राज्य प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड के कोई दो कार्य बताइए।

आपने क्या सीखा

पर्यावरण वह स्थान या परिवेश है जहां हम रहते हैं और मनुष्य के अस्तित्व के लिए इसे साफ रखना अत्यंत आवश्यक है। प्रदूषण अपने परिवेश में प्रतिकूल परिवर्तन है। यह वायु, जल तथा मृदा में किसी बाहरी पदार्थ का मिश्रण है। शहरीकरण, औद्योगिकीकरण, अधिक जनसंख्या, संसाधनों का क्षमता से अधिक दोहन कुछ ऐसे कारक हैं जिन्होंने पर्यावरण के ह्रास में योगदान किया है।

प्रत्येक मनुष्य तथा पशुओं को जीवित रहने के लिए भोजन, स्वच्छ जल, स्वच्छ वायु की आवश्यकता होती है।

प्रदूषण को निम्नलिखित क्षेत्रों में श्रेणिबद्ध किया गया है : (क) जल-प्रदूषणए (ख) वायु-प्रदूषण, (ग) ध्वनि प्रदूषण, (घ) भूमि प्रदूषण, (ड.) स्थल जल प्रदूषण, (च) खाद्य प्रदूषण, (छ) ताप प्रदूषण एवं (ज) परमाणु प्रदूषण।

पर्यावरण के संरक्षण तथा संवर्धन के संबंध में विभिन्न विधान, अधिनियम हैं:

क. जल (प्रदूषण निवारण तथा नियंत्रण) अधिनियम, 1974

ख. वायु (प्रदूषण निवारण तथा नियंत्रण) अधिनियम, 1981

ग. पर्यावरण संरक्षण अधिनियम, 1986

घ. राष्ट्रीय पर्यावरण अधिकरण अधिनियम, 1995

ड़. ध्वनि प्रदूषण (विनियम तथा नियंत्रण) नियम, 2000

च. जन-दायित्व बीमा अधिनियम, 1981

छ. राष्ट्रीय पर्यावरण अपील अधिकरण (एनईएए), 1997

ज. ओजोन अवक्षय पदार्थ (विनियम एवं नियंत्रण) नियम, 2000

प्रदूषण में वृद्धि से निपटने के लिए जल (प्रदूषण निवारण तथा नियंत्रण) अधिनियम, 1974 के अंतर्गत केन्द्रीय प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड का गठन किया गया है।

पाठांत प्रश्न

1. 'पर्यावरणिक प्रदूषण' शब्द को परिभाषित कीजिए।
2. निम्न की व्याख्या कीजिए
   (क) वायु प्रदूषण
   (ख) जल प्रदूषण
   (ग) ध्वनि प्रदूषण
3. पर्यावरण संरक्षण अधिनियम एक अम्ब्रेला विधान है जो जल (प्रदूषण निवारण तथा नियंत्रण) अधिनियम, 1974 और वायु (प्रदूषण निवारण तथा नियंत्रण) अधिनियम, 1981 के प्रावधानों को समेकित करता है। वर्णन करें।
4. केन्द्रीय तथा राज्य प्रदूषण नियंत्रण बोर्डों के पांच पांच कार्यों का वर्णन करें।
5. यमुना नदी का दौरा करें और वहां हो रही गतिविधियों का अवलोकन करें। वहां प्रदूषण करने वाली गतिविधियों की जांच करें । यमुना नदी में होने वाले प्रदूषण के कारणों और उन्हें रोकने के लिए निकारक उपायों पर 500 शब्दों की एक रिपोर्ट तैयार करें।
6. इन दिनों दिल्ली में प्रदूषण का स्तर बहुत अधिक है। इस पाठ से सहायता प्राप्त करें, वायु प्रदूषण के कारणों की जांच करें और भावी प्रदूषण को रोकने के लिए उपाय सुझाएं। इस संबंध में 500 शब्दों की एक रिपोर्ट तैयार करें।

7. दिल्ली के पांच प्रमुख सरकारी अस्पतालों का दौरा करें और वहां वायु प्रदूषण के कारण ओपीडी आने वाले श्वसन समस्याओं की शिकायत वाले मरीजों की संख्या संबंधी आंकड़े एकत्र करें। विधि के विद्यमान प्रावधानों का संदर्भ देते हुए 500 शब्दों की एक रिपोर्ट तैयार करें।

8. मान लीजिए कि आप ऐसे आवासीय क्षेत्र में रह रहे हैं जहां दो अस्पताल भी हैं।शहर का हवाई अड्डाा आपके आवासीय क्षेत्र के समीप स्थिति है जहां चौबीसों घंटे विमान आते व जाते रहते हैं। हवाई अड्डा प्राधिकारियों ने हाल में निर्मित नए रनवे का प्रयोगआरंभ कर दिया है। दिन का समय तो किसी तरह निकल जाता है किन्तु रात के समय विमानों की लैंडिग तथा टेकऑफ के समय होने वाले ध्वनि के कारण रोगियों को बहुत समस्या का सामना करना पड़ रहा है और इसके कारण उनके तनाव का स्तर भी बढ़ता जा रहा है जो कई बार बहुत घातक हो सकता है।

   ध्वनि-प्रदूषण संबंधी कानूनों का संदर्भ देते हुए इन रोगियों की समस्याओं का उल्लेख करते हुए संबंधित प्राधिकरण के लिए एक पत्र का मसौदा तैयार करें। उन्हें अनुरोध करें कि हवाईअड्डों को कम से कम रात्रि के समय के लिए बंद रखा जाए ताकि अस्पतालों में रोगियों को कुछ राहत तो प्राप्त हो सके।

पाठगत प्रश्नों के उत्तर

24.1

1. यह जल, वायु और भूमि तथा इनमें विद्यमान मनुष्य, अन्य जीव-जंतु तथा पदार्थों के बीच विद्यमान अंतर-संबंध का कुल योग है।

2. उच्चतम न्यायालय के अनुसार ''पर्यावरण'' शब्द को परिभाषित करना कठिन है। इसका सामान्य अर्थ अपने परिवेश से संबंधित है, किन्तु निसंदेह, यह वह अवधारणा है जो उसके परिवेश में आने वाले किसी भी वस्तु के सापेक्ष है। पर्यावरण एक बहुकेन्द्रित तथा बहुआयामी समस्या है जो मानव अस्तित्व को प्रभावित कर रही है।

24.2

1. (क) **जल प्रदूषण:** जल प्रदूषण से अभिप्राय जल निकाओं (जैसे नदियां, सागर जलदायी स्तर तथा भूजल) का संदूषण है।

   (ख) **वायु प्रदूषण:** वायु में ऑक्सिजन, नाईट्रोजन, कार्बनडाइआक्साइड, एरगॉन आदि विभिन्न गैसों को मिश्रण होता है। वायु प्रदूषण तब होता है जब वातावरण में रसायणों, कणों या जैविक पदार्थ शामिल हो जाते हैं जिनके कारण मनुष्य को बैचनी रोग या मृत्यु हो जाती है। अन्य सजीव जीवाणुओं जैसे खाद्य फसलों, प्राकृतिक पर्यावरण या निर्मित पर्यावरण को खतरा उत्पन्न होता है।

   (ग) **ध्वनि-प्रदूषण :** ध्वनि प्रदूषण कोई अवांछित आवाज है जो पर्यावरणिक संतुलन को प्रभावित करती है। मोटर वाहन, विमान, पटाखे, सायरन, लाऊडस्पीकर तथा मशीनें ध्वनि प्रदूषण के मुख्य स्त्रोत है।

2. वायु-प्रदूषण के मुख्य स्त्रोत है:

   औद्योगिक उत्सर्जन;

   वाहनों का उत्सर्जन; एवं

   घरेलू उत्सर्जन

3. (क) सुनाई न देना या कम सुनाई देना;

   (ख) रक्त चाप में वृद्धि;

   (ग) तनाव में वृद्धि;

   (घ) हृदय-वाहिनी स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव; एंव

   (ड़) कार्यकुशलता तथा एकाग्रता में कमी होना

24.3

1. पर्यावरण संरक्षण वह विधि है जिसके द्वारा प्राकृतिक पर्यावरण और मनुष्य को लाभ पहुंचाने के लिए व्यक्तिगत, संगठनात्मक तथा सरकारी स्तर पर प्राकृतिक पर्यावरण को सुरक्षा प्रदान की जाती है।
2. पर्यावरणिक संरक्षण तीन अंतर-संवधित कारकों से प्रभावित होते है; पर्यावरण्कि विधान, नैतिकता और शिक्षा।

24.4

1. जीवित
2. अन्त

24.5

1. सही
2. सही
3. सही
4. सही
5. सही
6. सही
7. सही

24.6

1. केन्द्रीय प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड के दो मुख्य कार्य हैं-

   (i) जल प्रदूषण के निवारण, नियंत्रण तथा उपशमन द्वारा राज्यों के विभिन्न क्षेत्रों में नदीयों और कुओं आदि की साफ-सफाई को संवर्धित करना।

(ii) वायु की गुणवता में सुधार करना और देश में वायु प्रदूषण का निवारण, नियंत्रण तथा उपशमन करना।

2. राज्य प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड के दो मुख्य कार्य है:

   (i) प्रदूषण तथा उद्योगों को स्थापित करने संबंधी मुद्दों पर राज्य सरकार को सलाह देना।

   (ii) प्रदूषण नियंत्रण के लिए योजनाएं तैयार करना।

25

चिर-स्थायी या धारणीय विकास

आज पृथ्वी की बढ़ती हुई भंगुरता से संबंधित अनेक चिंताएं हो रही हैं। पृथ्वी पर बढ़ती हुई जनसंख्या एक खतरे के रूप में विकसित हो रही है। मनुष्य के विवेकहीन कृत्यों के कारण पृथ्वी की पर्यावरणीय प्रणाली पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ रहा है। वैश्विक नागरिक होने के नाते हमें इस बात को ध्यान में रखना चाहिए कि हमारी क्रियाओं का प्रभाव सम्पूर्ण विश्व पर पड़ता है। हमें यह सुनिश्चित करना चाहिए कि विकास का पथ जिसका अनुसरण हम कर रहे हैं वह पृथ्वी के पर्यावरण तथा इसमें रहने वाले सभी प्राणियों के लिए कल्याणकारी होना चाहिए। यह तभी संभव है जब राष्ट्रों के बीच में समन्वय स्थापित होगा।

''धारणीय विकास'' प्राकृतिक संसाधनों के उपभोग तथा उपयोग की दर से संबंधित है। आज यह सुनिश्चित किए जाने पर बल दिया जा रहा है कि हम अपने संसाधनों का प्रयोग उस दर से न करें जिससे कि उन्हें दीर्घकाल के लिए बनाए रखना या प्रतिस्थापित करना संभव न हो। यदि हम कार का प्रयोग करते हैं तो हमें सुनिश्चित करना होगा कि हम पर्यावरण-सहिष्णु ईंधन तथा प्रौद्योगिकी का प्रयोग करें जो कि प्रदूषण को न्यूनतम बनते हैं। यदि हम भू-जल (Ground water) का प्रयोग करते हैं तो यह हमारा दायित्व है कि वर्षा जल हार्वेस्टिंग आदि विभिन्न तकनीकों के माध्यम से इसे पुनरू संचयित किया जाए।

इस प्रकार, 'धारणीय विकास' उत्तरदायी विकास है। यह आर्थिक विकास है जिसके दौरान समाज तथा पर्यावरण की आवश्यकताओं को ध्यान में रखा जाता है। यह एक समेकित विकास है जो समाज के सभी वर्गों तक पहुंचता है। यह विकास समाज के सभी वर्गों के लिए है और यह पृथ्वी के पर्यावरण के साथ समझौता किए बिना होता है।

उद्देश्य

इस पाठ के अध्ययन के पश्चात आप:

- 'धारणीय विकास' के अर्थ को जान पाएंगे;
- 'धारणीय विकास' के महत्व और आवश्यकता को समझ पाएंगे;
- राष्ट्रीय तथा अंतरराष्ट्रीय स्तर पर 'धारणीय विकास' की उत्पत्ति की समझ पाएंगे;
- भारत में 'धारणीय विकास' संबंधी कानूनों को पहचान पाएंगे;
- 'धारणीय विकास' को सुनिश्चित करने के लिए न्यायपालिका की भूमिका को समझ पाएंगे।

टिप्पणी

25.1 धारणीय विकास की अवधारणा और अर्थ

25.1.1 धारणीय विकास क्या है?

सन् 1987 में, संयुक्त राष्ट्र संघ ने 'ब्रंटलैंड रिपोर्ट' जारी की थी, जिसमें 'धारणीय विकास' की वह परिभाषा शामिल है जो आज सर्वाधिक व्यापक रूप से मान्यता प्राप्त है : "धारणीय विकास वह विकास है जो अपनी स्वयं की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए भावी पीढ़ियों की क्षमता से समझौता किए बिना वर्तमान की आवश्यकताओं को पूरा करता है" (पर्यावरण और विकास पर विश्व आयोग (ब्रंटलैंड आयोग) रिपोर्ट "हमारा साझा भविष्य")।

इसी रिपोर्ट के अनुसार, उपर्युक्त परिभाषा में इसकी दो महत्वपूर्ण अवधारणाएं शामिल हैं :

- 'आवश्यकताओं' की अवधारणा, विशेष रूप से विश्व के गरीबी लोगों की अनिवार्य आवश्यकताएं; एवं
- वर्तमान और भावी आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए पर्यावरण की क्षमता पर प्रौद्योगिकी तथा सामाजिक संगठन द्वारा लगाई गई सीमाओं की अवधारणा।

इसका अर्थ है कि हमें समाज के सभी वर्गों की आवश्यकताएं पूरी करनी होंगी विशेष रूप से शोषित वर्ग की आवश्यकताएं। आवश्यकताओं को पूरा करते समय हमें यह सुनिश्चित करना होगा कि हम जो कुछ भी प्रकृति से लेते हैं वह पृथ्वी के प्राकृतिक संसाधनों के अवक्रमण (degradation) में वृद्धि तथा जैवविविधता के लिए खतरा उत्पन्न नहीं करता है। प्रकृति सीमित है और हमें प्राकृतिक संसाधनों के अपने उपभोग की सीमित करना होगा। समाज, अर्थव्यवस्था और पर्यावरणीय चुनौतियों के बीच संतुलन बनाए रखने के लिए नीतिगत दृष्टिकोण को अपनाने की आवश्यकता है।

धारणीयता विश्व के उस एकीकृत विचार को महत्व प्रदान करती है जो समुदाय की अर्थव्यवस्था, पर्यावरण और समाज को जोड़ता है। यह इस तथ्य को स्वीकार करता है कि अर्थव्यवस्था समाज के भीतर ही विद्यमान होती है और समाज पृथ्वी की पर्यावरणीय प्रणाली के भीतर विद्यमान है। यह विचारधारा इस तथ्य को उजागर करती है कि मनुष्य प्रकृति का ही भाग हैं।

चित्र 1 धारणीय विकास और समाज, अर्थव्यवस्था और पर्यावरण के बीच के संबंध को दर्शाता है:

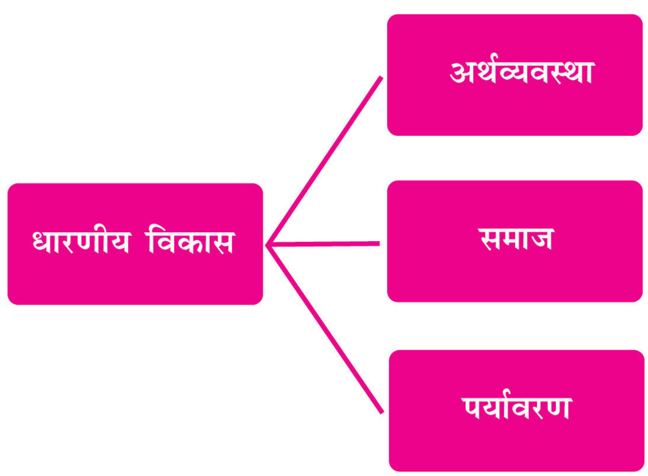

चित्र 1: धारणीय विकास, समाज, अर्थव्यवस्था और पर्यावरण के बीच संबंध

अधारणीयता के क्या कारण है?

आइए हम धारणीय विकास के खतरों को समझने का प्रयास करें।

आर्थिक असमानता, सामाजिक असमानता तथा पर्यावरणीय निम्नीकरण धारणीयता के लिए घातक हैं।

अधारणीयता के कुछ कारण निम्न हैं :

- मानव जनसंख्या में वृद्धि;
- मनुष्य की आवश्यकताओं जैसे ईंधन, चारा और घर को पूरा करने के लिए संसाधनों का अधिक दोहन;
- गतिविधियां जैसे मछली पकड़ना, कृषि, स्वच्छ जल का आवश्यकता से अधिक प्रयोग, निर्वनीकरण तथा औद्योगिकीकरणी;
- भूमि का साफ करना जिसके कारण मृदा निम्नीकरण, प्रदूषण, जैव-विविधता की हानि, निर्वनीकरण, मरूस्थलीकरण, पर्यावरण परिवर्तन हो रहा है; एवं
- बढ़ती हुई बेरोजगारी, स्वास्थ्य संबंधी संकट, सशस्त्र लड़ाइयां, शहरीकरण, गरीबी तथा आय की असामानता जैसे कारकों के कारण सामाजिक अपकर्षण।

पाठगत प्रश्न 25.1.1

1. "धारणीय विकास" को परिभाषित करें।
2. धारणीय विकास के समक्ष कौन से संकट हैं?

25.1.2 धारणीय विकास के घटक क्या हैं?

धारणीयता के विभिन्न घटकों को तीन शीर्षकों के अंतर्गत विभाजित किया जा सकता है - आर्थिक, सामाजिक और पर्यावरणीय। धारणीय विकास को प्राप्त करने के लिए सरकार को यह सुनिश्चित करना होगा कि इन तीनों क्षेत्रों में धारणीय विकास को प्राप्त करने के लिए संस्थागत तंत्र विद्यमान हो। ये संस्थागत तंत्र यह सुनिश्चित करेंगे कि समाजिक आर्थिक तथा पर्यावरणिक धारणियता प्राप्त करने के लिए सभी स्तरों पर निरंतर, संगठित तथा समन्वयित प्रयास किए जाएं। इसमें केन्द्र तथा राज्य स्तर पर विभिन्न मंत्रालय तथा विभाग शामिल हैं।

आगामी खंडों में दर्शाए गए चित्र अर्थव्यवस्था, समाज और पर्यावरण के विभिन्न भागों को दर्शाते हैं, धारणीय विकास के लिए जिन्हें लक्ष्य बनाया गया है।

चित्र 2 अर्थव्यवस्था के व्यापक घटाकों को दर्शाता है। चित्र 3 समाज के व्यापक घटकों को तथा चित्र 4 पर्यावरण के व्यापक घटाकों को दर्शाता है।

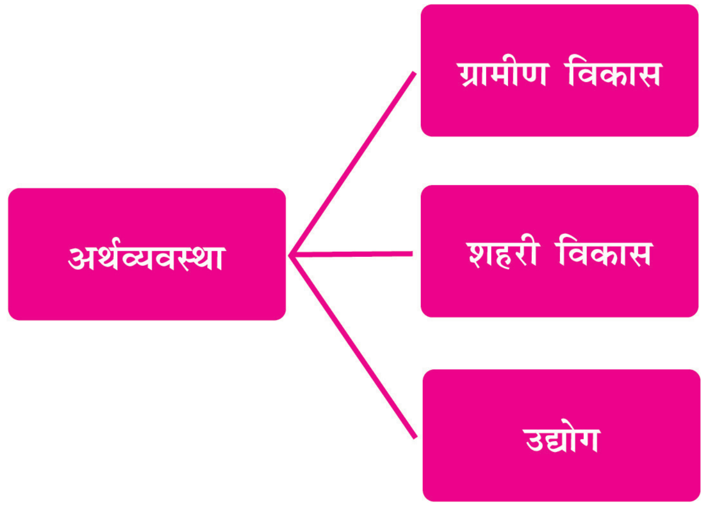

चित्र 2: अर्थव्यवस्था के धारणीय विकास के लिए कुछ लक्षित क्षेत्र

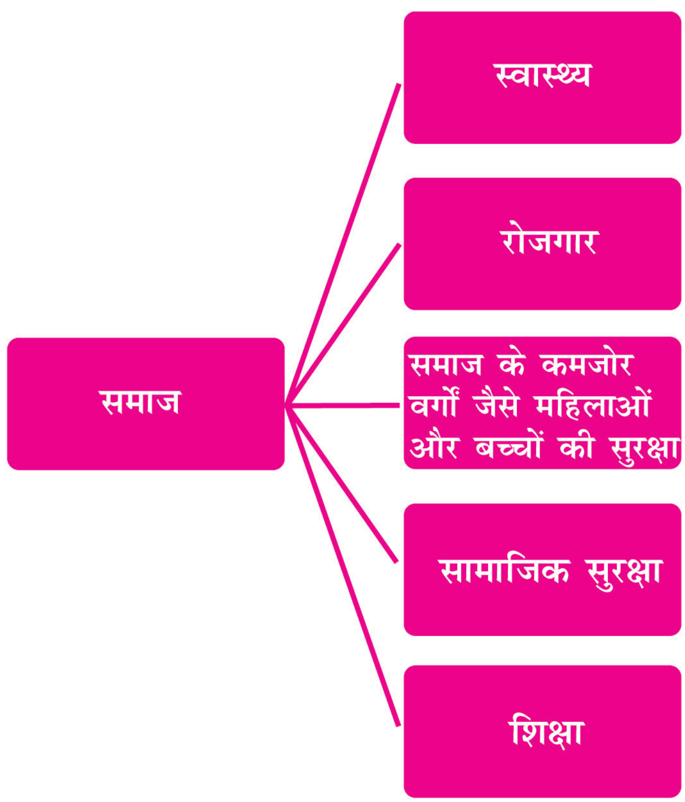

चित्र 3: समाज में धारणीय विकास के लिए कुछ लक्षित क्षेत्र

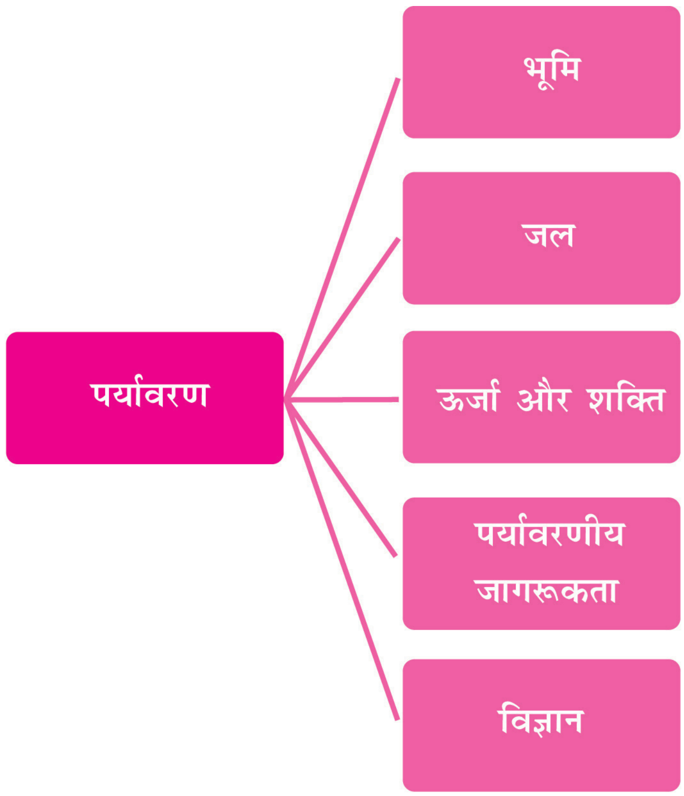

चित्र 4: समाज में धारणीय विकास के लिए कुछ लक्षित क्षेत्र

सन् 1980 के आसपास भारतीय कानून प्रणाली ने विशेष रूष से पर्यावरणीय कानून के क्षेत्र में अपने परम्परागत परिदृश्य की दृष्टि से व्यापक परिवर्तन किए थे और इसे न केवल प्रशासन तथा 'विधायी सक्रीयतावाद' ने बल्कि 'न्यायिक सक्रियतावाद' ने भी द्वारा चिहिन्त किया गया था। ''न्यायिक सक्रियतावाद'' से तात्पर्य संवैधिनिक अधिकारों के नए और सृजनात्मक व्याख्यान को अपना कर इसनी परिधि में विस्तार करके भरतीय न्यायालयों द्वारा सक्रीय भूमिका से है। प्रशासिनिक एजेंसियों की शक्तियों और कार्यों के क्षेत्र का निर्धारण करने और पर्यावरण और विकास के बीच संतुलन स्थापित करने के लिए, न्यायालयों ने अत्यंत महत्वपूर्ण भूमिका अदा की है और भविष्य में भी करते रहेंगे। न्यायालायों की इस सक्रियतावाद को जन हित याचिका (पीआईएल)

पाठगत प्रश्न 25.1.2

1. धारणीय विकास के घटक कौन से हैं?
2. क्या आप अर्थव्यवस्था के धारणीय विकास के लिए कुछ लक्षित क्षेत्रों के नाम बता सकते हैं?
3. कौन सा मंत्रालय लोगों के स्वास्थ्य संबंधी विषयों को देखता है?
4. उदाहरण देकर बताएं कि पर्यावरण के निम्नीकरण को किस प्रकार कम किया जा सकता है।

25.2 उत्पति और विकास (रूस्टॉकहोम से रियो तक)

25.2.1 स्टॉकहोम घोषणा 1972

वैश्विक अंतर-सरकारी कार्य सन् 1972 में स्टॉकहोल्म में मानव पर्यावरण पर संयुक्त राष्ट्र सम्मेलन से आरम्भ हुए। इस सम्मेलन का परिणाम 'स्टॉकहोल्म घोषणा' और पर्यावरणीय आकलन, प्रबंधनतथा सहायक उपायों पर 100 से अधिक सिफारिशों पर कार्य योजना है। स्टॉकहोम का नारा था ''केवल एक पृथ्वी''। पर्यावरणिक परिचर्चा ''विकास की सीमाएं'' पर रोम क्लब की रिपोर्ट और आर्थिक विकास पर वार्ता (धारणीय विकास के अगुवा) पर केन्द्रित थी। इस रिपोर्ट में अप्रतिबंधित विकास के परिणामों और अनेक वैश्विक समस्याअें के बीच के संबंधों को दर्शाती है।

ब्रंटलैंड आयोग, 1983

'स्टॉकहोम घोषणा' के बाद की पर्यावरणिक चिंताए बढ रही थी। व्यापक स्तर पर निर्वनीकरण, औद्योगिक प्रदूषण, पर्यावरणिक अवक्रमण हो रहा था। आजोन छेद, पृथ्वी का गर्म होना, पर्यावरण में कार्बनडाइआक्साइड की मात्रा में वृद्धि ने भी पर्यावरणीय चितांओं को बढाया है।

पर्यावरणिक मुद्दों को औद्योगिक विकास और वृद्धि के साथ जोड़ने की आवश्यकता महसूस की जा रही थी। इन तथ्यों को ध्यान में रखते हुए, 1983 में संयुक्त राष्ट्र संघ ने ''पर्यावरण और विकास पर विश्व आयोग'' की स्थापना की थी और इसे सामान्य रूप से ''ब्रंटलैंड आयोग'' भी कहा जाता है। ब्रंटलैंड आयोग की रिपोर्ट 'अवर कॉमन फ्यूचर इन 1983' में धारणीय विकास को उसी रूप में परिभाषित किया गया है जैसा कि हमने पहले चर्चा की है – ''अपनी स्वयं की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए भावी पीढ़ियों की क्षमता से समझौता किए बिना वर्तमान की आवश्यकताओं को पूरा करने वाला विकास''।

'रियो घोषणा 1992' – 'एजेंडा 21'

स्टॉकहोम के बीस वर्षो के पश्चात सन् 1922 में रियो दी जिनेरो में पर्यावरण और विकास पर संयुक्त राष्ट्र सम्मेलन आयोजित किया गया था। इसे 'अर्थ समिट' भी कहा जाता है और इसमें 'रियो घोषणा' को स्वीकार किया गया था और 'एजेंडा 21' नामक 40 अध्यायों की कार्य योजना को 100 से अधिक देशों द्वारा अपनाया गया।

'एजेंडा 21' को इक्कीसवी सदी में धारणीय विकास को प्राप्त करने की और अग्रसर किया गया था। 'रियो अवधारणा' को सार रूप में इस प्रकार प्रस्तुत किया जा सकता है।

- पर्यावरण, समाज तथा अर्थव्यवस्था को समान महत्व;
- भावी पीढ़ी की आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए अंतर-पीढ़िय एकता एकता;
- राष्ट्रीय तथा अंतरराष्ट्रीय स्तरों पर वैश्विक सर्वसम्मति और राजनैतिक प्रतिबद्धता;
- गैर-सरकारी संगठनों की साझेदारी;
- सरकारों के लिए पर्यावरण एवं जनसंख्या की आवश्यकताओं के बी सन्तुलन बनाए रखने के लिए एक रूप-रेखा बना देना;

- 'रियो करारों' पर अनुवर्ती कार्रवाई के लिए धारणीय विकास पर एक आयोग की स्थापना की गई थी और यह स्थानीय, राष्ट्रीय, क्षेत्रीय तथा अंतरराष्ट्रीय स्तरों पर 'अर्थ समिट' के करारों की मॉनीटरिंग करता है।

रियो शिखर सम्मेलन

रियो शिखर सम्मेलन के पश्चात धारणीय विकास के संबंध में अनेक अन्य सम्मेलन आयोजित हुए। इन सम्मेलनों में शामिल हैं – 'सन् 1994 में बार्बाडोस में ''छोटे महाद्वीप विकासशील राष्ट्रों के धारणीय विकास पर वैश्विक सम्मेलन : सन् 1995 में कॉपिंगम में ''सामाजिक विकास पर विश्व शिखरसम्मेलन'' : सन् 1995 में बीजिंग में ''चौथा महिला विश्व सम्मेलन'' तथा सन् 1996 में इस्तांबुल में ''मानव बस्तियों पर दूसरा संयुक्त राष्ट्र सम्मेलन हैबिटेट-II''.

इसका मुख्य ध्येय पर्यावरणिक प्रणाली के सभी भागों, चाहे वह भूमि, जल या वायु हो, में धारणीय विकास के पथ का अनुसरण करनाथा। प्रयास यह भी थे कि समाज में समग्र विकास हो, जो कमजोर वर्गों जैसे महिलाओं, बच्चों या गरीबों पर विशेष ध्यान देते हुए जनसंख्या के सभी वर्गों तक पहुंचे।

'अर्थ समिट' की प्रगति की पांच वर्षीय समीक्षा करने के लिए सन् 1997 में संयुक्त राष्ट्र जनरल एसेंबली में एक सम्मेलन आयोजित किया गया था। इसके पश्चात दस वर्षीय समीक्षा के लिए सन् 2002 में धारणीय विकास विश्व शिखर सम्मेलन (डब्ल्यूएसएसडी) आयोजित किया गया। यह सम्मेलन जोहानसबर्ग, दक्षिण अफ्रीका में आयोजित किया गया था। इसमें राष्ट्रों से अनुरोध किया गया था कि वे धारणीय विकास के लिए नीतियों के निर्माण और क्रियान्वयन के लिए के लिए कार्य करें और इन्हें सन् 2005 से क्रियान्वित करें।

पाठगत प्रश्न 25.2.1

1. स्टॉकहोम घोषणा की मुख्य विषयवस्तु क्या है?
2. धारणीय विकास आयोग स्थापना क्यों की गई थी?
3. डब्ल्यूएसएसडी (WSSD) से क्या तात्पर्य है और इसकी कार्य सूची क्या है?

25.2.2 सहस्राब्दी विकास लक्ष्य

सन् 2003 में विश्व के नेतृत्व की सबसे बड़ी बैठक में सन 2015 तक गरीबी, भूख, रोग, निरक्षरता, पर्यावरणीय निम्नीकरण तथा महिलाओं के प्रति भेदभाव से लड़ने के लिए समयबद्ध तथा निर्णायक लक्ष्यों के समूह पर सहमति व्यक्त की गई थी। इसे ''सहस्राब्दी विकास लक्ष्य'' कहा गया है।

कुछ देशों द्वारा किए गए कुछ महत्वपूर्ण निर्णयों और करारों का संक्षिप्त परिचय निम्नानुसार प्रस्तुत है :

सन् 2004 में दिल्ली ने वायु प्रदूषण के मुद्दे पर सिविल सोसाइटी के दबाव के कारण शहरी बसों तथा ऑटो रिक्शाओं में सम्पीड़ित प्राकृतिक गैस (CNG) के प्रयोग को अनिवार्य कर दिया है।

सन् 2005 में, **'क्योटा प्रोटोकॉल'** के अंतर्गत करार किया गया जो विकसित देशों को ग्रीनहाउस गैस के उत्सर्जन में कमी लक्ष्य निर्धारित करने और विकासशील देशों के लिए स्वच्छ विकास तंत्र की स्थापना हेतु लक्ष्य निर्धारित करना कानूनी रूप से अनिवार्य कर दिया गया है।

सन् 2007 में **'मांट्रियल प्रोटोकॉल'** के तहत उन तथ्यों के संबंध में करार पर हस्ताक्षर किए गए थे जो ओजोन परत को समाप्त कर रहे हैं। देशों में हाईड्रो क्लोरोफ्लोरो कार्बन (HCFC) के प्रयोग को चरणबद्ध आधार पर समाप्त करने पर सहमति हुई थी। नासा (NASA) बताया है कि आजोन परत धीरे धीरे ठीक हो रही है क्योंकि **'मांट्रियल प्रोटोकॉल'** के समाप्त किए जाने के निर्णय के परिणामस्वरूप सीएफसी की सांद्रता में कमी हुई है।

सन् 2008 में, **'हरित अर्थव्यवस्था'** के दृष्टिकोण ने मुख्य धारा में प्रवेश किया। राष्ट्रीय सरकारों ने पर्यावरणीय कार्यों को आगे और विकसित करने के लिए अधिक निधियों का आवंटन किया और हरित विकास भावी अर्थव्यवस्था के लिए नए उद्देश्य बन गए। सन् 2008 में विज्ञानिकों ने यह भी पाया पर्यावरणीय कार्बन-डाईआक्साइड के स्तरों में वृद्धि होने के कारण महासागरों में अधिक अम्ल विकसित हो रहा है। विज्ञानिकों का पूर्वानुमान है कि इसके पृथ्वी की पारितंत्र (ecosystem) पर घातक परिणाम होंगे।

सन् 2009 में **'कॉपिंगम जलवायु वार्ताएं'** आयोजित की गईं। बहरहाल, इसमें भाग लेने वाले देश सन् 2012 (क्योटा प्रोटोकाल की समय सीमा) के उपरांत नए उत्सर्जन निवारण प्रतिबंधों संबंधी सहमति पर नहीं पहुंच पाए। इसका महत्वपूर्ण निष्कर्ष यह था कि उत्सर्जनों को कम करने का केन्द्र अब राष्ट्रीय और क्षेत्रीय स्तर की ओर मुड़ गया था।

सन् 2009 में जी **20 पिट्सबर्ग शिखर सम्मेलन** आयोजित किया गया। जीवाश्म ईंधनों जैसे पेट्रोल और डीजन को और अधिक बनाने के लिए सम्मेलन आयोजित किया गया था ताकि इन ईंधनों के प्रयोग को धीर-धीरे समाप्त किया जा सके। इस सम्मेलन में सेबसे गरीब लोगोंके लिए लक्षित सहायता उपलब्ध कराने पर भी सहमति हुई।

सन् 2011 में **'डर्बन'** में वातावरण परिवर्तन वार्ताएं आयोजित की गईं थीं। इन वार्ताओं में **'क्योटा सम्मेलन'** से एक कदम आगे बढते हुए अंतरराष्ट्रीय करार स्थापित करने की और कदम बढ़ाया गया था। विकसित तथा अनेक विकासशील देशों सहित सभी देशों ने कार्बन उत्सर्जन में कमी करने पर सहमति व्यक्त की थी।

सन् 2012 में **'सहस्राब्दी विकास लक्ष्यों'** के सबसे पहले लक्ष्य को प्राप्त किया गया था जो कि 2015 की अपने लक्षित समयसीमा से पहले पूरा कर लिया गया था : विश्वभर में बिना सुरक्षित जल की सुविधा के अभाव वाले लोगों संख्या को आधा कर दिया गया था।

सन् 2012 में **दोहा में संयुक्त राष्ट्र वातावरण परिवर्तन सम्मेलन** आयोजित किया गया था। इस सम्मेलने में 2012 में समाप्त होने वाले क्योटो प्रोटोकाल को 2020 तक बढाए जाने पर सहमति व्यक्त की गई थी। यह भी सहमति हुई थी कि डर्बन में हुए करार को परिवर्तित करके 2015 तक किया जाएगा और इसे 2020 तक क्रियान्वित किया जाएगा।

सन् 1972 के **स्टॉकहोम घोषणा** से लेकर सन् 2012 में दोहा में आयोजित नवीनतम सम्मेलन तक लगभग चालीस वर्ष बीत चुके हैं। हम अपने गृह को हरा बनाने और स्वच्छ ऊर्जा समाधानों को विकसित करने में सक्रीय रूप से शामिल हैं। विश्व, एक इकाई के रूप में भूख, बीमारी, निरक्षरता, असमानता को कम करने और ऐसी ही अनेक समस्याओं से लड़ने के प्रति प्रतिबद्ध है। लक्ष्य यह सुनिश्चित करना है कि विकास के लाभ समाज के सभी वर्गों तक पहुंचें और वो भी बिना भावी पीढ़ी की कीमत पर।

पाठगत प्रश्न 25.2.2

1. **''सहस्राब्दी विकास लक्ष्यों''** से आपका क्या तात्पर्य है?
2. **''क्योटा-प्रोटोकॉल''** क्या है?
3. किसी प्रोटोकॉल के तहत राष्ट्र हाईड्रो-क्लोरोफ्लोरो कार्बन को समाप्त करने पर सहमत हुए थे?
4. कहां और कब विभिन्न राष्ट्र 2012 में समाप्त होने वाले **'क्योटो प्रोटोकॉल'** को आगे बढ़ाने के लिए सहमत हुए थे।

25.3 धारणीय विकास की आवश्यकता

विश्व समग्र रूप से पर्यावरणिक, आर्थिक और सामाजिक विकास के बीच संतुलन बनाने के लिए अपनी प्रतिबद्धता के प्रति अटल है। धारणीय विकास की कार्यसूची भी समग्र विकास पर आधारति है। इसका अर्थ है कि विकास के प्रारूप में समाज के सभी वर्ग -प्रबुद्ध, गरीब, पुरूष तथा महिलाएं सभी शामिल हैं। विकास का इस प्रकार का प्रारूप पारितंत्र की विविधता के संरक्षण की आवश्यकता पर आधारित है। धारणीय विकास में शामिल हैं :

- भूमि, स्वच्छ-जल और समुद्रीय प्रणालियों में जैविक विवधता का संरक्षण;
- संसाधनों का धारणीय उपयोग और संसाधनों के विनाश को न्यूनतम बनाना;
- पर्यावरण का ध्यान रखना;
- सामाजिक तथा आर्थिक क्षेत्र सहित जीवन की गुणवत्ता में सुधार करना;
- प्राकृतिक पूंजी अर्थात नवीकरणीय तथा नश्वर संसाधनों का संरक्षण;
- प्राकृतिक व सांस्कृतिक विविधता का संरक्षण;
- प्राकृतिक संसाधनों के उपयोग और अपशिष्ट के समावेशन पर सीमाएं;
- सभी समाजों द्वारा संसाधनों के उपयोग में कुशलता;
- गरीबी उन्मूलन तथा लिंग समानता के द्वारा सामाजिक समानता;
- पर्यावरणीय - ग्रीनहाऊस गैसों के उत्सर्जन में कमी करना;
- ओजोन हानिकारक तत्वों के प्रयोग में कमी;

- रसायनिक उर्वरकों के प्रयोग में कमी करना;
- मरूस्थलीकरण को रोकना; एवं
- निर्वनीकरण को रोकना।

पाठगत प्रश्न 25.3

1. ''धारणीय विकास'' की आवश्यकता क्यों है? धारणीय विकास के लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए किन्ही दो महत्वपूर्ण कारकों का उल्लेख करें।
2. धारणीय विकास की कार्यसूची (Agenda) क्या है?

25.4 भारतीय कानून में धारणीय विकास

स्टॉकहोम और रियो सम्मेलनों के पश्चात विश्वभर के देशों ने धारणीय विकास के तीन स्तंभों से संबंधित अनेक कानूनों को अपनाया है। भारत ने भी इस संबंध में अनेक कानूनों को लागू किया है। बहरहाल, जहां तक कानून का लागू करने का प्रश्न है संबंधित राष्ट्र इन कानूनों के क्रियान्वयन या गैर-क्रियान्वयन के लिए हिचकिचाते हैं। उच्चतम न्यायालय ने कई बार यह कहा है कि भारतीय कानून उन अंतरराष्ट्रीय संधियों और अभिसमयों से बाध्य है जिनमें वह एक हस्ताक्षरकर्ता पक्ष है।

प्रायरू भारत में न्यायपालिका कानून के क्रियान्वयन में आगे रहती है। धारणीय विकास पर भारतीय कानून को चार विशिष्ट किन्तु अतिव्यापी चरणों में वर्गीकृत किया जा सकता है। ये चरण निम्नानुसार हैं :

25.4.1 प्रथम चरण (1972-1983)

इस चरण में पर्यावरण के संरक्षण पर ध्यान केन्द्रित किया गया था। यह चरण व्यापक स्तर पर सन् 1972 के स्टॉकहोम सम्मेलन से प्रभावित था जिसमें सभी हस्ताक्षरकर्ता राष्ट्रों के लिए पर्यावरण संरक्षण के उपायों को अपनाना अपेक्षित था। वन्य जीवन को सुरक्षित रखने तथा जल व वायु प्रदूषण को रोकने के लिए संवैधानिक संशोधन और विधानों का निर्माण इसकी मुख्य विशेषताएं थीं।

हमारी न्यायपालिका में ऐसे अनेक महत्वपूर्ण संवैधानिक प्रावधान है जो नागरिकों को अपने मौलिक अधिकारों के संरक्षण के लिए भारत के उच्च न्यायालयों और उच्चतम न्यायलय में अपील करने का अधिकार प्रदान करते हैं। संविधान के **अनुच्छेद-226** में नागरिकों को अधिकार दिया गया है कि वे अपने मौलिक अधिकारों को लागू कराने के लिए उच्च न्यायालय में जा सकते हैं और उच्च न्यायालय को इस संबंध में विभिन्न आदेश जारी करने का अधिकार प्रदान किया गया है। मौलिक अधिकारों का लागू करनाने के लिए भारत के नागरिक भारतीय संविधान के **अनुच्छेद 32** का प्रयोग कर सकते हैं। संविधान का **अनुच्छेद 21** नागरिकों के एक

महत्वपूर्ण मालिक अधिकारकीगारंटी प्रदान करता है और उसमें कहा गया है कि कानून द्वारा स्थापित प्रक्रिया को छोड़कर किसी व्यक्ति को उसके जीवन या व्यक्तिगत स्वतंत्रता से वंचित नहीं रखा जाएगा। अनुच्छेद 21 में निहित इस ''जीवन के अधिकार'' को भारत के उच्चतम न्यायालय द्वारा अत्यंत व्यापक व्याख्या प्रदान की गई है। राज्य नीति के एक निर्देशक सिद्धांत, अनुच्छेद 48-क में कहा गया है कि राज्य पर्यावरण की संरक्षा और सुधार तथा देश के वनों और वन्यजीवन को सुरक्षा प्रदान करने के प्रति प्रयासरत रहेगा।

भारत ने सन् 1976 में संविधान में **42वें संशोधन** को क्रियान्वित किया था। इस संशोधन के माध्यम से **अनुच्छेद 48**-क लागू किया गया, जिसके तहत पर्यावरण, वनों और वन्यजीवन का संरक्षण व संवर्धन राज्य नीति का निर्देशाक सिद्धांतों का भाग बन गया। **अनुच्छेद 51क (छ)** के माध्यम से पर्यावरण के संरक्षण को सभी नागररिकों का मौलिक दायित्व बना दिया गया है।

इसके अतिरिक्त, पर्यावरण से संबंधित अनेक अधिनियमों का सृजन किया गया था अर्थात वन्यजीवन (संरक्षण अधिनियिम), 1972, जल (प्रदूषण निवारण एवं नियंत्रण) अधिनियम, 1974, जल (प्रदूषण निवारण एवं नियंत्रण) उपकर अधिनियम, 1977, वन संरक्षण अधिनियम, 1980 तथा वायु (प्रदूषण निवारण एवं नियंत्रण) अधिनियम, 1981.

25.4.2 दूसरा चरण (1984-1997)

इस चरण में सामाजिक समानता और न्याया पर ध्यान केन्द्रित किया गया था। सन् 1984 में **'भोपाल गैस त्रासदी'** की प्रतिक्रिया के रूप में न्यायिक सक्रीयतावाद में व्यापक वृद्धि हुई जिसके परिणामस्वरूप मौजूदा कानूनों और विधानों की पुनःव्याख्या हुई।

सन् 1987 में **'वायु (प्रदूषण निवारण एवं नियंत्रण) अधिनियम, 1981'** में प्रमुख आशोधन किए। 1991 में अधिसूचित जोखिमपूर्ण पदार्थों की हैंडलिंग से हुई दुर्घटनाओं से प्रभावित लोगों को **''अदोष आधार पर''** तत्काल राहत प्रदान करने के लिए जन दायित्व बीमा अधिनियम तैयार किया गया था। इस अधिनियम के अंतर्गत खतरनाक पदार्थों का कार्यकरने वाले सभी उद्योगों के लिए यह अनिवार्य कर दिया गया है कि वे पीड़ितों को या सम्पत्ति को क्षति से तत्काल राहत पहुंचाने के लिए लोक दायित्व बीमा ले।

'रियो घोषणा', जिसमें सभी राष्ट्रों को प्रदूषण तथा अन्य पर्यावरणीय खतरों से पीड़ितों के प्रतिदायित्वों और क्षतिपूर्ति संबंधी काननों को विकसित करने का कहा गया था, की प्रतिक्रिया में दो अधिनियमों को बनाया गया था अर्थात राष्ट्रीय पर्यावरण न्यायाधिकरण अधिनियम, 1995 (निरस्त) तथा राष्ट्रीय पर्यावरण अपील प्राधिकरण अधिनियम। इन्हें बाद में निरस्त करके नए **'राष्ट्रीय हरित न्यायाधिकरण' अधिनियम, 2010** द्वारा प्रतिस्थापित कर दिया गया है।

सन् 1986 में पर्यावरण (संरक्षण) अधिनियम (EPA) बनाया गया था। इस अधिनियम का कार्यक्षेत्र बहुत व्यापक है और यह प्रदूषण को स्रोत पर ही रोकने तथा प्रदूषक द्वारा प्रदूषण के लिए भुगतान किए जाने के सिद्धांत पर कार्य करता है और नीति निर्धारण में जनसाधारण की भागीदारी पर भी बल देता है। सन् 1994 में पर्यावरणप्रभाव आकलन (ईआईए) अधिसूचना जारी की गई थी, इसे 2006 में संशोधित किया गया था और अद्यतन संशोधन 2009 में जारी किया गया है। पर्यावरण प्रभाव आकलन के अंतर्गत अनेक गतिविधियों और उद्योगों के लिए पर्यावरणीय क्लियरेंस लेना अनिवार्य है जिसमें प्रक्रिया के अनुसार जनसाधारण की भागीदारी भी

शामिल है। महत्वपूर्ण रूप से **'रियो'** के पश्चात इनमें से अनेक पर्यावरणीय सिद्धांतों को अनुच्छेद 21 (दायें से बाएं) के भाग के रूप में स्वीकार किया गया है।

पर्यावरण के संरक्षण और प्रदूषण के निवारण के लिए अन्य विधान तैयार किया गया है अर्थात मोटर वाहन अधिनियम, 1988 ताकि वाहनों के कारण होने वाले वायु प्रदूषण को नियंत्रित किया जा सके।

पाठगत प्रश्न 25.4.1 और 25.4.2

1. भारत में पर्यावरण कानून के प्रथम चरण में किस ओर ध्यान केन्द्रित किया गया था?
2. संविधान के अनुच्छेद 51क (छ) के महत्व का उल्लेख करें।
3. 'भोपाल गैस त्रासदी' कब हुई थी?
4. 'रियों घोषणा' पर भारतीय विधि निर्माताओं की क्या प्रतिक्रिया थी?

25.4.3 तीसरा चरण (1998-2004)

तीसरा चरण सन् 1998 में भारत की विश्व व्यापार संगठन (डब्ल्यूटीओ) की सदस्यता से संबंधित है। इस चरण में सामाजिक तथा पर्यावरणीय मुद्दों के साथ आर्थिक विकास को संयोजित करने पर ध्यान केन्द्रित किया गया था। जैविक विवधता सम्मेलन (सीबीडी) के सिद्धांतों को ध्यान में रखते हुए बौद्धिक सम्पत्ति अधिकारों (टीआरआईपीएस) के व्यापार-संबंधित पहलुओं पर करार का अनुपालन सुनिश्चित करने के लिए विधान बनाए गए और मौजूदा विधानों में संशोधन किए गए।

'जैविक विवधता सम्मेलन (CBD)' के सिद्धांतों को ध्यान में रखते हुए **जैविक विवधता अधिनियम, 2002** पारित किया गया। विधानों का उद्देश्य देशों का अपने आनुवांशिक तथा जैविक संसाधनों पर स्वायत्त अधिकारों को सुनिश्चित करना और स्वदेशी ज्ञान के धारकों द्वारा जैविक संसाधनों के वाणिज्यिक उपयोग से प्राप्त होने वाले लाभों की प्राप्त करने की आवश्यकता को स्वीकार करना है।

पेटेंट (संशोधन) अधिनियम, 2005 में वस्तुओं के स्वदीशी ज्ञान के दुर्विनियोजना को रोकने के लिए उसे गैर-पेटेंटीय बनाकर उसके संरक्षण का प्रावधान है। वस्तुओं के भौगोलिक लक्षण (पंजीकरण और संरक्षण) अधिनियम, 1999 में ग्रामीण तथा स्वदेशी समुदायों में उनके विशिष्ट उत्पादों के संयुक्त अधिकारों के संरक्षण का प्रावधान है।

पर्यावरण (संरक्षण) अधिनियम के अंतर्गत इस चरण में अपशिष्ट प्रबंधन और पदार्थो जैसे प्लास्टिक आदि की रीसाइकलिंग से संबंधित अनेक गौण विधानों को भी पारित किया गया था। इनमें शामिल हैं :

- नगरपालिका स्थूल अपशिष्ट (प्रबंधन और सम्भलाई) नियम, 2000;
- पुनर्चक्रित प्लास्टिक विनिर्माण और प्रयोग नियम, 1999;

- खतरनाक रसायनों के विनिर्माण, भंडारण ओर आयात (संशोधन) नियम, 2000;
- बैटरी (प्रबंधन और सम्भलाई) नियम, 2001;
- ओजोन अवक्षय पदार्थ (विनियमन तथा नियंत्रण) नियम, 2000;
- जल प्रदूषण से निपटने के लिए राज्य नदी संरक्षण प्राधिकरणों को शक्तियां प्रदान करने के लिए अनेक अधिसूचनाएं भी जारी की गई हैं; एवं
- ध्वनि प्रदूषण (विनियमन और नियंत्रण) नियम, 2000.

इस चरण में ऊर्जा के संरक्षण और ऊर्जा के अक्षय (renewable energy) स्रोतों के प्रयोग पर बल दिया गया था। इसके परिणामस्वरूप, **ऊर्जा संरक्षण अधिनियम, 2001** बनाया गया जिसने ऊर्जा कुशलता ब्यूरों की भी स्थापना की। विद्युत अधिनियम, 2003 में ऊर्जा के क्षेत्र में बेहतर विकास को सुनिश्चित करने और अक्षय ऊर्जा के प्रयोग पर बल दिया गया।

उच्चतम न्यायालय के आदेशों के तहत, **'प्रतिपूरक वनारोपण प्रबंधन तथा नियोजन एजेंसी' की स्थापना सन् 2004** में की गई थी ताकि वनारोपणस के माध्यम से निर्वनीकरण के लिए क्षतिपूर्ति की जा सके।

25.4.4 चौथा चरण (2005 तथा आगे)

यह चरण अग्रसक्रीय अधिकार आधारित दृष्टिकोण से चिन्हित है। अधिकार आधारित दृष्टिकोण वह है जिसमें समाज के सभी वर्गों, विशेष रूप से असहाय वर्ग, के अधिकारोंको सुनिश्चित किए जाने पर बल दिया जाता है। इनमें ये विधान शामिल हैं : मानवाधिकार अधिनियम, 2003; निशुल्क व अनिवार्य बाल शिक्षा अधिनियम, 2009 तथा बाल अधिकार संरक्षण आयोग अधिनियम, 2005; अभिभावक एवं वरिष्ठ नागरिक अनुरक्षण और कल्याण अधिनियम, 1995।

उदाहरण के लिए पारम्परिक वन निवासियों के अधिकारों को वन अधिकार अधिनियम, 2006 में संहिताबद्ध किया गया है। अधिनियम में वन निवासियों की आवश्यकताओं को वन्यजीवन और वनों के संरक्षण की आवश्यकता के साथ समायोजित करने पर बल दिया गया है। वन्यजीवन (संरक्षण) अधिनियम, 1972 को सन् 2002 में संशोधित किया गया था और इसमें राष्ट्रीय उद्यानों और सेंचुरीयों के आसपास प्रतिरोधकों के प्रबंधन और श्सामुदायिक आरक्षित निधियोंश की अवधारणा आरंभ करने को कहा गया है।

इस चरण में पर्यावरण प्रभाव आकलन के माध्यम से पर्यावरण पर ध्यान केन्द्रित करना जारी रहा है।

2006 की अधिसूचना और खतरनाक अपशिष्ट (प्रबंधन, सम्भलाई और ट्रांसबाउंडरी संचलन) नियम, 2008। 2011 में इलैक्ट्रानिक अपशिष्ट के प्रबंधन की पर्यावरणीय सुदृढ विधियों के लिए ई-अपशिष्ट (प्रबंधन और सम्भलाई) नियमों को अधिसूचित किया गया था।

राष्ट्रीय हरित न्यायाधिकरण, 2010 में कोशिश की गई है कि रियो में किए गए वादों को पूरा गया जाएक और पर्यावरणीय संरक्षण,वनों तथा प्राकृतिक संसाधनों से संबंधित मामलों का

प्रभावपूर्ण तथा तीव्र निपटान किया जाए और क्षति के लिए राहत और क्षतिपूर्ति उपलब्ध कराई जाए। भारत में न्यायपालिका को कानून के व्याख्याता तथा जन हित याचिकाओंके माध्यम से कानून के क्रियान्वयन की भूमिका अदा करनी होगी।

भारतीय न्यायपालिका, सामान्य रूप से, राष्ट्र के मौजूदा कानून के अतिरिक्त लोक-न्यास के सिद्धांत, पूर्वोपाय के सिद्धांत, प्रदूषक भुगतान सिद्धांत, कड़े वघनिरपेक्ष दायित्व के सिद्धांत कठोर क्षति सिद्धांत, प्रदूषण दंड सिद्धांत और अन्तररूपीढ़ीय भागीदारी सिद्धांत पर निर्भरहै।

पाठगत प्रश्न 25.4.3 और 25.4.4

1. तीसरे चरण में भारतीय कानून का ध्यान किस ओर केन्द्रित है?
2. जैविक विविधता अधिनियम के मुख्य उद्देश्य या प्रयोजन का वर्णन करें।
3. किस अधिनियम के अंतर्गत हम समुदायों के स्वदेशी ज्ञान के दुर्विनियोजन का निवारण कर सकते हैं?
4. 'अधिकार आधारित परिदृश्य' से आप क्या समझते हैं।

आपने क्या सीखा

''धारणीय विकास'' प्राकृतिक संसाधनों के उपभोग तथा उपयोग की दर से संबंधित है। आज यह सुनिश्चित किए जाने पर बल दिया जा रहा है कि हम अपने संसाधनों का प्रयोग उस दर से न करें जिससे कि उन्हें दीर्घकाल के लिए बनाए रखना या प्रतिस्थापित करना संभव न हो।

धारणीयता विश्व के उस एकीकृत विचार को महत्व प्रदान करती है जो समुदाय की अर्थव्यवस्था, पर्यावरण और समाज को जोड़ता है। यह इस तथ्य को स्वीकार करता है कि अर्थव्यवस्था समाज के भीतर ही विद्यमान होती है और समाज पृथ्वी की पर्यावरणीय प्रणाली के भीतर विद्यमान है।

धारणीय विकास की उत्पत्ति सन् 1972 में स्टॉकहोल्म में मानव पर्यावरण पर संयुक्त राष्ट्र सम्मेलन से हुए और 2012 में दोहा तक जारी रही।

धारणीय विकास पर कानूनों का निर्माण 1972 से आगे चार चरणों में हुआ। प्रथम चरण : 1972-1983, दूसरा चरण : 1984-1997, तीसरा चरण : 1998-2007 और चौथा चरण : 2005 और आगे।

धारणीयता को प्राप्त करनेमें संरचित संस्थानों जैये विभिन्न मंत्रालयों और विभागों के महत्व से इनकार नहीं किया जा सकता है।

सरकार, राज्य सरकारों तथा अन्य संबंधित एजेंसियों द्वारा पर्यावरणीय कानून के अनुपालन को सुनिश्चित करने तथा पर्यावरणीय संरक्षण में भारत में न्यायपालिका की भूमिका सराहनीय है।

पाठांत प्रश्न

1. ''धारणीय विकास'' की अवधारणा का वर्णन करें।
2. 'बंटलैंड रिपोर्ट' क्या है? इसमें धारणीयता को किस प्रकार परिभाषित किया गया है?
3. धारणीयता के तीन घटकों को उजागर करने वाले उदाहरणों के माध्यम से 'धारणीय विकास' का वर्णन करें।
4. अधारणीयता के कारणों की पहचान करें।
5. हमें 'धारणीय विकास' की आवश्यकता क्यों है?
6. धारणीयता को प्राप्त करने में संस्थागत तंत्रों का क्या महत्व है?
7. 'स्टॉकहोम घोषणा' की मुख्य विशेषताओं का उल्लेख करते हुए इसके महत्व का वर्णन करें।
8. 'रियो घोषणा- एजेंडा 21' की मुख्य विशेषताओं का उल्लेख करें।
9. धारणीय विकास पर विश्व शिखर-सम्मेलन (डब्ल्यू.एस.एस.डी) के महत्व पर चर्चा करें।
10. भारतीय पर्यावरणीय कानून के प्रथम चरण की महत्वपूर्ण विशेषताओं का वर्णन करें।
11. 1984-1997 के दौरान दूसरे चरण में पर्यावरण पर कानूनों के निर्माण में 'भूपाल गैस त्रासदी' के प्रभाव को दर्शाएं।
12. भारतीय पर्यावरणीय कानून के तीसरे और चौथे चरण की महत्वपूर्ण विशेषताओं का वर्णन करें।

पाठगत प्रश्नों के उत्तर

25.1.1

1. ''धारणीय विकास वह विकास है जो अपनी स्वयं की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए भावी पीढियों की क्षमता से समझौता किए बिना वर्तमान की आवश्यकताओं को पूरा करता है''

   ''धारणीय विकास'' प्राकृतिक संसाधनों के उपभोग तथा उपयोग की दर से संबंधित है। आज यह सुनिश्चित किए जाने पर बल दिया जा रहा है कि हम अपने संसाधनों का प्रयोग उस दर से न करें जिससे कि उन्हें दीर्घकाल के लिए बनाए रखना या प्रतिस्थापित करना संभव न हो।

2. अधारणीयता के कुछ कारण निम्नानुसार हैं :

    i. मानव जनसंख्या में वृद्धि;

    ii. मनुष्य की आवश्यकताओं जैसे ईंधन, चारा और घर को पूरा करने के लिए संसाधनों का अधिक दोहन;

    iii. गतिविधियां जैसे मछली पकड़ना, कृषि, स्वच्छ जल का आवश्यकता से अधिक प्रयोग, निर्वनीकरण तथा औद्योगिकीकरणी।

    iv. भूमि का साफ करना जिसके कारण मृदा निम्नीकरण, प्रदूषण, जैव-विविधता की हानि, निर्वनीकरण, मरूस्थलीकरण, पर्यावरण परिवर्तन हो रहा है।

    v. बढ़ती हुई बेरोजगारी, स्वास्थ्य संबंधी संकट, सशस्त्र लड़ाइयां, शहरीकरण, गरीबी तथा आय की असामानता जैसे कारकों के कारण सामाजिक अपकर्षण।

25.1.2

1. धारणीयता के घटक हैं - अर्थव्यवस्था, पर्यावरण और समाज।

2. आर्थिक विकास के कुछ लक्षित क्षेत्र हैं- ग्रामीण विकास, शहरी विकास और उद्योग।

3. स्वास्थ्य और परिवार कल्याण मंत्रालय लोगों के स्वास्थ्य का ध्यान रखता है।

4. **'पर्यावरणीय निम्नीकरण'** (Environmental degrations) के निवारण के लिए हम किसानों को पर्यावरण-सहिष्णु कृषि पद्धतियां सिखा सकते हैं जैसे फसल चक्र, प्राकृतिक उर्वरक और कीटनाशक।

25.2.1

1. **'स्टॉकहोम घोषणा'**, 1972 में अप्रतिबंधित विकास के परिणामों तथा अनेक वैश्विक समस्याओं के बीच संबंधों को उजागर किया गया था।

2. **'रिया करारों'** पर अनुवर्ती कार्रवाई के लिए धारणीय विकास पर एक आयोग की स्थापना की गई थी और यह स्थानीय, राष्ट्रीय, क्षेत्रीय तथा अंतरराष्ट्रीय स्तरों पर अर्थ समिट के करारों की मॉनीटरिंग करता है।

25.2.2

1. सन् 2005 में, **'क्योटा प्रोटोकॉल'** के अंतर्गत करार किया गया जो विकसित देशों को 'ग्रीनहाउस गैस' के उत्सर्जन में कमी लक्ष्य निर्धारित करने और विकासशील देशों के लिए स्वच्छ विकास तंत्र की स्थापना हेतु लक्ष्य निर्धारित करना कानूनी रूप से अनिवार्य कर दिया गया है।

2. सन् 2007 में **'मांट्रियल प्रोटोकॉल'** के तहत उन तथ्यों के संबंध में करार पर हस्ताक्षर किए गए थे जो ओजोन परत को समाप्त कर रहे हैं। देशों में हाईड्रो क्लोरोफ्लोरो

कार्बन (HCFC) के प्रयोग को चरणबद्ध आधार पर समाप्त करने पर सहमति हुई थी।

3. दस वर्षीय समीक्षा के लिए सन् 2002 में **धारणीय विकास विश्व शिखर सम्मेलन (WSSD)** आयोजित किया गया। यह सम्मेलन जोहानसबर्ग, दक्षिण अफ्रीका में आयोजित किया गया था। इसमें राष्ट्रों से अनुरोध किया गया था कि वे धारणीय विकास के लिए नीतियों के निर्माण और क्रियान्वयन के लिए के लिए कार्य करें और इन्हें सन् 2005 से क्रियान्वित करें।
4. सन् 2012 में **दोहा में संयुक्त राष्ट्र वातावरण परिवर्तन सम्मेलन** आयोजित किया गया था। इस सम्मेलने में 2012 में समाप्त होने वाले क्योटो प्रोटोकाल को 2020 तक बढाए जाने पर सहमति व्यक्त की गई थी।

25.3

1. धारणीय विकास द्वारा पर्यावरणीय प्रणाली की विविधता को संरक्षित रखे जाने की आवश्यकता है। धारणीय विकास प्राप्त करने के दो महत्वपूर्ण कारक हैं :
   i. भूमि, स्वच्छ-जल और समुद्रीय प्रणालियों में जैविक विवधता का संरक्षण।
   ii. संसाधनों का धारणीय उपयोग और संसाधनों के विनाश को न्यूनतम बनाना।
2. धारणीय विकास की कार्यसूची भी समग्र विकास पर आधारति है। इसका अर्थ है कि विकास के प्रारूप में समाज के सभी वर्ग -प्रबुद्ध, गरीब, पुरूष तथा महिलाएं सभी शामिल हैं। विकास का इस प्रकार का प्रारूप पारितंत्र की विविधता के संरक्षिण की आवश्यकता पर आधारित है।

25.4.1 तथा 25.4.2

1. इस चरण में पर्यावरण के संरक्षण पर ध्यान केन्द्रित किया गया था। यह चरण व्यापक स्तर पर सन् 1972 के **'स्टॉकहोम सम्मेलन'** से प्रभावितथा जिसमें सभी हस्ताक्षरकर्ता राष्ट्रों के लिए पर्यावरण संरक्षणके उपायों को अपनाना अपेक्षित था। वन्य जीवन को सुरक्षित रखने तथा जल व वायु प्रदूषणको रोकने के लिए संवैधानिक संशोधन और विधानों का निर्माण इसकी मुख्य विशेषताएं थीं।
2. **अनुच्छेद 51क (छ)** के माध्यम से पर्यावरण के संरक्षण को सभी नागररिकों का मौलिक दायित्व बना दिया गया है।
3. **'भोपाल गैस त्रासदी'** सन् 1984 में हुई थी।
4. **'रियो घोषणा'**, जिसमें सभी राष्ट्रोंको प्रदूषण तथा अन्य पर्यावरणीय खतरों से पीड़ितों के प्रतिदायित्वों और क्षतिपूर्ति संबंधी काननों को विकसित करने का कहा गया था, की प्रतिक्रिया में दो अधिनियमों को बनाया गया था अर्थात **राष्ट्रीय पर्यावरण**

न्यायाधिकरण अधिनियम, 1995 (निरस्त) तथा राष्ट्रीय पर्यावरण अपील प्राधिकरण अधिनियम। इन्हें बाद में निरस्त करके नए **राष्ट्रीय हरित न्यायाधिकरण अधिनियम, 2010** से प्रतिस्थापित कर दिया गया है।

25.4.3 तथा 25.4.4

1. इस चरण में सामाजिक तथा पर्यावरणीय मुद्दों के साथ आर्थिक विकास को संयोजित करने पर ध्यान केन्द्रित किया गया था। जैविक विवधता सम्मेलन (सीबीडी) के सिद्धांतों को ध्यान में रखते हुए बौद्धिक सम्पत्ति अधिकारों (टीआरआईपीएस) के व्यापार-संबंधित पहलुओं पर करार का अनुपालन सुनिश्चित करने के लिए विधान बनाए गए और मौजूदा विधानों में संशोधन किए गए।

2. जैविक विवधता सम्मेलन (सीबीडी) के सिद्धांतों को ध्यान में रखते हुए **जैविक विवधता अधिनियम, 2002** पारित किया गया। विधानों का उद्देश्य देशों का अपने आनुवांशिक तथा जैविक संसाधनों पर स्वायत्त अधिकारों को सुनिश्चित करना और स्वदेशी ज्ञान के धारकों द्वारा जैविक संसाधनों के वाणिज्यिक उपयोग से प्राप्त होने वाले लाभों की प्राप्त करने की आवश्यकता को स्वीकार करना है।

3. **पेटेंट (संशोधन) अधिनियम,** 2005 में वस्तुओं के स्वदीशी ज्ञान के दुर्विनियोजना को रोकने के लिए उसे गैर-पेटेंटीय बनाकर उसके संरक्षण का प्रावधान है।

4. **'अधिकार आधारित दृष्टिकोण'** वह है जिसमें समाज के सभी वर्गों, विशेष रूप से असहाय वर्ग, के अधिकारों को सुनिश्चित किए जाने पर बल दिया जाता है। इनमें ये विधान शामिल हैं : मानवाधिकार अधिनियम, 2003; निशुल्क व अनिवार्य बाल शिक्षा अधिनियम, 2009 तथा बाल अधिकार संरक्षण आयोग अधिनियम, 2005; अभिभावक एवं वरिष्ठ नागरिक अनुरक्षण और कल्याण अधिनियम, 1995 ।

26

पर्यावरणीय काननू के सामान्य सिद्धांत

पर्यावरण का संरक्षण एक वैश्विक मुद्दा है क्योंकि यह सभी देशों से संबंधित हा जहां देश किसी भी आकार, स्तर, विकासव या विचारधारा से है। विज्ञान और प्रौद्योगिकी के विकास और जनसंख्या में वृद्धि के परिणामस्वरूप पर्यावरण में व्यापक परिवर्तन हुआ है और अंततः यह विश्व के पर्यावरणीय तंत्र (ecosystem) में परिवर्तन कर रहा है।

पर्यावरणीय तंत्र और अर्थव्यवस्था तथा उसकी धारणीयता के बीच संतुलन बनाने के उद्देश्य से पर्यावरणीय काननू के विकास पर दो मुख्य अंतरराष्ट्रीय सम्मेलनों का आयोजन किया गया है। पहला, स्टॉकहोम सम्मेलन, 1972 जिसे ''अर्थ समिट'' के नाम से जाना जाता है और दूसरा अंतरराष्ट्रीय सम्मेलन धारणीय विकास पर 'आर-10 सम्मेलन' था जो आर-10 घोषणा के नाम से प्रसिद्ध है। ''आर-10 सम्मेलन'' का मुख्य उद्देश्य पारितंत्र और अर्थव्यवस्था और उसकी धारणीयता के बीच संतुलन स्थापित करना था।

भारत में, जल और वायु प्रदूषण को नियंत्रित करने और वनों व वन्यजीवन की सुरक्षा और संरक्षा के लिए कानून बनाए गए हैं। ये कानून हैं : जल प्रदूषण अधिनियम, 1971; वायु प्रदूषण अधिनियम, 1971 तथा पर्यावरण संरक्षण अधिनियम, 1986 ।

वैश्विक पर्यावरणीय संकट ने आधुनिकता और उसके मूल्यों पर प्रश्न चिन्ह लगा दिया है। मनुष्य और अन्य प्रकार के जीवन के अस्तित्व का मुद्दा अत्यंत चिंता का विषय बन गया है। मौलिक पर्यावरणीय सिद्धांत जो श्श्पर्यावरण के आशीर्वादों का लाभ वर्तमान पीढ़ी को प्राप्त हो और यह भावी पीढियों तक भी पहुंचे'' के सिद्धांत का अनुसरण करता है, एक धारणीय समाज का सृजन किया जाना चाहिए जहां मानव गतिविधियों द्वारा पर्यावरणीय दबाव को न्यूनतम किया जाए।

उद्देश्य

इस पाठ के अध्ययन के पश्चात आप :

- 'पर्यावरण' के अर्थ को जान पाएंगे;
- 'प्रदूषण के अर्थ' को समझ पाएंगे;

- 'प्रदूषक भुगतान सिद्धांत' का वर्णन कर पाएंगे;
- जल प्रदूषण अधिनियम, 1971 के मुख्य प्रावधानों की सूची बना पाएंगे;
- वायु प्रदूषण अधिनियम, 1971 के मुख्य प्रावधानों की सूची बना पाएंगे;
- पर्यावरण संरक्षा अधिनियम, 1986 के मुख्य प्रावधानों का वर्णन कर पाएंगे;
- 'दोहरे दायित्व' के अर्थ को समझ पाएंगे;
- पूर्वोपाय सिद्धांत को परिभाषित कर पाएंगे।
- धर्मार्थ न्यास सिद्धांत की अवधारण का वर्णन कर पाएंगे; और
- 'धर्मार्थ न्यास सिद्धांत' का वर्णन कर पाएंगे।

26.1 पर्यावरण

शब्द 'पर्यावरण' से तात्पर्य जल, वायु तथा भूमि और इनके व मनुष्य, अन्य जीवों तथा पदार्थों के बीच के अंतर संबंध के कुल योग से है। शब्दकोश के अनुसार पर्यावरण, "हमारे आसपास की कोई भी और हर कोई वस्तु पर्यावरण है"।

प्रदूषण

प्रदूषण प्राकृतिक पर्यावरण में संदूषणों का समावेशन है जो पर्यावरण में प्रतिकूल परिवर्तन प्रस्तुत करता है। प्रदूषण रसायनिक तत्वों और ऊर्जा का रूप ले सकता है जैसे ध्वनि, ताप य प्रकाश। प्रदूषक जो कि प्रदूषण के घटक हैं, वे बाहरी तत्व ऊर्जा या प्राकृतिक रूप से संदूषक हो सकते हैं।

उच्चतम न्यायालय के अनुसार, **एम.सी.मेहता बनाम भारत संघ** (एआईआर 2000 एससी 1997) के मामले में प्रदूषण एक गलत नागरिक प्रक्रिया है, जो अपनी स्वयं की प्रकृति में समग्र रूप से समुदाय के विरूद्ध अपराध स्वरूप है। इसलिए, वह व्यक्ति जो प्रदूषण उत्पन्न करने का दोषी है, उसे पर्यावरण तथा पारिस्थितिकी को हुई क्षति को बहाल करने के लिए क्षतिपूर्ति करनी होगी।

पाठगत प्रश्न 26.1

1. 'पर्यावरण' को परिभाषित करें।
2. क्या आप 'प्रदूषण' शब्द के अर्थ को जानते हैं?

26.3 प्रदूषक द्वारा भुगतान का सिद्धांत

पर्यावरणीय कानून में, ''प्रदूशक द्वारा भुगतान का सिद्धांत'' का निर्माण प्रदूषणकर्ता पक्ष को प्राकृतिक पर्यावरण को हुई क्षति के लिए क्षतिपूर्ति का भूगतान करने के लिए किया गया था।

साधारण शब्दों में श्प्रदूषक द्वारा भुगतान का सिद्धांत सामान्यत् स्वीकार्य पद्धति है जिसके अंतर्गत प्रदूषण उत्पन्न करने वाला व्यक्ति मानव स्वास्थ्य और पर्यावरण को क्षति से बचाने के लिए किए गए प्रबंधन की लागत को वहन करेगा।''

उदाहरण के लिए, अपनी गतिविधियों के उपोत्पादन के रूप में संभावित विशैले पदार्थों का उत्पादन करनेवाले एक ैक्टरी, इस विषैले पदार्थ के सुरक्षित निपटान के लिए उत्तरदायी होगी।

''प्रदूषक भुगतान सिद्धांत'' को श्विस्तारित उत्पादक उत्तरदायित्व'' भी कहा जाता है। यही वह अवधारणा है जिसे 1990 में स्विडिश सरकार के लिए थॉमस लिंडक्विस्ट द्वारा संभवत् पहली बार वर्णन किया गया था।

''प्रदूषक भुगतान सिद्धांत'' का पहली बार प्रचार किए जाने का श्रेय **आर्थिक सहयोग और विकास संगठन (ओईसीडी)** को जाता है। आर्थिक सहयोग और विकास संगठन विस्तारित उत्पादक उत्तरदायित्व को इस प्रकार परिभाषित करता है : ''एक अवधारणाजहां उत्पादों के विनिर्माता और आयातकर्ता'' उत्पाद के सम्पूर्ण जीवन-चक्र के दौरान अपने उत्पादों के पर्यावरणीयप्रभावों के लिए व्यापक स्तर तक उत्तरदायित्व को वहन करेंगे और उत्पादों के जीवन-चक्र में उत्पादों के लिए सामग्रियों के चयन में पड़ने वाले अपस्ट्रीम प्रभाव, विनिर्माता की विनिर्माण प्रक्रिया से प्रभाव, और उत्पादों के प्रयोग और निपटान से अनुप्रवाह प्रभाव।

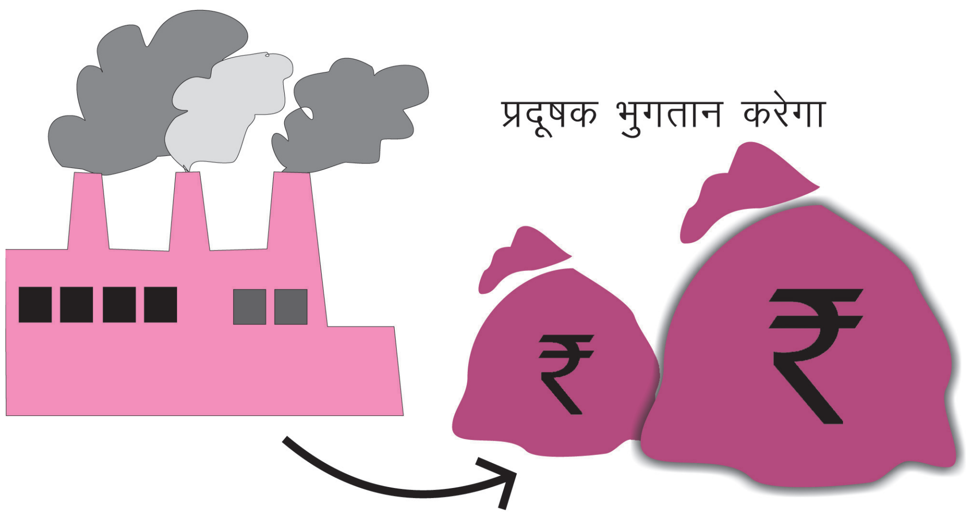

चित्र 1: प्रदूषक भुगतान करेगा

भारत के उच्च्तम न्यायालय ने **'प्रदूषक भुगतान सिद्धांत'** की व्याख्या इस प्रकार की है- पर्यावरण को हानि पहुंचाने के लिए निरपेक्ष दायित्व के रूप में परिभाषित किया गया है जो न केवल प्रदूषण के पीड़ितों को क्षतिपूर्ति प्रदान करने के स्तर तक सीमित है बल्कि पर्यावरण की निम्नीकरण की बहाली की लागत भी शामिल है।

पर्यावरण संरक्षण अधिनियम, 1986 की धारा 3 सुस्पष्ट रूप से सरकार को "सभी ऐसे उपायों को करने, की शक्ति प्रदान करता है जो पर्यावरण की गुणवत्ता के संरक्षण या सुधार के प्रयोज ने आवश्यक या उचित समझा जाए।"

इस प्रकार, इसमें पर्यावरणीय लागत के साथ साथ लोगों या सम्पति को होने वाली प्रत्यक्ष हानि की लागत भी शामिल है। इस प्रकार, इसका अर्थ है कि प्रदूषक द्वारा प्रदूषण की लागत को वहन करना होगा क्योंकि प्रदूषक उसके लिए उत्तरदायी है।

'प्रदूषक भुगतान के सिद्धांत' को **यूरोपीय समुदाय संधि** में शामिल किया गया है। संधि के नियम 2 के अनुच्छेद 102 में कहा गया है कि पर्यावरणीय विवेचन को समुदाय की सभी नीतियों का के भाग के रूप में कार्य करेंगे और इस कार्य को तीन सिद्धांतों पर आधारित होना चाहिए:

i. निवारक कार्रवाई की आवश्यकता;

ii. स्रोत पर ही पर्यावरणीय क्षति को ठीक किए जाने की आवश्यकता;

iii. प्रदूषक द्वारा भुगतान किया जाएगा।

'प्रदूषक भुगतान सिद्धांत' को **रियो घोषणा** 1992 में प्रमुख स्थान प्रदान किया गया था। घोषणा का सिद्धांत 16 घोषणा करता है कि जनहित को ध्यान में रखते हुए तथा अंतरराष्ट्रीय व्यापार और निवेश को बाधित किए बिना इस दृष्टिकोण को ध्यान में रखकर कि प्रदूषक प्रदूषण की लागत को वहन करेगा, राष्ट्रीय प्राधिकरण पर्यावरणीय लागतों के अंतरराष्ट्रीयकरण के संवर्धन और आर्थिक साधनों के प्रयोग के संबंध में प्रयास करेंगे।

पाठगत प्रश्न 26.2

1. 'प्रदूषक भुगतान सिद्धांत' का वर्णन करें?
2. रियो घोषणा 1992 के सिद्धांत 16 की चर्चा करें।

26.3 दोहरा दायित्व

'प्रदूषक भुगतान सिद्धांत' प्रदूषक पर दोहरा दायित्व डालता है अर्थात :

(i) प्रदूषण के पीड़ित को क्षतिपूर्ति; और

(ii) पर्यावरणीय परावर्तन

किन्तु प्रदूषण पर इसके विभिन्न प्रभावों के बावजूद 'प्रदूषक भुगतान सिद्धांत' की विचारधारा इस रूप में सीमित है कि इसका प्रयोग केवल निवारक स्तर पर किया जा सकता है अर्थात प्रदूषण हो जाने के पश्चात ही। इसका अर्थ है कि 'एक व्यक्ति प्रदूषण कर सकता है और उसके बाद उसके लिए भुगतान कर दे।'

पाठगत प्रश्न 26.3

1. 'प्रदूषक भुगतान सिद्धांत' प्रदूषक पर दोहरे दायित्व स्थापित करता है। (सही/गलत)

2. 'प्रदूषक भुगतान सिद्धांत' केवल प्रदूषण हो जाने के पश्चात ही लागू होता है। (सही/गलत)

26.4 पूर्वोपाय सिद्धांत

'पूर्वोपाय सिद्धांत' यह निर्धारित करने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है कि कोई विकास प्रक्रिया धारणीय है या नहीं। पूर्वोपाय सिद्धांत धारणीय विकास का अधार प्रस्तुत करता है जिसके लिए यह आवश्यक है कि विकासात्मक गतिविधियों को रोक दिया जाना चाहिए यदि ये पर्यावरण के लिए गंभीर और अपरिवर्तनीय क्षतियां उत्पन्न करती हैं।

पर्यावरण सुरक्षा

चित्र 2: पर्यावरण को संरक्षित रखें

पूर्वोपाय सिद्धांत यह सुनिश्चित करता है कि तथ्य या गतिविधि जो पर्यावरण के लिए खतरा उत्पन्न करते हैं, उसे प्रतिकूल प्रभाव उत्पन्न करने से पूर्व रोक देना चाहिए, चहे उनके संबंध में कोई वैज्ञानिक साक्षय जुड़े ना भी होंग कि वह विशिष्ट पदार्थ या गतिविधि पर्यावरण के लिए घातक है।

विज्ञान की अपर्याप्ता ही पूर्वोपाय सिद्धांत की उत्पत्ति का वास्तविक आधार है।यह सिद्धांत इस परिकल्पना पर आधारित है कि सावधानी और पर्यावरणीय निवारण क्षति की ओर रहना बेहतर होता जो अंतत् अपरिवर्तित हो जाता है।

पूर्वोपाय सिद्धांत को 1992 में रियो में आयोजित संयुक्त राष्ट्र पर्यावरण और विकास सम्मेलन को सर्वाधिक महत्व प्रदान किया गया है। **'रियो घोषणा' के सिद्धांत 15 में कहा गया है कि :**

''पर्यावरण को संरक्षित रखने के लिए, राष्ट्रों को अपनी क्षमताओं के अनुसार व्यापक स्तर पर पूर्वोपाय के दृष्टिकोण को अपनाना चाहिए, जहां खतरे अपरिवर्तनीय पर्यावरणीय निम्नीकरण के समान गंभीर हों।''

भारत के उच्चतम न्यायालय ने वेल्लूर नागरिक फोरम बनाम भारत सां के मामले में निर्णय दिया है कि पूर्वोपाय सिद्धांत देश में पर्यावरणीय कानून का एक भाग हैं।

पूर्वोपाय सिद्धांत (Precautionary Principle)

पूर्वोपाय सिद्धांत के अनिवार्य तत्व हैं :

- राज्य सरकार तथा सांविधिक प्राधिकरणों द्वारा पर्यावरणीय उपाय जैसे राज्य प्रदूषण बोर्डों द्वारा पर्यावरण निम्नीकरण (Environment degradation) के कारणों का पता लगाना चाहिए, उनका निवारण करना चाहिए तथा उन्हें समाप्त करना चाहिए।
- जहां पर्यावरण को गंभीर तथा अपरिवर्तनीय क्षति का खतरा हो वहां विज्ञानिक निश्चितता के अभाव को पर्यावरणीलय निम्नीकरण के निवारण के उपायों को लंबित किए जाने का कारण नहीं बनाना चाहिए।

पाठगत प्रश्न 26.4

1. 'पूर्वोपाय सिद्धांत' को परिभाषित करें।
2. पूर्वोपाय सिद्धांत के दो अनिवार्य तत्वों की पहचान करें।

26.5 लोक न्यास (Public Trust) का सिद्धांत

'लोक न्यास का सिद्धांत' इस अवधारणा पर आधारित है कि कुछ संसाधनों को जन उपयोग के लिए आरक्षित किया गया है, और सरकार द्वारा उन्हें युक्तिसंगत सार्वजनिक उपयोग के लिए अनुरक्षित किया जाना चाहिए।

प्राचीन रोम साम्राज्य ने एक कानूनी सिद्धांत को विकसित किया था : **''लोक न्यास का सिद्धांत''**, जिसका प्रतिपादन इस विचारधारा के साथ किया गया था कि कुछ सामान्य परिसंपत्तियां जैसे नदियों, समुद्रतटों, वनों और वायुक्षेत्र सरकार के अधिकारक्षेत्र में रहेंगी जो कि जन-साधारण मे निशुल्क और अप्रतिबंधित प्रयोग के लिए होंगी।

लोक न्यास सिद्धांत मूल रूप से इस अवधारणा पर आधारित है कि कतिपय संसाधन जैसे वायु, समुद्र जल तथा वनों को समग्र रूप से लोगों के लिए इतना अधिक महत्व है कि उसे निजी स्वामित्व में दिया जाना पूर्णत अन्यायसंगत होगा। ये संसाधन प्रकृति द्वारा हमें उपहार स्वरूप प्राप्त हुए हैं और इन्हें सभी लोगों के लिए मुक्त रूप से उपलब्ध कराया जाना चाहिए चहे वे लोग जीवन के इसी भी स्तर के क्यों न हों। यह सिद्धांत सरकार के लिए यह अपेक्षित बनाता है कि वह इन संसाधनों को जन-साधारण के मनोरंजन व उपयोग के लिए संरक्षित रखे न कि निजी स्वामित्व या वाणिज्यिक उद्देश्यों के प्रयोग की अनुमति प्रदान करे।

राज्य सभी प्राकृतिक संसाधनों का ''ट्रस्टी(न्यासी)'' है जो प्रकृति द्वारा जन उपयोग और मनोरंजन के लिए प्रदान किए गए हैं। प्राथमिक स्तर पर समुद्र-तटों, बहते हुए पानी, वायु, वन तथा पर्यावरणीय रूप से भंगुर भूमियां जनसाधारण के लाभ के लिए हैं। जन उपयोग के लिए निर्धारित इन संसाधनों को निजी स्वामित्व में परिवर्तित नहीं किया जा सकता है। चूंकि नदियां, वन, खनिज और ऐसे अन्य संसाधन राष्ट्र की प्राकृति संपदा का भाग है, इसलिए इन संसाधनों को एक ही पीढ़ी द्वारा गवांया या दोहन नहीं किया जा सकता है। प्रत्येक पीढ़ी सभी आगामी

पीढ़ियों को यह दायित्व सौंपती है कि वह यथासंभव सर्वोत्तम रूप से राष्ट्र के प्राकृतिक संसाधनों को विकसित और संरक्षित करे। यह राष्ट्र के साथ साथ मानव जाति के हित में भी है। इसप्रकार, लोक-न्यास का सिद्धांत देश के कानून का एक भाग है। न्यायालय भी यह कहता है कि भारत में सभी पर्यावरणीय प्रणालियों में लोक-न्यास के सिद्धांत के अनुप्रयोग को खारिज करने का कोई औचित्यपूर्ण कारण नहीं है।

इस सिद्धांत का उल्लेख पहली बार माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण और परिरक्षण के संबंध में ''लोक-न्यास सिद्धांत'' को लागू करते समय किया गया था। उच्चतम न्यायालय ने उल्लेख किया कि लोक-न्यास का सिद्धांत मौलिक रूप से इस अवधारणा पर आधारित है कि कतिपय संसाधन जैसे वायु, समुद्र जल तथा वनों को समग्र रूप से लोगों के लिए इतना अधिक महत्व है कि उसे निजी स्वामित्व में दिया जाना पूर्णत अन्यायपूर्ण होगा।

माननीय उच्चतम न्यायालय ने कहा है कि पार्कों के उचित अनुरक्षण के लिए ''ट्रस्टी'' के रूप में महापालिका को इन संपत्तियों की व्यवस्था में अधिक सावधान रहना चाहिए। अपने ऐतिहासिक महत्व और पर्यावरणीय आवश्यकता के कारण उद्यानों (पार्कों) का उनुरक्षण स्वयं लोक-हित के लिए आवयश्क है। यदि उद्यानों के प्राकृतिक स्वरूप को नष्ट किया जाता है तो यह लोक-न्यास सिद्धांत का उल्लांन होगा।

लोक न्यास सिद्धांत द्वारा लगाए गए प्रतिबंध

यह सिद्धांत राज्य पर तीन प्रकार के प्रतिबंध लगाता है :

- सम्पत्ति न केवल जन प्रयोजन के लिए प्रयोग की जानी चाहिए बल्कियह जन-साधारण के लिए उपलब्ध भी होनी चाहिए।
- सम्पति को बेचा नहीं जाना चाहिए चाहे उसका उचित मूल्य ही प्राप्त क्यों न हो रहा हो।
- सम्पति का अनुरक्षण विशिष्ट प्रकार के प्रयोजनों के लिए होना चाहिए जैसे जल पर्यटन, मनोरंजन या मछली पकड़ना आदि।

अन्तत् इस सिद्धांत के अंतर्गत, भारत के संविधान के अनुच्छेद 48क के अंतर्गत एक 'ट्रस्टी' के रूप में राज्य का यह दायित्व है कि वह देश के पर्यावरण के संरक्षित रखे उसमें सुधार करे और वनों व वन्यजीवन को सुरक्षा प्रदान करे। भारत के संविधान के अनुच्छेद 48क (जीवन का अधिकार) को लागू करते समय, राष्ट्र राज्य नीति के निर्देशक सिद्धांत के अनुच्छेद 48क का संदर्भ लेने के लिए बाध्य है। ''एक स्वस्थ पर्यावरण'' के अधिकार को शामिल करने के लिए राज्य की न्यासधारिता (trusteeship) दायित्वों का विस्तार किया गया है।

पाठगत प्रश्न 26.5

1. "लोक-न्यास सिद्धांत अवधारणा" को परिभाषित करें।
2. लोक-न्यास सिद्धांत द्वारा राज्य पर लगाए गए प्रतिबंधों की सूची।

आपने क्या सीखा

पर्यावरण का संरक्षण एक वैश्विक मुद्दा है क्यों कि यह सभी देशों से संबंधित हा जहां देश किसी भी आकार, स्तर, विकास या विचारधारा से है। विज्ञान और प्रौद्योगिकी के विकास और जनसंख्या में वृद्धि के परिणामस्वरूप पर्यावरण में व्यापक परिवर्तन हुआ है। मनुष्य और अन्य प्रकार के जीवन के अस्तित्व का मुद्दा अत्यंत चिंता का विषय बन गया है।

'पर्यावरण' से तात्पर्य जल, वायु तथा भूमि और इनके व मनुष्य, अन्य जीवों तथा पदार्थों के बीच के अंतरसंबंध के कुल योग से है।

प्रदूषण प्राकृतिक पर्यावरण में संदूषणों का समावेशन है जो पर्यावरण में प्रतिकूल परिवर्तन प्रस्तुत करता है। प्रदूषण रसायनिक तत्वों और ऊर्जा का रूप ले सकता है जैसे ध्वनि, ताप य प्रकाश। प्रदूषक जो कि प्रदूषण के घटक हैं, वे बाहरी तत्व ऊर्जा या प्राकृतिक रूप से संदूषक हो सकते हैं।

''प्रदूशक द्वारा भुगतान का सिद्धांत'' का निर्माण प्रदूषणकर्ता पक्ष को प्राकृतिक पर्यावरण को हुई क्षति के लिए क्षतिपूर्ति का भुगतान करने के लिए किया गया था। प्रदूषक द्वारा भुगतान का सिद्धांत सामान्यत् स्वीकार्य पद्धति है जिसके अंतर्गत प्रदूषण उत्पन्न करने वाला व्यक्ति मानव स्वास्थ्य और पर्यावरण को क्षति से बचाने के लिए किए गए प्रबंधन की लागत को वहन करेगा।

'प्रदूषक भुगतान सिद्धांत' प्रदूषक पर दोहरा दायित्व डालता है अर्थात : (i) प्रदूषण के पीड़ित को क्षतिपूर्ति और (ii) पर्यावरणीय परावर्तन। इसे ''दोहरा दायित्व'' कहते हैं।

पूर्वोपाय सिद्धांत यह सुनिश्चित करता है कि तथ्य या गतिविधि जो पर्यावरण के लिए खतरा उत्पन्न करते हैं, उसे प्रतिकूल प्रभाव उत्पन्न करने से पूर्व रोक देना चाहिए, चहे उनके संबंध में कोई वैज्ञानिक साक्षय जुड़े ना भी होंगे कि वह विशिष्ट पदार्थ या गतिविधि पर्यावरण के लिए घातक है।

'लोक न्यास का सिद्धांत' इस अवधारणा पर आधारित है कि कुछ संसाधनों को जन उपयोग के लिए आरक्षित किया गया है, और सरकार द्वारा उन्हें युक्तिसंगत सार्वजनिक उपयोग के लिए अनुरक्षित किया जाना चाहिए। राज्य सभी प्राकृतिक संसाधनों का ''ट्रस्टी(न्यासी)'' है जो प्रकृति द्वारा जन उपयोग और मनोरंजन के लिए प्रदान किए गए हैं।

पाठांत प्रश्न

1 निम्नलिखित शब्दों को परिभाषित करें।

(क) पर्यावरण

(ख) प्रदूषण

2. ''प्रदूषक भुगतान सिद्धांत'' का वर्णन करें।

3. आर-10 घोषणा, 1992 के सिद्धांत 16 का उल्लेख करें।
4. पूर्वोपाय सिद्धांत को परिभाषित करें।
5. ''प्रदूषक भुगतान सिद्धांत'' में 'दोहरा दायित्व' क्या है?
6. पूर्वोपाय सिद्धांत के मुख्य तत्वों का वर्णन करें।
7. लोक-न्यास सिद्धांत का वर्णन करें।
8. 'लोक-न्यास सिद्धांत' द्वारा राज्य पर लगाए गए तीन प्रकार के प्रतिबंधों का उल्लेख करें।

पाठगत प्रश्नों के उत्तर

26.1

1. शब्द 'पर्यावरण' से तात्पर्य जल, वायु तथा भूमि और इनके व मनुष्य, अन्य जीवों तथा पदार्थों के बीच के अंतरसंबंध के कुल योग से है।
2. प्रदूषण एक गलत नागरिक प्रक्रिया है, जो अपनी स्वयं की प्रकृति में समग्र रूप से समुदाय के विरूद्ध अपराध स्वरूप है। प्रदूषण रसायनिक तत्वों और ऊर्जा का रूप ले सकता है जैसे ध्वनि, ताप य प्रकाश। प्रदूषक जो कि प्रदूषण के घटक हैं, वे बाहरी तत्व/ ऊर्जा या प्राकृतिक रूप से संदूषक हो सकते हैं।

26.2

1. ''प्रदूशक द्वारा भुगतान का सिद्धांत'' का निर्माण प्रदूषणकर्ता पक्ष को प्राकृतिक पर्यावरण को हुई क्षति के लिए क्षतिपूर्ति का भुगतान करने के लिए किया गया था। साधारण शब्दों में ''प्रदूषक द्वारा भुगतान का सिद्धांत सामान्यत् स्वीकार्य पद्धति है जिसके अंतर्गत प्रदूषण उत्पन्न करने वाला व्यक्ति मानव स्वास्थ्य और पर्यावरण को क्षति से बचाने के लिए किए गए प्रबंधन की लागत को वहन करेगा।''
2. 'प्रदूषक भुगतान सिद्धांत' को **रियो घोषणा** 1992 में प्रमुख स्थान प्रदान किया गया था। घोषणा का सिद्धांत 16 घोषणा करता है कि जनहित को ध्यान में रखते हुए तथा अंतरराष्ट्रीय व्यापार और निवेश को बाधित किए बिना इस दृष्टिकोण को ध्यान में रखकर कि प्रदूषक प्रदूषण की लागत को वहन करेगा, राष्ट्रीय प्राधिकरण पर्यावरणीय लागतों के अंतरराष्ट्रीयकरण के संवर्धन और आर्थिक साधनों के प्रयोग के संबंध में प्रयास करेंगे।

26.3

1. सही
2. सही

26.4

1. पूर्वोपाय सिद्धांत यह सुनिश्चित करता है कि तथ्य या गतिविधि जो पर्यावरण के लिए खतरा उत्पन्न करते हैं, उसे प्रतिकूल प्रभाव उत्पन्न करने से पूर्व रोक देना चाहिए, चहे उनके संबंध में कोई वैज्ञानिक साक्षय जुड़े ना भी होंग कि वह विशिष्ट पदार्थ या गतिविधि पर्यावरण के लिए घातक है।

2. पूर्वोपाय सिद्धांत के दो अनिवार्य तत्व हैं :

   (i) राज्य सरकार तथा सांविधिक प्राधिकरणों द्वारा पर्यावरणीय उपाय जैसे राज्य प्रदूषण बोर्डों द्वारा पर्यावरण निम्नीकरण (Environment degradation) के कारणों का पता लगाना चाहिए, उनका निवारण करना चाहिए तथा उन्हें समाप्त करना चाहिए।

   (ii) जहां पर्यावरण को गंभीर तथा अपरिवर्तनीय क्षति का खतरा हो वहां विज्ञानिक निश्चितता के अभाव को पर्यावरणीलय निम्नीकरण के निवारण के उपायों को लंबित किए जाने का कारण नहीं बनाना चाहिए।

26.5

1. 'लोक न्यास का सिद्धांत' इस अवधारणा पर आधारित है कि कुछ संसाधनों को जन उपयोग के लिए आरक्षित किया गया है, और सरकार द्वारा उन्हें युक्तिसंगत सार्वजनिक उपयोग के लिए अनुरक्षित किया जाना चाहिए। राज्य सभी प्राकृतिक संसाधनों का "ट्रस्टी(न्यासी)" है जो प्रकृति द्वारा जन उपयोग और मनोरंजन के लिए प्रदान किए गए हैं।

2. लोक-न्यास का सिद्धांत राज्य पर तीन प्रकार के प्रतिबंध लगाता है :

   (a) सम्पत्ति न केवल जन प्रयोजन के लिए प्रयोग की जानी चाहिए बल्कि यह जन-साधारण के लिए उपलब्ध भी होनी चाहिए।

   (b) सम्पति को बेचा नहीं जाना चाहिए चाहे उसका उचित मूल्य ही प्राप्त क्यों न हो रहा हो।

   (c) सम्पति का अनुरक्षण विशिष्ट प्रकार के प्रयोजनों के लिए होना चाहिए जैसे जल पर्यटन, मनोरंजन या मछली पकड़ना आदि।

27

समसामयिक गतिविधियां

जैसा कि पर्यावरण क्षेत्र राष्ट्रीय तथा अन्तरराष्ट्रीय दोनों स्तरों पर उभर रहा है इसलिए यह महत्वपूर्ण हो जाता है कि इसे नए विकासों के साथ अद्यतन रखा जाए। 'राष्ट्रीय ग्रीन ट्रिब्यूनल' (एनजीटी) की स्थापना, राष्ट्रीय स्तर पर खतरनाक अपशिष्ट पदार्थों का विनियमन तथा 'क्योटो प्रोटोकाल' और अन्तरराष्ट्रीय स्तर पर परंपरागत विकास के कुछ महत्वतपूर्ण घटक हैं। 'क्यो्टो प्रोटोकाल' के अलावा, अन्तरराष्ट्रीय स्तर पर अनेक अन्य गतिविधियां भी की गई हैं और जिनका योगदान वैश्विक पर्यावरण संरक्षण में अति महत्वपूर्ण रहा है।

1980 के लगभग, भरतीय विधि प्रणाली, विशेषकर पर्यावरणीय कानून के क्षेत्र में इसके परंपरागत एप्रोच के दष्टिगत व्यातपक परिवर्तन किया गया और इसे न केवल प्रशासनिक तथा विधायी सक्रियता द्वारा पहचाना गया था, बल्कि न्यायिक सक्रियता के रूप में भी पहचाना गया। "न्यायिक सक्रियता" के लिए भारतीय न्यायालय द्वारा संवैधानिक अधिकारों के नए और सृजनात्मयक व्याख्याओं को अंगीकार करके इसके दायरे को व्याापक करने में सक्रिय भूमिका निभाई गई। प्रशासनिक एजेंसियों की शक्तियों तथा कार्यों के दायरे को निर्धारित करने तथा पर्यावरण और विकास के बीच सन्तुलन बनाए रखने में न्यायालयो ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है और इस भूमिका को जारी रखे हुए है। जनहित याचिका (पीआईएल) रूपी उपकरण द्वारा न्यायालयों की यह सक्रियता मजबूत हुई जिसके कारण न्यायालय लोक हितकारी व्यक्तियों तथा पर्यावरणीय संरक्षण के क्षेत्र में सक्रिय गैर सरकारी संगठनों से प्राप्त मामलों पर हस्तक्षेप करने में समर्थ हुआ है। इस संबंध में भारतीय न्यायालय द्वारा महत्वपूर्ण निर्णय दिए गए जिसके कारण भारत में पर्यावरणीय विधिशास्त्र की इतिहासवादी शाखा की जड़े मजबूत हुई। इस पाठ का उद्देश्य भारत में न्याायालयों द्वारा निभाई गई भूमिका और इसके योगदान की चर्चा करना है जिसके कारण इस संबंध में जनहित याचिका दायर की गई। यह पाठयक्रम पर्यावारण संरक्षण से संबंधित सभी महत्वपूर्ण मामलों को उजागर करता है।

उद्देश्य

इस पाठ का अध्ययन करने के पश्चात आप

- राष्ट्रीय ग्रीन ट्रिब्यूनल (एनजीटी) के कार्यों एवं भूमिका की व्याख्या कर पाएगें;
- खतरनाक अपशिष्ट पदार्थों के विनियमन से संबंधित कानून को समझ पाएंगे;

- 'क्योटो प्रोटोकाल' के मुख्य उद्देश्यों की पहचान कर पाएगें;
- पर्यावरणीय अपकर्ष को दूर करने के लिए कुछ अन्य अन्तंरराष्ट्रीय उपकरणों की सूची बनाए पाएंगे; तथा
- पर्यावरणीय संरक्षण में न्यायालयों की भूमिका के महत्व को समझ पाएंगे, और पर्यावरणीय संरक्षण के लिए कतिपय महत्वपूर्ण निर्णयों की भूमिका की महत्ता को समझ पाएंगे।

27.1 राष्ट्रीय ग्रीन ट्रिब्यूनल (एनजीटी)

एक 'ट्रिब्यूनल' न्यायालय की साज-सज्जा वाला होती है। प्रत्येक न्यायालय 'ट्रिब्यूनल' होता है परन्तु 'ट्रिब्यूनल' न्यायालय नहीं होता है। कुछ विशेष क्षेत्रों से संबंधित विवादों को अधिनिर्णय के लिए 'ट्रिब्यूनल' की स्थीपना की जाती है जबकि, किसी विशेष क्षेत्र के बावजूद सभी प्रकार के विवादों के अधिनिर्णय के लिए न्यायालय मौजूद होता है। 'ट्रिब्यूनल' के अन्तिम निर्णय को सामान्यतया 'अवार्ड' कहा जाता है।

पर्यावारण से संबंधित किसी कानूनी अधिकार के प्रवर्तन तथा व्यक्तियों तथा संपत्ति की क्षति के लिए मुआवजे तथा सहायता देने समेत पर्यावरण संरक्षण, वन संरक्षण और अन्य प्राकतिक संसाधनों से संबंधित मामलों के प्रभावी तथा त्वरित निपटान के प्रयोजन से राष्ट्रीय ग्रीन ट्रिब्यूनल अधिनियम, 2010 के तहत 18 अक्टूबर, 2010 को राष्ट्रीय ग्रीन ट्रिब्यूनल की स्थापना हुई थी। यह एक विशेष निकाय है जिसमें बहु अनुशासनिक मामलों समेत पर्यावरणीय विवादों का निपटारा करने के लिए आवश्यक विशेषता मौजूद है।

यह ट्रिब्यूमनल आवेदनों तथा अपीलों को अन्तिम रूप से, उसको दायर करने के छ महीने के भीतर, निपटान करने का प्रयास करता है। आरंभ में, एनजीटी की स्थापना पांच स्थानों पर किए जाने और ट्रिब्यूनल की अधिक पहुंच बनाने के लिए सर्किट प्रक्रिया का अनुसरण किए जाने का प्रस्ताव था। ट्रिब्यूनल का मुख्य स्थान नई दिल्ली में है और भोपाल, पुणे, कोलकाता तथा चेन्नई चार अन्य स्थान पर ट्रिब्यूनल स्थापित है।

27.1.1 राष्ट्रीय ग्रीन ट्रिब्यूनल (एनजीटी) की संरचना

एनजीटी में न्यायिक तथा न्याय निर्णायक के तौर पर विशेषज्ञ सदस्य दोनों शामिल होते हैं। एनजीटी का अध्यक्ष एक न्यायिक सदस्य होता है और वह भारत के उच्चतम न्यायालय का न्यायाधीश अथवा उच्च न्यायालय का मुख्य नयायाधीश हो सकता है। भारत के मुख्य न्यायाधीश के परामर्श से केन्द्र सरकार द्वारा ट्रिब्यूनल के अध्ययक्ष की नियुक्ति की जाती है। एनजीटी के अन्य न्यायिक सदस्य उच्च न्यायालय के न्यायाधीश हो सकते हैं। विशेषज्ञ सदस्य

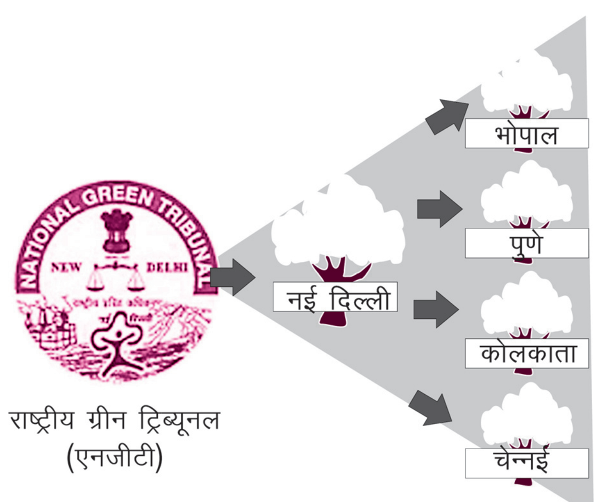

राष्ट्रीय ग्रीन ट्रिब्यूनल (एनजीटी)

के लिए व्यक्ति को जीव विज्ञान अथवा भौतिक विज्ञान में डाक्टयरेट की डिग्री होनी चाहिए और साथ ही प्रतिष्ठत राष्ट्रीय स्तर के संस्थान में पर्यावरण और वन के क्षेत्र में 5 वर्षों के प्रायोगिक अनुभव सहित संगत क्षेत्र में 15 वर्ष का अनुभव होना चाहिए अथवा केन्द्र या राज्य सरकारों अथवा प्रतिष्ठित राष्ट्रीय अथवा राज्य स्तरीय संस्थानों में पांच वर्ष के अनुभव के साथ पन्द्रह वर्षो का प्रशासनिक अनुभव होना चाहिए। चयन समिति की सिफारिश पर केन्द्र सरकार द्वारा न्यायिक तथा विशेषज्ञ सदस्यों की नियुक्ति जाती है।

27.1.2 एनजीटी के न्यायाधिकार एवं शक्तियां

न्यायाधिकार का अभिप्राय किसी न्याायालय अथवा ट्रिब्यूनल को प्राधिकार देना है कि वह मामले को सुनवाई के लिए स्वीकार करे और उस पर निर्णय दे। सभी सिविल मामलों पर एनजीटी का न्यायाधिकार है जहां पर्यावरण से संबंधित व्यापकप्रश्न (पर्यावरण से संबंधित किसी कानूनी अधिकार के प्रवर्तन समेत) में शामिल होता है और ऐसे प्रश्न राष्ट्रीय ग्रीन ट्रिब्यूननल अधिनियम, 2010 की अनुसूची-1 में निर्धारित नियमों के कार्यान्वयन से उत्पनन्न होते हैं अधिनियम सूचियों की अनुसूची-1 में निम्निलिखित विधान हैं -

(i) जल (प्रदूषण का निवारण और नियंत्रण) अधिनियम, 1974;

(ii) जल (प्रदूषण का निवारण और नियंत्रण) उप कर अधिनियम, 1977;

(iii) वन (संरक्षण) अधिनियम, 1980;

(iv) वायु (प्रदूषण निवारण और नियंत्रण) अधिनियम, 1981;

(v) पर्यावरण (संरक्षण) अधिनियम, 1986;

(vi) लोक दायित्व बीमा अधिनियम, 1989;

(vii) जैव विविधता अधिनियम, 2002।

यह एनजीटी की व्याख्यिा करता है, उपरोल्लिखित विधानों के अनुसार यह विधान पर्यावरणी विधि के लिए भी कार्य करता है। इसलिए पर्यावरण कानून के प्रवर्तन पर जल प्रदूषण, वायु प्रदूषण, वन संरक्षण, पर्यावरण संरक्षण अथवा जैव विविधता मामले एनजीटी के तहत आते हैं।

एनजीटी को अदेश द्वारा निम्नलिखित उपलब्ध कराने की शक्यिां प्रदत्त है

- अधिनियम की अनुसूची I (किसी खतरनाक वस्तुओं की हैंडलिंग के समय होने वाली दुर्घटनासमेत) में निर्धारित नियमों के तहत प्रदूषण तथा पर्यावरणीय क्षतिपूर्ति के लिए पीडितों की सहायता तथा क्षतिपूर्ति करना।
- संपत्ति क्षति की क्षतिपूर्ति के लिए।
- ऐसे क्षेत्र या क्षेत्रों के लिए पर्यावरण की क्षतिपूर्ति के लिए।

उपरोल्लिखित निदानों के लिए पीड़ित व्यक्तियों द्वारा दावा इस घटना के होने के पांच वर्षो के भीतर करना चाहिए। क्रिया के कारण का अर्थ प्रत्येक होने वाली घटना से है जो कि व्यक्मि को एनजीटी में एप्रोच करने के लिए संभव बनाता है। हलांकि, आपवादिक मामलों में ट्रिब्यूनल

आवेदन फाइल करने के लिए और अधिक साठ दिन दे सकता है, यदि ट्रिब्यूनल इस बात से सन्तुष्ट होता है कि आवेदक के पास पांच वर्ष के भीतर आवेन फाइल करने से रोके जाने का पर्याप्त कारण है।

अधिनियम में यह प्रावधन है कि दुर्घटना के मामले में ट्रिब्यूनल कोई चूक न होने के सिद्धान्त को लागू करेगा। कोई चूक न होने का सिद्धान्त निर्धारित करता है कि दुर्घटना के मामले में मालिक अथवा नियोक्ता कोई चूक न हो, से बचाव के लिए प्रतिरक्षा नहीं कर सकता। यदि दुर्घटना होती है और इसके परिणामस्रूम किसी व्यैक्ति अथवा पर्यावरण को क्षति होती है तो मालिक अथवा नियोक्ता केवल इस तथ्य के कारण जिर्म्मोदार होगा कि दुर्घटना उसके उपक्रम में हुई है। इस सिद्वान्त के अतिरिक्म एनजीटी, आदेश अथवा निर्णय या अवार्ड देते समय सुस्थिर विकास, सतर्कता सिद्धान्त और प्रदूषक भुगतान सिद्धान्त को लागू करता है।

27.1.3 प्रक्रिया

एनजीटी नागरिक प्रक्रिया संहिता, 1902 या भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1972 में निर्धारित प्रक्रियाओं का अनुसरण करने के लिए बाध्य नहीं है बल्कि यह प्राकतिक न्याय के सिद्धान्तों द्वारा मार्गदर्शित होता है। इसका उद्देश्य नागरिक प्रक्रिया संहिता, 1908 के अंतर्गत दिए अनुसार सिविल कोर्ट की अपनी सभी शक्यिों तथा कार्यों का निष्पादन करना है। ट्रिब्यूनल का कोई भी निर्णय आदेश या अवार्ड सिविल कोर्ट की डिग्री के तौर पर ट्रिब्यूनल द्वारा निष्पादनीय है। इसलिए इस प्रयोजनार्थ ट्रिब्यूनल के पास सिविल कोर्ट की सभी शक्तियां हैं। ट्रिब्यूनल यदि उचित समझे तो अपने आदेश या अवार्ड को सिविल कोर्ट के निष्पाादन के लिए भी भेज सकती है जिसके पास स्थानीय न्यायाधिकार होता है। मामले के निर्णय के लिए न्यूनतम सदस्यों की संख्या दे होती है जिनमे से एक अवश्यांभावी रूप से न्यायिक सदस्य तथा दूसरा विशेषज्ञ सदस्य होना चाहिए। बहुमत से ट्रिब्यूनल का निर्णय बाध्यकारी है। यदि खण्डपीठ का मत बराबर होता है तो ऐसी स्थिति में एनजीटी के अध्यक्ष द्वारा मामले की सुनवाई की जाती है और उस पर निर्णय दिया जाता है। यदि वह बराबर विभाजित खण्डपीठ का हिस्सा नहीं था। अध्यक्ष के बराबर विभाजित खण्डपीठ का हिस्सा होने के मामले को ट्रिब्यूनल की सुनवाई और निर्णय के लिए भेजेगा जो कि बराबर विभाजित खण्डपीठ का हिस्सा नहीं होते।

27.1.4 शास्ति

राष्ट्रीय ग्रीन ट्रिब्यूनल अधिनियम, 2010 के अन्तर्गत एनजीटी द्वारा दिए गए किसी भी आदेश, निर्णय या अवार्ड का अनुपालन करने में विफलता की स्थिति में यह एक संज्ञेय अपराध होता है और उसे कैद की सजा होगी जिसे तीन वर्षो तक बढ़ाई जा सकती है या जुर्माना जिसे दस करोड़ रूपए तक, कंपनी के मामले में 25 करोड़ रूपए तक, बढ़ाया जा सकता है अथवा दोनों हो सकता है और निरन्तर विफलता अथवा प्रतिकूलता के मामले में अतिरिक्त जुर्माना लगाया जा सकता है जिसे 25 करोड़ रूपए तक, कंपनी के मामले में एक लाख करोड़ रूपए। ऐसी प्रथम विफलता या प्रतिकूलता के लिए दोष सिद्ध होने के पश्चात ऐसी नियमित विफलता या उल्लंघन के दौरान प्रत्येक दिन के लिए, बढ़ाया जा सकता है। इस अधिनियम के तहत ट्रिब्यूनल द्वारा दिया गया कोई भी आदेश, निर्णय या अवार्ड का जब सरकार का कोई भी विभाग अनुपालन करने में असफल रहता है तो उसके विभागाध्यक्ष ऐसी विफलता के लिए दोषी होता है और वह इस अपराध के लिए कार्रवाई हेतु उत्तयरदायी हो जाता है और तदानुसार उसे दण्डित किया जाता है।

बशर्ते कि विभागाध्यक्ष यह सिद्ध न कर दे कि वह अध्यवसाय में था और उसे इस अपराध की जानकारी नहीं थी, तो उसे दण्डित नहीं किया जाएगा। इसके अलावा, ऐसे अपराध के लिए किसी अन्य सरकारी अधिकारी को भी दण्डित किया जा सकता है यदि यह सिद्ध हो जाए कि वह अपराध ऐसे अधिकारी की सहमति अथवा जानकारी अथवा उसकी लापरवाही से हुआ था।

27.1.5 अपील

अपील में यदि कोई व्यक्ति मामला हार जाता है तो वह एनजीटी द्वारा दिए गए निर्णय को उच्च तम न्यायालय में दोबारा चुनौती दे सकता है। यदि कोई व्यक्ति किसी निर्णय से पीड़ित है तो वह ट्रिब्यूनल के निर्णय, आदेश या अवार्ड के खिलाफ उच्चतम न्यायालय में ऐसे निर्णय, आदेश या अवार्ड की प्राप्ति की तारीख से, 90 दिनों के भीतर अपील दायर कर सकता है। यद्यपि उच्चतम न्यायालय व्यक्ति को ऐसी अपील 90 दिनों के बाद भी दायर करने की अनुमति दे सकता है, बशर्ते कि यदि न्यायालय इस बात से संतुष्ट हो कि व्यक्ति को अपील करने से रोके जाने के पर्याप्त कारण थे।

पाठगत प्रश्न 27.1

1. ट्रिब्यूनलों की स्थापना के मुख्य कारण क्या हैं?
2. राष्ट्रीय ग्रीन ट्रिब्यूनल की स्थापना का मुख्य उद्देश्य क्या था?
3. त्रुटिविहीन सिद्धान्त की व्याख्या कीजिए।
4. जब व्यक्ति एनजीटी के किसी भी आदेश, निर्णय या अवार्ड से पीड़ित है तो क्या वह अपील कर सकता है?
5. एनजीटी की खण्डपीठ के गठन के लिए न्यूनतम सदस्यों की संख्या क्या है, जो कि मामले की सुनवाई कर सके और निर्णय दे सके?

27.2 खतरनाक अपशिष्ट पदार्थों का विनियमन

प्राकतिक तथा मानव निर्मित गतिविधियों दोनों के कारण आपदा हो सकती है। पर्यावरण आपदाओं की श्रेणी के तहत आने वाले खतरनाक अपशिष्ट पदार्थों की विषमता से निपटान किए जाने के कारण पर्यावरण पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। उदाहरण के लिए वर्ष 1984 में भोपाल में यनियन कार्बाइड फैक्टरी से मिथाइल आसोसाइनेट के रिसाव के कारण गंभीर आपदा हुई जिसमें हजारो लोगों की मत्यु हो गई और उनके स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा। यहां तक कि लोगों की भावी पीढियां इससे प्रभावित हैं।

खतरनाक पदार्थो के नियंत्रण और विनियमन करना सदैव पर्यावरण संरक्षण गतिविधि में मुख्य चिन्ता का विषय रहा है। इस मुददे को विशिष्ट रूप से पर्यावरण संरक्षण अधिनियम, 1986 के तहत प्रत्यायोजित विधानों के तरीके से समाधान किया गया। एक प्रत्यायोजित विधान सरकार के कार्यकारी निकाय के विधायी कार्यो को करता है। यह विधायिका द्वारा विधायन के तहत निष्पादित होता है। जो कार्यकारी प्राधिकारी को विधान को लागू करने के लिए वास्तविक कार्यान्वयन हेतु नियम बनाता है। पर्यावरण संरक्षण अधिनियम, 1986 के तहत प्रत्यायोजित

विधान में पर्यावरण एवं वन मंत्रालय के माध्यम से भारत सरकार द्वारा खतरनाक अपशिष्ट पदार्थ प्रबन्ध एवं हैंडलिंग नियम, ई डब्यूय, एम एण्ड एच नियम, 1989 शामिल है। इन नियमों के कार्यान्वयन को प्रोत्साहित करने के लिए पर्यावरण एवं वन मंत्रालय द्वारा वर्ष, 1991 में एच डब्ल्यू, एम एण्ड एच नियम के लिए दोबारा दिशा-निर्देश तैयार किया गया। ये नियम खतरनाक अपशिष्ट पदार्थों की हैंडलिग के लिए विनियामक ढांचा उपलब्ध कराते हैं।

27.2.1 खतरनाक अपशिष्ट पदार्थ की परिभाषा

एक खतरनाक पदार्थ को न केवल एक पदार्थ के रूप में पारिभाषित किया जाता है बल्कि एक तैयारी के रूप में जिसके द्वारा उसके रसायन या भौतिक रसायन संपत्ति या हैंडलिंग मानव जाति, अन्य जीवजन्तुय, पौध, सूक्ष्म जीवाणु, संपत्ति अथवा पर्यावरण को नुकसान होता है। यह परिभाषा प्रकृति को परिभाषित करता है कि किन खतरनाक पदार्थों को जिखिमपूर्ण माना जाए। ये हमारे चारो ओर मौजूद होते हैं, जिनसे हमारे पर्यावरण को नुकसान हो सकता है और इसलिए ऐसे पदार्थो से निपटने के लिए कुछ दिशा-निर्देश की जरूरत है ताकि संभावित हानि से पर्यावरण का संरक्षणा कया जा सके। खतरनाक पदार्थोंका एक उदाहरण औद्योगिक अपशिष्टण है जो कि कारखानों से एकत्रित होता है।

27.2.2 एचडब्यू, (एम एण्ड एच) नियमों के तहत खतरनाक अपशिष्ट पदार्थों के विनियमन की प्रक्रिया

क) **खतरनाक अपशिष्ट पदार्थों के उत्पत्ति की पहचान** - पहले कदम के रूप में खतरनाक अपशिष्ट पदार्थों को उत्पन्न करने वाले उद्योगों की पहचान करना।

ख) **आकड़े एकत्रित करना** - खतरनाक अपशिष्ट उत्पायदक उद्योगों की पहचान करने के पश्चात खतरनाक अपशिष्ट पदार्थों के उत्पादन से संबंधित आकड़ी की सूचनी बनाना, जो कि प्रत्येक पहचाने गए उद्योगों में सर्वेक्षण करके किया जा सकता है।

ग) **अपशिष्ट पदार्थों का विशिष्टीकरण** - खतरनाक अपशिष्ट पदार्थ जो कि अध्यनयन के कारण से उत्पन्न होता है उसे विशिष्टीकृत किया जाना चाहिए। इसे प्रयोगशाला में किया जा सकता है। भौतिक, रासायनिक तथा सामान्य विशेषता से संबंधित विस्तृत खतरनाक अपशिष्ट पदार्थ और ज्वलनशील, जंग, प्रतिक्रियात्मक एवं विषाक्तता से संबंधित संपत्तियों को लिया जाना चाहिए।

घ) **निपटान के लिए स्थल की पहचान** - खतरनाक पदार्थों की मात्रा तथा इसके ट्रीटमेंट, भण्ड्राण तथा निपटान के लिए अपेक्षित संभावित क्षेत्र का मूल्यांकन करने के पश्चात स्थल की पहचान की जाए।

ड़) **पर्यावरणीय प्रभाव का मूल्यांकन, ईआईए, करना** - परियोजना से पड़ने वाले प्रभाव की पहचान की जानी चाहिए और अपशिष्टू पदार्थों के ट्रीटमेंट, भण्डारण तथा निपटान सुविधा के लिए स्थल क्लियरेंस हेतु लोगों की स्वीकृति ली जानी चाहिए।

च) **ट्रीटमेंट, भण्डारण तथा निपटान सुविधा का कार्यान्वयन** - अन्तिम निर्धारित स्थल ट्रीटमेंट, भण्डारण तथा निपटान सुविधा कार्यक्रम को कार्यान्वित किया जाए। स्थिल श्पर भण्डारण, ट्रीटमेंट तथा अन्तिम निपटान के लिए पर्याप्ता स्थान होना चाहिए। इन कार्यो की मॉनीटरिंग के लिए स्थल पर प्रयोगशाला सुविधाएं होनी चाहिए।

खतरनाक अपशिष्टक पदार्थों से हमारे पर्यावरण की सुरक्षा के लिए सतर्कतापूर्वक उपरोल्लिखित कदम उठाए जाने की जरूरत है। प्रदूषण मुक्त पर्यावरण के लिए खतरनाक अपशिष्टि पदार्थों के उचित ट्रीटमेंट, भण्डारण और निपटान करना आज की जरूरत है।

पाठगत प्रश्न 27.2

1. खतरनाक अपशिष्ट पदार्थों को पारिभाषित करें?
2. खतरनाक अपशिष्ट पदार्थ कैसे हम को प्रभावित करते हैं?
3. खतरनाक अपशिष्ट, प्रबन्धन एवं हैंडलिंग, नियम 1989 बनाने के पीछे क्या उद्देश्यं था?
4. खतरनाक अपशिष्ट पदार्थों के प्रबंधन एवं उनकी हैंडलिग के संबंध में **ईआईए** को आप कैसे पारिभाषित करेंगे?

27.3 क्योटो प्रोटोकाल (KYO TO PROTOCOL)

पर्यावरण संरक्षण एक क्षेत्रीय विषय नहीं है बल्कि यह एक वैश्विक विषय है और इसलिए पर्यावरण के संरक्षण का प्रयास भी अन्तरराष्ट्रीय स्तर पर किया जा रहा है। चूंकि किसी भी देश की पर्यावरण नीति केवल उस देश के पर्यावरण को प्रभावित नहीं करता है बल्कि यह वैश्विक पर्यावरण को प्रभावित करता है।

आद्योगिक देशों द्वारा उत्सिर्जित की जा रही ग्रीन हाउस गैसों, कार्बनडाईआक्साइड, मीथेन, नाइट्रसऑक्साइड, सल्फार हेक्सौ फलोराइड तथा गैसों के दो समूहों हाइड्रो फलोरोकार्बन और पर फलोरोकार्बन, जिसका कि वैश्विक पर्यावरण पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है, से बचने के लिए संयुक्त राष्ट्र संघ के उद्देश्य के तहत अन्तरराष्ट्रीय स्तर पर किया गया उपाय **'क्योटो प्रोटोकाल'** का उदाहरण है।

'क्योटो प्रोटोकाल' जलवायु परिवर्तन पर यूनाइटेड नेशन्स फ्रेमवर्क कन्वेंशन, यूएनएफसी, का भाग है। जलवायु परिवर्तन की चुनौतियों से निपटने की अन्तर सरकारी प्रयासों के लिए यूएन एफसी समग्र फ्रेमवर्क निर्धारित करता है। जलवायु परिवर्तन से यह देखा गया है कि विकासशील मानव गतिविधियों के कारण विश्वत के मौलिक जलवायु में परिवर्तन हो रहा है और प्रत्येक वर्ष विश्व का औसत तापमान बढ़ रहा है, जिसके परिणाम स्वरूप जलवायु में परिवर्तन हो रहा है, जिसका वर्तमान तथा भावी पीढियों पर बहुत ही गंभीर परिणाम हो सकता है। तापमान में बढ़ोत्तरी मुख्य ग्रीन हाउस गैसे के उत्सर्जन से होता है। इसकी वजह से ओजोन गैस की परत क्षीण हो रही है, जो कि सूरज की हानिकारक किरणों को पृथ्वी पर पहुंचने से रोकता है। इसलिए, यह विश्व का संरक्षण करने के लिए एक आन्दोलन है।

'क्योटो प्रोटोकाल' द्वारा निर्धारित नियमों को ग्रीन हाउस गैस के उत्सर्जन को कम करने के लिए औद्योगिक देशों द्वारा अनुपालन करना अनिवार्य है। प्रोटोकाल को 11 दिसम्बकर, 1997 में क्यो्टो, जापान में अंगीकृत किया गया था। 190 से भी अधिक देश इस प्रोटोकाल के सदस्य हैं, यद्यपि संयुक्त राज्य अमेरिका इस प्रोटोकाल का सदस्य नहीं है। भारत भी इस प्रोटोकाल का एक सदस्य है। क्योटो प्रोटोकाल की कतिपय सैद्धान्तिक अवधारणाएं हैं

- प्रोटोकाल के तहत 37 आद्योगिक देशों तथा 15 यूरोपियन देशों से बना यूरोपियन यूनियन, अनुबंध-1 देश के नाम से, द्वारा स्वदयं को ग्रीन हाउस गैसों के उत्सर्जन को कम करने के लिए बाध्य किया।
- प्रोटोकाल के उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए अनुबंध 1 पार्टियों को अपने संबंधित देशों में ग्रीन हाउस गैसों की कटौती के लिए नीतियां तथा उपाय तैयार करने की जरूरत है।
- प्रोटोकाल के कार्यान्वयन को सुनिश्चित करने के अनुक्रम में लोखांकन, रिपोर्टिंग और समीक्षा किया जाना।
- प्रोटोकाल के तहत प्रतिबद्धताओं के अनुपालन को लागू करने के लिए अनुपालन समिति की स्थापना।

'क्योटो प्रोटोकाल' एक बहुत ही महत्वपूर्ण उपलब्धि है क्योंकि यह तथ्य की एक जानकारी है कि आद्योगिक विकास के नाम पर पर्यावरण को उस सीमा तक नुकसान नहीं पहुंचाया जा सकता है जो कि स्वस्थ मानव जीवन के असितत्व के लिए अनुपयुक्त हो। वैश्विक पर्यावरण को स्व्च्छ तथा स्वस्थप्रद बनाने के लिए औद्योगिक देशों ने ग्रीन हाउस गैसों के उत्सर्जन को कम करने के अपने दायित्व् को एकजुट होकर स्वीकार किया और उनके द्वारा धारणीय विकास के लक्ष्य को महसूस किया गया। अवश्यभावी रूप से यह कार्य प्रगति पर है लेकिन महत्वपूर्ण इस समस्या के समाधान के लिए वैश्विक रूप से इसका वास्तवीकरण और प्रदर्शन है।

पाठगत प्रश्न 27.3

1. उन गैसों की पहचान करें, जिन्हें ग्रीन हाउस गैस कहा जाता है?
2. पर्यावरण पर ग्रीन हाउस गैसों का क्या प्रभाव पड़ता है?
3. 'क्योटो प्रोटोकाल' के मुख्य लक्ष्य या उद्देश्य को पारिभाषित करें?
4. ग्रीन हाउस गैसों के उत्सर्जन को कम करके कैसे हमारे पर्यावरण का संरक्षण होगा?

27.4 अन्य अन्तरराष्ट्रीय उपकरण

अन्तरराष्ट्रीय उपस्कर यथा अन्तरराष्ट्रीय स्तर पर साथ-साथ आने वाले विभिन्न देशों द्वारा ड्राफट किया गया विधान और नियम उन पर लागू करना है। क्योटो प्रोटोकाल न केवल पर्यावरणीय डिग्रेडेशन निवारण का एक उपकरण है, वस्तुत अन्त राष्ट्रीय स्तर पर अनेक ऐसे उपाय किए गए हैं। अन्तरराष्ट्रीय उपस्करों को मिलाकर अन्तरराष्ट्रीय पर्यावरण कानून का नाम दिया गया है। कई देशों में ये कानून व्यापक रूप से पर्यावरण कानून के विकास को प्रभावित करतेहैं। मानव पर्यावरण पर जून, 1972 में आयोजित संयुक्त राष्ट्र सम्मेलन पर लिए गए निर्णयों को प्रभावी बनाने के लिए भारत के मुख्य पर्यावरणीय विधान पर्यावरण संरक्षण अधिनियम, 1986 को भी लागू किया गया था। कुछ महत्वपूर्ण अन्तरराष्ट्रीय उपस्कर हैं -

1. स्टाककहोम उदघोषणा, 1972

- आधुनिक वैश्विक पर्यावरण कानून का आधार तैयार किया,

- विकसित तथा विकासशील देशें की समस्याओं के समाधान के लिए विभिनन्न दृष्टिकोणों की पहचान करने की अपेक्षा।
- जीवन के अधिकार के रूप में स्वस्थ पर्यावरण की मान्यता।
- अन्तर-आनुवंशात्मक समानता की अवधारणा को शामिल करना।
- उन विकासशील देशों के साथ पर्यावरण की जरूरतों के सन्तुलन के लिए आह्वान।
- राष्ट्रों को अपने संसाधनों के दोहन का पूर्ण अधिकार है, बशर्ते कि वे अन्य देशों के पर्यावरण को क्षति न पहुंचाएं।

2. ओजोन परत के संरक्षण के लिए 'वियना सम्मेलन', 1985

- यह एक ढांचागत संधि है जिसमें सदस्य, राष्ट्र ओजोन परत के संरक्षण के लिए अनुसंधान एवं सूचना, प्रौद्योगिकी के विकास का आदान-प्रदान करेंगे।

3. ओजोन परत को क्षीण करने वाले पदार्थों पर 'मांट्रियल प्रोटोकाल', 1987

- प्रोटोकाल पार्टियों के लिए अपेक्षित है कि वे ओजोन परत को क्षीण करने वाले पदार्थों की खपत को कम करें।
- विकासशील देशों को इसके अनुपालन के लिए 10 वर्ष की अतिरिक्त अवधि दी गई।

4. पर्यावरण विकास पर विश्व आयोग की रिपोर्ट, 'ब्रन्टी लैंड आयोग', 1987

- अन्तरराष्ट्रीय पर्यावरणीय और नीति के विकास में मील का पत्थर।
- नियमित विकास के सिद्धान्त् की स्थापना।

5. पर्यावरण एवं विकास, 1972 पर 'रियो उदघोषणा'

- स्टॉकहोम उदघोषणा में घारणीय विकास अन्तर-अनुवंशिकी समानता तथा अधिकारों के सिद्धांतों का निर्माण
- धारणीय विकास की अवधारणा का विस्तार
- सावधानीपूर्ण सिद्धांत
    - प्रदूषक द्वारा भुगतान का सिद्धान्त, और
    - पर्यावरण प्रभाव का मूल्यांकन

6. जैव विविधता पर संयुक्त राष्ट्र सम्मेलन

1. जैव विविधता का संरक्षण,
2. अपने घटकों का सुव्यवस्थित प्रयोग, और
3. परंपरागत संसाधनों से होने वाले लाभों का स्वरूछ और समान रूप से आदान-प्रदान

वर्ष, 2000 में एक अनुपूरक करार - जैव संरक्षण पर कार्टाजेना प्रोटोकाल - जैव

प्रोद्योगिकी द्वारा सृजित जीव तथा परिवर्धित सूक्ष्म जीवों से जैव विविधता संरक्षण की मांग।

अप्रैल, 2002 में, सम्मेलन के पक्षकारों ने वर्ष, 2010 तक वैश्विक, क्षेत्रीय तथा राष्ट्रीय स्तर पर जैव विविधता की हानि की मौजूदा दर में महत्व पूर्ण कमी के लक्ष्य को प्राप्ति करने के लिए स्वयं को प्रतिबद्ध किया।

7. कार्य सूची 21, 1992

रियो शिखर सम्मेलन में पर्यावरण संरक्षण के लिए बनाए गए व्यापक रोड-मैप पर वैश्विक, राष्ट्रीय तथा स्थानीय स्तरों पर की जाने वाली कार्रवाई।

8. जलवायु परिवर्तन पर संयुंक्त राष्ट्र फ्रेमवर्क सम्मेलन, यूएनएफसीसी, 1992

जलवायु परिवर्तन की चुनौती का सामना करने के लिए अन्तर शासकीय प्रयत्नों हेतु समग्र ढांचा निर्धारित करना-

- ग्रीन हाउस गैस के उत्सनर्जन, राष्ट्रीय नीतियों तथा बेहतरीन पद्धतियों पर सूचना एकत्रित करना और उसका आदान-प्रदान करना।
- विकासशील देशों को वित्तीय तथा प्रौद्योगिकीय सहायता समेत ग्रीन हाउस गैस उत्सर्जनों के निपटान के लिए राष्ट्रीय रणनीतियां लागू करना।
- जलवायु परिवर्तन के प्रभावों को दूर करने के लिए तैयारी में सहयोग।

21 मार्च, 1994 को अभिसमय लागू हुआ।

ये अन्तरराष्ट्रीय उपकरण स्पष्ट रूप से यह प्रतिबिम्बित करते हैं कि पर्यावरण संरक्षण का मुद्दा बहुत ही गंभीर है जो कि अन्तरराष्ट्रीय जगत का ध्यान आकृष्टि करता है। इन सभी उपस्करों से इस तय की जानकारी होती है कि पर्यावरणीय संरक्षण का समाधान एक बार में नहीं किया जा सकता यह एक सतत प्रक्रिया है जिसे निरन्तर जारी रखा जाना चाहिए।

पाठगत प्रश्न 27.4

1. 'क्योाटो प्रोटोकाल' के अलावा पर्यावरण संरक्षण के क्षेत्र में किन्हीं दो उपकरणों के नाम बताएं?
2. 'यूएनएफसीसी' के मुख्यर उद्देश्य् क्या हैं?
3. जैव विविधता पर यूएन सम्मेललन, 1992, के तीन मुख्य उद्देश्यों को स्पष्ट करें?
4. पर्यावरण एवं विकास के लिए यूएन घोषणा, 1992 में क्या उल्लेख किया गया है, पर्यावरण एवं विकास परियोजना घोषणा?

पर्यावरण संरक्षण में न्यायिक गतिविधि की भूमिका

27.5 पर्यावरणीय संरक्षण में न्यायालयों की भूमिका

भारत के संविधान के अनुच्छेद 21 के तहत जीवन के अधिकार की अवधारणा को शुरूआत में व्यापक आयाम नहीं दिया गया था लेकिन धीरे-धीरे भारतीय न्यायालयों ने अपनी सक्रिय भूमिका के द्वारा इस शब्द के अर्थ को व्यापिक रूप देना शुरू किया। प्रश्न यह है कि कैसे पर्यावरण और विकास के बीच सन्तुलन लाया जाए। **'ग्रामीण याचिका और हकदारिता केन्द्र बनाम उत्तर प्रदेश'** राज्य में पहला मामला है जब भारतीय उच्चतम न्यायालय ने इस प्रश्न को देखने का प्रयास किया। इस मामले में याचिकाकर्ता, एक स्वैच्छिक संगठन, को भय था कि पटटेदारों की खनन गतिविधियों के कारण पारिस्थित की अशांति फैलेगी। सरकार द्वारा पटटेधारियों को अधिकार दिए गए थे और विशिष्ट कानून के तहत शर्तें निर्धारित की गई थीं। उच्चतम न्यायालय द्वारा नियुक्त किए गए विशेषज्ञों की समिति के अनुसार कतिपय क्षेत्रों में चूना-पत्थर का खनन खतरनाक पाई गई थी। इससे पारिस्थिति की सन्तुलन की क्षति हो रही थी। उच्चतम न्याायालय ने इन क्षेत्रों में खनन प्रचालनों को बन्द करने का आदेश दिया, हलांकि जिन क्षेत्रों में खतरनाक स्थिति की रिपोर्ट नहीं थी वहां खनन प्रचालन की अनुमति थी। न्यायालय ने पटटेदारों की कठिनाईयों पर विचार किया लेकिन सोचा कि यह वह कीमत है जिससे न्यूनतम पारिस्थपति की असन्तुलन के साथ स्वास्थ पर्यावरण में लोगों के जीने के अधिकार का संरक्षण होगा। क्या यह महत्वचपूर्ण है कि भारतीय संविधान के अनुच्छोद 32 के तहत मामला दायार किया गया था और पर्यावरण संरक्षण की आवश्यकता पर बल देते हुए आदेश दिए गए थे। अनुच्छेद 32 के तहत भारत के उच्चतम न्यायालय में केवल मौलिक अधिकारों के उल्लंघन के लिए एप्रोच किया जा सकता था और हमारे संविधान में मौलिक अधिकारों के रूप में पर्यावरण के लिए किसी विशेष मौलिक अधिकार का उल्लेख नहीं है। इसका अर्थ है कि उच्चतम न्यायालय ने पर्यावरण की स्वच्छता को मौलिक अधिकार के रूप में माना। यह केवल जीने के अधिकार के अर्थ की व्याकपकता द्वारा किया जा सकता है। क्योंकि इसका उल्लेलख भारतीय संविधान के अनुच्छेद-21 में एक मौलिक अधिकार के रूप में किया गया है।

मानव तथा स्वस्थ पर्यावरण के अधिकार को **एम सी मेहता ग्रुप** के मामले में अप्रत्यक्ष तौर पर देखा जा सकता है जिस पर उच्चतम न्यायालय द्वारा निर्णय दिया गया। एम सी मेहता, एम सी मेहता बनाम भारत संघ, मामले में, फैक्टरी में खतरनाक उत्पाादों के निर्माण की गतिविधियों के प्रभाव को न्यायालय ने विशेष रूप से डील किया। इन गतिविधियों से फैक्टोरी में कार्यरत कर्मचारियों और इसके आसपास बाहर रहनेवाले जन सामान्य सदस्यों को खतरा था। यह आरोप था कि फैक्टरी से ओलियम गैस के रिसाव से कई व्यक्यिों की मौत हो गई और अन्य अनेक व्यक्यिों के स्वास्थ पर बुरा प्रभाव पड़ा। प्रश्न यह था कि क्यों न संयन्त्र को बन्द कर दिया जाए। कई शर्तें निर्धारित की गई थी जिसके तहत खतरनाक उत्पादों में लगे उद्योगों को पुन उत्पादन शुरू करने की अनुमति दी गई। ऐसा करने से न्यायालय ने पाया कि संविधान के अनुच्छेद 21 और 32 के स्कोप और क्षेत्र से संबंधित इस तरह के कुछ मामले उठे।

यद्यपि द्वितीय एम सी मेहता मामले में, **'एम सी मेहता बनाम भारत संघ'**, न्यायालय ने कुछ शर्तों में परिवर्तन किया और **तृतीय एम सी मेहता** मामले में, **एम सी मेहता बनाम भारत संघ**, फैक्टयरी से ओलिय गैस के रिसाव से पीडित लोगों को भुगतान किए जाने वाले मुआवजे की राशि से संबंधित महत्वपूर्ण प्रश्न उठा। न्यायालय ने पाया कि संविधान के अनुच्छेद 32 के तहत

इस याचिका को देखा जा सकता है और ऐसे सिद्धान्त को निर्धारित किया जस पर मुआवजे की मात्रा को परिकलित करके भुगतान किया जाए।

यद्यपि, अनुच्छेद 21 में स्वच्छ और स्वस्थ पर्यावरण के अधिकार के असितत्व को विशेष रूप से घोषित नहीं किया गया था, न्यायालय ने मौलिक अधिकारों के उल्लंघन के अनुच्छेद 32 के तहत जीने के अधिकार से संबंधित संवैधानिक प्रावधन की व्याख्या के माध्यम से मुआवजे की पूर्ण जवाबदेही के सिद्धान्त पर कार्य किया। इस निर्णय का आधार स्पष्ट और एकार्थक है कि स्वच्छ और स्वस्थ पर्यावरण मौलिक अधिकार है।

'क्षेत्रीय प्रदूषण मुक्त संघर्ष समिति बनाम उ.प्र.' राज्य और **'सुभाष कुमार बनाम बिहार राज्य'**, मामले में माननीय उच्चतम न्यायालय ने आगे कदम बढ़ाया। मुख्य नयायाधीश सब्यसांची मुकर्जी ने क्षेत्रीय प्रदूषण मामले को देखा और टिप्पणी की:

> भारतीय संविधान के अनुच्छेद 21 में अपेक्षितानुसार प्रत्येक नागरिक को बहतरीन जीवन जीने का मौलिक अधिकार है।

न्यायाधीश के एन सिंह ने सुभाष कुमार के मामले में पाया कि – "जीने के अधिकार में बहतरीन जीवन के लिए प्रदूषण मुक्त जल और वायु का अधिकार शामिल है।"

स्वच्छ पर्यावरण के अधिकार को पढ़कर के जीवन के अधिकार के दायरे को न्यायालय के निर्णय ने व्यापक बना दिया। इस प्रकार, भारतीय न्यायालय समय की जरूरतों के लिए रहती है और नए सिद्धान्तों और सुधारात्मक उपायों को तैयार करने में महत्वपूर्ण योगदान दिया है।

पाठगत प्रश्न 27.5

1. क्या संविधान के अनुच्छेद 21 का व्यापक दायरा 'न्यायिक सक्रियता' का एक उदाहरण हो सकता है ?
2. क्या भारतीय संविधान के अनुच्छेद 32 का प्रयोग उच्चतम न्यायालय के एप्रोच से पर्यावरण के अधिकार के उल्लंघन के मामले में किया जा सकता है?
3. परंपरागत रूप से खतरनाक तथा घातक पदार्थों के उत्पादन में लगे उद्योग के दायित्व के प्रकृति की पहचान करें ?
4. भारतीय संविधान द्वारा विशेष रूप से दिए गए अनुसार क्या स्वच्छ पर्यावरण का अधिकार मौलिक अधिकार है ?

27.6 जनहित याचिका (पीआईएल), की भूमिका

पूर्व परंपराओं, अधिकारिता सिद्धान्त के अनुसार, के विपरीत, जिसमें केवल पीडित व्यक्ति ही न्यायालय में अपील कर सकता था, आज व्यक्ति वास्तविकता और पर्याप्त हित में आम लोगों की शिकायतों, लोगों के कर्तत्व्यों या सामाजिक संरक्षण तथा सामूहिक अधिकारों और हितो के समाधान के लिए न्यायालय में अपील कर सकता है। इसे अधिकारिता के सिद्धान्त के फीकेपन के रूप में जाना जाता है। भारतीय संविधान के अनुच्छेद 32 और 226 के तहत उच्चतम

न्यायालय तथा उच्च न्यायालय के प्रार्थना अधिकार क्षेत्र की योग्याता पर्यावरण संरक्षण के लिए महत्वपूर्ण कदम है। स्वास्थ और स्वच्छ तथा प्रदूषण मुक्त पर्यावरण के लिए अधिकारों को न्यायालय ने व्यापकता प्रदान की। अधिकांश मामलों में, यह प्रगति पीआईएल की व्यवस्था से हुई है। न्यायालय द्वारा पीआईएल के रूप में मामला दायर करने की अनुमति दर्शाता है कि सुनिश्चित करने के तरीके से प्रक्रिया आगे नहीं बढ़ती जो कि न्यायाधीश करते हैं। **'तरूण भगत सिंह अलवर बनाम भारत संघ'** के मामले में, एक सामाजिक कार्य समूह ने संरक्षित वन क्षेत्र में खनन लाइसेंस दिए जाने की वैधता को चुनौती दी। इस मामले में उच्चतम न्यायालय मे टिप्पणी की–

"इस याचिका को सामान्तया प्रतिकूलात्मक याचिका के रूप में नहीं माना जाना चाहिए। राष्ट्रीय एजेंडे पर याची का उद्देश्य ऊंचा है। पर्यावरण, पारिस्थिति की तथा वन्य जीव के लिए याची के मतों को सरकार द्वारा शेयर किया जाना चाहिए।"

न्याायालय का विचार महत्वपूर्ण है चूंकि इसमें पर्यावरणीय मुददे में पीआईएल की तार्किकता पर बल दिया गया है।

पर्यावरण के मामले को उठाने वाला कोई व्यक्ति चाहे वह एक व्यक्ति, समूह अथवा संस्थान क्यों न हो सबका समस्या से बराबरी का संबंध है। ऐसी याचिका को एक राज्य के साथ प्रतिकूलात्मक विवाद के तौर पर नहीं देखा जा सकता। 1984 में बंधुआ मुक्ति मोर्चा बनाम भारत संघ के मामले में न्यायाधीश पीएन भगवती ने उललेख किया कि यदि कोई व्यक्ति शारीरिक अथवा आर्थिक अक्षमता के कारण न्यायालय में एप्रोच करने में असमर्थ है तो वह केवल एक पत्र लिखकर न्यायालय में जा सकता है। क्योंकि कानूनी प्रक्रिया कुछ नागरिकों की पहुंच से दूर है।

पीआईएल मामलों का दायरा बहु आयामी है। यह जानवरों की संवेदना, आदिवासी तथा मछुआरों का विशेषाधिकार, हिमालय और वनों की पारिस्थितकी, इको पर्यटन, भूमि के उपयोग के तरीके और पारिस्थितकीय क्षति के कारण गांवों द्वारा जूझ की जा रही समस्यों तक फैला है। पर्यावरणीय मुददों को न्यायालय के समक्ष जनहित याचिका द्वारा समाज के बहुआयामी लोगों ने प्रस्तुत किया। वकीलों, वकील संघों, पर्यावरणविदों, विभिन्न समूह और केन्द्र, जो कि पर्यावरण संरक्षण और वनों के संरक्षण के प्रति समर्पित है, कल्याणकारी मंचों, उपभोक्ता अनुसंधान केन्द्रों ने सफलतापूर्वक पर्यावरणीय मामले को न्यायालय के समक्ष उठाया।

पाठगत प्रश्न 27.6

1. क्या 'पी. आई. एल.' लोक स्टैण्डी के कठोर सिद्धान्त के फीकेपन का एक उदाहरण है?
2. 'पी. आई. एल.' कौन दायर का सकता है?
3. 'पी. आई. एल.' में किस तरह के मुददे को उठाया जा सकता है?
4. न्याय देने की विरोधात्मक या प्रतिकूलात्मक प्रणाली से आप क्या समझाते हैं?

टिप्पणी

27.7 निर्देश जारी करने की तकनीक

पर्यावरणीय मुकदमों के संबंध में उच्चतम न्यायालय के अधिकार, अनुच्छेद 32 के तहत जारी निर्देश और उच्चे न्यायालय द्वारा अनुच्छोद 226, पर्यावरणीय मुकदमों के लिए अत्यंनत महत्वपूर्ण है। पर्यावरण के संरक्षण में बहुत से दिशा–निर्देश मील का पत्थर साबित हुए।

1. पर्यावरणीय विधि शास्त्र के उदगम के सिद्धान्त

जनहित याचिकाएं पर्यावरण संरक्षण के लिए बहुत से सिद्धान्तों के विकास में महत्वपूर्ण रही हैं। 'एम सी मेहता बनाम भारत संघ' खतरनाक और अप्रत्यक्ष खतरनाक उद्योगों द्वारा पहुचाये जाने वाले नुकसान के लिए पूर्ण जवाबदेही उच्चतम न्यायालय ने तय किया है। औद्योगिक कचरा केस, 'पर्यावरण कानूनी कार्रवाई–भारतीय परिषद बनाम भारत संघ', रासायनिक उद्योगों द्वारा निकले हुए जहरीले कचरे से पीडित ग्रामवासियों के मुआवजे के मामले में उच्चतम न्यायालय ने 'प्रदूषक भुगतान सिद्धान्त' को लागू किया।

वायु प्रदूषण से आगरा के ताजमहल के संरक्षण के लिए 'एम सी मेहता बनाम भारत संघ' के मामले में 'पूर्व सतर्कता सिद्धान्त' सीधे तौर पर लागू किया। विशेषज्ञ अध्ययन से यह साबित हो गया कि ताल महल के आसपास कोक और कोयला आधारित उद्योगों के उत्सर्जन से ताजमहल की प्रभावशीलता को नुकसान पहुंचा है। इस संबंध में उच्चतम न्यायालय ने आदेश दिया है कि प्रदूषण फैलाने वाले संभावित उद्योगों को औद्योगिक ईंधन के रूप में प्राकृतिक गैस का प्रयोग के रूप में परिवर्तित किया जाना चाहिए और ताजमहल के आसपास के जो उद्योग किसी कारणवश गैस कनेक्श न प्राप्त करने की स्थिति में नहीं थे उनके कार्य संचालन को रोक दिया जाना चाहिए और उन्हें निर्धारित समय के भीतर चिहिन्त किए गए बाहर के वैकल्पिक स्थान पर पुन स्थापित किया जाए।

पारिस्थित की संतुलन के साथ विकास गतिविधियों में सन्तुलन बनाने के अनेक मामलों में उच्चतम न्यायालय द्वारा भी 'धारणीय विकास' के सिद्धान्त को लागू किया गया है। ग्रामीण याचिका तथा हकदारिता केन्द्र बनाम उत्तर प्रदेश राज्य को एक उदाहरण के रूप में देखा जा सकता है।

2. सामाजिक पर्यावरण का संरक्षण

रोजी–रोटी का अधिकार और स्वच्छत पर्यावरण का न्यायालयों से व्यापक संबंध रहा है, जब उन्होने पर्यावरण के मामले में निदेश जारी किए हैं। एस्बेयस्ट्स उद्योग में लगे मजदूरों को उनके स्वास्थय संबंधी खतरों के लिए चिकित्सा सुविधा तथा क्षतिपूर्ति की पात्रता घोषित की गई थी, जिसका पता सेवा निवृत्तं पश्चात **'सीईआरसी बनाम भारत संघ'** में माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा लगाया गया था।

3. कानूनकी दरारों को भरना तथा प्रशासन में कमियों को दूर करना

अधिकांश मामलों में सरकारी प्राधिकरणों को पर्यावरण के प्रति उनकी जिम्मेदारियों का स्मरण दिलाने के लिए न्यायालयों द्वारा निदेश जारी किए गए। इस प्रकार, स्थानीय निकायों, विशेषकर नगरपालिका प्रधिकरणों, को कूड़े कचरे तथा अपशिष्ट पदार्थों को हटाने तथा कस्बों और शहरों को स्वच्छ बनाए जाने के निर्देश दिए गए।

4. पर्यावरणीय जागरूकता और शिक्षा

उच्चतम न्याायालय के निदेशानुसार पर्यावरणीय जागरूकता और साक्षरता का व्यापक तौर पर प्रचार-प्रसार किया जाए और साथ ही पर्यावरणीय शिक्षा की शुरूआत न केवल स्कूल स्तर पर की जाए बल्कि इसे कालेज स्तर पर भी किया जाए। एम सी मेहता बनाम भारत संघ के मामले में उच्चतम न्यायालय ने पर्यावरण संरक्षण की जागरूकता की आवश्यकता पर बल दिया है। न्यायालय ने यह भी अपेक्षा की है कि प्रत्येक राज्य सरकार और शिक्षा मंडल पर्यावरणीय शिक्षा के लिए कदम उठाए।

इस प्रकार उपयुक्ति चर्चा से यह स्पष्ट हो जाता है कि भारत में न्यायालयों द्वारा अधिकार प्रदान करके पर्यावरण संरक्षण के क्षेत्र में पीआईएल द्वारा महत्वपूर्ण भूमिका निभाई गई है।

पाठगत प्रश्न 27.7

1. ई. पी. सी. ए. का क्या अर्थ है?
2. सी. एन. जी. से आप क्या समझते हैं?
3. वाहनों से किस तरह का प्रदूषण होता है?
4. उद्योगों द्वारा अपने औद्योगिक अपशिष्टों को नदी में डालने से किस तरह का प्रदूषण होगा?

27.8 पर्यावरण संरक्षण के लिए महत्वपूर्ण निर्णय

हमने देखा कि पर्यावरणीय संरक्षण के क्षेत्र में न्यायिक गतिविधि का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। ऐसे सौ निर्णय हैं, जिनका कि इस कार्य में सामूहिक योगदान रहा है। इन निर्णयों में से कुछ विशेष निर्णयों को प्रतिबिम्बित किया गया है, जिनका पर्यावरण संरक्षण में महत्वपूर्ण प्रभाव रहा है। अधिकांश ऐसे निर्णय जनहित याचिका, पी आई एल, के माध्यम से भी आए हैं। अप्रत्यक्ष रूप से हानिकारक या खतरनाक या घातक गतिविधियों में शामिल उद्योगों को जवाबदेही के सिद्धान्त के आधार पर उनकी वजह से हो रहे प्रदूषण से होने वाले नुकसान के लिए उन क्षतिपूर्ति की जिम्मेदारी डाली गई। वन संरक्षण से लेकर नागरिक सुविधाओं के अभाव तक गंगा नदी के प्रदूषण, दिल्ली के निवासियों द्वारा सांस लेने के लिए इस्तेमाल की जाने वाली वायु तक पर्यावरण को क्षति पहुंचाने वाले उद्योगों को बन्दक करने के निर्देश से ताजमहल की चमक को काफी हद तक बनाए रखा गया है। ये सभी मामले भारतीय न्यायालयों ने स्वच्छ एवं स्वस्थ पर्यावरण के हैं। कुछ ऐतिहासिक मामलों में शामिल हैं –

1. दिल्लीं वाहन प्रदूषण मामला

स्थाापित पर्यावरणीय कार्यकर्ता और वकील एम सी मेहता द्वारा 1985 में एक पी आई एल दायर की गई थी। यह नागरिकों का सीधा मामला है। मेहता ने नई दिल्ली- और उसके आसपास के क्षेत्रों के वायुमण्डील में सस्पेंडेड पार्टिकुलेट मैटर्स से प्रदूषण के स्तकर में खतरनाक वृद्धि के बारे में चिन्ता प्रकट की है। प्रदूषण के कारण उत्पन्न होने वाली संबंधित बीमारियों जिसमें क्षय

रोग, अस्थ्मा, ब्रांकाइटिस और फेफडों का कैंसर शामिल है। मेहता ने तर्क दिया कि प्रतिवादी, भारत संघ तथा दिल्ली प्रशासन और डीटीसी ने भारत के सामान्य कानून और पर्यावरण के खिलाफ कार्य किया है। उन्हों ने बल दिया कि स्वच्छ वातावरण में रहना दिल्ली के निवासियों का मौलिक अधिकार हैं और ये अधिकार प्रतिवादी द्वारा भंग किया गया है। उन्होंने न्यायालय से प्रार्थना की कि प्रतिवादी, जिसके वाहनों द्वारा खतरनाक गैसों का उत्सर्जन हो रहा है, के खिलाफ उत्सर्जन को रोकने के लिए कार्रवाई की जाए।

ये मामला 1985 में दायर किया गया था लेकिन 1990 तक कोई कार्रवाई नहीं हुई थी। तत्पाश्चात उच्चतम न्यायालय द्वारा कई निर्देश जारी किए गए। इस मामले में प्रगति हुई थी भले ही धीमी गति से। वर्ष 1990 से 1992 के बीच न्यायालय ने वाहन उत्सर्जन की जांच के आदेश दिए खास तौर से सार्वजनिक बसों पर ध्यान दिया जिसमें दोषी वाहनों का पंजीकरण प्रमाणपत्र निरस्तस करने के अधिकार तक शामिल हैं। जैसे-जैसे विवाद आगे बढ़ा तो न्याायालय ने प्राधिकरणों को तीन चरणों में शीशा रहित ईंधन के उपयोग के लिए दिशा-निर्देश जारी किए जिसकी शुरूआत दिल्ली से हुई और पूरे भारत में 2001 तक सभी राजकीय वाहनों को संघनित प्राकृतिक गैस दुपहिया, तिपहिया वाहनों में उत्प्रेरक परिवर्तक और संघनित गैस अथवा शीशा रहित ईंधन प्रयोग करने के निदेश दिए और यह भी निर्देश दिए कि एक निकाय बनाया जाए जो कि न्यायालय के आदेश के कार्यान्वयन की निगरानी करे।

जनवरी, 1998 में, उच्चतम न्यायालय ने केन्द्र सरकार के विशेषज्ञ प्राधिकरण, जो कि पर्यावरण प्रदूषण निवारण एवं नियंत्रण ईपीसीए के गठन को अनुमोदित किया।

तथापि, जुलाई, 1998 में एक ऐतिहासिक आदेश पारित किया जिसमें यह दावा किया गया कि पर्यावरण प्रदूषण अतिवादियों की बन्दूक से निकली गोलियों से ज्यादा पीडित करता है जो कि सार्वजनिक जीवन में विभिन्न अंशधारकों के लिए युद्ध का क्षेत्र बन गया। इसमें शामिल था अक्टूबर, 1998 से 15 वर्ष पुराने सभी वाहनों, टैक्सियों को हटाना, दिसम्बर, 1998 तक पेट्रोल स्टेशनों पर 2 टी आयल की आपूर्ति को प्रतिबंधित करना, और अप्रैल, 2001 तक सार्वजनिक परिवहन के लिए 10000 बसों तक बढ़ाना, सितम्बर, 1998 तक एनसीटी दिल्ली के अंतर्गत शीशा युक्त पेट्रोल को बन्दर करना, 31 मार्च, 2000 तक 1990 या उससे पहले के सभी ऑटो रिक्शा और टैक्सी को नए वाहन क्लीन फयूल आधारित वाहनों से प्रतिस्थापित करना।

01 अप्रैल, 2000 तक केवल सीएनजी, संघनित प्राकृतिक गैस, के अलावा, 8 वर्ष से अधिक पुरानी कोई बसें नहीं चलनी चाहिए। न्यायालय ने दोबारा जोर देते हुए निर्देश दिया कि समय-समय पर न्यायालय द्वारा जारी किए गए निर्देशों को प्रिन्ट तथा इलैक्ट्रॉनिक माध्यम दोनों द्वारा आम लोगों की जानकारी में लाने तथा प्रभावी और पर्याप्त कदम उठाएं। शहर में बदलाव लाने के लिए जुलाई, 1998 के आदेश में समय-सीमा दी गई थी। आदेश देते समय न्यायाधीशों ने कहा कि आज इस न्यायालय तथा ईपीसीए द्वारा पक्षकारों, विद्वानों के परामर्श से दी गई समय सीमा का सभी प्राधिकरणों द्वारा सख्ती से अनुपालन किया जाए। न्यायाधीशों ने सभी संबंधितों को सख्त चेतावनी देते हुए आगाह किया कि न्यायालय के निर्देशों के अनुपालन में विफलता की स्थिति में सभी संबंधितों के खिलाफ न्यायालय की अवमानना की कार्रवाई की जाएगी।

उच्चतम न्यायालय का अगला लक्ष्य डीजल आधारित वाहन थे जो कि नाइट्रोजन ऑक्साइड और रेस्पांइरेटरी सस्पेंडेड पार्टिकुलेट मैटर्स के लिए 90 प्रतिशत जिम्मेदार हैं। डीजल के पार्टिकुलेट का

जहर और जहरीली हवा के लगातार संपर्क से प्रति मिलियन फेफड़े के कैंसर के 300 मामले आए हैं। 1999 में डीजल चालित वाहनों के मासिक पंजीकरण पर प्रतिबंध लगाया गया। इसके अतिरिक्त, राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र, दिल्ली में डीजल टैक्सियों को प्रतिबंधित कर दिया गया जब तक कि वे संरक्षा मानदण्डों के अनुरूप नहीं होती।

वर्ष 2000-2003 तक उच्चतम न्यायालय का पूरा ध्यान इसके द्वारा पारित आदेशों के कार्यान्वयन पर था। न्यायालय ने ऑटो ईंधन नीति में पूर्व सावधानी सिद्धान्त को लागू किया। ऑटो ईंधन नीति का पूरा ध्यान पर्यावरणीय क्षति कारणों का पूर्वानुमान, बचाव और पर्यावरणीय क्षति के कारणों पर केंद्रित था। कदाचित इन्हीं प्रयासों से आज सभी बसें सीएनजी पर चल रही हैं। निजी क्षेत्र के वाहनों समेत परिवाहन क्षेत्र को सीएनजी के आवंटन में आद्योगिक क्षेत्र से अधिक प्राथमिकता दी गई। इस तरह से, उच्चतम न्यायालय द्वारा अवतरित आदेशों द्वारा ध्येय को सफलता पूर्वक संपूर्ण किया गया।

'दिल्ली वाहन प्रदूषण' मामला नागरिकों के जीवन के बचाव के लिए उच्चतम न्यायालय की प्रतिबद्धता और समर्पण को प्रतिबिम्बित करता है। न्यायालय के निर्देशों का कार्यान्वयन न्यायिक प्रगति की तरह सुस्त थी। फिर भी, आज दिल्ली का अपेक्षाकृत स्वच्छय वायुमंडल पीआईएल का ही प्रतिफल है।

2. 'एमसी मेहता बनाम भारत संघ, गंगा प्रदूषण मामला', (एआईआर 1998 उच्चतम न्यायालय 1037)

गंगा के किनारे स्थित चर्म उद्योग नदी को प्रदूषित कर रहे थे। उच्चतम न्यायालय ने आदेश की तारीख से छः महीने के भीतर एफयूलेन्ट संयन्त्र बनाने का निर्देश जारी किया। इसमें विशिष्ट निर्देश था कि जो भी उद्योग इसको लगाने में विफल रहते हैं वे बन्द कर दिए जाएंगे। न्यायालय ने केन्द्रो सरकार, उ.प्र. प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड और संबंधित जिलाधिकारी को निर्देश जारी किया। न्यायालय ने निष्कर्ष निकाला कि यद्यपि उद्योगो के बन्द होने से बेरोजगारी, राजस्व का नुकसान होगा फिर भी जीवन, स्वास्थय और पारिस्थित की भी अधिक महत्वपूर्ण है। न्यायालय अभी भी गंगा नदी की सफाई अभियान को मॉनीटर कर रहा है।

3. बिछड़ी गांव का मामला, - 'पर्यावरण, विधि कार्य के लिए भारतीय परिषद बनाम भारत संघ'

बिछड़ी, राजस्थान के उदयपुर जिले का बहुत ही कम जाना-सुना गांव है। फिर भी, 1988 में रासायनिक उद्योग के एक समूह ने वहां हाइड्रोक्लोरिक एसिड और उससे संबंधित रसायन का निर्यात करने के लिए संयन्त्र स्थापित किया। यद्यपि, यूरोपियन देशों में एसिड का उत्पादन प्रतिबंधित है फिर भी वहां इसकी आवश्यकता बनी रहती है। इस तरह, भारत का एक दूरस्थ गांव जहरीले रसायन के उत्पादन का एक महत्वपूर्ण स्थान बना। इस तरह खतरनाक उद्योग ने प्रदूषण नियंत्रण प्राधिकरण से बिना उचित अनापत्ति प्रमाणपत्र लिए इस रसायन का उत्पादन शुरू किया। फैक्टरी का अपशिष्टि उत्पाद की मात्रा 2400 और 2500 मीट्रिक टन के बीच थी, जो कि बहुत ही जहरीली थी। कम से कम ग्यारह गांवों के 400 किसान और उनके परिवार सीधे तौर पर भू-जल प्रदूषण से प्रभावित थे।

तथापि, अक्टूबर,1989 में एमसी मेहता की अगुवाई में दिल्ली आधारित एनजीओ, पर्यावरण विधि कार्रवाई के लिए भारतीय परिषद द्वारा उच्चतम न्यायालय में एक जनहित याचिका दायर की गई थी। एनजीओ ने ग्रामवासियों द्वारा झेली जा रही अमानवीय अमानवीय जीवन को प्रस्तुत किया और न्यायालय से प्रार्थना की कि कोई नैदानिक कार्रवाई की जाए। उच्चतम न्यायालय ने याचिका स्वीकार कर ली और इस तरह से कानूनी लड़ाई इस दिन से निरन्तर चलती रही। 1989 और 1994 के बीच में, न्यायालय ने आदेश पारित किया। प्रभावित क्षेत्र और उसके आसपास की स्थिति की जांच के लिए विशेषज्ञ समिति के गठन की प्रार्थना को उन्होंने शामिल करने का अनुरोध किया और इसके पश्चात अल्पत और दीर्घकालीन निदान के लिए कार्रवाई की सिफारिश की।

फरवरी, 1996 में न्यायालय ने अपना अन्तिम आदेश घोषित किया, जिसमें यह कहा गया कि ग्रामीणों, भूमि तथा जल प्रदूषण के लिए ये खतरनाक उद्योग ही जिम्मेदार हैं। इसलिए ये आद्योगिक अपशिष्टों तथा अन्य प्रदूषक को हटाने के लिए सभी आवश्यक उपाय करने के लिए बाध्य थे तथा भूमि और भू-जल को री-स्टोर करने के लिए अपेक्षित सुधारात्मनक उपायों की लागत का भुगतान करने के लिए जिम्मेददार हैं। न्यायालय ने प्रदूषक भुगतान सिद्धान्त को लागू करते हुए और केन्द्रीय सरकार को सुधारात्मनक उपाय की लागत को उद्योगों से वसूलने के लिए प्राधिकृत किया। न्यायालय ने बिछड़ी क्षेत्र में स्थित सभी रासायनिक संयन्त्रों को बन्द करने का आदेश दिया। यह संदर्भ महत्वपूर्ण है कि न्यायालय ने वातावरण से संबंधित विवादों के निपटारे के लिए समर्पित पर्यावरण न्यायालय की स्थापना का सुझाव दिया और इस तरह से न्यायालय की दीर्घावधि से लंबित मांग को पूरा करने के लिए राष्ट्रीय ग्रीन ट्रिब्यूनल का गठन किया।

नवम्बर, 1997 में, पर्यावरणीय सुधारात्मक कार्रवाई के लिए उद्योगों 3738 करोड़ रूपए और 34.28 लाख रूपए गामवासियों को तात्कालिक रूप से देने का आदेश दिया जिसका तत्काल अनुपालन नहीं हुआ। अन्ततः, 2011 में आदेश के अनुपालन में 15 वर्ष के विलंब के लिए न्यायालय ने नैदानिक राशि 37.38 करोड़ रूपए पर 12 प्रतिशत की दर से चक्रबृद्धि ब्याज लगाया और इसके भुगतान के लिए प्रदूषक को दो महीने अवधि दी गई, जिसका भुगतान न करने पर वसूली कार्रवाई का प्रावधान किया गया। इस तरह इस बाद प्रदूषक उद्योगों के पास न्यायालय के आदेश के अनुपालन के अलावा कोई अन्य विकल्प नहीं था।

बिछड़ी गांव मामले की महत्ता यह है कि यह ग्रामवासियों की शिकायतों को पीआईएल के माध्यम से सुने जाने की अनुमति देता है। अनुच्छेद 21 का आवेदन पूर्ण जवाबदेही तथा 'प्रदूषक भुगतान सिद्धान्त' भारत के उभरते हुए पर्यावरणीय विधि शास्त्र की इतिहासवादी शाख के मामले में महत्वपूर्ण निर्णय है।

4. 'टी एन गोदावरमन तिरूमुलुकपाद बनाम भारत संघ', (एआईआर 1997 उच्चतम न्यायालय 1228)

सन्तुलित विकास के लिए विचार का प्रभाव न्यायालय की वन से संबंधित कानूनी प्रावधानों की व्याख्या से प्रभावित है। इस मामले में उच्चतम न्यायालय द्वारा प्रभावित विभिन्न आयामों का परीक्षण किया गया। न्यायालय के इस समस्या के निर्णय का सारांश निम्नानुसार है –

- सरकार के उचित अनुमोदन के बिना वन क्षेत्र में खनन लाइसेंस दिया जाना वन संरक्षण अधिनियम का उल्लंघन है। अवैध लाइसेंस के तहत इस प्रकार की सभी गतिविधियां बन्द की जानी चाहिए। राज्य सरकारें आवश्य क नैदानिक उपाय के लिए कदम उठाए।

- किसी भी तरह की चालू आरा मिलों की गतिविधि अवनिक कार्य है। आरा मिलें जो जो अरूणचल प्रदेश की सीमा के 100 किलोमीटर के दायरे के अन्दर हैं को बन्द किया जाना।
- आरा मिलों की संख्या, मिलों की वास्तविक क्षमता, निकटतम जंगल से दूरी और उनके लकड़ी के स्रोत की रिपोर्ट देना प्रत्येक राज्य सरकार की जिम्मेदारी है।
- अरूणाचल प्रदेश के वनों में, पेड़ों की कटाई पर पूर्ण प्रतिबंध। अन्य राज्यों में भी बिना कार्य योजना के अनुसार वनों की कटाई भी स्थगित।
- कटे हुए पेड़ों और लकड़ी के आवागमन को बन्द करना।
- वन क्षेत्रों की पहचान करने तथा पौध रोपण से वनों को आच्छारदित करना तथा आरा मिलों के संबंध में वन की सन्तुलित क्षमता के आकलन के लिए प्रत्येक राज्य सरकार द्वारा विशेषज्ञ समितियों का गठन करना।
- जम्मू तथा कश्मीर राज्य में किसी भी निजी ऐजेंसी द्वारा गिरे हुए पेड़ों या लकडियों की कटाई में न लगाया जाए।
- तमिलनाडु के आदिवासी जो कि वन क्षेत्र में रह रहे हैं उन्हें सरकार की स्कीम तथा लागू कानून के अनुसार पेड़ लगाने और काटने चाहिए।

न्यायालय द्वारा दिए गए निर्देशों पर अनुवर्ती कार्रवाई की समीक्षा के लिए 4 महीनों के भीतर मामला वापस लाया गया। भारत के पूर्वोत्तर क्षेत्र में अपने आदेशों के कार्यान्वयन की निगरानी के लिए एक समिति के गठन की प्रक्रिया न्यायालय ने आरंभ की। महाराष्ट्र तथा उत्तर प्रदेश बिना लाइसेंस वाले आरा मिलों तथा प्लाई वुड उद्योगों को बंद करने के निर्देश दिए गए थे। तमिलनाडु के जनमन क्षेत्र में गिरे हुए सभी पेड़ों के स्थान पर राज्य सरकार का नए पेड़ लगाने के आदेश दिए गए थे।

भारत के वन कानून का अनुपालन सुनिश्चित करने में प्राधिकरणों की पूरी तरह से विफलता को उच्चतम न्यायालय द्वारा पारित किए आदेशों में स्पष्ट किया गया, यहां तक कि न्यायालय के आदेशों के कार्यान्वायन के पर्यवेक्षण के लिए न्यायालय द्वारा एक समिति गठित करनी पड़ी, अन्यथा इस कार्य को प्राधिकरण द्वारा किया जाना चाहिए था।

कई विकासशील देशों ने भारत को ऐसे देश के रूप में देखा जहां मानव अधिकारों के लिए एक स्वतंत्र न्यायालय है और निश्चित रूप से पीआईएल के माध्यम से पर्यावरण के क्षेत्र में भारतीय न्यायालय ने कुछ महत्वपूर्ण उदाहरण पेश किए जिससे इस कार्य के प्रति भारतीय न्यायालयों की प्रतिबद्धता दिखती है।

पाठगत प्रश्न 27.8

1. पर्यावरण संरक्षण से सम्बधित चार महत्वपूर्ण निर्णयों का उल्लेख किजिए।

आपने क्या सीखा

कुछ विशेष क्षेत्रों से संबंधित विवादों के निपटान के लिए ट्रिब्यूनल की स्थापना की गई जबकि न्यायालय किसी विशेष क्षेत्र के अलावा सभी प्रकार के विवादों के निपटान के लिए होता है।

जहां पर सभी प्रकार के विवादों, चाहे वह किसी विशेष क्षेत्र के कानून क्यों न हो, के निपटारे के लिए न्यायालय स्थित है वहां पर एक ट्रिब्यूनल विशिष्ट क्षेत्र के विवादों के निपटारे के लिए स्थापित किया गया है। जहां पर विशिष्ट क्षेत्र के मुकदमे के निपटारे के लिए ट्रिब्यूनल स्थित है, ऐसे सभी विवाद न्यायालय से ट्रिब्यूनल में स्थानांतरित किए गए हैं।

विभिन्नि देशों द्वारा बनाए गए अंतर्राष्ट्रीय उपस्करों कानून व नियम मिलकर अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर लागू होने वाले कानून बनते हैं। अनेक ऐसे अंतर्राष्ट्रीय उपस्कर मिलजुलकर बनाए गए हैं जिसे अंतर्राष्ट्रीय पर्यावरण कानून के रूप में जाना जाता है।

वाहनों में डीजल तथा पेट्रोल के प्रयोग से उत्सर्जित होने वाले खतरनाक धुएं से होने वाले वायु प्रदूषण के खतरो से संबंधित जनहित याचिका को उच्चतम न्यायालय द्वारा सुनवाई किए जाने के परिणाम स्वरूप ही आज दिल्ली के लोग स्वच्छ हवा में सांस ले रहे हैं। सार्वजनिक वाहन दिल्ली की सड़को पर दौड़ने के लिए सीएनजी या सीएनजी जैसे ईंधन के उपयोग को सुनिश्चित करने में अनेक वर्ष लगे और यह सब जनहित याचिका द्वारा ही संभव हुआ है।

जनहित याचिका द्वारा उच्चमतम न्यायालय में गंगा नदी के प्रदूषण और "बिछड़ी गांव के मामले में" प्रदूषक भुगतान सिद्धांत लागू किया और प्रदूषक उद्योगों से उनके द्वारा पर्यावरण की क्षति किए जाने के मुआवजे के तौर पर प्रदूषक द्वारा भुगतान के मामले को जनहित याचिका उच्चतम न्यायालय में पहुंचा।

टीएन गोदावरमन तिरूमुल्लाकपा उच्चतम न्यायालय ने पीआईएल द्वारा वन संरक्षण कार्य को सक्रिय रूप से संज्ञान में लिया।

पाठांत प्रश्न

1. राष्ट्रीय ग्रीन ट्रिब्यूनल स्थापित करने के क्या कारण थे?
2. राष्ट्रीय ग्रीन ट्रिब्यूनल की संरचना क्या है?
3. एनजीटी के नए अधिकार क्षेत्र का वर्णन करें?
4. खतरनाक अपशिष्ट पदार्थों के समुचित तरीके से निपटान न होने से क्या प्रभाव हो सकता है?
5. खतरनाक अपशिष्टों के रख रखाव एवं प्रबंधन के विभिन्न सोपान क्या है?
6. ग्रीन हाउस गैस क्या है?
7. अंतर्राष्ट्रीय पर्यावरण कानून को परिभाषित करें?
8. विशेष तौर से पर्यावरण संरक्षण के क्षेत्र में लागू हुए "न्यायिक गतिविधि" को परिभाषित करें?
9. जनहित याचिका की भूमिका की संक्षिप्त में विवेचना करें?
10. उच्चतम न्यायालय द्वारा पर्यावरण संरक्षण के संदर्भ में दिए गए चार महत्वपूर्ण निर्णयों के नाम बताएं?

11. किस प्रावधान के अंतर्गत भारत के उच्च्तम न्यायालय या उच्च न्यायालय में पीआईएल दायर की जा सकती है?
12. पीआईएल को परिभाषित करें, पीआईएल की मूल विशेषताओं का वर्णन करें ?
13. न्यायालय में विवादों की निपटान के लिए प्रतिकूलात्मक प्रणाली के बारे में क्या जानते हैं?
14. दिल्ली वाहन प्रदूषण मामले का संक्षिप्त वर्णन करें?
15. बिछड़ी गांव के मामले में उच्चतम न्यायालय द्वारा प्रदूषक भुगतान सिद्धांत को क्यों और कैसे लागू किया गया

पाठगत प्रश्नों के उत्तर

27.1

1. ट्रिब्यूतन स्थापित करने का मुख्य कारण न्यायिक सदस्यों के साथ विविध क्षेत्रों के विशेषज्ञों को शामिल करके विवादों के जल्द निपटारे को सुनिश्चित करना है।
2. पर्यावरण के बचाव एवं वन संरक्षण तथा प्राकृतिक संसाधनों जिसमें पर्यावरण से संबंधित कानूनी अधिकार और व्यक्तियों को या स्रोतों को होने वाली क्षतिपूर्ति के शीघ्र एवं प्रभावी तरीके से निपटारा करने को सुनिश्चित करने के लिए एनजीटी की स्थापना की गई।
3. 'त्रुटिविहीन सिद्धांत' यह निर्धारित करता है कि किसी मालिक या उसके नियोक्ता अपने बचाव में चूक नहीं की का बहाना नहीं ले सकते। यदि कोई दुर्घटना होती है और परिणाम स्वरूप किसी व्यक्ति या पर्यावरण को क्षति पहुंचती है तो केवल उसका मालिक या नियोक्ता जिम्मेदार होगा क्यों कि यह दुर्घटना उसके उद्यम के अंतर्गत हुई है।
4. यदि कोई व्यक्ति एनजीटी में मामला हार जाता है तो वह मामले की चुनौती माननीय उच्चतम न्यायालय में कर सकता है।
5. मामले की सुनवाई और निर्णय दो सदस्य कर सकते हैं। जिसमें से एक न्याौयिक सदस्य और एक अन्य विशेषज्ञ सदस्य होता है।

27.2

1. पदार्थ या तैयार पदार्थ जो रासायनिक या भौतिक-रासायनिक पदार्थों की हैण्डलिंग के कारण मानव जाति, अन्य् जीव जन्तु, सूक्ष्म जीव, संपदा को अथवा पर्यावरण को नुकसान पहुंचाने वाले खतरनाक अपशिष्ट कहलाते हैं।
2. खतरनाक अपशिष्ट पदार्थ यदि लावारिस या साधारण रूप से फेंक दिया जाता है तो इससे बहुत से खतरनाक स्वास्थ्य एवं पर्यावरणीय मामले बन जाते हैं।
3. खतरनाक अपशिष्ट पदार्थ (प्रबंधन और रखरखाव) नियम, 1989 का मुख्य उद्देश्य खतरनाक अपशिष्टों का नियंत्रण और प्रबंधन है।
4. ईआईए का अर्थ है कि परियोजना के ट्रीटमेंट, भण्डारण और खतरनाक अपशिष्टों के निपटान से होने वाले प्रभावों की पहचान करना और ऐसे उपयोग के लिए स्थल क्लीयरेंस

हेतु आम लोगों की स्वकृति ली जानी चाहिए। खतरनाक अपशिष्ट पदार्थों के प्रबंधन और हैण्डलिंग के संबंध में ईआईए जरूरी है।

27.3

1. कार्बन–डाई–आक्सोइड, मीथेन, नाइट्रस आक्सांइड, सल्फडर हेक्सा क्लोराइड और गैसों के दो समूह हाइड्रोक्लोरो कार्बन तथा परक्लोरो कार्बन।
2. जलवायु परिवर्तन के लिए ग्रीन हाउस गैसें जिम्मेदार हैं जिसमें भूमि के तापमान में औसत वृद्धि और ओजोन परत का क्षीण होता है।
3. ग्रीन हाउस गैसों के उत्सर्जन का निवारण संयुक्त राष्ट्र के लक्ष्यल के अंतर्गत अंतराष्ट्रीय स्तर पर किए गए उपाय का क्योहटो प्रोटोकॉल एक उदाहरण है।
4. क्यों कि जलवायु परियोजन के लिए ग्रीनहाउस गैसों का उत्सिर्जन जिम्मेदार होता है इसलिए इसमें कटौती से स्वत: पर्यावरण क्षति बंद हो जाती है।

27.4

1. पर्यावरण और विकास पर 'रियो उद्घोषणा' या वर्ष 1992 में 'रियो–डी–जिनेरो' पर पर्यावरण और विकास अभिसमय तथा जलवायु परिवर्तन पर संयुक्त राष्ट्र फ्रेमवर्क अभिसमय (यूएनएफसीसी)
2. जलवायु परिवर्तन से होने वाली चुनौती का सामना करने के लिए अंतरशासकीय प्रयासों हेतु यूएनएफसीसी ने एक समग्र ढांचा बनाया है
3. तीन मुख्य उद्देश्य है:
   i. जैव विविधता संरक्षण,
   ii. इसके उपस्करों का सुव्ययवस्थित प्रयोग, और
   iii. परंपरागत संसाधनों के प्रयोग से लाभों की स्वच्छ और समान रूप से शेयरिंग।
4. संतुलित विकास, अंतर परंपरागत इक्विटी तथा प्रभुता संपन्न अधिकारों के सिद्धांतों पर बने 'स्टापकहोम उद्घोषणा' में सुस्थिर विकास और अन्योंथ के बीच पुन: पुष्टि करने, पूर्व सावधानी सिद्धांत की महत्ता और केन्द्रीयता, प्रदूषक भुगतान तथा पर्यावरण प्रभाव का मूल्यांकन शामिल है।

27.5

1. हां।
2. हां।
3. पूर्ण जिम्मेदारी
4. नहीं।

27.6

1. हां।
2. आज व्यक्ति वास्तविकता और पर्याप्त हित में आम लोगों की शिकायतों, लोगों के कर्त्तव्यों या सामाजिक संरक्षण तथा सामूहिक अधिकारों और हितो के समाधान के लिए न्यायालय में अपील कर सकता है। पर्यावरणीय मुददों को न्यायालय के समक्ष जनहित याचिका द्वारा समाज के बहुआयामी लोगों ने प्रस्तुत किया। वकीलों, वकील संघों, पर्यावरणविदों, विभिन्न समूह और केन्द्र, जो कि पर्यावरण संरक्षण और वनों के संरक्षण के प्रति समर्पित है, कल्याणकारी मंचों, उपभेक्ता अनुसंधान केन्द्रों ने सफलतापूर्वक पर्यावरणीय मामले को न्यायालय के समक्ष उठाया।
3. पीआईएल मामलों का दायरा बहु आयामी है। यह जानवरों की संवेदना, आदिवासी तथा मछुआरों का विशेषाधिकार, हिमालय और वनों की पारिस्थितकी, इको पर्यटन, भूमि के उपयोग के तरीके और पारिस्थिकीय क्षति के कारण गांवों द्वारा जूझ की जा रही समस्यों व तक फैला है।
4. न्याय देने की प्रतिकूलात्मक प्रणाली का अभिप्राय यह है कि दो पक्षकार एक दूसरे के बीच मामले को चुनौती देते हैं और न्यालयाधीश किसी पक्ष का बेहतर मामला है के निर्णय के लिए एक तटस्थ निर्णायक यह रेफरी के रूप में बैठता है।

27.7

1. पर्यावरण प्रदूषण निवारण एवं नियंत्रण प्राधिकरण
2. संघनित प्राकृतिक गैस
3. वायु प्रदूषण
4. जल प्रदूषण

27.8

1. (i) दिल्ली वाहन प्रदूषण मामला
   (ii) एम. सी. मेहता बनाम भारत संघ–गंगा प्रदूषण मामला
   (iii) विछड़ी गांव का मामला–पर्यावरण विधि कार्य के लिए भारतीय परिषद् भारत संघ
   (iv) टी. एन. गोदावरमन बनाम भारत संघ (ए. आई. आर 1997, SC 1228)

मॉड्यूल VIIB
उपभोक्ता सुरक्षा संबंधित कानून और सूचना का अधिकार

अध्याय 28 उपभोक्ता संरक्षण

अध्याय 29 अनुचित कारोबारी व्यवहार

अध्याय 30 उपभोक्ता विवाद निवारण एजेंसियां

अध्याय 31 उपभोक्ता सक्रियता

28

उपभोक्ता संरक्षण

नन्ही आलिया अपने भाई के जन्मदिन पर उसे कुछ तोहफा देना चाहती थी। वह अपनी मां के साथ पास के दुकान पर गई और अपने भाई के लिए एक सस्ते वाला फोन लेकर आई। उसका भाई वहीं पास के बड़े शहर में नौकरी के लिए जा रहा था। अपने जन्मदिन पर मिले फोन का उपहार पाकर गोपाल बहुत खुश हुआ, लेकिन कुछ ही दिनों बाद उसकी खुशी गम में बदल गई। शहर पहुंचने के बाद देखा, उसका फोन काम नहीं कर रहा है और उसे अपने घरवालों से बातें करने के लिए एक दूसरा फोन लेना पड़ा। आलिया और गोपाल क्या करेंगे? उपभोक्ता होने के नाते उनके 'उपभोक्ता अधिकार' क्या है? इस अध्याय में हम उपभोक्ता अधिकारों एवं उपभोक्ता कानूनों की चर्चा करेंगे।

इस अध्याय में हम भारत में उपभोक्ता कानून के उद्भव और क्रमविकास के साथ उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम, 1986 के मुख्य प्रावधानों और 'उपभोक्ता संरक्षण', 'उपभोक्ता अधिकार' जैसे शब्दों के अर्थ के बारे में अध्ययन करेंगे।

उद्देश्य

यह अध्याय पढ़ने के बाद आप–

- उपभोक्ता अधिनियम के इतिहास और क्रमविकास के बारे में जान पाएगे;
- 'उपभोक्ता' शब्द के अर्थ को समझ सकेगें;
- उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम 1986 के प्रमुख प्रावधानों के बारे में चर्चा करने में समर्थ हो सकेगें; एवं
- उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम 1986 में हाल में ही हुए संशोधनों को जान सकेंगे।

28.1 उपभोक्ता कानून का उद्भव और विकास

इस अध्याय के अगले भाग में हम 'उपभोक्ता' शब्द के अर्थ और परिभाषा के बारे में समझने की कोशिश करेंगे, लेकिन उससे पहले भारत में उपभोक्ता कानून के क्रम विकास के बारे में यहां संक्षिप्त जानकारी दी जा रही है।

पहले 'केविट कैपटर' (Caveat capator) सिद्धांत का अर्थ था कि उपभोक्ता को किसी भी उत्पाद को खरीदने से पहले ही सतर्क रहना चाहिए। अगर उपभोक्ता द्वारा खरीदने से पहले कोई जांच-पड़ताल नहीं की गई है तो सामान की खरीदारी के बाद विक्रेता इसके लिए जिम्मेदार नहीं है। यह भारत में पहले प्रचलित था।

इसलिए उपभोक्ता कुछ उत्पाद खरीदने से पहले बहुत ही सतर्क रहता था।

यद्यपि उपभोक्ता अधिकार की सुरक्षा के लिए कुछ कानून बने थे, लेकिन वे पर्याप्त नहीं थे।

- खाद्य वस्तुओं में मिलावट की रोकथाम के लिए अधिनियम
- आवश्यक वस्तुओं से संबंधित अधिनियम
- एमआरटीपी (MRTP) अधिनियम

उपभोक्ता सुरक्षा अधिनियम 1986 कानून व्यवस्था की एक स्वतंत्र और प्रगतिशील पद्धति है और भारतीय उपभोक्ताओं के लिए 'मैग्ना कार्टा' कहा जाता है।

आप, आलिया और गोपाल जैसे लोग आज उपभोक्ता अधिकारों के बारे में ज्यादा जागरूक हो गये हैं और विक्रेता अब अपने दायित्वों से बच नहीं सकते।

यदि खरीदी हुइ वस्तुओं में कोई खराबी है या निवारण सही नहीं है तो उपभोक्ताओं को अब अधिकार प्राप्त हैं जो उनकी सहायता करते हैं।

पाठगत प्रश्न 28.1

1. आलिया कौन है?
2. आलिया की मां ने मिठाई का डिब्बा खरीदा? उसे क्या कहकर संबोधित किया जाएगा?
3. उपभोक्ता के रूप में क्या गोपाल को कोई अधिकार है?

क्या आप जानते है

एक व्यक्ति के द्वारा इस्तेमाल किए जा रहे उत्पाद, जो उसके द्वारा खरीदी नहीं गई, वह भी एक उपभोक्ता है, अगर जिस व्यक्ति के द्वारा खरीदी गई है, वह इस उत्पाद के प्रयोग की अनुमति दे।

28.2 उपभोक्ता कौन है?

सहज रूप से कहें तो उपभोक्ता एक व्यक्ति है, जो-

- सामान खरीदता है या
- जो सेवाएं लेता है।

लेकिन उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम, 1986 की परिभाषा के अनुसार 'उपभोक्ता' का अर्थ दो भागों में विभाजित है। पहला भाग कहता है कि उपभोक्ता वह है, जो उत्पादों की कीमत अदा करता है (इसीलिए क्रेता एक उपभोक्ता है)। दूसरा भाग कहता है कि उपभोक्ता वह है कि जो उपलब्ध सेवाओं का मूल्य प्रदान करता है (इसलिए 'सेवाएं' लेनेवाला एक उपभोक्ता है)। हालांकि व्यवसाय या कारोबारी उद्देश्य के लिए खरीदे गये उत्पादों को इस अधिनियम में सम्मिलित नहीं किया गया है।

(क) खरीदार - एक टी.वी. सेट खरीदने वाला।
किराएदार - टेक्सी सेवाओं का इस्तेमाल करने वाला।

(ख) रामानुजन ने बाल बनाने के लिए नाई को 100 रुपये दिया। क्या वह उपभोक्ता है?

(ग) करिश्मा अपनी जांच के लिए सरकारी अस्पताल जा रही है, क्या वह उपभोक्ता है?

(घ) प्रीति मॉल से एक सुंदर-सी ड्रेस लाती है। एक बार पहनने के बाद उसने जैसे ही ड्रेस साफ करती है, यह फट जाती है। क्या वह ड्रेस वापस कर सकती है?

पाठगत प्रश्न 28.2

1. उपभोक्ता कौन है?

2. क्या सेवाओं की कीमत अदा करने वाला भी क्या एक उपभोक्ता है?

28.3 उपभोक्ता अधिकार

'अधिकार' के बारे में हम सभी को थोड़ी-बहुत जानकारी है, लेकिन हमें उसकी सही जानकारी नहीं है, जिससे हम उसका आनंद उठा सके। आपने उपभोक्ता के अधिकारों के बारे में भी अवश्य सुना होगा। हां, आपने उपभोक्ता सतर्कता के बारे में टी.वी. पर कई विज्ञापन देखे होगें। आपने 'जागो ग्राहक, जागो' देखा है? आइए जानते हैं उपभोक्ता अधिकार क्या है?

उपभोक्ता अधिकार वे अधिकार हैं जो एक उत्पादन को खरीदने वाले या सेवायें किराये पर लेने वाले उपभोक्ता को बेचने वाले के विरूद्ध प्राप्त हैं।

संयुक्त राष्ट्र ने निम्नलिखित को उपभोक्ता अधिकार माना है:

1. सुरक्षा का अधिकार;
2. सूचना पाने अधिकार;
3. चयन का अधिकार;
4. सुने जाने का अधिकार;
5. मुआवजे का अधिकार;

6. उपभोक्ता शिक्षा का अधिकार;
7. स्वस्थ परिवेश का अधिकार; एवं
8. मूलभूत आवश्यकताओं का अधिकार

क्या आप जानते है

यह उपभोक्ता का सबसे बड़ा और सशक्त अधिकार यह है कि वह किसी वस्तु को खरीदने से मना कर सकता है, जिससे विक्रेता अपने ग्राहक के साथ-साथ कभी-कभी अपने कारोबार से भी हाथ धो सकता है।

हर साल 15 मार्च को उपभोक्ता अधिकार दिवस के रूप में मनाया जाता है।

यद्यपि हम कर चुकाते हैं फिर भी सरकारी सेवाएं उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम के अन्तर्गत नहीं आती क्योंकि वे निशुल्क प्रदान की जाती है।

पाठगत प्रश्न 28.3

1. उपभोक्ता अधिकार की परिभाषा क्या है?

2. उपभोक्ता सुरक्षा अधिनियम, 1986 के अंतर्गत उपभोक्ता के दो किन्हीं अधिकारों का उल्लेख करें।

28.4 उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम, 1986 (उ.स.अ.)

हम उपभोक्ता अधिकार के बारे में तो जानते हैं, लेकिन जो अधिनियम उपभोक्ता के अधिकार की पहचान और सुरक्षा प्रदान करता है, वह है उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम, 1986।

सभी अधिनियमों की तरह यह अधिनियम भी अनेक भागों, उपभागों और खंडों में विभाजित है। उदाहरण के तौर पर भाग-2, उपभाग (1) और उपभाग की धारा (घ) को भाग 2(1) (घ) के रूप में प्रस्तुत किया जाएगा।

वर्तमान उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम का भाग 2(1)(घ) 'उपभोक्ता' को परिभाषित करता है, जिसकी चर्चा हम पहले कर चुके हैं।

उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम 1986 का मुख्य उद्देश्य तीन स्तरीय - जिला स्तरीय, राज्य स्तरीय, राष्ट्र स्तर पर अर्ध-न्यायिक व्यवस्था के अन्तर्गत उपभोक्ता को सहज, तीव्र एवं सस्ता संरक्षण प्रदान करना है।

अत: जब कभी उपभोक्ता के अधिकारों का अतिक्रमण होता है, तब उपभोक्ता इन स्तरों पर शिकायत करता है। इस अधिनियम का प्रमुख लक्ष्य उपभोक्ता को संरक्षण प्रदान करना है जिसकी हम अध्याय के अगले भाग में चर्चा करेंगें।

उपभोक्ता सुरक्षा अधिनियम, 1986 का मुख्य लक्ष्य हैं-

(क) उपभोक्ताओं के हितों की सुरक्षा।

(ख) उपभोक्ताओं के अधिकारों की सुरक्षा।

इनके अंतर्गत निम्नलिखित समाहित हैं:

(क) खतरनाक वस्तुओं एवं ऐसी सेवाओं जिनसे जीवन और सम्पत्ति को खतरा है, से सुरक्षा प्रदान करना।

(ख) सामानों की गुणवत्ता, परिमाण, मानक, क्षमता, शुद्धता और मूल्यों के बारे में सूचना का अधिकार। जिससे उपभोक्ता अनुचित व्यापार, व्यवहार एवं झूठे वादों एवं बढ़ा-चढ़ाकर किये गये दावों से अपनी रक्षा कर सके;

(ग) सुने जाने का अधिकार,

(घ) विभिन्न प्रकार के वस्तुओं तक पहुँच का अधिकार,

(ङ) क्षतिपूर्ति का अधिकार,

(च) उपभोक्ता-शिक्षा का अधिकार।

? क्या आप जानते है

उपभोक्ताओं को शिक्षा प्रदान करना 'केंद्रीय उपभोक्ता संरक्षण परिषद्' (CCPC) का उत्तरदायित्व है।

पाठगत प्रश्न 28.4

1. उस अधिनियम का नाम बताइए, जो भारत में उपभोक्ता के अधिकारों की सुरक्षा करता है और उपभोक्ता-विवादों में क्षतिपूर्ति का प्रावधान करता है।
2. उपभोक्ता सुरक्षा अधिनियम, 1986 के अधीन उपभोक्ता के किन्हीं दो अधिकारों का उल्लेख करें।
3. उपभोक्ता को शिक्षा प्रदान करने की जिम्मेदारी किसकी है?
4. किस दिन को उपभोक्ता अधिकार दिवस के रूप में मनाया जाता है?
5. उपभोक्ता के अधिकारों का अतिक्रमण होने पर हम कहाँ जाते है?
6. प्रीति एक दुकान पर नेल पालिश की बोतल खरीदने जाती है। क्या उसे चुनाव करने का अधिकार है?

28.5 उपभोक्ता और सेवा की औपचारिक परिभाषा

'उपभोक्ता'

उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम, 1986 के भाग-2(1)(घ) के अनुसार 'उपभोक्ता' वह है, जो सामान खरीदता है, उस सामान का उचित मूल्य प्रदान करता है या करने का वादा करता है या कीमत का अंशतः प्रदान करके बची हुई कीमत चुकाने का वादा करता है।

आपको यह परिभाषा याद करने की आवश्यकता नहीं है, यह सिर्फ संदर्भ विशेष के लिए है। 'उपभोक्ता' का अर्थ पिछले अध्याय में स्पष्ट किया जा चुका है।

सेवा

उपभोक्ता सुरक्षा अधिनियम 1986 के भाग-2(1) में 'सेवा' को इस प्रकार परिभाषित की गई है-

'सेवा' का अर्थ किसी भी तरह की सेवा से है, जो क्षमतासंपन्न प्रयोगकर्ताओं को उपलब्ध करायी जातर है, जैसे कि बैंकिंग, वित्तीय सुविधाएं, बीमा, परिवहन, संसाधन, विद्युत तथा अन्य ऊर्जा की पूर्ति, गृह निर्माण, मनोरंजन और समाचार तथा अन्य सूचनाएं प्रदान करना आदि।

मुफ्त सेवाएं को इसमें शामिल नहीं किया गया है इसीलिए वे उपभोक्ता सुरक्षा अधिनियम, 1986 के अंतर्गत 'सेवा' के अन्तर्गत नहीं आती।

क्या आप जानते है

यदि कुरिअर निर्धारित समय के बाद पहुंचता है तो वह सेवा अपूर्ण मानी जाएगी।

पाठगत प्रश्न 28.5

1. उपभोक्ता सुरक्षा अधिनियम 1986 के तहत 'सेवा' शब्द की परिभाषा क्या है?
2. उपभोक्ता सुरक्षा अधिनियम का कौन-सा भाग 'सेवा' को परिभाषित करता है?
3. रूपा बैंक में खाता खुलवाने गई और बैंक ने उसकी बजत खाते पर 9 प्रतिशत का ब्याज देने का वादा किया, लेकिन खाता खुलने के कुछ ही दिनों बाद ब्याज दर घटकर 8 प्रतिशत हो गई यद्यपि उसका पूर्व निर्धारित ब्याज 9 प्रतिशत था। उपभोक्ता सुरक्षा अधिनियम 1986 के अंतर्गत क्या बैंक उत्तरदायी है?

28.6 महत्वपूर्ण मुकदमें

लखनऊ विकास प्राधिकरण बनाम एम.के. गुप्ता : एक व्यक्ति जो घर के आवंटन के लिए आवेदन करता है, एक 'उपभोक्ता' है और उपभोक्ता सुरक्षा अधिनियम 1986 के अंतर्गत संरक्षित है।

भारतीय आयुर्विज्ञान संस्था बनाम वी.पी. शान्ता : डॉक्टरों द्वारा उपलब्ध सेवाएं उपभोक्ता सुरक्षा अधिनियम, 1986 के अंतर्गत आती हैं, लेकिन सरकारी अस्पतालों के द्वारा प्रदान की जा रही मुफ्त सेवाएं इसके अन्तर्गत नहीं आती।

ट्रांजिसिया वायो मेडिकल बनाम डॉ. डी.जे. डिसोंगा (22 जनवरी, 2013)

एक खराब एवं उपयोग किये गये स्वचालित 'एनालाइजर' को वापस लौटाया गया और उपभोक्ता के पैसे वापिस किये गये।

28.7 हाल ही में पारित किए गए संशोधित कानूनी मसौदे

उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम, 1986 के अधीन तैयार की गई फोरमों में अनेक मुकदमें लंबित पड़े हैं और उनका प्रभावी अनुपालन बहुत धीमा है। संशोधन प्रस्ताव में इन सबका विचार करते हुए नीति निर्धारित करते हुए इनका निवारण करने का प्रयास किया गया है।

उदाहरण के तौर पर प्रस्तावित बिल निम्न की आज्ञा देता है-

- ऑन-लाइन शिकायत करने की सुविधा।
- आदेश न पालन करने पर पांच सौ रुपये का जुर्माना का या अर्थदण्ड का डेढ़ प्रतिशत प्रतिदिन जुर्माना
- उपभोक्ता फोरम द्वारा दिया गया फैसला एक सक्षम सिविल कोर्ट द्वारा दिये गये फैसले के समान है
- संशोधित बिल में न्यूनता, खराबी, अनुचित व्यापार व्यवहार जैसे शब्दों को परिभाषित किया गया है।

? क्या आप जानते है

उपभोक्ता अधिनियम के अनुसार एक 'फोरम' में एक न्यायाधीश और दो सदस्य होते हैं, जिन्हें 'Quasi-Judical' (अर्द्ध-न्यायिक) कहा जाता है, जिसका अर्थ है कि यह एक कोर्ट के समान फैसले करता है।

पाठगत प्रश्न 28.6

1. क्या डाक्टरों द्वारा दी जाने वाली सेवाएं, उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम, 1986 के अर्न्तगत 'सेवाएं' हैं?
2. क्या उपभोक्ता फोरम की मान्यता दीवानी कचहरी के 'डिगरी' (दिये गये फैसले) के बराबर है?

आपने क्या सीखा

- उपभोक्ता सुरक्षा अधिनियम 1986 ही भारत में उपभोक्ता अधिकार की 'मैग्ना कार्टा' (Magna Carta) है। इस अधिनियम के 52(1)(घ) के अनुसार उपभोक्ता एक व्यक्ति है। उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम 1986 के 52(1)(0) में 'सेवा' को परिभाषित किया गया है।
- बैंकिंग, बीमा, वित्त, परिवहन, प्रोसेसिंग, विद्युत या अन्य ऊर्जा की पूर्ति, बोर्डिंग तथा लॉजिंग, निर्माण कार्य, मनोरंजन, सूचनाओं का संप्रसारण आदि 'सेवा' की परिधि में आता है। मुफ्त सेवाएं उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम, 1986 के अंतर्गत नहीं आता।
- अच्छी तरह जांच-पड़ताल के बिना लिया गया सामान या सेवाएं आपको उपभोक्ता नहीं बनातीं। कारोबार करने के उद्देश्य से लिया गया सामान सेवाएं इस अधिनियम के अंतर्गत नहीं आते, इसलिए इसके अंतर्गत आप 'उपभोक्ता' नहीं बनते। 'प्रतिफल' (consideration) का अर्थ है वस्तुओं या सेवाओं के बदले में दिया गया मूल्य और पैसा। भाग 2(1)(घ) दो भागों में परिभाषित किया गया है। पहला भाग, उपभोक्ता को उस व्यक्ति के रूप में परिभाषित करता है, जो सामान खरीदता है और दूसरा भाग उपभोक्ता को उस व्यक्ति के रूप में परिभाषित करता है, जो मूल्य अदा कर सेवा प्राप्त करता है।

  ग्राहक के कुछ निर्दिष्ट अधिकार हैं। उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम, 1986 क्षतिपूर्ति के लिए 'फोरम' गठित करता है, क्योंकि क्षतिपूर्ति की भरपाई सभी उपभोक्ताओं का अधिकार है। यह 'फोरम' जिला, राज्य और राष्ट्रीय स्तर के हैं। उपभोक्ता को इसके बारे में शिक्षित करना **उपभोक्ता सुरक्षा परिषद्** का दायित्व है।

  कई महत्वपूर्ण मामले निम्न हैं-

  'ट्राजिसिया बायो मेडिकल बनाम डी.जे. डिसोजर'

  'लखनऊ विकास प्राधिकरण बनाम एम.के. गुप्ता'

  'भारतीय आयुर्विज्ञान संस्था बनाम वी.पी. शांतर'

  उपभोक्ता और कारोबार दोनों के बीच स्वस्थ परिवेश के निर्माण के उद्देश्य से और उपभोक्ताओं के अधिकारों के संरक्षण के लिए उपभोक्ता कानून बहुत ही महत्वपूर्ण है।

पाठांत प्रश्न

1. उपभोक्ताओं के किन्हीं दो अधिकार का उल्लेख करें।
2. कौन-सी संस्था उपभोक्ताओं को शिक्षा प्रदान करने के लिए उत्तरदायी है?
3. 'उपभोक्ता अधिकार दिवस' कब मनाया जाता है?

4. उपभोक्ता सुरक्षा अधिनियम, 1986 के भाग 2(1)(0) में कौन-सी दो सेवाओं का उल्लेख है।

5. उपभोक्ता सुरक्षा अधिनियम, 1986 में किस प्रकार की वस्तुओं ओर सेवाओं को शामिल नहीं किया गया है?

6. 'प्रतिफल' (consideration) क्या है?

7. अपने ही शब्दों में 'उपभोक्ता' को परिभाषित करें।

8. 'उपभोक्ता सुरक्षा अधिनियम 1986' के अंतर्गत उपभोक्ता के दो अधिकारों का उल्लेख करें।

9. शीला ने एक महीने हुए नई कार खरीदी थी। उसकी एयरकंडीशनर खराब हो गई। शीला ने शोरूम के लोगों को सही करवाने की बहुत खुशामद की, लेकिन उन्होंने मुफ्त में करने को मना कर दिया। शीला क्या करेगी?

सही/ गलत

1. 'जवाबदेही' का अर्थ है क्षतिपूर्ति प्रदान करना या उत्पादों की भरपाई करना। (सत्य/असत्य)

2. उपभोक्ता सुरक्षा अधिनियम 1986, न्यायपालिका का एक अनूठा और उच्च प्रगतिशील प्रक्रिया है और भारतीय ग्राहकों की 'मैग्ना कार्टा' (Magna Carta)) कही जाती है। (सत्य/असत्य)

3. सामान के क्रेता के अनुमति के बिना अगर कोई व्यक्ति उसका उपयोग करता है तो वह भी उपभोक्ता है। (सत्य/असत्य)

4. कारोबार या व्यवसाय के लक्ष्य से सामान खरीदने वाला व्यक्ति उपभोक्ता नहीं है। (सत्य/असत्य)

5. उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम 1986, के अंतर्गत सरकारी सेवाएं या 'मुफ्त की सेवाएं' सेवाओं के अंतर्गत है। (सत्य/असत्य)

6. ग्राहकों के विपक्ष में उपभोक्ता अधिकार उपलब्ध है। (सत्य/असत्य)

7. उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम, 1986 के भाग(1)(घ) के अंतर्गत 'उपभोक्ता' शब्द की परिभाषा दी गई है। (सत्य/असत्य)

8. उपभोक्ता सुरक्षा अधिनियम 1986 के अधीन 'क्षतिपूर्ति' का अर्थ एक उपभोक्ता के तकलीफों का निदान है। (सत्य/असत्य)

9. उपभोक्ताओं को शिक्षित करना केंद्रीय उपभोक्ता संरक्षण संस्था का दायित्व नहीं है। (सत्य/असत्य)

10. सामानों का चयन करना उपभोक्ता अधिकार में शामिल नहीं है। (सत्य/असत्य)

11. उपभोक्ता अधिनियम के अनुसार एक फोरम में एक न्यायाधीश होता है, जिन्हें 'Quasi-Judical' कहा जाता है, जो आम कोर्ट के समान फैसले करता है। (सत्य/असत्य)

12. संशोधित कानून ने उपभोक्ता फोरम को जो अधिकार प्रदान किए हैं, वह दीवानी अदालत में 'डिगरी' के समान है। (सत्य/असत्य)

13. उपभोक्ता सुरक्षा अधिनियम 1986 के 2(1)(घ) में 'सेवा' की व्याख्या की गई है।

14. अनुचित कारोबार द्वारा कारीगरी लागत कम होने पर छोटे कारोबारी पर प्रभाव पड़ता है। (सत्य/असत्य)

पाठगत प्रश्नों का उत्तर

28.1

1. आलिया एक 'उपभोक्ता' है।
2. उपभोक्ता
3. हां

28.2

1. 'उपभोक्ता' वह व्यक्ति है जो खरीदी हुई वस्तुओं का मूल्य देता है। इसीलिए 'क्रेता' एक 'उपभोक्ता' है।
2. हां

28.3

1. 'उपभोक्ता अधिकार' वे अधिकार हैं, जो वस्तुओं के क्रेता या सेवाओं के उपयोगकर्त्ता को विक्रेता या सेवा प्रदाता के विरूद्ध प्राप्त हैं।
2. (i) क्षतिपूर्ति का अधिकार।

   (ii) सूचना का अधिकार।

28.4

1. उपभोक्ता सुरक्षा अधिनियम, 1986
2. (क) चयन का अधिकार

   (ख) सुने जाने का अधिकार

3. केंद्रीय उपभोक्ता संरक्षण परिषद् (CCPC)
4. 15 मार्च को 'उपभोक्ता अधिकार दिवस' के रूप में मनाया जाता है।
5. उपभोक्ता विवाद क्षतिपूर्ति कोर्ट
6. हां

28.5

1. क्षमता संपन्न उपयोग कर्ताओं के लिए उपलब्ध कराई गई किसी भी प्रकार की सेवाएं 'सेवा' की परिभाषा में आती है।
2. उपभोक्ता सुरक्षा अधिनियम, 1986 का भाग-2(1) 'सेवा' को परिभाषित करता है।
3. हां

28.6

1. हां
2. हां

29

अनुचित कारोबारी व्यवहार

अक्षय एक छोटा व्यापारी है जो 'महक' नाम से एक शैंपू का निर्माण करता है। कम कीमत की अच्छी शैंपू होने की वजह से गांववाले उसको पसंद करते थे। 'खुशबू' ब्रांड की शैंपू कंपनी 'महक' शैंपू की वजह से अपना ग्राहक खो रही थी। 'खुशबू' शैंपू ने 'महक' शैंपू की तुलना में कम कीमत पर अपना शैंपू बेचना शुरू कर दिया। 'खुशबू' शैंपू के निर्माताओं के लिए यह अस्थायी हानि कुछ ज्यादा नुकसान नहीं थी। कीमत में कमी की वजह से गांववाले खुशबू शैंपू खरीदने लगे। 'महक' शैंपू ने भारी नुकसान होने की डर से अपनी कीमत कम नहीं की। कुछ ही दिनों में खुशबू शैंपू ने महक शैंपू के पूरे बाजार पर कब्जा कर लिया, जिसकी वजह से अक्षय को अपनी कंपनी बंद करनी पड़ी। देखते-ही-देखते फिर थोड़े ही दिनों में 'खुशबू' शैंपू ने अपनी कीमत बढ़ा दी, लेकिन गांववालों के पास 'खुशबू' शैंपू खरीदने के अलावा दूसरा कोई राह या चारा नहीं था।

क्या आप सोचते हैं, यह सही था। नहीं, यह न तो अक्षय के लिए और न ही गांववालों के लिए हितकर था। अनुचित कारोबारी व्यवहार छोटे व्यवसाय कर्ताओं पर प्रभाव डालता है, जब निर्माण मूल्य से कम कीमत पर कीमत रखी जाती है।

प्रतियोगिता उचित, स्वस्थ और एक निर्दिष्ट दायरे तक ही सही है। अक्षय जैसे छोटे व्यवसायकर्ताओं को सुरक्षित रखने के लिए भी कानून बनाए गए हैं। प्रतिस्पर्धा अधिनियम, 2002 उनमें से एक है।

मुनाफा कमाने के लिए विभिन्न व्यवसायकर्ताओं के द्वारा अपनाए गए तरह-तरह के हथकंडे जैसे कि मुफ्त में दिये गये सामानों की कीमत मूल सामानों की कीमत में जोड़ लेना, छूट देकर धोखाधड़ी करना और मुनाफा कमाना आजकल आम बात हो गई है। लेकिन एक सजग उपभोक्ता ऐसी धोखाधड़ी की रिपोर्ट सही फोरम को देता है। आइए, देखें हममें से कितने लोग इस अनुचित कारोबारी व्यवहार के शिकार हैं।

अनुचित व्यापार व्यवहार से वे छोटे व्यापारी प्रभावित होते हैं जो लागत मूल्य से कम कीमत पर व्यापार करके बाजार में नहीं टिक सकते हैं।

उद्देश्य

यह अध्याय को पढ़ने के बाद आप यह जान सकेंगे कि :

- अनुचित कारोबार किसे कहा जाता है;
- 'एकाधिकार' और 'प्रतिस्पर्द्धा' जैसे शब्दों के सही अर्थ एवं इसकी पूर्ण जानकारी प्राप्त कर पाएगे;
- 'अनुचित कारोबार व्यवहार' के विरूद्ध में क्षतिपूर्ति की प्रक्रिया के बारे में समझ पाएगें; एवं
- भारतीय प्रतिस्पर्द्धा आयोग की भूमिका का मूल्यांकन कर सकेगें।

29.1 अनुचित कारोबारी व्यवहार

किसी भी वस्तु के बेचने, उसका उपयोग या वितरण करने या किसी भी सेवा को प्रदान करने के लिए अगर कोई अनुचित तरीका अपनाया जाता है, उसे अनुचित कारोबार व्यापार कहा जाता है।

अनुचित कारोबारी व्यवहार निम्न भागों में बांटा गया है-

गलत (प्रस्तुतीकरण)

किसी भी प्रकार के मौखिक या लिखित विवरण तथा अभिवेदन, जो कि

गलत सुझाव देता है कि वस्तुएं एक विशेष मानक, परिमाण, स्तर, सम्मिश्रण ढंग की है;

गलत सुझाव देता है कि सेवाएं विशेष मानक, परिमाण और स्तर की हैं;

किसी भी पुराने, उपयोग किये गये, पुनर्निर्मित या मरम्मत की हुई वस्तु को नई की तरह प्रस्तुत करता है;

दावा करता है कि वस्तुएं या सेवाएं प्रायोजित, मान्यता-प्राप्त और संबधन प्राप्त है जो कि सत्य नहीं है;

यह दावा करता है कि विक्रेता या आपूर्तिकर्त्ता को प्रायोजक या मान्यता प्राप्त है जो कि सत्य नहीं है;

किसी वस्तु या सेवा से संबंधित आवश्यकता या उपयोगिता के बारे में गलत या भ्रामक दावा करता है;

लोगों के समक्ष इस तरह का भ्रामक दावा जो कि वस्तुओं या सेवाओं की गारंटी या वारंटी लगती हो;

वस्तुओं या सेवाओं की दक्षता, निष्पादन और जीवन-अवधि पर गारंटी या वारंटी देता है जो कि किसी समुचित या सही परिक्षण पर आधारित नहीं है;

गारंटी या वारंटी का वादा करते हुए भी उससे मुकर जाना।

सामान या सेवा के मूल्य के बारे में गलत मंतव्य देना।

सौदाकृत कीमत का झूठा ऑफर

अखबारों में जहां विज्ञापन प्रकाशित होता है या जहां सामान या सेवाएं सौदाकृत कीमत पर देने का वादा किया जाता है, लेकिन बाद में वैसी कोई सौदाकृत कीमत उपलब्ध नहीं होती, वहां उसे अनुचित कारोबारी व्यवहार कहा जाता है। इस लक्ष्य के लिए सौदाकृत कीमत का अर्थ है-

विज्ञापन में मूल्य का इस तरह से उल्लेख करना जिससे यह प्रतीत हो कि यह सामान्य कीमत से कम है, या

जो भी व्यक्ति विज्ञापन देखे/पढ़े उसे लगे कि जिस कीमत का उल्लेख किया गया है बेची जाने वाली वस्तु की सामान्य कीमत से बेहतर है।

मुफ्त 'उपहार ऑफर' और ईनाम योजना

इस वर्ग में अनुचित कारोबारी व्यवहार इस प्रकार का है-

सामान के साथ उपहार, इनाम और अन्य सामग्री देना, जबकि नीयत कुछ और ही है; या

यह प्रभाव पैदा करना कि सामान के साथ कुछ मुफ्त में दिया जा रहा है, लेकिन असल में जो सामान बेचा गया है, उसके मूल्य के साथ ही मुफ्त में दिए गए सामानों की कीमत भी ली गई है; या

ग्राहकों को कोई प्रतियोगिता, लॉटरी या खेल का आयोजन करके कुछ इनाम देना, जबकि मूल लक्ष्य अपने उत्पादों या कारोबार को बढ़ावा देना है।

निर्धारित मानकों का पालन न करना:

अगर कोई वस्तु या उत्पाद उपभोक्ताओं के इस्तेमाल के उद्देश्य से यह जानते हुए बनाए गए हैं कि ये निर्धारित मानदंड जैसे निष्पादन, मिश्रण, अंत:वस्तु, अभिकल्प, निर्माण, तैयारी पर खरे न उतरते हों तो उसे 'अनुचित कारोबारी व्यवहार' कहा जायेगा।

जमाखोरी, विध्वंस

बाजार में कीमत बढ़ाने के लिए अगर उपयोगी वस्तु को जमा, नष्ट और न बेचने के इरादे से छिपाकर रखते हैं तो वह 'अनुचित कारोबारी व्यवहार' कहा जाता है।

पाठगत प्रश्न 29.1

सही/गलत लिखें-

1. बाजार में कीमत बढ़ाने के लिए अगर उपयोगी वस्तु को जमा, नष्ट और न बेचने के इरादे से छिपाकर रखा जाए तो वह 'अनुचित कारोबार व्यवहार' कहा जाता है। (सही/गलत)
2. सामान के साथ उपहार, इनाम तथा अन्य सामग्री देना जबकि मूल नीयत कुछ और ही है, अनुचित कारोबार नहीं कहा जाता। (सही/गलत)
3. किसी भी प्रकार मौखिक तथा लिखित विवरण तथा अभिवेदन, जो गलत सुझाव देता है कि वस्तुएं निर्दिष्ट मानक, परिमाण, स्तर, सम्मिश्रण और ढंग की है, अनुचित कारोबारी व्यापार कहा जाता है। (सही/गलत)
4. किसी भी पुराने, पुनर्निमित या उपयोग की गई वस्तु को बेचना उपभोक्ता को स्वीकार्य है और यह अनुचित कारोबार व्यवहार नहीं कहा जाता। (सही/गलत)

एकाधिकार और प्रतिस्पर्द्धा

अगर एक ही व्यक्ति या संस्था एक वस्तु विशेष की पूर्ति करता है तो उसे 'एकाधिकार' कहा जाता है। एकाधिकार के कारण आर्थिक प्रतिस्पर्द्धा नहीं रहती, जिस वजह से औद्योगिक उत्पाद और गुणवत्ता में कमियां पाई जाती है। एकाधिकार प्राप्त करना वह प्रक्रिया है जिसमें कोई कंपनी मूल्य में वृद्धि या अपने प्रतियोगी को प्रतिस्प्रर्द्धा से बाहर रखने की क्षमता प्राप्त कर लेती है। अर्थशास्त्र की भाषा में एकाधिकार को एकमात्र विक्रेता कहा जाता है। कानून में एकाधिकार एक व्यापार इकाई है जिसके पास बाजार की महत्वपूर्ण शक्ति है अर्थात् उसके पास उच्च कीमत मांगने/लगाने की शक्ति है। यद्यपि एकाधिकार बड़े व्यापार हो सकते हैं, लेकिन कारोबार का आकार एकाधिकार का लक्षण नहीं है। एक छोटा व्यापार भी कीमतों को बढ़ाने की शक्ति रखता है।

बाजार में एक प्रभावी स्थान रखना या एकाधिकार अपने आप में अवैध नहीं है। हालांकि कुछ वर्गों में जहां प्रतिस्पर्द्धा नहीं है और प्रभावी कारोबार है, वहां यह अवैध होता है और सरकार इसके विरुद्ध ठोस कदम उठाती है। कुछ निर्दिष्ट क्षेत्रों में सरकार एकाधिकार को वैध मानती है, जहां जोखिम कारोबार करने को प्रोत्साहित करता है। जैसे कि कॉपीराइट, पेटेंट, ट्रेडमार्क को सरकारी प्रदत्त एकाधिकार माना जाता है। सरकार खुद इसको अपने कब्जे में भी संचालित कर सकती है।

क्या आप जानते हैं

एकाधिकार अपने आप में अवैध नहीं है।

करिए और जानिए

अपने दादा-दादी से पूछकर ये जानिए कि बचपन में वे कौन-सी ब्रांड का बिस्कुट खाते थे। क्या आपको लगता है कि उनके पास बहुत सारे विकल्प थे?

पाठगत प्रश्न 29.2

1. 'एकाधिकार' क्या है? उदाहरण सहित उल्लेख करें।
2. संजना ने केक बेचने का कारोबार शुरू किया। वरुण ने भी वही कारोबार शुरू किया, लेकिन उसने केक के उत्पाद मूल्य से बहुत कम मूल्य पर केक बेचना शुरू किया। अंत में संजना को अपना कारोबार बंद करना पड़ा और उसके सारे ग्राहक वरुण के पास चले गए। क्या आप इसे वरुण के द्वारा किया गया 'अनुचित कारोबारी व्यावहार' कहेंगे?
3. 'एकाधिकार व्यापार' पर कौन-सा अधिनियम रोक लगाता है?

29.3 अनुचित कारोबारी व्यवहार का निवारण

29.3.1 उपभोक्ता सुरक्षा अधिनियम, 1986

उपभोक्ता सुरक्षा अधिनियम 1986, वह अधिनियम है, जो उपभोक्ताओं के हितों को सुरक्षा प्रदान करता है और इस उद्देश्य के लिए उपभोक्ता परिषद् तथा अन्य कई संस्थाओं का गठन किया है। इन संस्थाओं में उपभोक्ता विवाद तथा उससे संबंधित अन्य कई मामलों का निपटारा होता है।

हालांकि इस अधिनियम के अंतर्गत उपभोक्ताओं को संरक्षण प्रदान किया जाता है, छोटे व्यवसायी आगे उल्लेख किये गये 'प्रतिस्पर्द्धा अधिनियम' के द्वारा संरक्षित होते हैं।

29.3.2 प्रतिस्पर्द्धा अधिनियम, 2002

भारत में प्रतिस्पर्द्धा को बढ़ावा देने के लिए प्रतिस्पर्द्धा अधिनियम 2002 लागू किया गाया है। उपभोक्ताओं के हितों की रक्षा करना प्रतिस्पर्द्धा कानून का परम लक्ष्य है, क्योंकि बाजार में प्रतिस्पर्द्धा से यह सुनिश्चित होता है कि बाजार के प्रतियोगी उत्पादों की श्रेष्ठता को ढूंढते हैं (जिससे सेवाओं में गुणवत्ता और कम कीमत पर सामान उपलब्ध हों)। हालांकि पहले के भारतीय प्रतिस्पर्द्धा कानून से भिन्न, एकाधिकार और प्रतिबंधात्मक व्यापार व्यवहार (जो साधारणत: एमआरटीपी अधिनियम के रूप में जाना जाता है) प्रतिस्पर्धा अधिनियम 2002, हर तरह के अनुचित कारोबारी व्यवहार पर लागू नहीं होता। इसीलिए जबकि ज्यादातर उपभोक्ता विवाद एमआरटीपी अधिनियम (MRTP Act) के अंतर्गत आते, नया प्रतिस्पर्द्धा अधिनियम सारे मामलों में लागू नहीं होता।

प्रतिस्पर्द्धा अधिनियम मूलत: दो कार्य करता है। यह निषेध करता है–

1. **गैर-प्रतिस्पर्द्धा अनुबंध**–गैर प्रतिस्पर्द्धा अनुबंध बाजार में प्रतिस्पर्द्धा को रोकता है या उसे कम करता है। वे अनुबंध जो सामानों का उत्पादन, पूर्ति, वितरण, भंडारण, अर्जन तथा नियंत्रण और सेवाओं की सुविधा तथा भारत में प्रतिस्पर्द्धा पर प्रतिकूल प्रभाव डालते हैं, उन्हें गैर-प्रतिस्पर्द्धा अनुबंध कहा जाता है।

2. **प्रभावी स्थिति का दुरुपयोग**–प्रभावी स्थिति का दुरुपयोग वहां पैदा होता है जहां बाजार का कोई प्रभावी व्यवसाय प्रतिष्ठान ऐसा कार्य या व्यवहार करता है जिससे प्रतिस्पर्द्धा या तो कम हो जाती है या समाप्त हो जाती है तथा नये प्रतिष्ठानों को उस प्रतिस्पर्द्धा में शामिल होने से वंचित कर देता है। जिसका परिणाम यह होता है कि या तो उस क्षेत्र में प्रतिस्पर्द्धा समाप्त हो जाती है या क्षीण हो जाती है।

पाठगत प्रश्न 29.3

1. किन्हीं दो अधिनियमों का उल्लेख करें, जो 'अनुचित व्यापार व्यवहार' के मामलों में निवारण करते है।

2. गैर-प्रतिस्पर्द्धा अनुबंध क्या है?

29.4 भारतीय प्रतिस्पर्द्धा आयोग

भारत का प्रतिस्पर्द्धा आयोग भारत सरकार की वह संस्था (निकाय) है, जो पूरे भारत में प्रतिस्पर्द्धा अधिनियम, 2002 को लागू करती है और ऐसी गतिविधियों पर रोक लगाता है जिनका भारत में प्रतिस्पर्द्धा पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता हो। 14 अक्तूबर, 2003 में इसको गठित किया गया। मई, 2009 में यह पूरी तरह कार्य करने लगा।

भारत का प्रतिस्पर्द्धा आयोग निम्न कार्यों का संपादन करता है–

- उपभोक्ताओं के हितों एवं उनकी भलाई के लिए कार्य करना।
- देश की आर्थिक स्थिति की उन्नति के लिए आर्थिक कार्यकलापों में स्वस्थ और उचित प्रतिस्पर्द्धा सुनिश्चित करना।
- आर्थिक संसाधनों के सबसे कारगर उपयोग के लिए प्रतिस्पर्द्धा नीतियों का कार्यान्वयन करना।
- क्षेत्रीय नियामकों के साथ प्रभावी संबंध विकसित और पोषित करना जिससे क्षेत्रीय विनामक कानूनों का प्रतिस्पर्द्धा कानून के साथ सामंजस्य स्थापित हो सके।
- विभिन्न क्षेत्रों के व्यापार में संपर्क स्थापन करके प्रतिस्पर्द्धा नियम को लागू कराने के साथ-साथ भारत की अर्थनीति में प्रतिस्पर्द्धा परिवेश का निर्माण करना और भारतीय अर्थनीति को बढ़ावा देना।

पाठगत प्रश्न 29.4

1. प्रतिस्पर्द्धा अधिनियम, 2002 लागू करने का दायित्व किसका है?
2. भारत के प्रतिस्पर्द्धा आयोग के दो प्रमुख कार्यों का उल्लेख करें।

क्या आप जानते है

प्रतिस्पर्द्धा अधिनियम 2002 एमआरटीपी अधिनियम (MRTP Act) को निरस्त करता है।

आपने क्या सीखा

- **अनुचित कारोबार व्यवहार** निम्न भागों में विभाजित है–गलत अभिवेदन, सौदाकृत कीमत का झूठा ऑफर, निर्धाति मानक का अपालन, मुफ्त उपहार ऑफर या इनाम योजना, जमाखोरी, विध्वंस आदि।
- **गैर-प्रतिस्पर्द्धा अनुबंध** बाजार में प्रतिस्पर्द्धा का निवारण करता है। यह सामानों का उत्पादन, पूर्ति, वितरण, भंडारण, अर्जन तथा नियंत्रण और सेवाओं की सुविधा तथा भारत में प्रतिस्पर्द्धा पर प्रतिकूल प्रभाव डालता है।
- **प्रभावी स्थिति का दुरुपयोग** वहां होता है, जहां बाजार का कोई प्रभावी व्यवसाय या प्रतिष्ठान ऐसा व्यवहार करता है जिससे प्रतिस्पर्द्धा या तो कम हो जाती है या समाप्त हो जाती है तथा यह नए प्रतिष्ठानों को उस प्रतिस्पर्द्धा में शामिल होने से वंचित कर देता है। जिसका परिणाम यह होता है कि या तो उस क्षेत्र में प्रतिस्पर्द्धा समाप्त हो जाती है या क्षीण हो जाती है।
- **भारत का प्रतिस्पर्द्धा आयोग** भारत सरकार का वह संस्था है, जो पूरे भारत में प्रतिस्पर्द्धा अधिनियम 2002 को लागू करता है और भारत में उन कार्यकलापों को रोकती है, जिनसे प्रतिस्पर्द्धाओं पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। 14 अक्तूबर, 2008 में इसको गठित किया गया। मई, 2009 में यह पूरी तरह कार्य करने लगा।

पाठांत प्रश्न

1. एमआरटीपी अधिनियम (MRTP Act) का पूरा नाम क्या है?
2. क्या यह सही है कि 'भारतीय प्रतिस्पर्द्धा आयोग' सरकार का एक निकाय है?
3. 'अनुचित कारोबार व्यवहार' को परिभाषित करें।
4. 'प्रतिस्पर्द्धा अधिनियम' ने कब से पूरी तरह कार्य करना आरम्भ किया?
5. 'भारतीय प्रतिस्पर्द्धा आयोग' के मुख्य कार्यों का वर्णन करें।

पाठगत प्रश्नों के उत्तर

29.1

1. सही
2. गलत
3. सही
4. गलत

29.2

1. अगर एक निर्दिष्ट व्यक्ति या या कारोबारी संस्था ही एक वस्तु या उत्पादन विशेष की पूर्ति करता/करती है तो उसे 'एकाधिकार' कहा जाता है।
2. हां, यह एक अनुचित कारोबार व्यवहार है।
3. प्रतिस्पर्द्धा अधिनियम, 2002

29.3

1. उपभोक्ता सुरक्षा अधिनियम, 1986 और प्रतिस्पर्द्धा अधिनियम, 2002
2. वे अनुबंध जो सामानों का उत्पादन, पूर्ति, वितरण, भंडारण, अर्जन तथा नियंत्रण और सेवाओं की सुविधा तथा भारत में प्रतिस्पर्द्धा पर प्रतिकूल प्रभाव डालते हैं, वे गैर-प्रतिस्पर्द्धा अनुबंध हैं।

29.4

1. भारतीय प्रतिस्पर्द्धा आयोग
2. भारतीय प्रतिस्पर्द्धा आयोग के दो मुख्य कार्य–

   (क) उपभोक्ताओं के हितों की रक्षा एवं भलाई का कार्य करना।

   (ख) आर्थिक गतिविधयों में उचित एवं स्वस्थ प्रतिस्पर्द्धा सुनिश्चित करना जिससे देश की अर्थव्यवस्था का तीव्र एवं समावेशी विकास हो सके। विकास के लिए देश में उचित तथा लाभकर प्रतियोगिता को सुनिश्चित करना।

कार्यकलाप

बाजार में प्रतिस्पर्द्धा के कारण और उनकी प्रतिक्रिया जानें। कठिनाइयों का सामना करने वाले दुकानदारों से बातचीत करें।

30

उपभोक्ता विवाद निवारण एजेंसियां

जब हमें किसी खरीदी हुई वस्तु या सामान के संबंध में कोई शिकायत होती है तो हम निवारण के लिए उपभोक्ता अदालतों की शरण में जाते हैं। इन अदालतों में हम उन व्यापारियों या कंपनियों के खिलाफ शिकायत दर्ज कराते हैं, जिन्होंने या तो गलत या दोषपूर्ण उत्पाद सप्लाई किया है, जैसे कि मोबाइल फोन या एअर कंडीशनर या फिर जिन्होंने दोषपूर्ण या अपर्याप्त सेवा दी है, जैसे कि कुरियर या उत्पाद को सही या निर्धारित समय पर उपलब्ध नहीं कराना।

1986 में संसद द्वारा अधिनियमित, **'उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम'** भारत में उपभोक्ताओं के हितों का संरक्षण करता है। यह अधिनियम उपभोक्ताओं के विवादों और उनसे जुड़े हुए मामलों से संबंधित उपभोक्ता परिषदों एवं अन्य **संस्थाओं**/ प्राधिकारों की स्थापना का प्रावधान करता है।

उपभोक्ता विवाद निवारण संस्थाएं तीन स्तरों पर स्थापित की गई हैं। जिला स्तर पर, 'जिला उपभोक्ता विवाद निवारण न्यायाधिकरण (फोरम) (DCDRF)', जो कि 'जिला न्यायाधिकरण' के नाम से भी जाना जाता है।

राज्य स्तर पर 'राज्य उपभोक्ता विवाद निवारण आयोग (SCDRC)' है, जो कि 'राज्य आयोग' के नाम से भी जाना जाता है।

राष्ट्रीय स्तर पर, 'राष्ट्रीय उपभोक्ता विवाद निवारण आयोग (NCDRC)' केंद्र सरकार द्वारा स्थापित किया गया है। इसे 'राष्ट्रीय आयोग' के नाम से भी जाना जाता है। यह एक राष्ट्रीय स्तर का न्यायालय है, जो कि सारे देश के लिए है और उन मामलों/ शिकायतें की सुनवाई करता है, जिनमें वस्तुओं या सेवाओं का मूल्य और उनका मुआवजा, यदि कोई है, जिसका दावा किया गया हो, एक करोड़ से ज्यादा हो। यह राज्य आयोगों के फैसलों या मुआवजों के खिलाफ अपीलों की सुनवाई करता है और उन पर फैसले देता है।

उद्देश्य

इस पाठ के अध्ययन के बाद आप :

- 'निवारण' शब्द का अर्थ समझ पाएंगे;

- 'उपभोक्ता अदालतों' को परिभाषित कर पाएंगे;
- विभिन्न उपभोक्ता विवाद निवारण संस्थाओं के प्रकारों को जान पाएंगे;
- 'जिला फोरम', 'राज्य आयोग' एवं 'राष्ट्रीय आयोग' के क्षेत्राधिकार की व्याख्या कर पाएंगे; तथा
- उपभोक्ता विवाद निवारण के क्षेत्र में नए घटनाक्रमों की चर्चा कर पाएंगे।

30.1 उपभोक्ता निवारण क्या है?

'निवारण' का अर्थ है किसी उपभोक्ता को हुई नुकसान की भरपाई (क्षतिपूर्ति)।

'निवारण' शब्द का अर्थ है 'क्षतिपूर्ति'। ये फोरम (कोर्ट) उपभोक्ता को मुआवजा (हर्जाना) दिलाते हैं, यदि किसी उत्पादक, विक्रेता या सेवा प्रदाता द्वारा उपभोक्ता को उचित उत्पाद या सेवा प्रदान नहीं की जाती है। इसलिए कोई भी, जिसे नुकसान हुआ है, हर्जाने (क्षतिपूर्ति) का दावा कर सकता है, जो कि उपभोक्ता द्वारा, सहे गए नुकसान के अनुसार, आर्थिक रूप में की जा सकती है।

उदाहरण के लिए, यदि कोई उत्पादक नया मोबाइल (हैंडसेट) नहीं उपलब्ध कराता है, तब उत्पादक इस बात के लिए बाध्य किया जा सकता है कि वह पैसा वापस लौटाए और कुछ मामलों में उसे इस बात के लिए भी बाध्य किया जा सकता है कि वह उपभोक्ता को हुई असुविधा के लिए हर्जाने के रूप में कुछ विशेष राशि अदा करे।

'उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम, 1986' में इन निवारण एजेंसियों या न्यायालयों की स्थापना का प्रावधान है। किसी जिले में एक से ज्यादा जिला फोरम (न्यायाधिकरण) हो सकते हैं, यदि राज्य सरकार इसकी अधिसूचना जारी करे।

इन न्यायालयों की अध्यक्षता एक न्यायाधीश (जज) करता है तथा दो अन्य सदस्य होते हैं। सदस्यों की संख्या एवं जजों की अध्यक्ष के रूप में नियुक्ति जिला, राज्य एवं राष्ट्रीय न्यायाधि करणों के लिए आंशिक रूप से भिन्न होती है।

इन अदालतों के संबंध में एक और रोचक (दिलचस्प) बात यह है कि ये उत्पाद के मूल्य के अनुसार स्वयं ही एक शिकायत दर्ज कर सकते हैं और कानूनी भाषा में इसे सामान्यत: 'आर्थिक मूल्य' (Pecuniary Value) कहा जाता है।

पाठगत प्रश्न 30.1

1. 'उपभोक्ता निवारण' शब्द को परिभाषित करें।
2. 'निवारण' को एक दूसरे शब्द में बताएं?
3. 'उपभोक्ता निवारण' के लिए कौन-सा अधिनियम है?
4. क्या किसी जिले में एक से ज्यादा जिला फोरम हो सकते हैं?
5. जिला उपभोक्ता फोरम (न्यायाधिकरण) की अध्यक्षता कौन करता है?

30.2 उपभोक्ता अदालतों से क्या तात्पर्य है?

क्या आप जानते हैं उपभोक्ता अदालतें क्या हैं? ये वे अदालतें हैं, जिनमें उन व्यापारियों एवं कंपनियों के खिलाफ शिकायत दर्ज कराया जा सकती है, जिन्होंने या तो दोषपूर्ण उत्पाद सप्लाई किया है, जैसे कि मोबाइल फोन, या सही सेवा प्रदान नहीं की है, जैसे कि कूरियर देर से पहुंचाना।

उपभोक्ता अदालतों के तीन प्रकार/स्तर

ये अदालतें (उपभोक्ता विवाद निवारण एजेंसियां) तीन प्रकार की हैं :

- 'राष्ट्रीय उपभोक्ता विवाद निवारण आयोग (NCDRC)' : एक राष्ट्रीय स्तर की अदालत
- 'राज्य उपभोक्ता विवाद निवारण आयोग (SCDRC)' : एक राज्य स्तरीय अदालत
- 'जिला उपभोक्ता विवाद निवारण न्यायाधिकरण (DCDRF)' : एक जिला स्तरीय अदालत।

आगे हम इन्हें संक्षेप में 'राष्ट्रीय आयोग', 'राज्य आयोग' एवं 'जिला फोरम' के नाम से लिखेंगे।

एक व्यक्ति जब किसी भी दुकान या मॉल से कोई उत्पाद खरीदता है, ये विशेष प्रकार की अदालतें उस उत्पाद या सेवा में किसी भी प्रकार की खराबी/त्रुटि की अवस्था में उस व्यक्ति को संरक्षण उपलब्ध कराती हैं।

इन उपभोक्ता अदालतों में शिकायत दर्ज कराने की प्रक्रिया बहुत ही सरल एवं अत्यंत सस्ती है, यहां तक कि हम जैसे सामान्य नागरिक भी इसको बिना किसी वकील की सहायता के या बिना किसी अधिक फीस अदा किए, कर सकते हैं।

पाठगत प्रश्न 30.2

1. 'उपभोक्ता अदालत' (न्यायालय) को परिभाषित करें।
2. जिला स्तर पर उपभोक्ता अदालत का नाम बताएं?
3. राष्ट्रीय स्तर पर उपभोक्ता अदालत का नाम बताएं?

क्या आप जानते हैं

ये फोरम (न्यायाधिकरण) अदालतें ही हैं, जिनमें उपभोक्ताओं के विवादों के निपटारे के लिए न्यायाधीश (जज) होते हैं।

जिला, राज्य एवं राष्ट्र स्तरीय एजेंसिया

जिला उपभोक्ता विवाद निवारण न्यायाधिकरण (DCDRF) : जिला उपभोक्ता विवाद निवारण न्यायाधिकरण 'जिला न्यायाधिकरण' के नाम से भी जानी जाती है और ये संबंधित राज्य सरकारों के द्वारा प्रत्येक जिले में स्थापित की जाती हैं। राज्य सरकार किसी जिले में एक से अधिक जिला न्यायाधिकरणों की स्थापना कर सकती है। यह एक जिला स्तरीय न्यायालय (अदालत) होती है, जो कि 20 लाख रुपये के मूल्य तक के मामलों की सुनवाई करती है।

राज्य उपभोक्ता विवाद निवारण आयोग (SCDRC) : इसे 'राज्य आयोग' के नाम से भी जाना जाता है और इसकी स्थापना संबंधित राज्य सरकार के द्वारा की जाती है। यह एक राज्य स्तरीय अदालत है, जो कि उपभोक्ता के विवादों का निपटारा (निवारण) करती है। यह उन मामलों की सुनवाई करती है, जहां कि संबंधित राशि/ हर्जाना 20 लाख से एक करोड़ के बीच हो।

राष्ट्रीय उपभोक्ता विवाद निवारण आयोग (NCDRC) : इसे 'राष्ट्रीय आयोग' के नाम से भी जाना जाता है एवं इसकी स्थापना केंद्र सरकार के द्वारा की जाती है। यह आयोग उन मामलों/ विवादों की सुनवाई करता है, जहां संबंधित राशि एक करोड़ से अधिक हो।

उपभोक्ता विवाद निवारण एजेंसियां

आप जानते हैं कि हमारा देश भौगोलिक स्थितियों के आधार पर क्षेत्रों में बांटा गया है। उसी प्रकार हमारे देश में उपभोक्ता अदालतों के भी तीन प्रकार या स्तर हैं। ये हैं–

जिला उपभोक्ता विवाद निवारण न्यायाधिकरण (फोरम) (DCDRF),

राज्य उपभोक्ता विवाद निवारण आयोग (SCDRC) एवं

राष्ट्रीय उपभोक्त विवाद निवारण आयोग (NCDRC)

प्रत्येक अदालत एक निश्चित राशि के मामलों/ शिकायतों की ही सुनवाई कर सकती है।

उदाहरण के लिए, जिला न्यायाधिकरण सिर्फ 20 लाख रुपये तक की शिकायतों की सुनवाई कर सकती है। इसका अर्थ यह है कि जिला फोरम (न्यायाधिकरण) का आर्थिक अधिकार क्षेत्र (न्याय-सीमा) 20 लाख रुपये तक है।

दूसरा स्तर (राज्य आयोग) अधिक मूल्य तक के मामलों की सुनवाई करता है तथा उसके बाद का स्तर (राष्ट्रीय आयोग) उससे भी अधिक असीमित मूल्य के मामलों की सुनवाई करता है।

यहां यह उल्लेख करना आवश्यक है कि ऊपर उल्लिखित न्यायाधिकरण (फोरम) एवं आयोग और कुछ नहीं, बल्कि उपभोक्ता शिकायतों के लिए अदालतें हैं, जो इस तरह हैं–

जिला स्तर (फोरम)
↓
राज्य स्तर (आयोग)
↓
राष्ट्रीय स्तर (आयोग)

इस प्रकार स्थान एवं आर्थिक मूल्य के आधार पर उचित फोरम में शिकायत दर्ज कराई जा सकती है। इसके अलावा, अगला उच्च स्तर का आयोग (न्यायाधिकरण) निचली अदालत (न्यायाधिकरण) से शिकायतें ले सकता है।

पाठगत प्रश्न 30.3

1. जिला न्यायाधिकरण का आर्थिक अधिकार-क्षेत्र क्या है?
2. किसी मोबाइल कंपनी के खिलाफ शिकायत दर्ज कराने के लिए आप निम्नलिखित में से किसके पाए जाएंगे :
   (क) जिला न्यायाधिकरण
   (ख) राज्य आयोग
   (ग) राष्ट्रीय आयोग
3. उन तीन स्तरों का उल्लेख करें, जिनमें ये उपभोक्ता आयोग/ न्यायाधिकरण काम करते हैं।
4. राज्य आयोग से अपील किसके पास जाती है?
5. जिला न्यायाधिकरण से अपील किसके पास जाती है?

30.4 इस क्षेत्र में नए घटनाक्रम

'मर्सिडीज बेंज' पर जुर्माना

दुनिया की सबसे पुरानी एवं प्रमुख विलासिता (लक्जरी) कार बनाने वाली कंपनियों में से एक, 'मर्सिडीज बेंज' पर एक उपयोग की गई डेमो (प्रदर्शन) कार को नया कहकर चेन्नई में एक ग्राहक को बेचने के लिए 2 लाख रुपये का जुर्माना लगाया गया।

'राष्ट्रीय उपभोक्ता विवाद निवारण आयोग' के अनुसार, उपयोग की गई डेमो कार को ग्राहक की जानकारी के बिना उसे बेचना- उपभोक्ता संरक्षण (CP) अधिनियम के अंतर्गत 'अनुचित व्यापार व्यवहार' है।

'NCDRC' न्यायालय के न्यायाधीश आर.के. बत्रा ने कहा :

''किसी भी तरह की फिर से बनाई गई, पुरानी, पुनर्निर्मित या मरम्मत की हुई वस्तु को उसकी बिक्री के लिए नई की तरह पेश करना/ दिखाना अनुचित व्यापार व्यवहार है और इसका शिकार व्यक्ति मुआवजा पाने का अधिकार रखता है।''

31.4.1 'एअरटेल' पर जुर्माना

'एअरटेल' को अपने एक ग्राहक को दोषपूर्ण इंटरनेट कनेक्शन प्रदान करने के कारण ग्राहक को 10,000 रुपये मुआवजा देने का निर्देश दिया गया।

पूर्वी जिला उपभोक्ता विवाद निवारण फोरम ने कहा कि टेलीकॉम कंपनी ने अपने दिल्ली निवासी वकील को दोषयुक्त सेवा प्रदान की।

31.4.2 'कैडबरी' को एक व्यक्ति को 30,000 रुपये अदा करने का आदेश दिया गया, जिसे चॉकलेट में पिन मिला।

त्रिपुरा की एक उपभोक्ता अदालत ने 'कैडबरी इंडिया लिमिटेड' को यह आदेश दिया कि कंपनी एक शिकायतकर्ता को हर्जाने के रूप में 30,000 रुपये अदा करे। इस व्यक्ति को कंपनी द्वारा बनाई गई एक चॉकलेट बार के अंदर लोहे का पिन मिला था।

खाद्य-विभाग के एक कर्मचारी ने रिपोर्टरों को बताया कि एक व्यक्ति ने अपनी तीन साल की बेटी के लिए 16 दिसंबर, 2011 को एक कैडबरी चॉकलेट खरीदा। लड़की ने जब बार को खाना चाहा तो पाया कि उसके अंदर लोहे का एक पिन है। इसके बाद उस व्यक्ति ने एक उपभोक्ता अदालत में शिकायत दर्ज कराई।

मुकदमें की सुनवाई के बाद, पश्चिमी त्रिपुरा जिला उपभोक्ता विवाद निवारण फोरम ने पिछले सप्ताह 'कैडबरी इंडिया' को यह आदेश दिया कि कंपनी शिकायतकर्ता को एक महीने के अंदर हर्जाने के रूप में 30,000 रुपये अदा करे।

फोरम ने अपने फैसले में कहा कि चॉकलेट हानिकारक था। फोरम ने कंपनी को यह भी आदेश दिया कि वह शिकायतकर्ता को मुकदमें के खर्च के रूप में 1000 रुपये अदा करे।

पाठगत प्रश्न 30.4

1. क्या आप किसी ऐसी वस्तु के बारे में सोच सकते हैं, जिसे आपने पिछले कुछ महीनों के अंदर खरीदा है और जिसमें कुछ खराबी थी? यदि हां, तो उसका नाम बताएं।
2. ऐसी दो घटनाओं/ मामलों का उल्लेख करें, जिनमें उपभोक्ता अदालतों ने दोषपूर्ण उत्पाद या वस्तुएं सप्लाई करने के कारण हर्जाना अदा करने का आदेश दिया हो।

आपने क्या सीखा

- 'निवारण' शब्द का अर्थ है उपभोक्ता को हुए नुकसान की भरपाई (क्षतिपूर्ति)।
- उपभोक्ता विवाद निवारण एजेंसियां जिला, राज्य एवं राष्ट्रीय स्तर पर स्थापित हैं। ये क्रमश: जिला उपभोक्ता विवाद निवारण फोरम (DCDRF), राज्य उपभोक्ता विवाद निवारण आयोग (SCDRC) एवं राष्ट्रीय उपभोक्ता विवाद निवारण आयोग (NCDRC) के नाम से जानी जाती हैं।

- **जिला उपभोक्ता विवाद निवारण फोरम (DCDRF)**, जो सामान्यत: 'जिला फोरम' के नाम से भी जाना जाता है, का क्षेत्राधिकार उन उपभोक्ताओं की शिकायतों की सुनवाई करना है, जिनमें वस्तुओं या सेवाओं का आर्थिक मूल्य एवं उनका मुआवजा, यदि मांगा गया हो, एक लाख रुपये से ज्यादा न हो।
- **राज्य उपभोक्ता विवाद निवारण आयोग (SCDRC)**, जिसे **'राज्य आयोग'** के नाम से भी जाना जाता है, का क्षेत्राधिकार (अधिकार क्षेत्र) उन उपभोक्ताओं की शिकायतों की सुनवाई करना है, जिनमें वस्तुओं या सेवाओं का आर्थिक मूल्य एवं उनका मुआवजा, यदि मांगा गया हो, एक करोड़ से ज्यादा न हो। 'राज्य आयोग' जिला फोरम के द्वारा जिले के अंदर दिए गए फैसलों के खिलाफ सुनवाई कर सकता है और फैसला सुना सकता है।
- **राष्ट्रीय उपभोक्ता विवाद निवारण आयोग (NCDRC)**, जिसे **'राष्ट्रीय आयोग'** के नाम से भी जाना जाता है, का अधिकार-क्षेत्र उन शिकायतों की सुनवाई करना है, जिनमें वस्तुओं या सेवाओं एवं मांगे गए मुआवजे की राशि एक करोड़ से ज्यादा हो।

  'राष्ट्रीय आयोग' को 'राज्य आयोग' द्वारा दिए गए फैसलों के खिलाफ सुनवाई और फैसले करने का अधिकार है।
- इस क्षेत्र में कुछ नए घटनाक्रम हैं। दुनिया की सबसे पुरानी एवं प्रमुख लक्जरी कार निर्माता कंपनियों में से एक 'मर्सिडीज बेंज' पर एक उपयोग की गई डेमों (प्रदर्शन) कार को नया कहकर चेन्नई में एक ग्राहक को बेचने के लिए 2 लाख रुपये का जुर्माना लगाया गया है। 'राष्ट्रीय आयोग' ने पाया कि यह एक 'अनुचित व्यापार व्यवहार' था और शिकार व्यक्ति मुआवजा पाने का अधिकार रखता था।

पाठांत प्रश्न

1. 'उपभोक्ता निवारण' को परिभाषित करें।
2. किसी दोषपूर्ण उत्पाद के लिए, जो कि बदला ना गया हो, क्या 'क्षतिपूर्ति' है?
3. उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम, 1986 में उपभोक्ता निवारण एजेंसियों के कौन-से तीन स्तर हैं?
4. उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम, 1986 के प्रमुख प्रावधानों की चर्चा करें?
5. उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम, 1986 में दी गई विभिन्न निवारण एजेंसियों का संक्षेप में वर्णन करें।
6. किन्हीं दो ऐसे मामलों/ मुकदमों की चर्चा करें, जिनका फैसला उपभोक्ताओं के हित में हुआ हो।

पाठगत प्रश्नों के उत्तर

30.1

1. 'निवारण' का अर्थ है 'क्षतिपूर्ति', हमारे जैसे उपभोक्ताओं को हुए नुकसान की 'भरपाई' (क्षतिपूर्ति)। और यह उपभोक्ता फोरमों/ आयोगों द्वारा दिलाई जाती है।
2. 'क्षतिपूर्ति'।
3. उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम, 1986
4. हां।
5. जज (न्यायाधीश)।

30.2

1. ये वह अदालतें हैं, जिनमें उन व्यापारियों एवं कंपनियों के खिलाफ शिकायत दर्ज कराई जा सकती है, जिन्होंने या तो दोषपूर्ण उत्पाद सप्लाई किया है, जैसे कि मोबाइल फोन या सही सेवा प्रदान नहीं की है, जैसे कि कूरियर को सही समय पर नहीं पहुंचाना।
2. जिला उपभोक्ता विवाद निवारण फोरम (DCDRF)
3. राष्ट्रीय उपभोक्ता विवाद निवारण आयोग (NCDRC)

30.3

1. 20 लाख रुपये तक
2. जिला फोरम
3. (क) जिला फोरम, (ख) राज्य आयोग, (ग) राष्ट्रीय आयोग
4. राष्ट्रीय उपभोक्ता विवाद निवारण आयोग (NCDRC)
5. राज्य उपभोक्ता विवाद निवारण आयोग (SCDRC)

30.4

1. एयर कंडीशनर 1.5 टन क्षमता
2. (क) दुनिया की सबसे पुरानी एवं प्रमुख लक्जरी कार निर्माता कंपनियों में से एक **'मर्सिडीज बेंज'** पर एक डेमो कार बेचने के कारण 2 लाख रुपये जुर्माना किया गया है।

   (ख) **'एअरटेल'** को एक ग्राहक को दोषपूर्ण इंटरनेट कनेक्शन सेवा देने के कारण मुआवजे के रूप में 10,000 रुपये देने का निर्देश दिया गया।

31

उपभोक्ता सक्रियता

राष्ट्रीय, राज्य एवं जिला स्तर पर हमने अभी तक सीखा कि तीन प्रकार के फोरम हैं, जो शिकायत के क्षेत्र और आर्थिक मूल्य के आधार पर वर्गीकृत हैं।

आलिया पूर्वी दिल्ली में रहती है, इसलिए वह पूर्वी दिल्ली में स्थित उपभोक्ता अदालत में शिकायत दर्ज करा सकती है। यदि वह फैसले से संतुष्ट नहीं होती है, तो वह अगले उच्च स्तर, जो कि दिल्ली में स्थित 'राज्य आयोग' है, तक जा सकती है।

उसके बाद भी अगली अपील राष्ट्रीय फोरम (आयोग) में की जा सकती है। अधिकतर छोटे मामले (मुकदमें) जिला स्तर पर ही निपटा दिए जाते हैं। इसलिए ज्यादातर मामलों में अपील की जरूरत नहीं समझी जाती। उपभोक्ता वस्तुओं एवं सेवाओं के बारे में इस सारी जागरूकता से बेईमान/ अनैतिक व्यापारियों और उन दोषपूर्ण उत्पादों पर नियंत्रण रहता है, जिन्हें हम नहीं चाहते और जिन्हें हमने कभी खरीदा नहीं।

उद्देश्य

इस पाठ का अध्ययन करने के बाद, आप :

- 'उपभोक्ता सक्रियता' शब्द का अर्थ समझ पाएंगे;
- भारत में उपभोक्ता आंदोलन का महत्व समझने में सक्षम होंगे;
- भारत में उपभोक्ता आंदोलन के उद्देश्य, लक्ष्य एवं युक्तियों को परिभाषित कर पाएंगे;
- दोषपूर्ण उत्पादों/ वस्तुओं के संदर्भ में शिकायत कैसे दर्ज कराते हैं, सीख पाएंगे; एवं
- दोषयुक्त या अपूर्ण सेवाओं के संदर्भ में शिकायत कैसे दर्ज कराते हैं, जान पाएंगे।

31.1 'उपभोक्ता सक्रियता' क्या है?

भारत में 'उपभोक्ता आंदोलन' की उत्पत्ति इस आवश्यकता के साथ हुई कि अनैतिक एवं अनुचित व्यापार व्यवहार से उपभोक्ताओं का संरक्षण कैसे किया जाए एवं उनके हितों को कैसे

बढ़ावा मिले। बड़े पैमाने पर खाद्य भंडारण एवं जमाखोरी जैसी घटनाओं ने एक संगठित रूप में वर्ष 1960 में 'उपभोक्ता आंदोलन' को जन्म दिया।

इस आंदोलन ने सरकार पर दबाव बनाने में सफलता प्राप्त की। इस दिशा में एक बड़ा कदम वर्ष 1986 में लिया गया, जब 'उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम, 1986' को पारित किया गया।

'उपभोक्ता सक्रियता', उपभोक्ता अधिकारों पर जोर देने के लिए, उपभोक्ताओं की तरफ से दिखाई गई सक्रियता है।

पाठगत प्रश्न 31.1

1. 'उपभोक्ता सक्रियता' को परिभाषित करें।
2. उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम किस वर्ष में अधिनियमित किया गया?
3. 'उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम, 1986' किसका संरक्षण करता है?

31.2 भारत में उपभोक्ता आंदोलन

उपभोक्ता आंदोलन की विचारधारा के लिए तीन (मूल) तत्व आवश्यक हैं- पहचान, प्रतिरोध एवं संपूर्णता।

पहचान का अर्थ है, उपभोक्ता आंदोलन के सदस्यों की खुद की एवं सामूहिक पहचान। प्रतिरोध का अर्थ है, विरोधी (विपक्षी) की पहचान (समझ) और विवरण। संपूर्णता, इस बात का संकेत है कि लक्ष्यों की प्राप्ति संघर्ष से होगी। उपभोक्ता कार्यकर्ता (सक्रियतावादी) वे होते हैं, जो उत्पादकों एवं विक्रेता एंजेसियों से उपभोक्ताओं के संघर्ष में उपभोक्ताओं का नेतृत्व करते हैं।

उपभोक्ता सक्रियतावादी न केवल उत्पादकों एवं विक्रेता एजेंसियों को लक्ष्य करते हैं, बल्कि उपभोक्ता संस्कृति को बदलने के उद्देश्य से उपभोक्ताओं के बीच सामूहिक जागरूकता को बढ़ाना चाहते हैं।

एक सामाजिक शक्ति के रूप में 'उपभोक्ता आंदोलन' की भारत में उत्पत्ति (जन्म) इस आवश्यकता के साथ हुई कि अनैतिक एवं अनुचित व्यापार पद्धतियों से उपभोक्ताओं का संरक्षण कैसे किया जाए एवं उनके हितों को किस प्रकार बढ़ावा मिले।

बड़े पैमाने पर खाद्य-भंडारण एवं जमाखोरी जैसी घटनाओं ने एक संगठित रूप में वर्ष 1960 में उपभोक्ता आंदोलन को जन्म दिया। इस आंदोलन ने सरकार पर दबाव बनाने में सफलता प्राप्त की और इस दिशा में एक बड़ा कदम वर्ष 1986 में उठाया गया।

उपभोक्ताओं के हितों के संरक्षण के उद्देश्य से भारत की संसद ने 'उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम' (CPA) 1986 पारित किया।

यह अधिनियम उपभोक्ता विवादों एवं उनसे जुड़े हुए मामलों के निपटारे के लिए उपभोक्ता परिषदों (समितियों) एवं अन्य प्राधिकारों (अथॉरटीज) की स्थापना का प्रावधान करता है।

उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम, 1986 के तहत राष्ट्रीय, राज्य एवं जिला स्तरों पर उपभोक्ताओं को जागरूक करने के लिए उपभोक्ता संरक्षण परिषदों (समितियों) की स्थापना की गई है।

उपभोक्ता विवाद निवारण एजेंसियों, जैसे कि

जिला उपभोक्ता विवाद निवारण फोरम (DCDRF),

राज्य उपभोक्ता विवाद निवारण आयोग (SCDRC), जो कि 'राज्य आयोग' के नाम से भी जानी जाती है, एवं

राष्ट्रीय उपभोक्ता विवाद निवारण आयोग (NCDRC) की स्थापना उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम (CPA) 1986 के तहत उपभोक्ताओं के विवादों/ शिकायतों एवं संबंधित मामलों के निपटारे के लिए, की गई है।

पाठगत प्रश्न 31.2

1. भारत में उपभोक्ता आंदोलन की उत्पत्ति के मुख्य कारणों का उल्लेख करें।

31.3 उपभोक्ता सक्रियता : उद्देश्य, लक्ष्य एवं युक्तियां

'उपभोक्ता सक्रियता' का मुख्य उद्देश्य यह है कि राज्य (शासन) अनैतिक एवं अनुचित व्यापार व्यवहार के खिलाफ उपभोक्ताओं के हितों की रक्षा करे।

इसका लक्ष्य है उपभोक्ताओं को उत्कृष्ट वस्तुएं एवं सेवाएं उपलब्ध कराना।

आदर्श लक्ष्य है उपभोक्ताओं के उस अधिकार का संरक्षण करना, जिसके अन्तर्गत एक उपभोक्ता किसी भी क्रय की गई (खरीदी गई) वस्तु की गुणवत्ता एवं मानक (प्रामाणिकता) पर सवाल खड़े कर सकता है।

उपभोक्ता सक्रियतावादी निम्नलिखित युक्तियां अपनाते हैं- बहिष्कार, वस्तुओं के उत्पादक एवं विक्रेता के खिलाफ याचिका दायर करना, सरकार को याचिका, मीडिया सक्रियता एवं रुचि समूहों का आयोजन।

पाठगत प्रश्न 31.3

1. भारत में उपभोक्ता आंदोलन के लक्ष्य, उद्देश्य एवं युक्तियों की व्याख्या करें।

31.4 शिकायत/याचिकाएं

एक उपभोक्ता किसी दोषपूर्ण वस्तु या अपूर्ण सेवा के खिलाफ अपनी शिकायतों का निवारण उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम, 1986 के अंतर्गत बनाई गई (स्थापित) उपभोक्ता अदालतों (अर्द्धन्यायिक उपभोक्ता विवाद निवारण समितियां/ संस्थाएं) में कर सकता है। इन दोनों तरह के मामलों में याचिकाओं के उदाहरण यहां दिए गए हैं। ये सिर्फ संदर्भ के लिए हैं। याचिका की मूल विषय-वस्तु मामले के तथ्यों पर निर्भर करेगी।

यह मानते हुए कि आर्थिक हानि 20 लाख रुपये से कम है, इन याचिकाओं को जिला फोरम के उपयुक्त बनाया गया है। यदि हानि का मूल्य (राशि) अधिक है, तो याचिका में उसी के अनुसार बदलाव किए गए हैं, जिससे कि वह राज्य उपभोक्ता विवाद निवारण आयोग या राष्ट्रीय उपभोक्ता विवाद निवारण आयोग के उपयुक्त बन सके।

31.4.1 दोषपूर्ण वस्तुओं के खिलाफ शिकायत याचिका का उदाहरण (नमूना)

मुकदमे का उदाहरण : श्रीमान् 'X' ने दिसंबर 2012 में 'मेसर्स Y एंड कंपनी' से, जो उसी शहर में व्यापार करती थी, एक 'मिक्सर ग्राइंडर' खरीदा। एक वर्ष की वारंटी अवधि के भीतर ही ग्राइंडर ने काम करना बंद कर दिया। 'मेसर्स Y एंड कंपनी' ग्राइंडर में आई खराबी को ठीक नहीं करा सकी। निर्माता कंपनी 'मेसर्स Z लिमिटेड' भी मिक्सर ग्राइंडर को ठीक कराने में असफल रही। निराश होकर श्रीमान् 'X' ने अंतत: जिला फोरम का दरवाजा खटखटाया।

31.4.2 दोषपूर्ण वस्तुओं के खिलाफ शिकायत याचिका का उदाहरण :

शिकायत याचिका का प्रारूप

जिला उपभोक्ता विवाद निवारण फोरम के सम्मुख/ समक्ष,

जिले का नाम

उपभोक्ता विवाद मुकदमा सं. ..../ 200 याचिका दायर करने का वर्ष

उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम, 1986 की धारा-11 के अंतर्गत

एवं

.... के संबंध में/ मामले में

श्रीमान 'X'

(श्रीमान् 'X' का पता) .... शिकायतकर्ता

बनाम

1. स्वामी

'मेसर्स Y एंड कंपनी'

('Y' एंड कंपनी का पता)

2. प्रबंध निदेशक,

मेसर्स 'Z' लिमिटेड

(Z लिमिटेड का पता) .... विपक्षी दल (O.P.)

सेवा में,

माननीय अध्यक्ष एवं

जिला फोरम के सदस्य

(जिले का नाम)

यह शिकायत याचिका, श्रीमान् 'X', ('X' का पता) की तरफ से दायर की जाती है, जो यहां शिकायतकर्ता हैं, और यह इस प्रकार है –

1.1 कि यह शिकायत याचिका उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम, 1986 की धारा 2(1)(इ)(प) के तहत दायर की जाती है।

2.1 कि विपक्षी पार्टी संख्या–1, अपनी दूसरी गतिविधियों के अतिरिक्त, लोगों को उपभोक्ता वस्तुएं, जैसे– रेफ्रिजेरटर, टी.वी., मिक्सर ग्राइंडर इत्यादि बेचने में संलग्न है। (विपक्षी पार्टी का विवरण)

2.2 कि विपक्षी पार्टी संख्या–2, मिक्सर ग्राइंडर ब्रांड 'A' की एवं अन्य घरेलू विद्युत उपकरणों की निर्माता है, तथा विपक्षी पार्टी संख्या–1 के मिक्सर ग्राइंडर फुटकर में विपक्षी पार्टी संख्या–1 के द्वारा बेचे जाते हैं। (विपक्षी पार्टी का विवरण)

(घटना का विवरण)

3.1 कि 26 दिसंबर, 2012 (क्रय की तिथि) को, शिकायतकर्ता ने 'A' ब्रांड का मिक्सर ग्राइंडर, क्रमांक संख्या .... (खरीदे गए उपकरण का विवरण), जो कि विपक्षी पार्टी संख्या–2 के द्वारा निर्मित है, नकद पर्ची संख्या .... (नकद पर्ची/ नकद रसीद संख्या) द्वारा विपक्षी पार्टी संख्या–1 के शो–रूम से खरीदा, उक्त उल्लिखित दस्तावेज की एक छायाप्रति संलग्नक–1 में प्रस्तुत है।

3.2 कि मिक्सर ग्राइंडन ने 8 जनवरी, 2013 (कब) को अचानक ही काम करना बंद कर दिया (समस्या का प्रकार) और इस बाबत विपक्षी पार्टी संख्या–1 को उसी समय सूचित किया गया। उनके सलाह के अनुसार मिक्सर ग्राइंडर को उनके सेवा केंद्र को 9 जनवरी, 2013 को सौंप दिया गया। सेवा–केंद्र की प्राप्ति रसीद ....–2 में प्रस्तुत है।

3.3 कि मिक्सर ग्राइंडर मरम्मत के बाद 24 जनवरी, 2013 को वापस लौटाया गया।

3.4 कि मिक्सर ग्राइंडर का 25 जनवरी, 2013 को उपयोग किया गया। लगभग 5 मिनट तक काम करने के बाद मिक्सर ग्राइंडर ने पुन: पूर्ण रूप से काम करना बंद कर दिया।

3.5 कि शिकायतकर्ता ने इस बात की सूचना विपक्षी पार्टी संख्या-1 को तत्काल दी तथा विपक्षी पार्टी संख्या-2 से इसकी शिकायत की। पत्र की एक प्रति संलग्नक-3 में प्रस्तुत है (महत्वपूर्ण प्रासंगिक दस्तावेज लगाएं)

3.6 कि विपक्षी पार्टी संख्या-1 के परामर्श के अनुसार खराब मिक्सर ग्राइंडर को एक बार फिर 30 जनवरी, 2013 को उनके सर्विस सेंटर (सेवा केंद्र) को सौंपा गया। विपक्षी पार्टी संख्या-1 के द्वारा खराबी को ठीक करने में अत्यधिक देरी की गई। अप्रैल, 2013 में विपक्षी पार्टी संख्या-2 ने विपक्षी पार्टी संख्या-1 को मिक्सर ग्राइंडर को बदलकर दूसरा देने की सलाह दी। उस पत्र की एक प्रति संलग्नक-4 में प्रस्तुत है।

3.7 कि विपक्षी पार्टी संख्या-1 ने विपक्षी पार्टी संख्या-2 के निर्देश-पत्र की परवाह न की और शिकायतकर्ता आज की तिथि तक मिक्सर-ग्राइंडर की कमी के कारण परेशान हो रहे हैं।

4.0 कि विपक्षी पार्टियों ने दोषपूर्ण वस्तु की पूर्ति की (सप्लाई की) और उन्हें शिकायतकर्ता को हुई क्षति की भरपाई करनी चाहिए।

प्रार्थना

पीछे के अनुच्छेदों में निहित आत्मनिवेदन के आलोक में, शिकायतकर्ता अत्यधिक आदर के साथ माननीय फोरम से यह निवेदन करता है कि माननीय फोरम विपक्षी पार्टियों को निर्देश दे कि वे-

(क) मिक्सर ग्राइंडर की कीमत रुपया (मूल्य), 18 प्रतिशत ब्याज के साथ वापस करें

(ख) शिकायतकर्ता एवं उसके परिवार के सदस्यों को हुए शारीरिक तनाव एवं मानसिक यातना के लिए 10,000 रुपये अदा करे (मुआवजा) तथा

(ग) याचिका के खर्च के रूप में 1,000/- रुपये अदा करे (लागत)

इस दयाभाव के लिए शिकायतकर्ता फोरम का सदा आभारी रहेगा, जो कि उसका कर्तव्य है।

हस्ताक्षर

(नाम)

शिकायतकर्ता

पाठगत प्रश्न 31.4

1. दोषपूर्ण वस्तुओं की पूर्ति के खिलाफ एक शिकायत याचिका तैयार करें।

31.5 अपूर्ण सेवाओं के खिलाफ शिकायत याचिका का नमूना

मुकदमे का उदाहरण : श्रीमान 'X' ने 'मेसर्स Y एंड कंपनी' एक NFBC (......वित्तीय कंपनी) जो कि उसी नगर में कार्य करती है, में दिसंबर, 2011 में कुछ पैसा लगाया। लगाया गया पैसा दिसंबर, 2012 में तैयार (मेच्योर) होता है, लेकिन कंपनी अपना वादा नहीं पूरा करती है और यह बकाया राशि का भुगतान नहीं करती है। श्रीमान 'X' निराश होकर जिला फोरम का दरवाजा खटखटाते हैं।

शिकायत याचिका का प्रारूप

जिला उपभोक्ता विवाद निवारण फोरम के समक्ष

(जिले का नाम)

उपभोक्ता विवाद मुकदमा सं. ..../ 20 (याचिका दायर करने का वर्ष)

उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम, 1986 की धारा–11 के अंतर्गत

एवं

.... के संबंध में/ मामले में

श्रीमान 'X'

(श्रीमान 'X' का पता) शिकायतकर्ता

बनाम (विरुद्ध)

1. अध्यक्ष (चेयरमैन) एवं प्रबंध निदेशक

'मेसर्स Y एंड कंपनी'

('Y' एंड कंपनी का पता) विपक्षी पार्टी

सेवा में,

माननीय अध्यक्ष एवं

जिला फोरम के सदस्य

(जिले का नाम)

श्रीमान न्यायाधीश महोदय,

यह शिकायत याचिका श्रीमान 'X', ('X' का पता) की तरफ से दायर की जाती है, जो यहां शिकायतकर्ता हैं, और इस प्रकार हैं –

1.0 कि यह शिकायत याचिका उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम, 1986 की धारा 2(1)(b)(i) के तहत दायर की जाती है।

2.0 कि विपक्षी पार्टी एक NFBC है और अपनी दूसरी गतिविधियों के अतिरिक्त जनता से जमाएं स्वीकार करने का व्यापार करती है। (विपक्षी पार्टी का विवरण)

(घटना का विवरण)

3.1 कि 26 दिसंबर, 2011 (जमा की तारीख) को, शिकायतकर्ता ने कुछ रुपये (विपक्षी पार्टी के पास जमा राशि) सावधि जमा रसीद संख्या .... के द्वारा एक वर्ष के लिए जमा किया। उस दस्तावेज की एक छाया प्रति संलग्नक-1 में प्रस्तुत है।

3.2 कि वह सावधि जमा (F.D.) 25 दिसंबर, 2012 को परिपक्व हो गई और शिकायतकर्ता ने सावधि जमा को भुनाने के लिए 26 दिसंबर, 2012 को विपक्षी पार्टी के कार्यालय को संपर्क किया, लेकिन कंपनी के कर्मचारियों ने किसी-न-किसी बहाने भुगतान करने में देरी की। (सामना की गई समस्या की प्रकृति)। इसलिए शिकायतकर्ता ने विपक्षी पार्टी के द्वारा तत्काल हस्तक्षेप के लिए प्रार्थना करते हुए पत्र लिखा। उक्त पत्र की एक छायाप्रति संलग्नक-2 में प्रस्तुत है। लेकिन शिकायतकर्ता को अब तक उसके बकाये का भुगतान नहीं किया गया है।

3.3 कि विपक्षी पार्टी द्वारा सावधि जमा की परिपक्वता राशि का नियत तिथि तक भुगतान न करना, उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम की धारा 2(1)(g) के अनुसार त्रुटिपूर्ण/ अपूर्ण सेवा है।

4.0 कि विपक्षी पार्टी ने शिकायतकर्ता एवं उसके परिवार को बहुत अधिक मानसिक पीड़ा एवं आर्थिक नुकसान पहुंचाया है।

प्रार्थना

पिछले अनुच्छेद (पैराग्राफ) में की गई विनती को ध्यान में रखते हुए, शिकायतकर्ता पूरे सम्मान के साथ सम्माननीय फोरम से यह प्रार्थना करता है कि वह विपक्षी पार्टी को यह आदेश दे कि वह-

(क) सावधि जमा की परिपक्वता राशि, रुपये ...., 18 प्रतिशत ब्याज के साथ अदा करे,

(ख) शिकायतकर्ता एवं उसके परिवार के सदस्यों को हुई शारीरिक तनाव एवं मानसिक यातना के 10,000 रुपये अदा करे (मुआवजा), तथा

(स) याचिका के खर्च के रूप में 1000 रुपये अदा करे (लागत)।

इस दयाभाव के लिए, शिकायतकर्ता फोरम का सदा आभारी रहेगा, जो कि उसका कर्तव्य है

हस्ताक्षर

(X) नाम

(शिकायतकर्ता)

हलफनामा (शपथ-पत्र)

मैं, ..., पिता का नाम, ... का निवासी, सत्यनिष्ठा से यह घोषणा करता हूं कि

'शिकायत याचिका' में वर्णित तथ्य जो कि माननीय जिला उपभोक्ता विवाद निवारण फोरम (स्थान)/ राज्य उपभोक्ता विवाद निवारण आयोग (राज्य), राष्ट्रीय उपभोक्ता विवाद निवारण आयोग नई दिल्ली', के समझ प्रस्तुत किए गए हैं, मेरी सर्वोत्तम जानकारी में सही है और मेरे द्वारा रखे गए अभिलेखों (रेकॉर्ड्स) पर आधारित हैं, जिन्हें में सत्य मानता हूं।

गवाह

सत्यापन

सत्यापित किया जाता है कि (स्थान का नाम), ... आज .... दिनांक (माह) (वर्ष) को ऊपर दिए गए हलफनामें में दिए गए तथ्य मेरी सर्वोत्तम जानकारी और विश्वास में सत्य एवं सही हैं।

गवाह

नोट (टिप्पणी) :

1. हलफनामें को नोटरी के समक्ष, 5 रुपये एक गैर-न्यायिक स्टांप पेपर पर, शपथ दिलाया जाना चाहिए।
2. स्थान, राज्य, माह, वर्ष, वास्तविक रूप में दर्ज होने चाहिए।
3. शिकायतकर्ता या अपीलकर्ता गवाह है।

पाठगत प्रश्न 31.5

1. अपूर्ण सेवा प्रदान करने के खिलाफ एक नमूना शिकायत याचिका का प्रारूप तैयार करें।

आपने क्या सीखा

- उपभोक्ता सक्रियता, उपभोक्ता अधिकारों पर जोर देने के लिए, उपभोक्ताओं की तरफ से दिखाई गई सक्रियता है। उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम (CPA) अनैतिक एवं अनुचित व्यापार व्यवहार से उपभोक्ताओं के हितों की रक्षा के लिए वर्ष 1986 में अधिनियमित (स्वीकार) किया गया।

- भारत में उपभोक्ता आंदोलन के मुख्य कारण थे– बड़े पैमाने पर खाद्य भंडारण एवं जमाखोरी जैसी घटनाएं। अनैतिक एवं अनुचित व्यापार व्यवहारों से उपभोक्ताओं की रक्षा, एवं उपभोक्ता हितों को बढ़ावा देने की आवश्यकता भारत में उपभोक्ता आंदोलन की उत्पत्ति के अन्य प्रमुख कारण थे।

- एक उपभोक्ता किसी दोषपूर्ण वस्तु या अपूर्ण सेवा के खिलाफ अपनी शिकायतों का निवारण, उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम, 1986 के अंतर्गत स्थापित उपभोक्ता अदालतों (अर्द्ध–न्यायिक उपभोक्ता विवाद निवारण संस्थाएं) में कर सकता है।

- उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम, 1986 संसद द्वारा 1986 में पारित एक अधिनियम है, जिसका उद्देश्य भारत में उपभोक्ताओं के हितों की रक्षा करना है। यह अधिनियम उपभोक्ता विवादों एवं उनसे जुड़े अन्य मामलों के निपटारे (निवारण) के लिए उपभोक्ता परिषदों एवं अन्य प्राधिकारों की स्थापना का प्रावधान करता है।

  इस अधिनियम के तहत, उपभोक्ताओं को जागरूक करने के लिए राष्ट्रीय, राज्य एवं जिला स्तरों पर, उपभोक्ता संरक्षण परिषदों (समितियों) की स्थापना की गई है।

- इस अधिनियम के तहत उपभोक्ताओं के विवादों एवं संबंधित मामलों के निपटारे के लिए, उपभोक्ता निवारण एजेंसियों, जैसे कि जिला उपभोक्ता विवाद निवारण फोरम (DCDRF), राज्य उपभोक्ता विवाद निवारण आयोग (SCDRF), जो कि 'राज्य आयोग' के नाम से भी जानी जाती है तथा राष्ट्रीय उपभोक्ता विवाद निवारण आयोग (NCDRC) की स्थापना की गई है।

- इस पाठ में शिक्षार्थियों के लाभ के लिए,

  निम्नलिखित विवादों के निवारण के लिए, नमूना शिकायत याचिकाएं (ड्राफ्ट) दी गई/ की गई हैं –

  (क) दोषपूर्ण वस्तुओं की आपूर्ति के विरुद्ध एवं

  (ख) दोषपूर्ण/ अपूर्ण सेवाओं के विरुद्ध।

पाठांत प्रश्न

1. 'उपभोक्ता सक्रियता' को परिभाषित करें।
2. भारत में उपभोक्ता आंदोलन के उद्देश्य, लक्ष्य एवं युक्तियों की संक्षेप में चर्चा करें।
3. भारत में उपभोक्ता आंदोलन के महत्व को समझाएं।
4. दोषपूर्ण वस्तुओं की पूर्ति के विरुद्ध एक नमूना शिकायत याचिका का मसौदा (ड्रॉफ्ट) तैयार करें।
5. अपूर्ण सेवा प्रदान करने के विरुद्ध एक नमूना याचिका का मसौदा (ड्रॉफ्ट) तैयार करें।

पाठगत प्रश्नों के उत्तर

31.1

1. उपभोक्ता सक्रियता, उपभोक्ता अधिकारों पर जोर देने के लिए, उपभोक्ताओं की तरफ से दिखाई गई सक्रियता है।
2. उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम वर्ष 1986 में अधिनियमित किया गया।
3. उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम (CPA) 1986, अनैतिक एवं अनुचित व्यापार व्यवहार के खिलाफ उपभोक्ताओं के हितों की रक्षा करता है।

31.2

1. भारत में उपभोक्ता आंदोलन के मुख्य कारण थे- बड़े पैमाने पर खाद्य भंडारण एवं जमाखोरी जैसी घटनाएं। अनैतिक एवं अनुचित व्यापार व्यवहारों से उपभोक्ताओं की रक्षा एवं उनके हितों को बढ़ावा देने की आवश्यकता। भारत में एक सामाजिक शक्ति के रूप में उपभोक्ता आंदोलन की उत्पत्ति के अन्य कारण थे।

31.3

1. भारत में उपभोक्ता आंदोलन का लक्ष्य है उपभोक्ताओं को बेहतर वस्तुएं एवं सेवाएं उपलब्ध कराना।

   अनैतिक एवं अनुचित व्यापार व्यवहार से उपभोक्ताओं का संरक्षण सरकार का प्रमुख उद्देश्य होना चाहिए।

   उपभोक्ता सक्रियतावादियों की युक्तियों में- बहिष्कार, वस्तुओं के निर्माताओं एवं विक्रेताओं के खिलाफ याचिका दायर करना, सरकारों को याचिका, मीडिया सक्रियता एवं रुचि समूहों का आयोजन शामिल हैं।

31.4

1. नमूना याचिका 31.4.2 देखें।

31.5

1. नमूना याचिका 31.5.2 देखें।

INTRODUCTION TO LAW
SAMPLE QUESTION PAPER

Time: 3 Hours **Maximum Marks: 100**

1. 'कानून' की कोई एक परिभाषा लिखिए।

   Write any one definition of 'Law'. 2

2. उन परिस्थितियों का परीक्षण कीजिए, जिनके कारण पारसी समुदाय को भारत की स्थानीय प्रथाओं को अपनाना पड़ा।

   Examine the circumstances that made "Parsis" to adopt the local Customs of Inda. 2

3. न्याय-पंचायतों में महिलाओं तथा सामाजिक दृष्टि से पिछड़े वर्गों का आरक्षण कहां तक उचित है?

   How far is the reservation for women and socially backward classes in the Panchayats justified? 2

4. अधिष्ठायी कानून से क्या अभिप्राय है?

   What is meant by Substantive Law? 2

5. 'सार्वजनिक कानून' की परिभाषा लिखिए।

   Define Public Law. 2

6. विधिक सेवाएं प्राधिकरण अधिनियम, 1987 के अंतर्गत गठित किन्हीं दो प्राधिकरणों के नाम लिखिए।

   Name any two Authorities constituted under the Legal Services Authorities Act, 1987. 2

7. यह कहना कहां तक उचित है कि प्रस्तावना भारतीय संविधान का एक भाग नहीं है?

   How far is it correct to say that Preamble is not a part of the Indian Constitution? 2

8. भारतीय संविधान के अनुच्छेद 20 के अंतर्गत 'जीवन तथा निजी स्वतंत्रता का अधिकार' अपराधों के लिए दोषी पाए जाने पर किस प्रकार सुरक्षा प्रदान करता है?

   How does Right to life and Personal Liberty under Article 20 provide protection in respect of conviction for offences? 2

9. साधारण विधेयक तथा वित्त (धन) विधेयक में अंतर स्पष्ट कीजिए।

   Distinguish between an Ordinary Bill and a Money Bill. 2

10. लोकसभा की कौन-सी दो शक्तियां उसे राज्यसभा से अधिक शक्तिशाली बना देती हैं?

    Which two powers of Lok Sabha more powerful than Rajya Sabha? 2

11. पर्यावरण के संरक्षण की आवश्यकता क्यों अनिवार्य है?

अथवा

उपभोक्ता अथवा संरक्षण अधिनियम, 1986 में संशोधन क्यों किया गया?

Why is the need for protection of environment very essential?

Or

Why was the Consumer Protection Act, 1986 amended? 2

12. विश्व की विभिन्न न्याय प्रणालियों को वर्गीकृत कीजिए तथा उनमें से किन्हीं दो की व्याख्या कीजिए।

Classify the different Legal System of the World and explain any two of them. 4

13. संवैधानिक उपचारों के अधिकार के अंतर्गत आने वाले किन्हीं दो 'लेखों' या 'परमादेशों' की, एक-एक उदाहरण देकर व्याख्या कीजिए।

Explain any two "Writs" under the Right to Constitutional Remedies with an example for each. 4

14. दंड के विभिन्न सिद्धांतों की व्याख्या कीजिए।

Explain the various theories of punishment. 4

15. ''विवाचन को पारंपरिक मुकदमेबाजी से पहले वरीयता दी जाती है।'' क्या आप इस कथन से सहमत हैं? किन्हीं दो उपयुक्त तर्कों द्वारा अपने उत्तर की पुष्टि कीजिए।

"Arbitration is preferred over traditional litigation". Do you agree with this statement? Support your answer with suitable arguments. 4

16. किन्हीं चार उपयुक्त उदाहरणों की सहायता से राज्य के नीति निदेशक सिद्धांतों का आकलन कीजिए।

Assess the implementation of Directive Principle of State Policy giving any four examples to support your answer. 4

17. ''जनहित याचिका (पी.आई.एल.), कानूनी सहायता आंदोलन का एक रणनीतिक हथियार है, जिसका उद्देश्य न्याय को गरीब जनता की पहुंच तक लाना है।'' जनहित याचिका के अंतर्गत सर्वोच्च न्यायालय द्वारा किन्हीं दो मामलों में दिए गए निर्णयों के उदाहरण देकर, इस कथन को तर्कसंगत ठहराइए।

"The Public Interest Litigation (PIL) is a strategic arm of the legal aid movement which is intended to bring justice within the reach of the poor masses." Justify the statement giving examples of any two cases decided by the Suprmen Court of India under Public Interest Litigation. 4

18. केंद्रीय प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड के किन्हीं चार प्रमुख कार्यों को सूचीबद्ध कीजिए।

अथवा

'व्यवसाय अथवा व्यापार में अपनाई जाने वाली अनुचित गतिविधियों' से क्या अभिप्राय है? गतिविधियों की ऐसी अनुचित व्यापारिक किन्हीं तीन श्रेणियों का उल्लेख कीजिए।

List any four main functions of the Central Pollution Control Board.

Or

What is meant by Unfair Trade Practices? Mention any three categories of Unfair Trade Practices. 4

19. प्रदूषण मुक्त पर्यावरण के लिए खतरनाक कचरे का प्रबंधन कैसे किया जा सकता है?

अथवा

व्यवसाय/ व्यापार में अपनाई जाने वाली किन्हीं दो गलत और अनुचित गतिविधियों के उदाहरण दीजिए, जिनका निदान किसी 'उपभोक्ता विवाद निपटान आयोग/ फोरम' द्वारा किया गया हो। दिए गए निर्णयों का उल्लेख भी कीजिए।

How can the hazardous wastes be handled for a pollution free environment?

Or

Cite any two leading cases of 'Unfair Trade Practice' decided by different Consumer Disputes Redressal Commission/Forums alongwith the verdicts given. 4

20. पारितंत्र को ध्यान में रखते हुए, सतत-पोज़णीय विकास से संबद्ध किन्हीं चार क्षेत्रों को विष्ठोज़ ध्यान देने की आवष्ठयकता है और क्यों?

अथवा

भारत में उपभोक्ता आंदोलन को जन्म देने वाली परिस्थितियों का परीक्षण कीजिए।

Keeping into mind the diversity of the eco system, which four areas involved under Sustainable Development need special attention and why?

Or

Examine the circumstances which led to the origin of Consumer Movement in India. 4

21. 'रिवाज' (प्रथा) की परिभाषा लिखिए। इसकी किन्हीं चार अनिवार्यताओं की पहचान कीजिए।
Define 'Custom' and identify any four 'essential' of a 'Custom'. 6

22. प्रत्येक का एक-एक उदाहरण देकर निम्नलिखित शब्दों को स्पष्ट कीजिए-

(क) आर्थिक पूर्वाग्रह

(ख) विषय-वस्तु पूर्वाग्रह

(ग) विभागीय पूर्वाग्रह

Explain the following terms giving at least one example in each case

(a) Pecuniary Bias

(b) Subject Matter Bias

(c) Departmental Bias 6

23. सर्वोच्च विधि-निर्माण तथा अधीनस्थ विधि निर्माण में अंतर स्पष्ट कीजिए। अधीनस्थ विधि-निर्माण के किन्हीं चार रूपों की व्याख्या भी कीजिए।

Differentiate between Supreme Legislation and Subordinate Legislation. Also explain any four forms of Subordinate Legislation. 6

24. शिकायत दाखिल करवाने से लेकर निर्णय सुनाए जाने तक, दीवानी मामलों के विभिन्न चरणों की व्याख्या कीजिए।
Explain the various stages through which a 'Civil Suit' passes starting from its filing to the delivery of Judgement. 6

25. भारतीय राज्य के किन्हीं तीन प्रमुख लक्षणों का वर्णन कीजिए, जो स्वयं इसकी प्रकृति को उजागर करते हैं।
Describe any three main characteristic of the Indian State which highlight the nature of the State itself. 6

26. उन तीन विशिष्ट परिस्थितियों का उल्लेख कीजिए, जिनके चलते भारत के राष्ट्रपति आपातकाल की घोषणा कर सकता है। यह घोषणा प्रत्येक परिस्थिति को कैसे प्रभावित करती है?
Mention the three extra-ordinary situations under which the President of India can proclaim emergency. How does this proclamation affect each situation. 6

27. पर्यावरण की गुणवत्ता के संरक्षण तथा सुधार से संबंधित 'प्रदूषणकर्ता द्वारा क्षतिपूर्ति सिद्धांत' की भूमिका का मूल्यांकन कीजिए।

अथवा

भारत में उपभोक्ताओं के अधिकारों के संरक्षण के लिए 'उपभोक्ता सक्रियतावाद' की भूमिका का मूल्यांकन कीजिए।

Evaluate the role of the 'Polluter Pays Principle' towards protecting and improving of the quality of environment.

Or

Evaluate the role of 'Consumer Activism' in protecting the rights of the consumers in India. 6

Marking Scheme
Sample Question Paper

1. Austin – According to Austin Law is a body of Rules laid down by political superiors to political inferiors. In other words body of command by a sovereign to his inferiors and the sovereign is Supreme.

   Salmond – Principles recognized and applied by the State in the administration of Justice.

   (Any one)

   Or any other definition. $2 \times 1 = 2$

2. Paris adopted the local 'customs' of India because,

   (i) they were allowed to stay in India, at the time of their first arrival on the condition that they would follow Inida's local customs of the place where they were allowed to settle.

   (ii) they were not temporary settlers. So, they adopted local customs due to long settlement in India and gave respect to the local customs. $1 + 1 = 2$

3. The reservation for women and socially backward classes in the Naya Panchayats will have the path for equal opportunity in every person reardless of their caste and fair dispenstion of justice. $2 \times 1 = 2$

4. Substantive Law deals with the legal relationship between subjects (individuals) or the subject and the State. It is Statutory Law that defines and determines the rights and obligations of the citizens to be protected by law.
   $2 \times 1 = 2$

5. The public law deals with societal problems in the broad context. $2 \times 1 = 2$

   Public law governs relationship between the State with its citizens and also relationship between the individuals directly concerning the society. (Any one)
   $2 \times 1 = 2$

6. (i) State Legal Services Authority

   (ii) District Legal Services Authority $2 \times 1 = 2$

7. In the famous Beribari Case, Hon'ble Supreme Court held that the Preamble is not a part of the Constitution.

   However, in Keshwanand Bharti case the Supreme Court held that the Preamble was as much a part of the Constitution as any other provision, therein. $2 \times 1 = 2$

8. Article 20 deals with protection in respect of conviction of offences in the following manner:

   (i) No person can be convicted for any offence except for violation of a law inforce at the time of the commission of the act.

   (ii) No person can be prosecuted for the same offence more than once.

   (iii) No person accused of any offence can be compelled to witness against himself. (Any two)

   $2 \times 1 = 2$

9. The Bills that deal with money matters, financial obligations, revenue and expenditure etc. are called Money Bills. On the other hand, all non-money bills are called Ordinary Bills. $2 \times 1 = 2$

10. Lok Sabha is more powerful than Rajya Sabha:

    (i) Money Bill can only be introduced in Lok Sabha.

    (ii) The No Confidence Motion can be used by Lok Sabha members only and not by Raya Sabha.

$2 \times 1 = 2$

11. The human beings as well as animals need clean food and water. Therefore, it is essential to protect the ecosystem that makes our survival possible. In case, we do not stop pollution, it is sure that the world will come to an end.

Or

The Forum established under the Consumer Protection Act, 1986 (CPA) had become elogged with pendency of cases, effective compliance was difficult to monitor and very. Hence, the amendment made in CPA addressed these issue. $2 \times 1 = 2$

12. (i) **Common Law System:** 'Common Law' is the name of family of different Legal System of the world which follow common features and Traits albeit with small deviations.

    Common Law system has influenced the development of many Legal System of the world such as India, England, U.S.A, Canada and Australia.

    (ii) **Continental Legal System:** The Legal System followed by the countries in the mainland of Western Europe which is commonly referred as 'Continent' is known as 'Continental Legal System.

    The origin of Continental Legal System can be traced to the old age Roman Empire of the 5^{th} Century A.D. Now you can find this system present in many countries of Southern America and ports of Africa.

    (iii) **Social Legal System:** An important Legal System which has influenced the development of many other legal systems of the world is called 'Socialist Legal system'. This legal system was adopted by those countries which have started following Socialist and Marxist philosophy especially after the First World War of 1914. Some other countries which have adopted this system are Cuba, North Korea, Mongolia, Ukraine, Kzakhistan and Uzbekistani.

    Socialist Legal System has been influenced by Common Law System and Continental Law System.

    (iv) **Legal System among International Institutions and Countries** – Inter-SE or International Legal System: The International Legal System which is a new phenomenon has taken birth in the twentieth century especially after the First World War. You can say that without an International Legal System in place there cannot be possibility of International Peace and Security.

    This Legal System which regulates the relations among Community of Nations, can be understood by four specific examples : (a) Role of Treaties (b) United Nations (c) European Union and (d) SAARC.

(Any two systems to be explained)

$2 + 2 = 4$

13. *Writ of 'Habeas Corpus':* Habeas Corpus means "to have the body". It is in the nature of an order calling upon a person who has unlawfully detained another person to produce the latter before the court.

    Example – "A" has been unlawfully detained by a person "B". A writ of 'Hebeas Corpus' can be filed under Article–226 in the concerned High Court.

    Writ of Mandamus: Mandamus literally means "Command". It is thus an order of Superior Court commanding a person holding a public office or a public authority (including the Government) to do or not to do something, in the nature of public duty.

    Example – A police officer not filing FIR of a victim can be directed by the Superior Court to file a FIR and take suitable action on the complaint so lodged. $2 + 2 = 4$

14. Theories of punishment

    (i) *Deterrent Theory* is commensurate with the gravity or serious nature of the offence.

    (ii) *Preventive Theory:* As per this theory punishment is given to the offender with a view to prevent the repetition of the offence.

    (iii) *Retributive Theory:* Here the punishment is based on the principle of the retribution i.e. life for life or eye for eye or tooth for tooth. It is abort of barbaric punishment.

    (iv) *Reformatory Theory:* It aims at reforming the criminals so that they may be prevented from committing crimes again. $4 \times 1 = 4$

15. Yes, I agree with this statement because of

    (i) Arbitration is less expensive than traditional litigation.

    (ii) It provides faster resolution of disputes.

    (iii) It provides Justice in an expeditious manner. (Any Two Argument)

    $2 \times 2 = 4$

16. Assesment of DPSP

    (i) Land reforms introduced by the government to abolished the zamindari system and helped in the equal distribution of land.

    (ii) Through 73rd Constitution Amendment 1992, the Constitutional obligation stated in Article 40, was fulfilled by introducing three tier Panchayati Raj System.

    (iii) Central Government sponsored schemes like PMGSY,MRHM etc are being implemented to fulfil the social sector responsibility.

    (iv) Various programme to provide health and nutritional support to the women and children i.e. maternity relief, mid-day meal etc.

    Though many DPSP have been implemented still a lot has to be done. $4 \times 1 = 4$

17. *The cases that justify the Statement:*

    (i) The first reported case of PIL in 1979

    Focussed on the inhuman conditions of prisons and under trial prisoners

It was filed by an advocate

After the proceedings 40,000 undutrials were released

(ii) Another case was

Bandhna Mukti Morcha v/s Union of India to the cause of release of bonded labourers. After the enquiry was conducted, the Supreme Court ordered the released and rehabilitation of all bonded labourers. $2 + 2 = 4$

18. *Functions of Central Pollution Control Board:*

(i) To promote cleanliness of streams and wells in different areas of the States by prevention, control and abatement of water pollution.

(ii) To improve the quality of air and to prevent control or abate air pollution.

(iii) To advise the Central Government any matter concerning prevention and control of water and air pollution.

(iv) To provide technical assistance and guidance to the State Boards. (Or any other function) $4 \times 1 = 4$

Or

Unfair Trade Practice means a trade practice or a business practice which, for the purpose of promoting the sale, use or supply of any goods or the provision of any service, adopts any unfair method or unfair or deceptive practice.

Categories:

(i) False Representation

(ii) False offer of 'bargain price'

(iii) Free gift offer and prize scheme. $1 + 3 = 4$

19. Any hazardous substance which is present in our surrounding and may harm our environment has to be dealt with carefully:

(i) First of all it, should be identified along with the generating industry.

(ii) After data collection through surveys, the hazardous waster should be characterized in the laboratory.

(iii) Sites should be identified for treatment, storage and disposal of such substances.

(iv) Implementation of treatment storage and final disposal should be done. $4 \times 1 = 4$

Or

Mercedes Beaz Case

One of the World's oldest and leading luxury car manufacturers Mercedes Benz was slapped a fine of Rs. 2 lakhs for selling a used a demo car as new to a customer in Chennai.

Verdict

In its verdict, the National Consumer Disputes Redressal Commision said "selling of used demo cars without the knowledge of the customer amounts to an Unfair Trade Practice with the Consumer Protection Act.

Article

Article was directed to pay Rs 10,000 as compensation to one of its customers for providing faulty interest connection.

Verdict

The East Distt. Consumer Dispute Redressal Forum Delhi, in its Verdict said "The telecom company had provided deficient service to its customer a Delhi-based Lawyer and hence, directed to pay Rs. 10,000 as compensation. 2 + 2 = 4

20. *Most important areas*

(i) Preservation of biological diversity in terrestrial, freshwater and marine system.

(ii) Sustainable use of resources and minimizing the depletion of resources.

(iii) Conservation of natural capital both for renewable and on-renewable resources.

If special attention is not paid to the above mentioned four areas, the life on earth will be in danger and difficult to survive.

All the area are so interlinked that we cannot afford to neglect them. 2 + 2 = 4

Or

The 'Consumer Movement' in India, has a social cause, originated under the following circumstances:

(i) Necessity of protecting and promoting the interest of consumers against unethical and unfair trade practices.

(ii) Rampant food shortages

(iii) Hoarding and artificial scarcity of goods/products

(iv) Settlement of consumer disputes and any other such matters.

(Or any other relevant point.)
4 × 1 = 4

21. Custom – 'Custom' denotes rules of habitual conduct within a community. Uniformity of conduct in like circumstances is the hallmark of a 'Custom'.

Essentials of a Customs:

(a) Antiquity

(b) Continuance

(c) Reasonableness

(d) Obligatory character

(e) Certainty

(f) Consistency

(g) Uniformity

(h) Conformity with Statute Law and Public Policy.

(Any four to be explained)
2 + 4 = 6

22. (i) Pecuniary Bias: The Judicial approach is unanimous and decisive on the point that any financial interest however, small it may be, would vitiate administrative action. The disqualification will not be avoided by non-participation of the biased member in the proceeding if he/she was present.

Example – The Supreme Court in a case of quashed the decision of the 'Text-Book Selection Committee' because some of the Members of the committee were also authors of books which where considered for selection when the decision was reached.

(ii) Subject Matter Bias : Such cases fall within this category where the deciding officer is directly, or otherwise involved in the Subject matter of the case here again mere involved would not vitiate the administrative action unless there is a real likelihood of bias.

Example – In a case of Supreme Court quashed the decision of the Andhra Pradesh Government nationalizing road transport on the ground that the Secretary of the Transport Department who gave hearing was interested in the Subject matter.

(iii) Departmental Bias: The problem of 'Departmental Bias' is something which is inherent in the administrative process, and if it is not effectively checked it may negate the very concept of fairness in the administrative proceedings.

Example – In a case, the Supreme Court quashed the notification of the Government which had conferred powers of a Deputy Commissioner of Police on the General Manager, Haryana Roadways in the matters of inspection of Vehicles on the ground of 'Departmental Bias.' $3 \times 2 = 6$

23. *Supreme Legislation* is said to be supreme when it is proceeded from the supreme or soverign power of the Parliament and State Legislatures.

Subordinate Legislation is that which proceeds from any authority other than the Supreme Authority. It is made under the powers delegated to it.

Forms of Subordinate Legislation

(i) Executive
(ii) Judicial
(iii) Municipal
(iv) Autonomous
(v) Colonial (Any four) $2 + 4 = 6$

24. A Civil suit passes through the following stages:

(i) Filing of Plaint or case;
(ii) Issuing Summons to the opposite party;
(iii) Appearance of 'defendant'
(iv) Framing of issues;
(v) Recording of evidence;
(vi) Arguments; and
(vii) Judgement or Delivery of Judgement. (Any six stages) $6 \times 1 = 6$

25. *Characteristics of Indian State:*

(i) Liberal Democratic State

(ii) Federal State

(iii) A welfare State

(iv) Caste-ridden Society

(v) Multi-religious Society (Any three to be described)

$3 \times 2 = 6$

26. *Extra-ordinary situations* for the proclamation of Emergency

(i) When the security is threatened by war or external aggression or armed rebellion.

(ii) When it becomes difficult or not possible for the Govt. of a State to work or function in accordance with the Constitution or breaking down of Constitutional machinery in a State or imposition of President's Rule.

(iii) When the financial stability of the country is threatened.

Effect

(i) The federal character of the country becomes Unitary and the power of the Union Government increases.

(ii) The President/Governor on his/her behalf assumes all the functions of the State Government.

(iii) The President can ask the Sate to reduce salaries. (Or any other effect)

$3 + 3 = 6$

27. The 'Polluter Pays Principle' has been enacted to make the party responsible for producing 'pollution' to pay for the damage done to the natural environment. For example if a factory produces a potentially poisonous substance as a by-product, it should be held responsible for its safe disposal.

But the ground reality is completely different. The case comes to light only after pollution has actually taken place or the damage has already been done. If the 'Polluter Pays Principle' is applied at this sgate, its role will prove to be limited in the sense that it can be applied only at the remedial state i.e. after the pollution has already taken place.

It means one may 'pay' and 'pollute' . (Or any other opinion)

$6 \times 1 = 6$

Or

The 'Consume Activism' has succeeded in bringing pressure and in applying a check on the unfair trade practices in India.

It has also been successful inprotecting and promoting the interest of consumers against unethical and unfair trade practices.

'Consumer Activism' has also helped in creating an awareness about the consumer goods and services.

It has also succeeded in bringing the unscraplous tradesman to books.

It has also helped the consumer movement in achieving its goals. $6 \times 1 = 6$

QUESTION PAPER DESIGN

Subject: Introduction to Law **Level: Senior Secondary**

Maximum Marks: 100

1. Weightage to Objectives

Objective	Marks	Percentage
Knowledge	24	24
Understanding	50	50
Application	26	26
Total	**100**	**100**

2. Weightage to Question

Types of Questions	No. of Questions	Marks of Each Question	Total
Long Answer	7	6	42
Short Answer	9	4	36
Very Short Answer	11	2	22
Total	**27**		**100**

3. Weightage to Major Content Areas:

Units		Marks
1.	Concept of Law	14
2.	Functions and Techniques of Law	12
3.	Classification of Law	14
4.	Indian Court System and Methods of Resolution of Disputes	12
5.	The Constitution of India-I	14
6.	The Constitution of India-II	14
7A	Environmental Law, Role of Citizens, Police and Administration	
7B	Law Relating to Consumer Protection and Right to Information	20
	Total	**100**